

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj.)**

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DATE	SIGNATURE

सभाष्य अथर्ववेद की विषयसूची ॐ

विषय

पृष्ठ

❀ बीसवाँ-काण्ड ❀

प्रथम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । इसकी ऋचाओंका अग्निष्टोम आदि यहाँ प्रयोग होता है । मरुत् शब्दकी व्याख्या । अग्निस्तुति । १

द्वितीय सूक्त । इसकी ऋचाओंसे पोता आसीध और दाणाच्छंसी यजन करते हैं । ५

तृतीय चतुर्थ पञ्चम षष्ठ और सप्तम सूक्त । ज्योतिष्टोम । दिमें-इनका विनियोग होता है । इन्द्र अग्नि और दित्यके घोड़ोंके नाम । ८

अष्टम सूक्त । इनका दादाणाच्छंसी आदि उच्चारण रते हैं । २६

नवम दशम एकादश औरद्वादश सूक्त । इनकी ऋचायें शस्त्रयाज्या और परिधानीया आदि होती हैं और इन की ऋचाओंका दादाणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियोग होता है । इत्यादि । ऋजीप शब्द ३४

त्रयोदश सूक्त । इसकी ऋचाओंका ज्योतिष्टोम आदि यहाँमें विनियोग होता है । ६४

द्वितीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त । इनका उपध्य-
स्तुके दादाणाच्छंसीशस्त्रमें विनियोग होता है । ६६

तृतीय अनुवाक—

प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ सूक्त । इनका अति-

विषय

पृष्ठ

रात्र क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्रमें विनियोग होता है । आदि १०६

पञ्चम पष्ठ सप्तम और अष्टम सूक्त । इनका अतिरात्र क्रतुके मध्यमपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है १३८

नवम दशम एकादश और द्वादश सूक्त । इनका अतिरात्र क्रतुके तृतीय रात्रिपर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमें विनियोग होता है । १६४

त्रयोदश सूक्त । इसका अनिरात्र ब्राह्मणाच्छंसितृतीयपर्यायशस्त्रमें विनियोग होता है । १८२

चतुर्थ अनुवाक-

प्रथम द्वितीय सूक्त । इनका नाम साम और अहीन सूक्त है । इन्द्र, युनि और चुष्टुरि असुर तथा गुरुसमद श्रुति का आरूपान् ; इन्द्रका अस्तित्व । २००

पञ्चम अनुवाक-

प्रथम सूक्त । अविस्तव षट्द स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है । २६७

द्वितीय सूक्त । गवामपन आदिमें इसका प्रयोग होता है । २७१

तृतीय सूक्त । पृष्ठयके तृतीय दिन आदिमें इसका पाठ होता है । २७४

चतुर्थ सूक्त । पृष्ठयषट्दके चतुर्थ दिनमें इसका विनियोग होता है । २७५

पञ्चम सूक्त । अश्वमेध अर्धके द्वितीय दिन आदिमें इसका विनियोग होता है । २७७

षष्ठ सप्तम सूक्त । अग्नोर्गामक्रतु आदिमें इसका विनियोग होता है । २७८

विषय

पृष्ठ

अष्टम सूक्त । इसका तीव्र सुदुपशब्द उपहव्य और व्यु-
ष्टिद्वयहमें काम पड़ता है । २८१

नवम सूक्त । स्वरसाम आदिमें इसका काम पड़ता है । २८२

दशम सूक्त । इसका अतिरात्र अतिरिक्तोक्थ, छन्दोम,
वैश्वदेव उपह और साक्रमेय उपहमें विनियोग होता है । २८४

एकादश सूक्त । विपुवत्सौर्यपृष्ठमें यह चतुर्थ स्तोत्रिय
होता है । २८२

द्वादश सूक्त । यह छठा स्तोत्रिय होता है । २८५

त्रयोदशसूक्त । वाजपेय और गवामयन आदिमें इसका
प्रयोग होता है । २८८

चतुर्दश सूक्त । चतुर्थमाध्यन्दिनसवन, अभिसवके युग्म
दिवस, विपुवत् और उपहमें इसका प्रयोग होता है । २८६

पञ्चदशसूक्त । पृष्ठय आदिमें इसका विनियोग होता है । ३०२

षोडश सूक्त । त्रिककुडशाहाहीनमें इसका विनियोग
होता है । ३०५

सप्तदश सूक्त । पृष्ठयपदह आदिमें इसका विनियोग है । ३०७

अष्टादश सूक्त । पृष्ठय पदह आदिमें इसका विनियोग
होता है । ३१०

उन्नीसवाँ सूक्त । पृष्ठयपञ्चाहके पञ्चम दिनमें इससे
काम लिया जाता है । ३१२

बीसवाँ सूक्त । रयेनसदंशाजिर आदिमें इसका विनि-
योग होता है । ३१५

इक्कीसवाँ सूक्त । विपुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इसका
विनियोग होता है । ३२२

बाईसवाँ सूक्त । दशरात्रमें इसका काम होता है । ३२६

विषय

पृष्ठ

तेईसवाँ सूक्त । वैकुण्ठ-पृष्ठपद आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३२८

चाबीसवाँ सूक्त । वैश्वदेव-पृष्ठ आदिमें इससे काम लिया जाता है । ३३२

पच्चीसवाँ सूक्त । इसका विनियोग अन्य सूक्तोंमें है । ३३५

छत्तीसवाँ सूक्त । पृष्ठपद, चानपेय, अभिमित्ति निरवजित् आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३३६

सत्ताईसवाँ सूक्त । अभिसरेके पञ्चम दिनमें इसका काम होता है । ३४५

अट्ठाईसवाँ सूक्त । यह दशाहके नवम दिनमें उवयस्ती-त्रिय होता है । ३४८

उन्तीसवाँ सूक्त । इन्द्रस्तुति । ३४९

छठा अनुवाक-

प्रथम सूक्त । पृष्ठपदमें इससे काम लिया जाता है । ३५०

द्वितीय सूक्त । छन्दोमके प्रथम दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३५५

तृतीय सूक्त । छन्दोमके द्वितीय दिनमें यह पढ़ा जाता है । ३६०

चतुर्थ सूक्त । छन्दोमके तृतीय दिनमें इसका पाठ होता है । ३६४

पञ्चम सूक्त । स्वरसाम आदिमें इसका प्रयोग होता है । ३७१

सप्तम अनुवाक-

प्रथम सूक्त । पृष्ठपदमें इसका विनियोग होता है । ३७७

द्वितीय सूक्त । पृष्ठपदके चतुर्थ दिनमें इससे काम लिया जाता है । ३७८

तृतीय सूक्त । पृष्ठपदके पंचम दिन यह काममें आता है । ३८३

चतुर्थ सूक्त । पृष्ठपदके छठे दिन यह काममें आता है । ३८५

पञ्चम पृष्ठ सूक्त । छन्दोम आदिमें इसका विनियोग है । ३८८

विषय पृष्ठ

सप्तम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका विनियोग है । ३६८
अष्टम सूक्त । विपुवत् सौर्यपृष्ठ आदिमें इससे काम लिया
जाता है । ४०१

नवम सूक्त । वाजपेय आदिमें इसका प्रयोग है । ४०३
दशम सूक्त । विरवजित् वैराजपृष्ठ आदिमें इसका
विनियोग है । ४०५

एकादश सूक्त । असौर्याम क्रतु आदिमें इसका विनि-
योग है । ४०७

द्वादश सूक्त । विरवजित् आदिमें इससे काम लिया
जाता है । ४०८

त्रयोदश चतुर्दश सूक्त । चतुर्विंश साम्बत्सरिक, छन्दोम
त्रिष्वह आदिमें इसका विनियोग है । ४१०

पञ्चदश षोडश सप्तदश अष्टादश एकोनविंश सूक्त ।
छन्दोममें इससे काम लिया जाता है । ४१५

अष्टम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । तृतीय छन्दोम दिन आदिमें इसका विनि-
योग है । ४३३

द्वितीय सूक्त । अतिरात्र पृष्ठचपडह और अभिजित्में
इसका प्रयोग होता है । ४३८

तृतीय सूक्त । श्येनसंश्रजिरवज्र आदिमें इससे काम
लिया जाता है । ४४८

चतुर्थ सूक्त । तृतीय छन्दोममें इससे काम होता है । ४५२
पञ्चम सूक्त । महाव्रतमें यह पढ़ा जाता है । ४५८

छठा सूक्त । महाव्रत माव्यन्दिन सवनमें यह पढ़ा जाता है । ४६१

नवम अनुवाक—

प्रथम सूक्त । सर्वजित् ऋषभ, बृहस्पतिसव, त्रिकुटुद्
दशाह आदिमें इसका प्रयोग है । ४७२

द्वितीय सूक्त । तनूपुत्र आदिमें इसका विनियोग है । ४७५

तृतीय सूक्त । अपूर्व एकाहमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । ४७६

चतुर्थ सूक्त । घ्रात्यस्तोम पवित्र आदि राजमूय आदि
में इसका काम पढ़ता है । ४७७

पञ्चम छठा सूक्त । अग्निष्टुत् एकाह आदिमें इससे
काम लिया जाता है । ४८०

सप्तम सूक्त । २० । १०१ के साथ इसका विनियोग
कह दिया है । ४८३

अष्टम सूक्त । २० । ४५ के साथ इसका विनियोग है । ४८४

नवम सूक्त । माचीन स्तोम एकाह और राज एकाह
में इसका विनियोग है । ४८६

दशम सूक्त । इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४८८

एकादश सूक्त । विघ्न एकाहमें यह पढ़ा जाता है । ४९०

द्वादश सूक्त । वज्रपुनः स्तोम, पवित्र आदि राजमूय
वैदस्वरसाम, अभ्यासंग्य, पञ्चशारदीय, आदिमें इसका
विनियोग है । ४९८

त्रयोदश सूक्त । अश्वमेधयह आदिमें इसका विनियोग है । ५०१

चतुर्दश सूक्त । विराट् आदि चार एकाहोंमें इसका
विनियोग है । ५०३

पञ्चदश सूक्त । पवित्र राजमूय आदिमें इसका विनि-
योग है । ५०५

विषय

. पृष्ठ

सोलहवाँ सत्रहवाँ सूक्त । विजुनि अभिभुन आदिमें इसका विनियोग है । ५०७

अठारहवाँ सूक्त । पवित्र राजमूय आदिमें इसका विनियोग है । ५०८

उन्नीसवाँ सूक्त । साधःक्र नामक एकाहोमें इसका विनियोग है । ५१०

बीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके सर्वस्तोम आदिमें इसका विनियोग है । ५११

इक्कीसवाँ सूक्त । अष्टव आदिमें इसका विनियोग है । ५१३

चौराईसवाँ सूक्त । चातुर्मास्य वैश्वदेव, और त्रिफल्गु दशाहाहीनमें इसका विनियोग है । ५१४

तेईसवाँ सूक्त । वैश्वदेव आदि ग्रहमें इसका विनियोग है ५१७

चौबीसवाँ सूक्त । दशाह गवामयनिक आदिमें इसका विनियोग है । ५१८

पच्चीसवाँ छत्तीसवाँ सूक्त । तनूष्ट पडहमें इसका विनियोग है ५१९

सत्तारहवाँ सूक्त । विपुवन् सौर्यपृष्ठमें इससे काम लिया जाता है । ५२२

अट्ठाईसवाँ सूक्त । तनूष्ट पडहमें इसका विनियोग है । ५२३

उन्नीसवाँ सूक्त । पृष्ठ सौत्रामणि आदिमें इससे काम लिया जाता है । ५२६

तीसवाँ सूक्त । पृष्ठचमे इसका गान होता है ५३१

३१-६० सूक्त । कुन्ताप सूक्त ५४१

विषय

पृष्ठ

इकतालीसवाँ सूक्त । सोमयाग और पृष्ठयपडह आदि
में इसका प्रयोग होता है । ५६४

वयालीसवाँ सूक्त । त्रिककुडशाह आदिमें इसका विनि-
योग होता है । ५७१

७. सैंतालीसवाँ सूक्त । अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्यमें इसका
पाठ होता है ५७३

चौवालीसवाँ, पैंतालीसवाँ द्वाियालीसवाँ और सैंता-
लीसवाँ सूक्त । अश्विनीकुमारोंकी स्तुति आदि । ५७५

अथर्ववेदसंहिताकी विषयसूची समाप्त.



मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुरादाबाद.

ॐ श्रीहरिः ॐ

अथर्ववेदसंहिता

विंश-काण्डम्

ॐ

सायणभाष्य तथा अनुवादसहित

यस्य निश्वासितं वेदा यो वेदेभ्योखिलं जगत् ।
निर्ममे तम् अहं वन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म प्रायशः प्राक् प्रपञ्चितम् ।
विशेष्य ब्रह्मवर्ग्याणां शस्त्रयाज्यादि वर्ण्यते ॥

श्रीः । वेद जिनके निश्वासरूप हैं और जिन्होंने वेदोंके अनु-
सार सम्पूर्ण जगत्की रचना की है, उन विद्यातीर्थ महेश्वरको मैं
प्रणाम करता हूँ । शान्तिक और पौष्टिक कर्मका वर्णन प्रायः
पहिले कह दिया है । अब बीसवें काण्डमें ब्रह्मवर्ग्योंके शस्त्रयाज्या
आदिका वर्णन किया जाता है ॥

तत्र विंशे काण्डे नवानुवाकाः । तत्र प्रथमेनुवाके त्रयोदश
सूक्तानि । तत्र प्रथमं सूक्तं वृचात्मकम् । तास्तिष्ठ अचः अग्निष्टो-
मादियज्ञेषु ब्राह्मणाच्छंसिपोत्राग्नीध्राणां क्रमेण प्रातःसवनिक्यः
प्रस्थिनयाज्याः । सूत्रितं हि वैताने । “प्रस्थितैश्चरिष्यन्नध्वर्युः
संमेष्यति । होतव्यं प्रशास्तब्राह्मणाच्छंसिन् पोनर्नेष्टरघ्रीद् इति ।
इन्द्र त्वा वृषभं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसि यजनि । उत्तराभ्यां
पोत्राग्नीध्री” इति [वै० ३. ६] ॥

इस बीसवें काण्डमें नौ अनुवाक हैं । और पहिले अनुवाक में तेरह सूक्त हैं । इनमें पहिला सूक्त तीन ऋचाओंका है । वे तीनों ऋचाएँ अग्निष्टोम आदि यज्ञोंमें ब्राह्मणाच्छंसी पोता और आग्नीध्र आदिके क्रमसे मानःसवनकी प्रस्थितयाज्या हैं । इसी वानको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“प्रस्थितश्चरिष्यन्नध्वर्युः सम्प्रेष्यति । होतर्यञ्च प्रशास्तर्वाग्राणाच्छंसिन् पोतर्नेष्टरमीदृ इति । इन्द्र त्वा वृषमं वयम् इति ब्राह्मणाच्छंसी यजति । उत्तराभ्यां पोत्राधीर्गता ।” (वैतानमूत्र ३ । ८)

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्र त्वा वृषमं वयं सुते सोमे हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्र । त्वां । वृषमम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।

सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर्यगुणविशिष्ट । ॐ इति परमेश्वर्ये । अत्रेन्द्र० [उ० २.२८] इत्यादिना रन् प्रत्ययः । निच्वाद् आद्युदात्तः ॐ । अथ वा इन्द्रो सोमे निमित्तभूते सति द्रवति त्वरया गच्छतीति इन्द्रः । यद्वा इन्द्रो सोमाय तत्पानार्थं द्रवतीति वा इन्द्रः । सत्सु अन्येषु दधिपयःप्रभृतिषु द्रव्येषु सोमस्यातिशयेन मियत्वाद् वक्तव्युपपत्तिरिन्द्रशब्दस्यात्र द्रष्टव्या । नादृश इन्द्र त्वा त्वाम् । ॐ “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवन्” इति पूर्वस्य अविद्यमानवत्त्वेन पदान् परत्वाभावेऽपि अनुदात्तस्त्वादेशश्चन्द्रान्दसः ॐ । कीदृशं त्वाम् । वृषमम् कामानां वर्णितारं वयं यजमानाः सोमे सुते अभिषुते सति तत्पानार्थं हवामहे आहवामः । ॐ हेय् स्वर्गाणां शब्दे च । यपि “बहुलं चन्द्रमि” इति संप्रसारणम् ॐ । स नादृशः अस्माभि-

राहूतस्त्वं मध्वः मधुररसस्य अन्यमः अन्नस्य सोमलक्षणस्य । एकदेशम् इति शेषः । अयं वा मध्वः मधु अन्यसः अन्यः अन्नं सोमलक्षणम् । ॐ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वात् “चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि” इति पृष्ठी ॐ । पाहि पिव ॥

हे परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! (वा इन्दु (सोम) के लिये त्वरासे दौड़ने वाले इन्द्र !) आप कापनाओंकी वर्षा करने वालेको हम सोमके अभिपुत्र होने पर बुलाते हैं । हमारे बुलाये हुए आप मधुर सोमरसरूपी अन्नका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।

स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥

मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । दिवः । विमहसः ।

सः । सुगोपातमः । जनः ॥ २ ॥

हे विमहसः विशिष्टेन अतिशयितेन महसा तेजसा युक्ताः । देवेषु मध्ये एषाम् अतिशयितवीर्यत्वात् । हे मरुतः । त्रियन्ते प्राणिन एभिरिति मरुतः । प्राणात्मकस्य वायोर्निर्गमे सति प्राणिनां मृतिः प्रसिद्धैव । अथ वा त्रियन्त इति मरुतः । इन्द्रेण अदित्या उदरं प्रविश्य एकोनपञ्चाशद्धा खण्डितत्वात् तादृशा एतत्संज्ञया प्रसिद्धा देवा यूयं यस्य हि यस्य खलु यजमानस्य क्षये देवानां निवासस्थाने यागगृहे । ॐ “क्षयो निवासे” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । दिवः द्योतमानाद् द्युलोकाद् अन्तरिक्षाद् आगत्य । ॐ “ऊडिदम्” इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ॐ । पाथ पिवथ । सोमम् इति शेषः । स खलु जनः यजमानः सुगोपातमः अतिशयेन गोपायितुमः लोके ये गोपायितारः स्वाश्रि

तरत्तका सन्ति तेषां मध्ये स एव श्रेष्ठतम इत्यर्थः । ॐ गोपायतेः
विरपि अतोलोपयलोपी ॐ । यस्माद् एवं तस्माद् ममापि यद्-
गृहे सोमं पिवतेत्यभिप्रायः ॥

हे देवताओंमें विशिष्ट तेजस्वी मरुतो ! (मरुत् शब्दकी व्युत्पत्ति
यह है, कि-“अग्नन्ते प्राणिनः एभिः-इनसे प्राणी मर जाते हैं”
इस लिये ये मरुत् कहलाते हैं । प्राणरूपी वायुके निकलने पर
मरण होना मसिद्ध ही है । अथवा यह व्युत्पत्ति भी होती है,
कि “अग्नन्त इति मरुतः ।-जो मरे हैं वे मरुत् हैं” इन्द्रने इनकी
माताके उदरमें प्रवेश करके इनके उदरवास टुकड़े कर डाले थे,
इस कारण ये मरुत् कहलाते हैं, ऐसे हे मरुतो !) तुम जिस
यजमानके यागगृहमें द्युलोकसे आकर सोमका पान करते हो
वह पुरुष, लोकमें जो पुरुष अपने आश्रितोंकी रक्षा करते हैं उन
में परमश्रेष्ठ (गोपायितृत्तम) होजाता है । यह बात है इस लिये
आप मेरे यद्गृहमें भी सोमका पान करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमं पृष्ठाय वेधसे ।

स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ३ ॥

उक्षऽअन्नाय । वशाऽअन्नाय । सोमऽपृष्ठाय । वेधसे ।

स्तोमैः विधेम । अग्नये ॥ ३ ॥

उक्षः सेचनसमर्थो गौः अन्नं यस्य स तयोक्तः । तादृशाय
तथा वशान्नाय । वशा वन्ध्या अजादिका सा अग्नौ हविर्यस्य स
वशान्नः । तस्मै । उक्षवशयोरग्नेरन्नत्वम् “अगोरुधाय” इत्येतं
मन्त्रं व्याचक्षाणेन आरवलायनेन उक्तम् । “एत एव म उक्षाणश्च
अगभाश्च वशाश्च भवन्ति” इति [आरव० गृ० १.१] । तथा सोम-

पृष्ठाय सोमः सोमरसः पृष्ठे उपरिदेशे मुखे यस्य स तादृशाय वेधसे
विधात्रे सर्वस्य स्रष्ट्रे एवम् उक्तगुणविशिष्टाय अग्नये अङ्गनादि-
गुणविशिष्टाय देवाय अग्नये अग्न्यर्थम् । ॐ “क्रियाग्रहणं कर्त-
व्यम्” इति चतुर्थी ॐ । स्तोमैः स्तोत्रैः स्तुतिसाधनभूतैः शस्त्रा-
दिभिः विधेम परिचरेम । ॐ विध विधाने । तौदादिकः ॐ ॥

इति प्रथमं सूक्तम् ॥

वृषभ और बंध्या बकरी आदि जिनका अन्न है, और जिन
के ऊपर सोम रहता है ऐसे सबके स्रष्टा अङ्गनादि गुणोंसे संपन्न
अग्निदेवके लिये हम स्तुतिके भेद शस्त्र आदिसे स्तुति करते हैं ३

प्रथम अनुवाकमे प्रथम सूक्त समाप्त (६१७)

“मरुतः पोत्रात्” इत्याधारचत्वार ऋतुमैषाः । तत्र आघोच-
माभ्यां पोता यजति । द्वितीयतृतीयाभ्याम् आग्नीध्रब्राह्मणाच्छं-
सिनौ । सूत्रितं हि । “सदस्युपविष्टा यथामैषम् ऋतून् यजन्ति ।
मरुतः पोत्राद् इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृती-
यया ब्राह्मणाच्छंसी” इति [वै० ३. ६] ॥

“मरुतः पोत्राद्” आदि चार ऋतुमैष हैं । इनमेंसे पहिली
और बचमा (अन्तिम) ऋचाओंसे पोता यजन करता है ।
और दूसरी तथा तीसरी ऋचाओंसे आग्नीध्र और ब्राह्मणा-
च्छंसी यजन किया करते हैं । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी
है, कि—“सदस्युपविष्टा यथामैषं ऋतून् यजन्ति । मरुतः पोत्राद्
इति प्रथमोत्तमाभ्यां पोता । द्वितीययाग्नीध्रः । तृतीयया ब्राह्म-
णाच्छंसी” । (वैतानसूत्र ३ । ६) ॥

तत्र प्रथमः मैषः ॥

मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ?

मरुतः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अतुना । सोमम् ।
पिवतु ॥ १ ॥

मरुतः एतन्नाम्ना मसिद्धा देवाः पोत्रात् पोतुः कर्म पोत्रम्
तस्मात् । तत्कृताद् यागाद् इत्यर्थः । कीदृशात् । सुऽस्तुभः ।
ॐ स्तोभतिः स्तुतिकर्मा ॐ । शोभनस्तोभोपेतात् तथा स्वर्कात्
सुऽस्तु अर्च्यते देवः अनेनेनि स्वर्कम् तस्मात् स्वर्चनात् । यद्वा
सुऽस्तुभः । अत्र स्तोभशब्देन स्तोभोपेतं स्तोत्रम् उच्यते । शोभन-
स्तोत्रोपेतात् । स्वर्कात् । अर्च्यन्ते एभिरिति अर्का मन्त्राः । शोभ-
नमन्त्रोपेतात् । शोभनशस्त्रोपेताद् इत्यर्थः । एवंभूतात् पोतुर्यागाद्
अतुना सह सोमम् अभिषवादिसंस्कारोपेतं सोमरसं पिवतु
पियन्तु । वचनव्यत्ययः ॥

मरुत् नामक मसिद्ध देवता पोताके किये हुए सुन्दर स्तुति
वाले और शोभन मन्त्रों वाले यागरूपी कर्म पोत्रसे अतुके साथ
अभिषव आदि संस्कारोंसे सम्पन्न सोमको पियें ॥ १ ॥

द्वितीयः ॥

अग्निराग्नीध्रात् सुऽस्तुभः स्वर्कादतुना सोमं पिवतु २
अग्निः । आग्नीध्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अतुना । सोमम् ।
पिवतु ॥ २ ॥

अग्निः अङ्गनादिगुणविशिष्टो देवः आग्नीध्रात् । अग्निम् इन्द्र
इति अग्नीत् । स एव आग्नीध्रः एतन्नामा अत्विक् । तत्कर्मापि
आग्नीध्रम् । यद्वा अग्नीध्रः कर्म आग्नीध्रम् । तस्माद् आग्नी-
ध्रात् । शिष्टं पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥

अंगनादि गुणविशिष्ट अग्निदेव, अग्निका समिधन करने वाले
आग्नीध्र नामक अत्विगके कर्म आग्नीध्रसे मसन्न होकर अतुके

साय सोमरसका पान करें । इस आग्नीध्रमें सुन्दर स्तुतियें हैं और सुन्दर मन्त्र हैं ॥ २ ॥

तृतीयः ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

इन्द्रः । ब्रह्मा । ब्राह्मणात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अृतुना ।

सोमम् । पिबतु ॥ ३ ॥

इन्द्रः परमेश्वर्यादिगुणयुक्तो देवः स एव ब्रह्मा । बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च । इन्द्रस्य ब्रह्मात्मना स्तुतिः “इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः” [ऋ० ८, १६, ७] इत्यादिमन्त्रवर्णाद् अवगन्तव्या । ब्राह्मणात् । अत्र ब्राह्मणशब्देन ब्राह्मणाच्छंस्पारुय ऋत्विग् अभिधीयते । तत्कृतं कर्मापि ब्राह्मणम् इत्युच्यते । यद्वा अत्र ब्रह्मशब्देन ब्राह्मणाच्छंसी निर्दिश्यते । तत्कर्म शस्त्रयागलक्षणं ब्राह्मणम् तस्मात् । शिष्टं पूर्ववत् ॥

परम पेश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न इन्द्र ही ब्रह्मा हैं, क्योंकि वे बृहत् हैं । [इन्द्रकी ब्रह्मारूपमें स्तुति ‘इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिः’ ऋग्वेदसंहिता ८ । १६ । ७ आदिक मन्त्रोंसे समझनी चाहिये ।] ऐसे ब्रह्मा इन्द्र । ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विगके किये हुए सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे, अभिपव आदि संस्काररूप अृतुसे (शुद्ध हुए, सोमरसका पान करें ३ अथ चतुर्थः ॥

देवो द्रविणोदाः पोत्रात् सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु

देवः । द्रविणः । उदाः । पोत्रात् । सुऽस्तुभः । सुऽअर्कात् । अृतुना ।

सोमम् । पिबतु ॥ ४ ॥

द्रविणोदाः । द्रविणं हिरण्यादिलक्षणं धनं बलं वा । तद् ददा-
तीति द्रविणोदाः एतन्नामको देवः । अस्य धनदातृत्वम् “द्रवि-
णोदा ददातु नो बभूनि” [अ० १. १५. ८] इत्यादिमन्त्रान्त-
रेषु धनप्रार्थनाविषयतया प्रसिद्धम् । ॐ द्रुदन्तिभ्याम् इनम् [उ०
२. ५०] इति इनन्मत्पयान्तो द्रविणशब्दः ॐ ॥

इति द्वितीयं सूक्तम् ॥

धनका प्रदान करने वाले द्रविणोदा नामक देवता, कि-जिन
का धन देना धर्म “द्रविणोदा ददातु नो बभूनि ।—द्रविणोदा
देवता हमको धन प्रदान करें” अथर्ववेदसंहिता (१ । १५ ८)
आदिक मन्त्रोंमें प्रसिद्ध है वह पोता नामक अश्विजके किये हुए
सुन्दर स्तुति और सुन्दर मन्त्रोंसे सम्पन्न यागरूपी कर्मसे अभि-
षेक आदि संस्काररूप अतुल्य शुद्ध हुए सोमरसका पान करें ४

. प्रथम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६१८) ॥

उपोतिष्ठोपादिषु प्रातःसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे “आ याहि”
इति पञ्च सूक्तानि विनियुक्तानि । तत्र “आ याहि सुषुमा हिते”
इत्याद्या तृतीया स्तोत्रियानुरूपी । “अयमुत्वा विचर्षणे” इति सप्तर्चः
“इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” इति नवर्चश्च शंसनीयाः उपयम्वत् इति
व्यवहियन्ते । “उदयेदभि” इति तिस्रः अचः पर्यास इत्युच्यते ।
अत्रोत्तमा परिधानीया । सूत्रितं हि । “आ याहि सुषुमा हिते”
[२०. ३] आ नो याहि मुतावनः [२०. ४] इति स्तोत्रि-
यानुरूपी । अयमुत्वा विचर्षणे [२०. ५] इत्युच्यम्वत् । उदये-
दभि श्रुतामघम् [२०. ७] इति पर्यासः । उत्तमा परिधानीया ।
त्रिः प्रथमा त्रिरुत्तमाम् अन्नाह । अर्धर्चशस्य अगन्तं प्रणवेनोप-
संननोति” इति [वै० ३. ११] ॥

उपोतिष्ठोपादिषु प्रातःसवनेके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे “आ
याहि” आदि पाँच सूक्तोंका विनियोग होता है । इनमें “आ याहि

सुपुमा हि ते” ये आदिम दो वृत्त स्तोत्रियानुरूप है । “अगमृ
त्वा विचर्षणे” यह सात अक्षरों और “इन्द्र त्वा वृषमं वयम्”
यह तीन अक्षरों शंसनीय और उक्थमुख कहलाते हैं । “उद्घे-
दभि” आदि तीन अक्षरों पर्यास कहलाती हैं । इनमें उत्तमा
परिधानीया है । सूत्रमें भी कहा है, कि—“आ याहि सुपुमा हि
ते (२० । ३) आ नो याहि सुतानतः (२० । ४) इति स्तो-
त्रियानुरूपौ । अगमृ त्वा विचर्षणे (२० । ५) इत्युक्थमुखम् ।
उद्घेदभि श्रुतमयम् (२० । ७) इति पर्यासः । उत्तमा परिधा-
नीया । त्रिः प्रथमां त्रिरुत्तमां अन्वाह । अर्धर्चस्य अगन्तम् गण-
वेनोपसंतनोति” (वेदानमूत्र ३ । ११) ॥

तत्र प्रथमा ॥

आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिबाम् इमम् ।

एदं वहिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुपुमा । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिबाम् । इमम् ।

आ । इदम् । वहिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर्यादिगुणविशिष्ट त्वम् आ याहि आगच्छ ।
किमर्थम् आगमनम् इति तत्राह । तेत्वदर्थं सोमं सुपुमा हि अभि-
पुतवन्तः खलु । ॐ पुत्र अभिपवे । “बहुलं चन्दसि” इति शपः
खलु । “हि च” इति निघ्रातप्रतिषेधः । सुपुमा हि त इत्यत्र
छान्दसः साहित्यो दीर्घः ॐ । इमम् अभिपुतं सोमं पिब पानं
कुरु । इदम् आस्तोत्रं वहिः आ सदः आसीद । ॐ लोटि अडा-
गमे इत्यत्र लोपे च कृते रूपम् ॥

हे इन्द्र ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिपन कर लिया

है । इस अभिषुत सोमका आप पान करिये । इन विन्ही हुई कुशाओं पर आप चौंठये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ त्वां ब्रह्मयुजा हरी वहन्तामिन्द्र केशिनां ।

उप ब्रह्माणि न शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहन्ताम् । इन्द्र । केशिनां ।

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां ब्रह्मयुजा ब्रह्मयुजा ब्रह्मणा मन्त्रेण रथे युज्यमानां हरी अभिमतप्रदेशं प्रति आहरणशीलां पतन्नामानावश्वौ । एताविन्द्रस्य प्रतिनिधौ । ॐ हरी इन्द्रस्य लोहितोऽग्रहरित आदित्यस्येत्यादि निरुक्तात् [निघ० १. १५] ॐ । तावेव विशिनष्टि केशिनेति । केशिना केशिनां प्रकृष्टैः केशैः स्कन्धवाल इत्यादिप्रदेशस्थैर्युक्ता । अनेन तयोः भभूतशक्तिमत्त्वम् उक्तं भवति । तौ आ वहन्ताम् आगमिष्यताम् । तदर्थं नः अस्माकं ब्रह्माणि आह्वानसाधनान् मन्त्रान्-उप शृणु । अथ वा आगत्य नः ब्रह्माणि स्तोत्राणि उप शृणु । ॐ बृह बृहि वृद्धौ इत्यस्य वृं हेरम् नलोपरच [उ० ४. १४५] इति मनिन्प्रत्यये नलोपे च कृते तत्संनियोगेन अमागमे च कृते ब्रह्मेति रूपम् ॐ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्टस्थान स्थानको लेजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी + नामक घोड़े आपकी (हमारे यज्ञमें) लावें, आप आकर हमारे आह्वानके मन्त्रोंको सुनिये ॥ २ ॥

+ “हरीन्द्रस्य लोहितोऽग्रहरित आदित्यस्येत्यादि ।—इन्द्रके घोड़ोंका नाम हरी है । अग्निदेवके घोड़ेका नाम लोहित है और आदित्यके घोड़ोंका नाम हरित है । (निघंटु १ । १५)

तृतीया ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमपाम् । इन्द्र । सोमिनः ।
सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र वयं यजमाना ब्रह्माणः ब्राह्मणाः । यद्वा ब्रह्माणः
ब्राह्मणान्द्वंसिनो वयम् । ॐ ब्रह्मशब्दः पुंलिङ्गोन्तोदात्तः ॐ ।
त्वा त्वां युजा । युज्यत इति युक् । स्तोत्रव्यदेवताहृदयस्पृशा स्तो-
त्रेण हवामहे आहवामः । कीदृशं त्वाम् । सोमपाम् सोमस्य पाता-
रम् । इन्द्रस्य सोमपाने अतिशयितप्रियत्वाद् एवं विशेष्यते ।
कीदृशा वयम् । सोमिनः सोमवन्तः कृतसोमयागाः । अस्तु प्रस्तुते
किमायातम् इति तत्राह । सुतावन्तः सोमानभिपुतवन्तः सुतेन
सोमेन युक्ता वा । अभिपवग्रहणादिसंस्कारैः संपादितसोमा
इत्यर्थः । ॐ आन्दसो दीर्घः ॐ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले ब्राह्मण सोमयाग कर चुके हैं
और अभिपव किया हुआ सोम हमारे पास है । ऐसे हम सोम-
पान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (६९९)

“आ नो याहि” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“आ नो याहि” सूक्ता पहिले सूक्तके साथ विनियोग कह
दिया है ।

तथ प्रथमा ॥

आ नो याहि सुतावन्तोस्माकं सुपुत्रीर्यं ।

पिवा सु शिंमिन्नन्धसः ॥ १ ॥

आ । नः । याहि । सुतज्वतः । अस्माकम् । सुस्तुतीः । उप ।

पिव । सु । शिमिन् । अन्धसः ॥ १ ॥

हे इन्द्र सुतावतः सूयते अभिपूयत इति सुतः सोमः । तद्वतः अभिपूतसोमान् नः अस्मान् प्रति । ॐ “शरादीनां च” इति महुपि पूर्वपदस्य सांहितिको दीर्घः ॐ । आ याहि आगच्छ । तदेव विशिनष्टि । अस्माकं सुष्ठुतीः शोभनाः स्तुतिः उपा याहि उपागच्छ । सोमे सुसंस्कृते कृते च शस्त्रे अवश्यम् आगच्छेत्पर्यः । आगत्य च हे मुशिमिन् शोभनहनूयुक्त । अनेन सोमपानोचितवक्त्रोपेतत्वम् उक्तं भवति । अथ वा शोभननासिकोपेत । अनेन सोमरसाग्राणोचितनासायुक्तत्वम् उक्तं भवति । ॐ शिमे हन् नासिके वेति निरुक्तम् [नि० ६०. १७] । ॐ तादृशत्वम् अन्धसः अन्धः अन्नं सोमरसलक्षणम् अन्धस एकदेशं वा ग्रहेण घृतम् अंशं पिव पानं कुरु ॥

हे इन्द्र ! हम सोम बालोंके पास आप आइये, हमारी सुन्दर स्तुतियोंकी ओर ध्यान देकर आप आइये और सुन्दर नासिका वा ठोड़ी वाले आप इस सोमरूप अन्नके कुछ भागका माशन करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा विधावतु ।

गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥

आ । ते । सिञ्चामि । कुक्ष्योः । अनु । गात्रा । वि । धावतु ।

गृभाय । जिह्वया । मधु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ते तव कुक्षयोः । भागद्वयापेक्षया द्विवचनम् । कुक्षेरु-
भयोः पारर्वयोः आ सिञ्चामि पूरयामि । सोमरसम् इति शेषः ।
अनेन दीयमानस्य सोमरसस्य कुक्ष्यवयवपूर्तिपर्यन्तम् अभिवृद्धि-
रुक्ता भवति । स च उदरस्यो गात्रा गात्राणि । अनेन गात्रशब्देन
गात्रावयवा लक्ष्यन्ते । सर्वाण्यङ्गानि हस्तपादादीनि वि धावतु
तत्तन्नाडीषु सर्वत्र भवहतु । अतस्त्वं मधु मधुवत् स्वादुतरं सोम-
रसं जिह्वया रसनया गृभाय गृहाण । ॐ ग्रहेः “हृन्दसि शाय-
जपि” इति श्रः शायजादेशः । संसारणं च । “हृप्रहोर्मः०”
इति भत्वम् ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी दोनों कोखोंको मैं सोमरससे पूर्ण करना
चाहता हूँ, वह सोम आपके हाथ पैर आदि सब अङ्गोंमें अर्थात्
उनकी नाड़ियोंमें दौड़े अतः आप मधुकी समान स्वादु सोमरस
को जिह्वासे ग्रहण करिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स्वादुष्टं अस्तु संसुदे मधुमान् तन्वेऽ तव ।

सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥

स्वादुः । ते । अस्तु । सम्सुदे । मधुमान् । तन्वे । तव ।

सोमः । सम् । अस्तु । ते । हृदे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र संसुदे सम्यक् सुष्ठु दात्रे । अत्र सम् इत्यनेन दानस्य
मुकरत्वम् अभिधीयते । सु इत्यनेन च दानविषयस्य घनादेः
प्राशस्त्यं बहुत्वं च विवक्ष्यते । तादृशाय ते तुभ्यं मधुमान् माधु-
र्योपेतः सोमः अस्माभिर्दीयमानः स्वादुरस्तु स्वदनीयोस्तु । अन-
न्तरं च स सोमः तव तन्वे शरीराय । बलकार्यस्त्विति शेषः ।
अथ वा शम् अस्तु इत्येतद् अत्राप्यन्वेनव्यम् । तव शरीराय

सुखकरं भवत्वित्यर्थः । तथा ते हृद्दे हृदयाय च शम् अस्तु मनसे
सुखकरं भवतु । ॐ स्वादुष्ट इति । “युष्मत्तत्तत्तनुःष्वन्तःपादम्”
इति सकारस्य षत्वम् । ततः ष्टुत्वम् ॐ ॥

इति चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! धन आदिका भली प्रकार दान करने वाले आपके
लिये हमारा दिया हुआ मधुररसयुक्त सोम भली प्रकार स्वाद
लेने योग्य होवे और आपके अरीरके लिये बलमद हो, और यह
सोम आपके हृदयको सुख देने वाला होवे ॥ ३ ॥

चतुर्थं सूक्तं समाप्त (६२०) ॥

“अयमु त्वा विचर्षणे” इति सप्तर्चस्य विनियोग उक्तः ॥

“अयमु त्वा विचर्षणे” इस सात ऋचा वाले सूक्तका विनि-
योग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

अयमु त्वा विचर्षणे जनींरिवाभि संवृतः ।

प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥

अयम् । ऊँ इति । त्वा । विचर्षणे । जनीः । इव । अभि । सम्प्लुतः ।

प्र । सोमः । इन्द्र । सर्पतु ॥ १ ॥

हे इन्द्र विचर्षणे । विचर्षणिः परपतिकर्मा । हे विद्रष्टः, इन्द्र
जनीरिव जनय इव । ॐ विभक्तिव्यत्ययः । जनयन्त्यपत्या-
न्यास्विति जनिशब्दव्युत्पत्तिः । ता यथा पुत्रादिभिः अभितः
संवृता बतेन्ते एवं श्रयणद्रव्यैः अध्वर्युप्रभृतिभिर्वा अभि संवृतः
अभित आच्छन्नायं सोमः । उ इति पूरणः । त्वा त्वां प्र सर्पतु
प्रगच्छतु । ॐ विचर्षण इति । विपूर्वात् कृष विलेखने इत्यस्मात्
कृपेरादेशच चः इति [उ० २-१०३] अनिमित्त्ययः आदेः
फकारस्य चकारश्च ॐ ॥

हे द्रष्टा इन्द्रदेव ! जैसे सन्तानोंको उत्पन्न करने वाली स्त्रियें पुत्र आदिसे चारों ओरसे घिरी रहती हैं । इसी प्रकार अध्वर्यु आदिसे भली प्रकार घिरा हुआ यह सोम आपको प्राप्त होवे ?

द्वितीया ॥

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुर्न्यसो मदे ।

इन्द्रो वृत्राणि जिघ्रते ॥ २ ॥

तुविग्रीवः । वपाऽउदरः । सुबाहुः । अन्यसः । मदे ।

इन्द्रः । वृत्राणि । जिघ्रते ॥ २ ॥

अनया सोमस्य अतिशयितवीर्यसाधनत्वम् अभिधीयते । अन्यसः सोमलक्षणस्य अन्नस्य भक्षणसे मदे सति इन्द्रो देवः तुविग्रीवः । तुवीति बहुनाम । प्रभूतकन्धरः । भवतीति शेषः । ग्रीवाशब्दः स्कन्धस्योपलक्षणकः । वृषवत् • समृद्धस्कन्ध इत्यर्थः । तथा वपोदरः वपा यथा विस्तीर्णा भवति एवं विस्तृतोदरश्च भवति । तथा सुबाहुः शोभनबाहुः पृथुभुजश्च भवति एव सोमपानेन अभिवृद्धगात्रः मन् पश्चाद् वृत्राणि वृत्रवद् आवरकान् शत्रून् जिघ्रते हिनस्ति इत्येवं सोमस्य महिमा ॥ यद्वा तुविग्रीवत्वादयः इन्द्रस्य स्वाभाविका धर्माः । उक्तलक्षण इन्द्रः सस्त्वपि तेषु अन्यसो मदे सत्येव वृत्राणि जिघ्रते इति सोमप्रशंसा ॥

[इस ऋचामें सोमका परमवीर्यपद होना वर्णन किया गया है, कि—] सोमरूपी अन्नके भक्षणसे मद होने पर इन्द्रदेवके कंधे बेलके कन्धोंकी समान मोटे होजाने हैं, पेट वपा (चरबी) सा विशाल होजाता है और भुजाएँ मोटी होजाती हैं । इस प्रकार सोमपान शरीर बढ़ जाने पर इन्द्रदेव वृत्रकी समान घेरने वाले शत्रुओंको मार डालते हैं । [यह सोमकी महिमा है] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र मेहिं पुरस्त्वं विश्वस्येशान् ओजसा ।

वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

इन्द्र । म । इहि । पुरः । त्वम् । विश्वस्य । ईशानः । ओजसा ।

वृत्राणि । वृत्रहन् । जहि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र विश्वस्य स्थावरजह्मात्मकस्य सर्वस्य ईशानः । अनेन इन्द्रस्य सर्वत्र प्रतिमटराहित्यम् उक्तं भवति । तादृशस्त्वं पुरः मेहि अस्माकं सेनायाः पुरतो गच्छ । गत्वा च हे वृत्रहन् वृत्रस्य एतन्नामकस्य अमुरस्य हन्तः वृत्राणि अस्मदावरकान् शत्रून् जहि पातय । ॐ “हन्तेर्जेः” इति जमावः ॥

हे स्थावर जह्म सब जगत्के ईश इन्द्र ! आप हमारी सेनाके आगे २ चलिये और हे वृत्र नामक शत्रुओंको मारने वाले ! आप वृत्रामुरकी समान धरने वाले हमारे शत्रुओंका संहार करिये ३ धनुर्यो ॥

दीर्यस्ते अश्वहुगो येना वसुं प्रयच्छंति ।

यजमानाय मुन्वते ॥ ४ ॥

दीर्यः । ते । अश्व । अहुगः । येन । वसुं । प्रयच्छन्ति ।

यजमानाय । मुन्वते ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते अहुगः । अहुगवशत्राह्गुलिको हस्तः अहुग इत्युच्यते । म दीर्योस्तु । प्रदानविषये संकोचरहितोस्त्वित्यर्थः । तपेन विनिनष्टि । येनाहुगेन मुन्वते योयामिषं कुर्वते सोम-

लक्षणस्य इविषो दात्रे यजमानाय वमु घनं मयच्छसि । स तादृशो दीर्घोस्तु ॥

हे इन्द्र ! आपका अङ्गुशर्की समान नमी हुई अङ्गुलियों वाला अङ्गुशरूपी हाथ, देनेके लिये लम्बा होवे, जिस हाथमें आप सोमामिश्र करके बाले सोमरूपी इविके दाता यजमानको घन देते हैं, वह हाथ लम्बा होवे ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अयं तं इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

एहीमस्य द्रवा पिवं ॥ ५ ॥

अयम् । ते । इन्द्र । सोमः । निपूतः । अधि । बर्हिषि ।

आ । इहि । ईम् । अस्य । द्रव । पिवं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र अधि बर्हिषि । अधिः सप्तम्यर्थानुवादी । आस्तीर्णे दर्भे निपूतः दशापवित्रेण नितरां शोधितः । उपलक्षणम् एतत् । ग्रहणथयणादिसंस्कारैः संस्कृतोयं सोमः ते त्वदर्घः । यस्मादेवं तस्माद् एहि आगच्छ । अस्मद्यज्ञं मनीति शेषः । आगमनविलम्बम् असहमान आह द्रवेति । त्वरया आगच्छेन्न्यर्थः । आगत्य च ईम् इदानीम् अस्य अमुं त्वदर्घं निपूतं सोमं पिव पानं कुरु ॥

हे इन्द्रदेव ! दर्भों पर दशापवित्रके द्वाराके (अंगोष्ठके द्वारा) परम पवित्र किया हुआ (ग्रहण थयण आदि संस्कारोंसे संस्कृत) ये सोम आपके लिये हैं अन एव आप हमारे यज्ञकी ओर आइये (आगमनमें विलम्बको न सहना हुआ कहता है, कि—) शीघ्रतासे आइये और आकर इस समय आपके लिये पवित्र किये हुए सोमका पान करिये ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

शाचिङ्गो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः ।

आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥

शाचिङ्गो इति शाचिङ्गो । शानिपूजन । अयम् । रणाय । ते । सुतः ।

आखण्डल । प्र । हूयसे ॥ ६ ॥

हे शाचिङ्गो । शाचयः मत्पानेतुं शक्ता गावो यस्य स शाचिङ्गः ।
 पण्डिरपहतानां गवां मत्पानेतृत्वमसिद्धेः । तथा शाचिपूजन ।
 पूजयते एभिरिति पूजनानि स्तोत्राणि । शाचीनि शक्तानि स्तुत्य-
 विषयगुणप्रकाशकानि स्तोत्राणि । यस्य स शाचिपूजनः । तस्य
 संबोधनम् । ❀ “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानवत्” इति पूर्वस्य
 अविद्यमानवत्त्वेन पादादित्वाग्निघ.ताभावः ❀ । हे उक्तगुणवि-
 शिष्ट इन्द्र रणाय । ❀ मकारलोपरब्धान्दसः ❀ । रमणाय रमणी-
 याय ते तुभ्यम् । यद्वा ते तत्र रणाय रमणाय क्रीडनाय अयं सोमः
 सुतः अभिषवादिना संस्कृतः । तस्मात् कारणात् हे आखण्डल
 आ समन्तात् खण्डयति शत्रून् इति आखण्डलः । शत्रूढिसक इन्द्र
 त्वं प्र हूयसे प्रकर्षेण आह्वानविषयः करिष्यसे सोमपानार्थम् अस्मा-
 भिराहूयसे । ❀ आखण्डलेति । आहूपूर्वात् कटि खडि भेदने
 इत्यस्माच्चौरादिकादातोः मङ्गेरलच् [उ० ५. ७०] इत्यत्र बाहु-
 लकाद् अलच् मत्पयः । आमन्त्रिताद्यदात्तः ❀ ॥

हे पण्डि नामक असुरोंके द्वारा हरी हुई गौओंको लौटानेमें
 समर्थ शाचिङ्गो ! हे स्तुतिके योग्य गुणोंको प्रकाशित करने वाले
 स्तोत्रोंसे सम्पन्न शाचिपूजन इन्द्र ! यह सोम आपको आनन्द
 देनेके लिये अभिषुत होगया है । हे शत्रुओंको चारों ओरसे
 खण्डित करने वाले आखण्डल इन्द्र ! इस लिये हम आपको
 पुत्ता रहे हैं ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।

न्यस्मिन् दध् आ मनः ॥ ७ ॥

यः । ते । शृङ्गवृषः । नपात् । मनपादिति । प्रणपात् । कुण्डपाय्यः ।

नि । अस्मिन् । दध्ने । आ । मनः ॥ ७ ॥

हे शृङ्गवृषो नपात् शृङ्गवृणामा कश्चिद् अपिः तस्य न पातयति कुलम् इति नपात् पुत्रः । तस्य संबोधनम् । यदा शृङ्गवृष उन्नता रश्मयः शृङ्गशब्देन उच्यन्ते । तैर्वर्पतीति शृङ्गवृष आदित्यः । तस्य न पातयिता दिवि स्थापयिता इन्द्रः शृङ्गवृषो नपाद् इत्युच्यते । तादृश इन्द्र ते तव यः प्रसिद्धः प्रणपात् कुण्डपाय्यः कुण्डैः पातव्यः सोमो यस्मिन् क्रतौ स कुण्डपाय्यः क्रतुरस्ति । ❀ “क्रतौ कुण्डपाय्यसंचायौ” इति पितृतेः वयम्पत्ययान्तत्वेन निपातितः ❀ । अस्मिन् बहुसोमवति क्रतौ त्वं मनो निदध्ने धारयसि सर्वतः स्थापयसि । ❀ दधातेर्लिटि “इरयो रे” इति रेभावः ❀ ॥

इति पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे शृङ्गवृषो नपात् इन्द्र ! आपका जो पतन न होने देने वाले शृङ्गवृषो नपात् इन्द्र ! आपका जो पतन न होने देने वाला (जिसमें कुण्डोंसे सोम पिया जाता है ऐसा) कुण्डपाय्य नामक क्रतु है, उस बहुतसे सोम वाले यज्ञमें आप मनको लगाइये ॥७॥

पञ्चम सूक्त समाप्त (६२१)

“इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” इति नवर्चस्य सूक्तस्य मातः सवनशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“इन्द्र त्वा वृषमं वयम्” इस नौ ऋचा वाले सूक्तका मातः-सवनशस्त्रमें विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमं हवामहे ।

स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥

इन्द्रे । त्वा । वृषभम् । वयम् । सुते । सोमे । हवामहे ।

सः । पाहि । मध्वः । अन्धसः ॥ १ ॥

व्याख्यातेयम् अनुवाकार्त्ता ॥

हे इन्द्रदेव ! फलोंकी वर्षा करने वाले आपका हम सोमके अभिषुत होने पर आह्वान करते हैं, आप मधुररससम्पन्न सोम-रूपी अन्नके एक भागका पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुषुत ।

पिवा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥

इन्द्र । क्रतुऽविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्यं । पुरुऽस्तुत ।

पिवा । आ । वृषस्व । तातृपिम् ॥ २ ॥

हे पुरुषुत पुरुषिर्वहुभिर्व्यजमानैः स्तुत बहुपकारं स्तुत वा हे इन्द्र क्रतुविदम् क्रतोर्पागंस्य लम्भकं निष्पादकं सुतम् अभिषवा-दिना संस्कृतम् इमं सोमं हर्यं कामय । ॐ हर्यं गतिकान्तयोः इत्यस्य लोटि रूपम् । निघातः ॐ । कामयित्वा च तातृपिम् तर्पकं मील-यितारम् इमं सोमं पिब पानं कुरु । तदेव विशिनष्टि । आ वृषस्व जठरे सिञ्च । यथा जठरकुडरस्य अत्यन्तं सर्वतः पूर्तिर्भवति तेषां कुर्तित्यर्थः । ॐ तातृपिम् । वृषं मीलने इत्यस्मात् “छन्दसि सदा-दिभ्यो दर्शनात्” इति किन् । तस्य लिङ्वद्भावाद् द्विर्वचनादि ।

संहितायाम् “अन्येषामपि दृश्यते” इत्यभ्यासस्य दीर्घः । निच्वाद्
आद्युदात्तः ॐ ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे स्तुति पाने वाले इंद्र ! आप यज्ञको
साधने वाले, अभिषव आदिसे संस्कृत इस सोमकी कामना करिये ।

और कामना करके इस वृक्ष करने वाले सोमका पान करिये
इंससे अपने उदरको सींचिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वंभिर्देवेभिः ।

तिर स्तवानं विशपते ॥ ३ ॥

इन्द्र । प्र । नः । धितवानम् । यज्ञम् । विश्वेभिः । देवेभिः ।

तिर । स्तवानं । विशपते ॥ ३ ॥

हे स्तवान । ॐ कर्मणि कर्तृप्रत्ययः ॐ । स्तूयमान हे विशपते
विशो देवविशो मरुतः तेषां स्वामिन् । यद्वा विशां मजानां सर्वासां
पते हे इन्द्र नः अस्माकं धितावानम् धितं धानं तद्वन्तं सोमस्य
निधानवन्तम् । ग्रहादिभिर्गृहीतसोमम् इत्यर्थः । ॐ “छन्दसी-
वनिर्षो” इति मत्वर्थीयो वनिप् ॐ । उक्तलक्षणं यज्ञं विश्वेभिः
सर्वैर्यष्ट्यैः देवेभिः देवैः सह प्र तिर वर्धय । हविःस्वीकारे-
णेति शेषः । ॐ तरतेर्ग्यत्ययेन शः । प्रत्ययस्वरः । प्र ए इति ।
“उपसर्गाद् बहुलम्” इति संहितायां एत्वम् ॐ ॥

हे स्तुति पाने वाले ! हे देवमजा मरुतोंके स्वामिन् इंद्र ! आप
हमारे सोम वाले यज्ञको सब पूजनीय देवताओं सहित हवि स्वी-
कार करके बढ़ाइये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तव । म । यन्ति । सत्स्पते ।

क्षयम् । चन्द्रासः । इन्दवः ॥ ४ ॥

हे सत्पते सतां यजमानानां पालक, इन्द्र सुताः, अभिपुताः चन्द्रासः चन्द्रा आह्लादकारिण इन्दवः विलम्बा रसात्मका इमे ह्यमानाः सोमाः तव क्षयम् । क्षियन्ति निवसन्ति अप्रेति क्षयो निवासस्थानम् । तव जठरम् इत्यर्थः । ॐ “क्षयो निवासे” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । म यन्ति गच्छन्ति । ॐ इन्दव इति । उन्दे-
रिच्चादेः [उ०१, १२] इति उभत्ययः । निदित्यनुवृत्तेराद्युदात्तः ॐ ।

हे सज्जन यजमानोंका पालन करने वाले इन्द्रदेव ! ये अभि-
पुत आह्लाद देने वाले सोम आपके जठरको प्राप्त हो रहे हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।

तव युक्तास इन्दवः ॥ ५ ॥

दधिष्वा । जठरे । सुतम् । सोमम् । इन्द्र । वरेण्यम् ।

तव । युक्तासः । इन्दवः ॥ ५ ॥

हे इन्द्र वरेण्यम् वरणीयं स्पृहणीयं सुतम् अभिपुतम् इमं सोमम् अस्माभिर्ह्यमानं जठरे दधिष्वा धारय । ॐ दधातेर्लोटि रूपम् । “आगमा अनुदात्ताः” इति इटोनुदात्तत्वाद् मत्यय-
स्वरः ॐ । सोमानाम् इन्द्रस्य असाधारणं स्वत्वम् आह । युक्तासः दीप्तिमन्तो दीप्तिनिवामस्थानभूता इन्दवः सोमाः तव । असाधा-
रणस्वभूता इति शेषः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस स्पृहणीय अभिपुत सोमको अपने हृदय में धारण करिये दीप्तिके निवासरूप ये सोम आपके असाधारण भाग हैं ॥ ५, ॥

पष्टी ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।

इन्द्रः त्वादातमिद् यशः ॥ ६ ॥

गिर्वणः । पाहि । नः । सुतम् । मधोः । धाराभिः । अज्यसे ।

इन्द्र । त्वादातम् । इत् । यशः ॥ ६ ॥

हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय संभजनीय इन्द्र । ॐ वन पण संभक्तौ इत्यस्माद् असुन् । गिर उपधाया दीर्घाभावश्छान्दसः । “आमन्त्रितस्य च” इति पाष्ठिकम् आद्यदात्तत्वम् ॐ । नः अस्माकं संबन्धिनं सुतम् अभिपुतं सोमं पाहि पिव । अहूयमानस्य कथं पानप्रसक्तिरित्यत्राह । मधोर्धाराभिरिति । यस्माद् मधोः मधुरस्य सोमस्य धाराभिः अज्यसे आर्द्रीक्रियसे । ह्यस इत्यर्थः । अपेक्षितस्य फलस्य अभावे होमस्य का प्रसक्तिरित्यत्राह । हे इन्द्र त्वादानमित् त्वया दातव्यमेव यशः अन्नम् । अस्तीति शेषः । “अस्ति त्वादातम् अद्रिवः” इत्यमुं मन्त्रभागं व्याचक्षाणेन यास्केन त्वया नस्तद् दातव्यम् [नि० ४. ४] इति हि त्वादातशब्दो व्याख्यातः । यद्वा त्वादातम् त्वया शोधितं यशोस्ति । ॐ दैप् शोधने । सत्यपि प्रकारे “नानुबन्धकृतम् अनेजन्तत्वम्” इत्येजन्त एवायम् । ततः “आदेचः” इति आस्वम् । अस्मात् कर्मणि क्तः । “दाधा ध्वदाप्” इत्यत्र अदाप् इति प्रतिषेधेन घुसंज्ञाया अभावाद् “दो दद् घोः” इति दद् आदेशो न भवति । त्वेति घुष्मच्छब्दस्य तृतीया । “कर्तृकरणे कृता बहुलम्” इति ममासः । “तृतीया कर्मणि” इति पूर्वपदमकृत्स्वरः ॐ ॥

हे स्तुतियोंसे सेवा करने योग्य इन्द्र ! हमारे अभिपुत सोम का पान करिये । आप मधुर रस वाले सोमकी थाराओंसे आर्द्र किये जा रहे हैं अर्थात् आपको सोमकी आहुति दी जा रही है । हे इन्द्र ! यह आपका शोधित यश ही है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अभि धुम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥

अभि । धुम्नानि । वनिनः । इन्द्रम् । सचन्ते । अक्षिता ।
पीत्वी । सोमस्य । वावृधे ॥ ७ ॥

वनिनः देवान् संभजमानस्य यजमानस्य धुम्नानि द्योतमानान्यन्नानि सोमलक्षणानि । ॐ धुम्नं द्योततेर्षशो वान्नं वेति यास्कः [नि० ५. ५] ॐ । धुम्नानि विशेष्यन्ते । अक्षिता अक्षितानि अक्षीणानि अतिप्रभूतानि इन्द्रं देवम् अभि सचन्ते अभितः संगच्छन्ते । ॥ च इन्द्रः सोमस्य प्रभूतस्य । अंशम् इति शेषः । अथ वा सोमस्य सोमं पीत्वी पीत्वा । ॐ पा पाने इत्यस्मात् क्त्वाप्रत्ययस्य “स्नात्व्यादयश्च” इति निपातनात् त्वीभावः । “धुमास्थागापा०” इत्यादिना ईत्स्वम् । प्रत्ययस्वरः ॐ । वावृधे प्रवृद्धो भवति । देवताओंकी भक्ति करने वाले यजमानके दमकते हुए सोम अतिप्रवृद्धभावमें इन्द्रदेवको चारों ओरसे मात्त डोर रहे हैं । और इन्द्र भी सोमके अंशको पीकर बढ़ रहे हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अर्वावतो न आ गंहि परावतंश्च वृत्रहन् ।
इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥

अर्वाञ्चतः । नः । आ । गहि । पराञ्चतः । च । वृत्रहन् ।

इमाः । जुपस्व । नः । गिरः ॥ ८ ॥

हे वृत्रहन् वृत्रस्य हन्तस्मिन् नः अस्मान् यजमानान् अर्वाञ्चतः अर्वाचीनाद् अन्निकाद् देशाद् आ गहि आगच्छ । तथा पराञ्चतः दूरदेशाच्च नः आ गहि आगच्छ । ॐ “उपमर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे” इति वृत्तिमत्ययः । प्रत्ययस्वरः ॐ । आगत्य च नः अस्माकम् इमा गिरः स्तुतिरूपा वाचो जुपस्व सेवस्व ॥

हे वृत्रासुरका संहार करने वाले इन्द्र ! आप हम यजमानोंके पास समीपके स्थानमें हों तो समीपके स्थानमें आजाइये और दूर हों तो दूरसे आजाइये । और आकर हमारी स्तुतिरूपा वाणियों का सेवन करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यदन्तरा पराञ्चतमर्वाञ्चतं च हूयसे ।

इन्द्रेह तत् आ गहि ॥ ९ ॥

यत् । अन्तरा । पराञ्चतम् । अर्वाञ्चतम् । च । हूयसे ।

इन्द्र । इह । ततः । आ । गहि ॥ ९ ॥

हे इन्द्र पराञ्चतम् पराञ्चद् दूरस्थानं तथा अर्वाञ्चतं च संनिहित स्थानं च यत् यस्मिन् अन्तरा तयोरन्तरालदेशे । ॐ त्रयमत्र “अन्तरान्तरेण युक्ते” इति द्वितीया ॐ । तत्र हूयसे सम्यग् इज्यसे ततः तस्माद् देशान् पराञ्चतः अर्वाञ्चतश्च सकाशाद् इह अस्मद्याग-देशं प्रति आ गहि आगच्छ ॥

इति पष्ठं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप दूर वा पासके जिस अन्तराल स्थानसे बुलाये
जारहे हैं उस स्थानसे हमारे यागस्थलमें शीघ्रतासे आइये ॥६॥

छठा सूक्त समाप्त (६२२)

“उद्ध्येदभि” इति त्वस्य ब्राह्मणाच्छंसिनः प्रातःसवने विनि-
योग उक्तः ॥

“उद्ध्येदभि” त्वका ब्राह्मणाच्छंसीके प्रातःसवनमें विनियोग
फह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उद्ध्येदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् ।

अस्तारमेपि सूर्य ॥ १ ॥

उत् । घ । इत् । अभि । श्रुतमघम् । वृषभम् । नर्यापसम् ।

अस्तारम् । एपि । सूर्य ॥ १ ॥

हे सूर्य त्वं श्रुतामघम् । मघम् इति धननाम । श्रुतं विख्यातं
स्तोत्रभ्यो यष्टभ्यश्च दानव्यं धनं यस्यार्मा श्रुतमघः तम् ।
सत्यपि श्रुतधनत्वे दानाभावे प्रयोजनाभावाद् उच्यते वृषभम्
इति । अभिमतस्य धनस्य वर्षकम् इत्यर्थः । तथा नर्यापसम् नरेभ्यो
हितं नर्यम् अपः कर्म यस्यार्मा नर्यापाः तम् । ☉ “तरमे
हितम्” इति यत् । बहुव्रीहौ पूर्वपदमकृतिस्वरः ☉ । स्वसेवका-
नाम् इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारविषयकमवन्तम् इत्यर्थः । तथा अस्ता-
रम् शत्रूणां निरसितारम् । ☉ असु क्षेपणे । त्वनि “रघादि-
भ्यश्च” इति इङ्निष्कल्पः ☉ । एवंमहानुभावम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य
उद्ध्येदेपि । घेति प्रसिद्धौ । उदेप ऊर्ध्वं गच्छसि उदयसि । सूर्यो-
दयाभावे इन्द्रस्य सोमलक्षणहविःप्रदानासंभवाद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं
मति उदेपीत्युच्यते ॥

हे सूर्यदेव ! इन्द्र श्रुत्यैव हं अर्थात् स्तोता और यष्टाओंका इन्द्रका धनप्रदान करना प्रसिद्ध है, और इन्द्र अभिमत फलोंकी वर्षा करने वाले हैं, तथा इन्द्र नपर्याप्त है अर्थात् इन्द्रके कर्म अपने सेवक मनुष्योंके इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार करने वाले हैं, तथा इन्द्र शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं । ऐसे महानुभाव इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर आप उदय होते हैं । [सूर्योदयके अभावमें इन्द्रका सोमात्मकहविःप्रदान असम्भव है अतः यह कहा, कि—हे सूर्यदेव ! आप इन्द्रको लक्ष्यमें रख कर उदय होते हैं] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

नव॒ यो नव॒तिं पुरो॑ वि॒भेदं॑ बा॒होऽज॑सा ।

अहिं॑ च वृ॒त्रहा॑वधीत् ॥ २ ॥

नव॑ । यः । नव॒तिम् । पुरः॑ । वि॒भेदं॑ । बा॒हुऽजो॑जसा ।

अहिम् । च । वृ॒त्रऽहा॑ । अव॒धीत् ॥ २ ॥

य इन्द्रः शम्बरस्यासुरस्य नव नवतिं च पुरः नवोत्तरनवति-
संख्याका मायानिर्मिताः पुरीः । ॐ “पङ्क्तिर्नशति०” इत्या-
दिना निप्रत्ययान्तो निपा ततः ॐ । बाहोजसा बाहुवलेन अन्य-
नैरपेक्ष्येणैव विभेद भिन्नवान् नाशितवान् । तथा च मन्त्रान्तरम् ।
“दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य” इति
[अ० २. १६. ६] । किं च वृत्रहा । वृत्रशब्दः शत्रुसामान्य-
वचनः “वृत्राणि वृत्रहं जहि” [२०. ५. ३] “इन्द्रो वृत्राणि
जिघ्रन्ते” [२०. ५. २] इत्यादी तथा दर्शनात् । वृत्राणां
शत्रूणां हन्ता इन्द्रः अहिं च । अयति गच्छतीत्यहिर्मेघः ।
ॐ अहिरयनाह एत्यन्तगिरे इति निरुक्तम् [नि० २. १७] ॐ ।

अथ वा आगत्य हन्तीत्यदिर्द्वयः । ॐ इन हिंसागत्योः । आदि
थिहनिष्पां हस्वरश्च [उ० ४. १३७] इति आङ्पूर्वाद् इञ्
प्रत्ययः । चानेडित् [उ० ४. १३३] इत्यनुस्तेनात् द्विद्वावः
आङो हस्वरश्च । चित्वाद् आद्यदात्तः ॐ । तम् अवधीत् दत्तवान् ।
स न इत्युत्तरत्र संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव शम्बरासुरके मायानिर्मित निन्यानवे पुरोको अपने
भुजपलसे नष्ट कर चुके हैं । उन शत्रुनाशक इन्द्रने वृत्रासुरका
संहार कर डाला है ॥ २ ॥

तृतीया ॥

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद् गोमद् यवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥ २ ॥

सः । नः । इन्द्रः । शिवः । सखा । अश्ववत् । गोमत् ।
यवमत् ।

उरुधाराश्च । दोहते ॥ ३ ॥

स पूर्वोक्तगुणविशिष्ट इन्द्रः नः अस्माकं शिवः सुखकारी सखा
मित्रभूतः । तादृश इन्द्रः अश्ववत् अश्ववैर्बहुभिरुपेतं गोमत् बही-
भिर्गोभिरुपेतं यवमत् । यत्रो धान्यविशेषः । बहुभिर्पैर्बहुक्तं धनम्
उरुधारेण भूतधारायुक्ता बहुक्षीरा गौरिव दोहते सा यथा
सर्वेषां तर्पणसमर्थ बहुक्षीरं दुग्धे एवं सर्वजनहृत्तिसाधनम् अश्व-
वत् उपेतं धनं दुग्धाम् प्रयच्छतु । ॐ बाहुलकात् शपो लुगभादः ।
लेटि वा अडागमः ॐ ॥

इति सप्तमं सूक्तम् ॥

ऐसे इन्द्रदेव हमारे लिये सुखकारी बनें और हमारे मित्र बनें
ऐसे इन्द्रदेव हमको बहुतसे घोड़ोंसे सम्पन्न तथा बहुतसी गौयों

से सम्पन्न और यव आदि बहुतसे धान्योंसे सम्पन्न ऊरुधारा की समान हथको प्रदान करें अर्थात् विशाल धारा वाली बहु-क्षीरा गौ जैसे सबको वृत्ति करने योग्य दुग्धको देती है इसी प्रकार सबकी वृत्तिके साधन अन्न आदिसे सम्पन्न धनको प्रदान करें ॥ ३ ॥

सप्तम सूक्त समाप्त

“इन्द्र क्रतुविदम्” इत्येषा आद्या ऋक् ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रयाज्या । उक्तं हि । “उक्थसंपदः परिधानीयोत्तरा याज्या” इति [वै० ३. ११] ॥

“एवा पाहि” इत्याद्यास्तिस्र ऋचस्तेषामेव ब्राह्मणाच्छंस्यादीनां त्रयाणाम् ऋत्विजां क्रमेण माभ्यन्दिनसवनिक्यः प्रस्थितयाज्याः । तथा च वैतानं सूत्रम् । “एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या” इति [वै० ३. ११] ॥

“इन्द्र क्रतुविदम्” यह पहिली ऋचा ब्राह्मणाच्छंसीकी शस्त्र-याज्या है । वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा भी है, कि—“उक्थसंपदः परिधानीयोत्तरा याज्या” ।

“एवा पाहि” आदि तीन ऋचाएँ इन ही ब्राह्मणाच्छंसी आदि तीनों ऋत्विजोंकी क्रमशः माभ्यन्दिनसवनिकी प्रस्थितयाज्या हैं । इसी बातको वैतानसूत्र ३ । ११ में कहा है, कि—“एवा पाहीति प्रस्थितयाज्या” ॥

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्यं पुरुष्टुत ।

पित्रा वृषस्व तातृपिम् ॥ ४ ॥

इन्द्र । क्रतुविदम् । सुतम् । सोमम् । हर्यम् । पुरुष्टुतम् ।

पिव । आ । वृषस्व । तवृषिम् ॥ ४ ॥

हे गुरुष्टुत बहुविबुधमकारं वा स्तुत इन्द्र क्रतुः प्रजा भवति तस्या लम्भकम् । अथवा क्रतोरैव ज्योतिष्टोमादेर्लम्भकं साधकं सुतम् अभिपुनं तवृषिम् नर्पकं सोमं हयं कामय । ॐ तवृषिम् इत्यप्र “आहवमदन०” इति विहितः “इन्द्रमि मदादिभ्यो दर्शनात्” इति किन् ॐ । पिव । अपि च आ वृषस्व जठरे सिञ्च । पिबे-त्यनेन उक्त एवार्थः पुनरनेन अभिहितः पानस्याधिक्याभिधानाय । व्याख्यातेषाम् अस्मिन्नेवानुवाके [६. २] ॥

हे अनेक मकारमे स्तुत इन्द्रदेव ! आप ज्योतिष्टोम आदिको सम्पन्न करने वाले, अभिपुन वृषिजनक सोमकी कामना करिये । और इसका पान करिये तथा जठरमें सींचिये ॥ ४ ॥

अथ द्वितीया ॥

एवा पाहि प्रतनथा मन्दतु त्वा शुधि ब्रह्मं वावृधस्वोत
गीभिः ।

आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूंगभि गा
इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥

एव । पाहि । प्रतनथा । मन्दतु । त्वा । अवि । ब्रह्म । वावृधस्व ।
उत । गीःऽभिः ।

आविः । सूर्यम् । कृणुहि । पीपिहि । इषः । जहि । शत्रून् ।
अभि । गाः । इन्द्र । तृन्धि ॥ १ ॥

हे इन्द्र प्रतनथा । प्रतनम् इति पुराणनाम । पूर्व यथा अद्विरः-मधुनीनां सोमयागे सोमम् अथाः । ॐ “प्रतपूर्वविश्वेणान् याल्

द्वन्दसि” इति इवार्थे याल् मत्ययः ॐ । एव एवम् अस्मदीयमपि
 सोमं पाहि पिव । स च पीतः सोमः त्वा त्वां मन्दतु मदयतु ।
 तदर्थम् अस्मदीयं ब्रह्म मन्त्रात्मकं स्तोत्रं श्रुधि शृणु । ॐ “श्र-
 शृणुपकृतृभ्यश्चन्दमि” इति देविभावः ॐ । न केवलं श्रवणमेव
 उत अपि च गीर्भिः अस्मदीयाभिः स्तुतिवाग्भिः बृधस्व वर्धस्व
 अभिवृद्धो भव । अतस्तव यागार्थं सूर्यम् सर्वकर्मणां प्रेरकं देवम्
 आविष्कुरुहि मकाशिनं कुरु । यद्वा अस्माकं व्यवहाराय बहु-
 कालं सूर्यम् आविष्कुरु । तत इयः अन्नानि अस्मदुपभोगसा-
 धनानि पीपिहि प्यागय समर्पय । किं च शत्रून् शातयितुन् अस्म-
 द्विरोधिनो द्वेष्यान् जहि घानय । हे इन्द्र गाश्च पण्डिभिरपहृता
 अभि वृन्धि मयच्छ । ॐ वृधस्वेति । वृधेर्बहुलग्रहणाच्छपः
 रलुः । “व्यत्ययो बहुलम्” इत्यत्र “क्वचिद् विकरणं च” इति
 वचनात् शप्-प्रत्ययः । विकरणस्वरेण मथ्योदात्तः । वृन्धि ।
 उवृदिर् हिंसानादरयोः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पहिले अंगिरा आदिके सोमयागमें आपने
 सोमका पान किया था, इसी प्रकार आप हमारे सोमका भी
 पान करिये । वह पिया हुआ सोम आपको प्रसन्न करे । इस
 लिये आप हमारे मन्त्रात्मक स्तोत्रको सुनिये । केवल सुनिये ही
 नहीं किन्तु हमारी स्तुतिकी वाणियोंसे बढ़िये और अपने याग
 के लिये सब कर्मोंके प्रेरक सूर्यदेवको प्रकाशित करिये । फिर
 हमारे उप भोगोंके साधन अन्नोंको बढ़ाइये और हमसे विरोध
 करने वाले शत्रुओंको नष्ट करिये । और हे इन्द्रदेव ! पण्डियोंसे
 हरी हुई गाँओंको हमें प्रदान करिये ॥ १ ॥

तृतीया ॥

अर्वाङ्गेहि सोमं कामं त्वाहुरयं मुनस्तस्यं पित्रा मदाय

उरुव्यचां जठर आ वृषस्व पितेवंनः शृणुहि हूयमानः

अर्वाह् । आ । इहि । सोमऽकामम् । त्वा । आहुः । अगम् ।

सुतः । तस्य । पिब । मदाय ।

उरुव्यचाः । जठरे । आ । वृषस्व । पिताऽइव । नः । शृणुहि ।

हूयमानः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र अर्वाह् अस्मदभिमुखः सन् एहि आगच्छ । किमर्थम् आगमनम् इति चेद् उच्यते सोमकामं त्वाहुरिति । यतस्त्वा त्वां सोमकामम् सोमं कामयमानं सोमविषये अत्यन्ताभिलाषितवन्तम् आहुः अभिज्ञाः कथयन्ति । “सोमकामं हि ते मनः” इति हि मन्त्रान्तरम् [ऋ० ८. ६१. २] । “इमं जम्भसुतं पिब” इति [ऋ० ८. ६१. २] मन्त्रे जम्भनिष्पीडितस्यापि सोमस्य पानाभिधानाद् इन्द्रस्य सोमे अतिशयप्रीतिसद्भावे उक्तो भवति । यस्मादेवं तस्माद् अयं सोमः सुतः अभिपुतः । तस्य । तं सोमम् इत्यर्थः । ❀ “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः संप्रदानत्वाच्चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ❀ । पिब पानं कुरु । कस्मै प्रयोजनायेति उच्यते । मदाय । तस्य पिबेति सोमपानमात्रम् अभिहितम् । इदानीं कुक्षिपरिपूर्तिपर्यन्तं पानम् अभिधीयते उरुव्यचा इत्यादिना । उरु प्रभृतं व्यचर्नं कुक्षिबाहुज्यं यस्य स उरुव्यचाः । ❀ व्यचेराणादिकाः असिप्रत्ययः । “व्यचेः कुटादित्वम् अनसीनि वक्तव्यम्” इति वचनात् द्विजाभावेन संप्रसारणाभावः । “परादिश्चन्द्रसि बहुलम्” इति उत्तरपदाद्यदात्तत्वम् ❀ । तादृशस्त्वं जठरे उदरे अतिविस्तीर्णे आ वृषस्व आसिञ्च सर्वतः पूरय । तदर्थम् आहूयमानस्त्वं पितेव यथा पिता पुत्राय वचनं शृणोति एवंनः अस्माकम्

आहानं शृणुहि शृणु । ॐ “वनश्च मत्पयाच्छन्दसि वा वचनम्”
इति हेतुर्गर्भावः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे अभिमुख होकर आइये । क्योंकि-
विद्वान् पुरुष आपको सोमकी कामना वाला कहते हैं । यह सोम
अभिपुत होगया है, इसका आप मद्के लिये पान करिये । आप
सोमको मभूतमात्रामें अपनी दोनों कोखोंमें भरिये । इसके लिये
बुलाये हुए आप पिता जैसे पुत्रके वचनको सुनता है, निसप्रकार
हमारे आहानको सुनिये ॥ २ ॥

चतुर्थी ॥

आपूर्णा अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे
पिवन्थै ।

समुं प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमांस
इन्द्रम् ॥ ३ ॥

आऽपूर्णाः । अस्य । कलशः । स्वाहा । सेक्ताऽश्व । कोशम् ।
सिसिचे । पिवन्थै ।

सम् । ऊं इति । प्रियाः । आ । आववृत्रन् । मदाय । प्रदक्षिणित् ।
अभि । सोमांसः । इन्द्रम् ॥ ३ ॥

अस्य अस्मै इन्द्राय । ॐ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॐ । तदर्थं कलशः
द्रोणकलश आपूर्णाः सोमरसेन सर्वतः पूर्ण आसन् । नञ् पूरणे
क्रियमाणम् इति चेद् उच्यते । स्वाहा स्वाहुतत्वाय । होमायम्
इत्यर्थः । ततः सेक्तेव कोशम् सेक्ता पूरकः पुमान् कोशम् इति
यथा सिञ्चति पूरयति वदकादिना एवं पिवन्थै इन्द्रस्य पानाय ।
ॐ पा पाने इत्यस्य तुमर्थे शर्ष्येण मत्पयः । शिञ्चात् पित्रादेशः ।

निस्वाद् आद्युदात्तः ॐ । सिसिचे सिञ्चति अध्वर्युः सोमरसम् ।
 सामर्थाद् ग्रहादिष्विति लभ्यते । ते च सिक्ताः प्रियाः हृद्याः
 स्वादवः सोमासः सोमाः मदाय इन्द्रस्य हर्षाय मदनिष्ठित्वा माद-
 न्तिष्ठेन इन्द्रं सम् अभ्यावृत्रन् सम्यग् अभिमुखा वर्तन्ते सम-
 भिव्याप्नुवन्ति । ॐ हतु वर्तने । लङि “बहुलं छन्दसि” इति श्लुः ।
 व्यत्ययेन परस्मैपदम् । “बहुलं छन्दसि” इति भेदवागमः ॐ ॥
 इति अष्टमं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये द्रोणकलश सोमरससे चारों ओरसे भरा
 हुआ रक्खा था-होम कानेके लिये भरा हुआ रक्खा था जैसे
 सेचक पूरक पुरुष मशकको जल आदिसे पूर्ण करता है, इसी
 प्रकार अध्वर्यु इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसको ग्रहादिकोंमें सिक्त
 करता है, वे भरे हुए (सिक्त) स्वादु सोम इन्द्रदेवके हर्षके लिये
 चतुरतासे इन्द्रदेवकी ओरको अभिमुख होकर व्याप्त होजाते हैं ३

अष्टम सूक्त समाप्त (६२४)

“तं वो दस्ममृतीपहम्” इत्यादिचत्वारि सूक्तानि माध्यन्दिन-
 सवने ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा
 “अग्नीषी वज्री” [२०. १२. ७] इत्येषा श्चक्षुः शस्त्रपाज्या ।
 “तं वो दस्ममृतीपहम्” [१] “तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” [३]
 इति प्रगाथास्तोत्रियानुरूपौ । “उदु त्ये मधुमत्तमाः” [२०. १०. १]
 इति सामप्रगाथः । “इन्द्रः पूषित्” [२०. ११] इति सूक्तम्
 उक्थमुखम् । “उदु ब्रह्माणि” [२०. १२] इति सूक्तं पर्याप्त-
 संज्ञम् । “एवेदिन्द्रम्” [२०. १२. ६] इति परिधानीया । एतत्
 सर्वं चेताने सूत्रितम् । “तं वो दस्ममृतीपहं तत् त्वा यामि सुवी-
 र्यम्” इति [वै० ३. १२] ॥

। “तं वो दस्ममृतीपहम्” आदि चार सूक्त माध्यन्दिनसवनमें
 ब्राह्मणाच्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थ सूक्तकी अंतिम

“ऋजीपी वज्री” (२० । १२ । ७) ऋचा शस्त्रयाज्या है । “तं वो दस्ममृतीपहम्” (१) “तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” (३) ये मगाय स्तोत्रियानुरूप है । “उदु त्ये मधुमत्तमाः” (२० । १० । १) यह साममगाय है । “इन्द्रः पूभिर्व” (२० । ११) यह सूक्त उक्थमुत्त है । “उदु ब्रह्माणि” (२० । १२) सूक्त पर्याप्त कहलाता है । “एवेदिन्द्रम्” (२० । १२ । ६) यह परिधानीया है । इस सबको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तं वो दस्ममृतीपहम् तत् त्वा यामि सुवीर्यम्” (वैतानसूत्र ३ । १२) ॥

तत्र प्रथमा ॥

तं वो दस्ममृतीपहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ?

तम् । वः । दस्मम् । ऋतिऽस्तहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः ।

अभि । वत्सम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीऽभिः ।

नवामहे ॥ १ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं युष्मद्यागनिष्पत्त्यर्थं युष्मदभिमत-फलार्थं वा तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् अभिलक्ष्य गीर्भिः स्तुतिप्रकाशिकाभिर्ऋग्भिः नवामहे स्तुम इति संबन्धः । कीदृशम् इन्द्रम् । दस्मम् दर्शनीयम् । तत्तत्फलार्थिभिरवरयं सेवनीयम् इत्यर्थः । ऋतीपहम् । अर्तेऽर्तिशब्दः । आर्तेरभिभवितारम् नाशकम् । ❀ “सहेः पृतनर्ताभ्यां च” इत्यत्र सहेरिति योगविभागात् पचम् ❀ । तथा वसोः वासकस्य अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य । पानेनेति शेषः । मन्दानम् मन्दमानम् । स्तुतौ दृष्टान्तम् आह । वत्सं न स्वसरेषु धेनवः । स्वसरेषु स्वयं सरन्तीति वा स्वः आदित्यः स एनानि सारयतीति वा स्वसराण्यहानि । तेषु आगच्छत्सु निर्ग-

च्छन्मु वा । सायंप्रातःकालेऽप्यित्यर्थः । तेषु घेनवः प्रभूतेन पयसा
प्रीणयिष्यो गावः अभिनवमसवा वा ता वत्सं न । यथा वत्सं
स्तनमदानाय इम्भाशुब्दम् उर्चर्चद्गुशः कुर्वन्ति तद्वत् ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे
अभिगन फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति
करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय है अर्थात् फलाभिलाषियोंको
इनका दर्शन अवश्य करना चाहिये और यह आर्तिका नाश करने
वाले हैं । और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें
भरे रहते हैं । जैसे सूर्य भिनको करता है उन दिनोंके आने जाने
के समय घेनुएँहंभा २ करती हुई बछड़ोंकी आँरको दूध पिलानेके
लिये दौड़ती है, इसी प्रकार हम भी (सोम पिलानेके लिये)
इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ २ ॥

द्वितीया ॥

द्युत्तं सुदानुं तविपीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजंसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे
यत्तम् । सुदानुम् । तविपीभिः । आश्रुतम् । गिरिम् । न । पुरु-
भोजंसम् ।

क्षुमन्तम् । वाजम् । शतिनम् । सहस्रिणम् । मक्षू । गोमन्तम् ।
इमहे ॥ २ ॥

यत्तम् दीप्तं सुदानुम् शोभनदानं विशिष्टदानार्हं तविपीभिः
बलेः आश्रुतम् आच्छन्नम् । बलप्रदम् इत्यर्थः । गिरिं न पुरुभोज-
सम् । पुरु इति बहुनाम् । बहुनां प्रजानां भोगयोग्यं गिरिं न
पर्यतमिव । यथादुमिसे प्रजा जीवनाय बहुभिः कन्दमूलाद्यन्नेरु-

पेतं गिरिम् अर्थयन्ते तद्वत् । ॐ उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिस्ते नव वृत्तयः इति हि मन्त्रवर्णः [नि० ६. ५] ॐ । अयम् वाजम् ईमहे इत्यत्र दृष्टान्तः । तथा जुमन्तम् । ॐ जु शब्दे ॐ । शब्दो-
पेतम् । स्तुतिमन्तम् इत्यर्थः । यो लोके बहो भवति स शब्दयत
इति प्रसिद्धम् । शतिनम् शतपुक्तं शतसंख्यानां प्रजानां पोषक-
त्वेन तद्वन्तम् । एवं सहस्रिणम् इत्येतदपि योज्यम् । अपरिमित-
प्राणिपोषकम् इत्यर्थः । तथा गोमन्तम् बह्वभिर्गोभिर्युक्तम् । एवम्
उक्तैर्विशेषणैर्विशिष्टं वाजम् अन्नं मज्जु शीघ्रम् ईमहे याचामहे ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य, बलप्रद, स्तुतिके पात्र,
सैंकड़ों और सहस्रों प्रजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी
गौओंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं जिस प्रकार
दुर्भिन्नमें प्रजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्नोंसे
सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं । [निरुक्त ६ । ५ में कहा भी
है, कि—“उदधिः पर्वतो राजा दुर्भिस्ते नव वृत्तयः ।”] ॥ २ ॥

तृतीया ॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ३

तत् । त्वा । यामि । सुवीर्यम् । तद् । ब्रह्म । पूर्वचित्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वम् । आविथ ३

हे इन्द्र तत् वक्ष्यमाणलक्षणं सुवीर्यम् शोभनवीर्यपितं ब्रह्म
परिवृढम् अन्नं त्वा त्वां यामि याचे । ॐ वर्णलोपरञ्चान्दसः ।

“तत् त्वा यामीति द्विवर्णलोपइति हि यास्कः [नि० २. १] ॐ ।
उक्तमेवार्थं पुनराह इतरेभ्यः पूर्वलाभाय । तत् उक्तलक्षणं ब्रह्म
अन्नं पूर्वचित्तये पूर्वप्रज्ञानाय । यामीति संबन्धः । तद् इत्युक्तम् ।

कीदृक् तद् इत्याह । येन ब्रह्मणा अन्नेन यतिभ्यः कर्मभ्यो निवृत्तेभ्यः सकाशाद् आहृत्य भृगवे एतन्नामकाय महर्षये धने हिते अभिमते सति तं भृगुं ग्रीणितवान् असि । यद्वा येन सुवीर्येण अन्नेन यतिभ्यः नियतिमद्भयः कर्मसु नियतेभ्यः अन्येभ्यो महर्षिभ्यः तदर्थं धने हिते सति परितोषितवान् असि । तथा भृगवे एतन्नामकाय महर्षये च । येन च धनेन मरुक्एवम् कएवस्य पुत्रम् एतन्नामानम् ऋषिम् आविष्य ररक्षिष्य ॥

हे इंद्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्यसम्पन्न दृढ़ अन्नकी याचना करता हूँ । उस अन्नको पूर्वमज्ञानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कएव नामक ऋषिके पुत्र मरुकएव ऋषिकी रक्षा की थी उस धनकी हम आपसे याचना करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनां समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीनुचक्रदे
येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तत् । इन्द्र । वृष्णि । ते । शवः ।
सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । सम्नशे । यम् । क्षोणीः ।
अनुचक्रदे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र येन शवसा बलेन समुद्रम् । समभिद्रवन्त्येनम् आप इति समुद्रः उदधिः । तं प्रति महीः महतीः अनिमधूता अपः समुद्रपूर्तिपर्यन्तानि उदकानि असृजः स्पृष्टादौ स्पृष्टवान् असि । तत् तादृक् ते शवः बलं वृष्णि वर्षकं सर्वेषाम् अभिमतप्रदातु ।

भवतीति शेषः ॥ अयं परोक्षम् आह । अस्य इन्द्रस्य स महिमा बहुभिरुदकैः समुद्रपूर्व्यादिलक्षणः सद्यः तदानीमेव न संनश्ये परैर्न सम्यग् व्याप्तुम् अर्हः । महिम्न आनन्त्याद् अनन्यसाधारणत्वाच्चेति भावः । ॐ नशतिर्व्याप्तिकर्मा । कृत्यार्थे केन् प्रत्ययः ॐ । यं महिमानं क्षोणीः । क्षोणी पृथिवी । तेन तन्निष्ठः प्राणिनिकरो लक्ष्यते । अनुचक्रते अनुक्रन्दति । उद्द्योषयतीत्यर्थः ॥

इति नवमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टि की आदि में समुद्रका पूर्णरूपसे भरने वाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । बहुतसे जलोंमें समुद्र-पूर्ण आदिकी इनकी महिमाको शत्रु नहीं पासकते इनकी महिमा का पृथिवीवासी वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

नवम सूक्त समाप्त (६२५)

“उदु त्वे” इति सूक्तस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

“उदु त्वे” सूक्तका विनियोग पहिले सूक्ते माय कह दिया है।

तत्र प्रथमा ॥

उदु त्वे मधुमत्तमा गिरः स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो धनमा अक्षितो तयो वाजयन्तो रथा इव १

उद् । ऊं । इति । त्वे । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमांसः । ईरते ।

सत्राजितः । धनमाः । अक्षितः । तयोः । वाजयन्तः । रथा इव ।

त्वे । तच्छब्दसमानार्थस्त्यच्छब्दः । ते वक्ष्यमाणाः स्तोमांसः

स्तोमाः त्रिवृदादयः प्रगीतमन्त्रमाख्यानि स्तोत्राणीत्यर्थः । ते

विशेष्यन्ते । मधुमत्तमाः अतिशयेन मधुगः वस्तुषद् वाच्यपि

माधुर्यम् अस्त्येव । ते उदीरते प्रादुर्यवन्ति । तथा गिरः अत्रापि

मधुमत्तपा इत्येतत् संवध्यते । अतिशयेन मधुरा गिरः शस्त्राश्रय-
भूता वाचः अमगीतमन्त्रसाध्यान्पि शस्त्राणि उदीरते । ते विशेष-
प्यन्ते । सत्राजितः सदैव एकवारमेव जयन्ति शत्रून् इति सत्रा-
जितः । तथा धनसाः धनानां संभक्तारो धनप्रदाः । ॐ “जन-
सखनक्रमगमो विट्” इति विट् । “विड्वनोरनुनासिकस्यात्”
इति आस्वम् ॐ । एवम् अक्षितोत्तयः । क्षितं क्षयः । न विद्यते
क्षिते यासां ता अक्षिताः । अक्षिता ऊतयो येषां ते तपोक्ताः ।
सर्वदा रक्षका इत्यर्थः । ॐ “निष्ठायां भयपदर्थे” इति पयुदासाद्
दीर्घाभावः । अत एव “क्षियो दीर्घात्” इति निष्ठानत्वाभावः ॐ ।
वाजयन्तः वाजम् अन्नम् इच्छन्तः । ॐ वयचि “नष्टद्वन्द्वस्य-
पुत्रस्य” इति इत्त्वदीर्घयोः प्रतिषेधः ॐ । तत्र दृष्टान्तः । रथा
इव । अत्र सत्राजितइत्यादि विशेषणानि दृष्टान्तेऽपि योजयितव्यानि ।
यथोक्तलक्षणा रथा यथा रथस्वामिनः प्रयोजनाय उदीरते एवम्
इन्द्रस्य परितोपाय स्तोमा उदीरत इत्यर्थः ॥

ये आगे कहे जाने वाले अमीतमन्त्रसाध्य त्रिष्टुप् आदि स्तोत्र
और अमगीतमन्त्रमाध्य शस्त्र आदिकी मधुर वाणियों मादुर्भूत
होरही हैं, ये धन प्रदान करने वाली हैं और एकवार ही शत्रुओं
को जीत लेनी हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने
वाली हैं और रथ जैसे रथमें बैठने वालेके प्रयोजनके लिये दीड़ता
है तैमे ही यह इन्द्रके संतोषके लिये प्रकट होती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमैधासो अस्वरन् २

कएवाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विरवम् । इत् । धीतम् ।

आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । महयन्तः । आयवः । मियमेधासः । अस्वरन्

कएवा इव कएवगोत्रोत्पन्ना महर्षयोपि कएवाः । ते यथा विरवम्
व्याप्तं लोकत्रयस्वामिनम् । इत् शब्दः अव्यवहितेन इन्द्रम् इत्य-
नेन संबध्यते । धीतम् ध्यातं तत्तत्फलार्थिभिः सर्वैर्ध्यानोपलक्षि-
तेन स्तोत्रेण विषयीकृतम् इन्द्रमित् इन्द्रमेव आनशुः स्तोत्रशस्त्रा-
दिभिः प्राप्ताः । भृगवः । केवलोपि भृगुशब्दः इवेन विशिष्टार्थः
परिगृह्यते । भृगव इव ते यथा उक्तलक्षणम् इन्द्रम् आनशुः । सूर्या
इव सूर्या धान्यमादयः । ते यथा स्वनिपन्तारम् इन्द्रम् आनशुः ।
एवम् उक्तगुणकम् इन्द्रं मियमेधासः । येषां मेधाः मियभूतास्ते
मियमेधाः । एतन्नामानः आयवः मनुष्या महर्षयः महयन्तः पूज-
यन्तः स्तोमेभिः स्तोत्रैः अस्वरन् शब्दम् अकुर्वन् । अस्तुवन्नित्यर्थः ॥

इति दशमं सूक्तम् ॥

कएव गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके
स्वामी, कलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र
शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्धमा आदि
सूर्य अपने नियन्ता इन्द्रको प्राप्त होते हैं अर्थात् इन्द्रकी स्तुति
करते हैं । और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें
जाते हैं इसी प्रकार मियमेश नामक मनुष्य पूजा करते समय
स्तोत्रोंसे इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

दशम सूक्त समाप्त (६२८)

“इन्द्रः पूर्भित्” इति सूक्तस्य उक्तो विनियोगः ॥

“इन्द्रः पूर्भित्” सूक्तका विनियोग पहिले कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रः पूभिदातिरद् दासमर्केर्विदद्वसुर्दयमानो विशत्रून्
 ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणाद् रोदसी
 उभे ॥ १ ॥

इन्द्रः । पूऽभित् । आ । अतिरत् । दासम् । अर्कः । विदत्स्वसुः ।

दयमानः । वि । शत्रून् ।

ब्रह्मजूतः । तन्वा । ववृधानः । भूरिदात्रः । आ । अपृणत् ।

रोदसी इति । उभे इति ।

इन्द्रो देवः पूभित् शत्रुपुर्गं भेत्ता दासम् उपक्षपयितारं शत्रुम्
 अर्कः अर्चनीयैः स्वर्गीयैः आतिरत् सर्वतो हिंसितवान् । सूर्या-
 त्मना वा अर्कः अर्चनीयै रश्मिभिः दासम् तपसः क्षपयितारं
 वासरम् आतिरत् सर्वतो वधितवान् । प्रकाशितवान् इत्यर्थः ।
 किं कुर्वन् । विदद्वसुः लब्धधनः । शत्रुधनापहर्तेत्यर्थः । शत्रून्
 वृत्रादीन् चि दयमानः विशेषेण हिंसन् । ॐ तथा च यास्कः ।
 विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् इति हिंसाकर्मा इति [नि० ४.१७] ॐ ।
 ब्रह्मजूतः ब्रह्मणा मभूनेन स्तोत्रेण अभिवृद्धः तन्वा शरीरेण ववृ-
 धानः वर्धमानः । ॐ वृधु वर्धने । कानाचि रूपम् । संहितायाम्
 अभ्यासस्य “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः ॐ । भूरिदात्रः ।
 दात्यनेन खण्डयति शत्रून् इति दात्रम् आयुधम् । मभूतायुध
 इत्यर्थः । यद्वा दीयत इति दात्रं धनम् । ववृधनः । उक्तगुणविशिष्ट
 इन्द्रः उभे रोदसी उभे घानापृयिष्यी आपृणत् । व्यस्रोद् इत्यर्थः ॥
 इन्द्रदेव शत्रुमार्के नगरौका नाश करनेवाले हैं । इन्होंने गद-

बड़ी डालने वाले शत्रुओंको अपने प्रशसनीय वीर्योंसे नष्ट कर डाला है । यह शत्रुओंके घनको पाने वाले हैं । और वृत्र आदि शत्रुओंको इन्होंने विशंपरूपसे नष्ट कर डाला है, इनका शरीर मन्त्रसे बढ़ जाता है, इनके पास शत्रुओंको नष्ट करने वाले बहुत से आयुध हैं । ऐसे इन्द्रदेवने धुलोक और पृथिवीलोक दोनोंको व्याप्त कर लिया है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

मखस्य ते तविपस्य प्र जूतिमियमि वाचममृताय भूपन्
इन्द्रं क्षितीनामसि मानुषीणां विशां देवीनामुत पूर्व-
यावां ॥ २ ॥

मखस्य । ते । तविपस्य । प्र । जूतिम् । इयमि । वाचम् । अमृ-
ताय । भूपन् ।

इन्द्र । क्षितीनाम् । असि । मानुषीणाम् । विशाम् । देवीनाम् ।
उत । पूर्वयावां ॥ २ ॥

हे इन्द्र मखस्य मंहनीयस्य मखात्मकस्य वा तविपस्य । तवः
बलम् । अतिशयितबलस्य ते तव जूतिम् प्रेरयित्रीं वर्धयित्रीं वा
वाचम् स्तुतिलक्षणां प्रेरयिमीं प्रेरयामि । ॐ इयतिर्जुहोत्यादिः ।
“अतिपिपत्योश्च” इति अभ्यासस्य इत्त्वम् । “अभ्यासस्यासवर्णे”
इति इयङ् आदेशः । पादादित्वाद् अनिघातः । “अभ्यस्तानाम्
आदिः” इत्याद्युदात्तः ॐ । किमर्थम् । अमृताय अमृतत्वाय अन्नाय
वा । किं कुर्वन् । भूपन् त्वाम् अलङ्कुर्वन् । ॐ भूप अलङ्कारे ।
शत्रुपत्ययः ॐ । हे इन्द्र यस्माद् मानुषीणाम् मनुषः संबन्धि
नीनां क्षितीनाम् प्रजानाम् च न अपि च देवीनाम् देवसंबन्धि

नीनां विशाम् मजानां पूर्वयावा पुरोगन्तासि । सर्वेषां प्राणनां
श्रेष्ठो भवसीत्यर्थः । तस्माद् वाचम् इयमीति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं यज्ञस्वरूप परम-बली आपको बढ़ाने वाली
वाणीको अन्नके लिये विभूषित करता हुआ उच्चारण करता
हूँ । हे इन्द्र ! आप मनुष्योंकी और देवताओंकी मजाके आगे जाने
वाले हैं । अर्थात् सबमें श्रेष्ठ हैं इस लिये मैं वाणीको भेरित
करता हूँ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रो वृत्रमंवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनामभिनाद् वर्ष-
णीतिः ।

अहन् व्यंसमुशधग् वनेष्वविधेनां अकृणोद् राम्या-
णाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः । वृत्रम् । अकृणोद् । शर्धनीतिः । प्र । मायिनाम् । अमि-
नाद् । वर्षनीतिः ।

अहन् । विऽअसम् । उशधक् । वनेषु । आविः । धेनाः । अकृ-
णोद् । राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः शर्धनीतिः । शर्धः हिंसकं बलम् । ॐ अथ अका-
रान्तरं ह्यन्दसम् ॐ । नस्य नीतिर्नयनं प्रापणं यस्य स तयोक्तः ।
शर्धं प्रति स्वबलप्रापक इत्यर्थः । तादृशः सन् वृत्रम् अपावरकं
मेघं सर्वतो व्याप्नुवानम् असृष्टम् । ॐ वृत्रो मेघ इति नैरुक्ता-
स्त्वाष्ट्रोसुर इत्येतिहासिका इति निरुक्तम् [नि० २. १६] ॐ ।
तम् अकृणोद् अरुधत् । तथा स एव इन्द्रः वर्षनीतिः । वर्ष इति

रूपनाम । अत्र अकारान्तः । तस्य नेता । युद्धे शत्रुं प्रति स्वशरीर-
प्रापक इत्यर्थः । अनेन तस्य गतम् अयन्नम् उक्तं भवति । तादृशः
सन् मायिनाम् मायावताम् असुराणाम् अत्र सामर्थ्याद्बलानीति
गम्यते । यद्वा । ॐ द्वितीयार्थे षष्ठी ॐ । मायिन इत्यर्थः । मायि-
नात् प्रावधीत् । ॐ मीन् हिंसायाम् । “मीनातेर्निगमे” इति
ह्रस्वत्वम् ॐ । इन्द्रो वृत्रम् अवृणोत् इत्युक्तमेवार्थं विस्पष्टम् आह ।
उशधक् कामयित्वा शत्रुदाहकः । यद्वा उशतां युद्धं कामयमानानां
शत्रूणां दाहक इन्द्रः वनेषु उदकेषु निमित्तभूतेषु वृत्रम् आवरकं
मेघं व्यंसम् विगतांसं यथा भवति तथा विदार्य अहन् अवधीत् ।
ततो राम्पाणाम् रमणीयानाम् अपाम् अर्पाय धेनाः । वाह्ना-
मैतत् । वाचः स्तनितानि आविरकृणोत् प्रकाशम् अकार्षीत् ॥
वृत्रासुरपक्षे वनेषु आच्छन्नं वृत्रम् उशधक् सन् व्यंसम् विगतांसं
कृत्वा अंसाद्यद्गानि विन्दिष्य अहन् अवधीत् । राम्पाणाम् रम-
णार्हाणां क्रीडासाधनानां तद्योपिताम् । ॐ रामम् अर्हतीत्यर्थे
“द्वन्दसि च” इति यत् प्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तः ॐ ।
आर्निवाच आविरकृणोद् इत्यर्थः । अथ वा राम्पाणाम् क्रीडा-
र्हाणां रात्रीणां संवन्धिनीर्धेनागाः । रात्रौ तमसा वृताः असुरा-
पहृता गा इत्यर्थः । ताः आविरकृणोत् असुरान् अपहृत्य ताः
स्पृष्टाश्चकार । असुरैर्देवानां गवाटिलक्षणधनम् अपहृत्य राज्ञि-
प्रवेशमूर्त्तिरीयके । “अहर्देवानाम् आसीद् । राज्ञिरसुराणाम् ।
तेसुरा यद् देवानां वित्तं वेद्यम् आसीत् तेन सह राज्ञि प्राविशन्”
इति [तै० सं० १. ५. ६. २] ॥

इन्द्रदेव शत्रु पर अपने हिंसक बलको डाल देते हैं. ऐसे इंद्रने
वृत्र (असुर वा आवरक मेघ) को रोक लिया था और युद्धमें
अपने शरीरको शत्रुकी ओर लेजाने वाले इंद्रने मायावी असुरों
को नष्ट कर डाला था, कामना करके शत्रुओंको नष्ट कर डालने

वाले इन्द्र ने वनसे घिरे हुए वृत्रासुरको कंधों सहित करके नष्ट कर डाला था और क्रीड़ा करनेके योग्य रात्रियोंमें पण्डियोंकी हरी हुई गोंधोंकी (शत्रु संहार करके) प्रकट कर दिया था ३
चतुर्थी ॥

इन्द्रः स्वर्पा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना
अभिष्टिः ।

प्ररोचयन्मनवे केतुमहामविन्दुज्ज्योतिर्वृहते रणाय

इन्द्रः । स्वाऽसाः । जनयन् । अहानि । जिगाय । उशिक्भिः ।

पृतनाः । अभिष्टिः ।

प्र । अरोचयत् । मनवे । केतुम् । अहाम् । अविन्दत् । ज्योतिः ।

वृहते । रणाय ॥ ४ ॥

स्वर्पाः स्वर्गस्य लम्पकः । ॐ पणु दानं । विषप् । “जन-
सनखनां सन्धलोः” इति आत्वम् । “सनोतेरनः” इति पत्वम् ।
“अहरादीनां पत्यादिपूषसंख्यानम्” इति रत्वम् ॐ । अभिष्टिः
अभिगन्ता शत्रूणाम् अभिभविता । ॐ इषु गर्ता । “मन्त्रे वृष०”
इत्यादिना क्तिन उदात्तत्वम् । स हि भावपरोपि भवितारं लक्ष-
यति । “तितुव्रत्थास०” इत्यादिना इट्प्रतिषेधः । शकन्धादित्वात्
पररूपत्वम् । कुदुत्तरपदप्रकृतिस्वरः ॐ । तादृश इन्द्रः अहानि
जनयन् प्रादुर्भावयन् नमोनिवर्तनेन युद्धानुकूलानि कुर्यन् उशिग्भिः
युद्धं कामयमानैरशुरैः सह युद्धं कृत्वा पृतनाः तेषां सेना जिगाय
अजैगीत् । ऋ च । मनवे मनुष्याय । जातावेकवचनम् । मनुष्ये-
भ्यो यजमानेभ्यः वृहते महते रणाय रमणाय क्रीडनाय । प्रभूत-

वैदिकलौकिकव्यवहारायेत्यर्थः । तदर्थम् अह्नां वंतुम् प्रज्ञापकम्
आदित्यं प्रारोचयत् दिवि अदीपयत् । ततो ज्योतिः सर्वपदार्थ-
प्रकाशकं तेजः अविन्दत् लब्धवान् ॥

स्वर्ग हो प्राप्त कराने वाले, शत्रुओंका अभिभव करने वाले
इन्द्रदेवने दिनों हो प्रकट करके (तमको दूर कर उनको युद्धके
अनुज्ञा करके) युद्धाभिलाषी अमुरोंमे युद्ध कर उनही मेनाको
जीत लिया था और उन्होंने यजमान मनुष्योंके लौकिक वैदिक
व्यवहारोंके लिये दिनके प्रज्ञापक आदित्यको धलोकमें दमका
रक्खा है । इस प्रकार सर्वपदार्थप्रकाशक तेजको प्राप्त कर
रक्खा है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरुणि
अचेनयद् धिय इमा जग्निरे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमा-
साम् ॥ ५ ॥

इन्द्रः । तुजः । बर्हणाः । आ । विवेश । नृवत् । दधानः ।
नर्या । पुरुणि ।

अचेनयत् । धियः । इमाः । जग्निरे । प्र । इमम् । वर्णम् । अति-
रत् । शुक्रम् । आसाम् ॥ ५ ॥

इन्द्रो देवः बर्हणाः अभिवृद्धाः तुजः हिंसिकाः शत्रुसेनाः ।
❀ तुज हिमायाम् । क्विप् । धातुस्तरः ❀ । आ विवेश प्रावि-
क्षत् । तत्र दृष्टान्तः । नृवत् मनुष्य इव स यथा शत्रुमेना युद्धार्थं
प्रविशति तद्वत् । किं कुर्वन् । नर्या नर्याणि नरेभ्यः ऋत्विगादि-
रूपेभ्यो मनुष्येभ्यो हितानि पुरुणि बहूनि । सामर्थ्याच्छत्रुघना-

नीति गम्यते । दधानः धारयन् । ॐ दधातेः शानचि रूपम् ।
 “अध्यस्तानाम् आदिः” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । किं च इमाः
 परिदृश्यमानाः प्रसिद्धा धियः । धीजनकत्वात् सर्वध्यायमान-
 त्वाच्च धिय उपसः । धीशब्दस्य उपःपरत्वं मन्त्रान्तरे । “शुक्र-
 वर्णमुदु नो यंसते धियम्” इति [ऋ० १४३. ७] । जरित्रे
 स्तोत्रे स्तोतृणाम् अर्थाय अचेतयत् प्राज्ञापयत् । उपसि हि मनु-
 ज्ञायां स्तोत्रशस्त्रादीनि प्रवर्तन्ते । उक्त एवार्थः प्रकारान्तरेण
 उच्यते । आसां धियाम् उपसाम् इमं प्रसिद्धं शुक्रवर्णं प्रातिरत्
 मानर्धयत् । ॐ आसाम् । “इदमोन्वादेशेशनुदात्तस्वृतीयादौ”
 इति इदमः अश् आदेशः । सोऽप्यनुदात्तः । मत्पयश्च सुप्त्वाङ्
 अनुदात्तः । अतः सर्वानुदात्तम् आसाम् इति पदम् ॐ ॥

मनुष्य युद्ध करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुसेनामें प्रवेश करता
 है, तिसी प्रकार इन्द्रदेव भी अतिवज्र आदिरूप मनुष्योंके बहुत
 से हितोंको और शत्रुओंको ग्रहण करनेके लिये घड़ी हुई शत्रु-
 सेनाओंमें घुस जाते हैं, और (सबसे ध्यान करने योग्य इन धी
 अर्थात्) उपाओंको स्तोताओंके लिये प्रकट करते हैं [उपःकाल
 के होने पर ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियें होती हैं, इसी बातको
 बड़ाते हैं कि—] इन उपाओंके शुक्रवर्णको इन्द्रदेव बड़ाते हैं ॥५॥

पृष्ठी ॥

महो महानिं पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरुणिं ।
 वृजनेन वृजिनान्तसं पिपेय मायाभिर्दस्युरभिभूत्योजाः ६
 महः । महानि । पनयन्ति । अस्य । इन्द्रस्य । कर्म । सुकृता ।
 पुरुणि ।

वृजनेन । वृजिनान् । सम् । पिपेय । मायाभिः । दस्यून् । अभि-

भूतिऽभोजाः ॥ ६ ॥

1264 13-1425

महः मंहनीयस्य महतो गुणैः महद्भ्यस्वा वा । छि मह पूजा-
याम् । चिचप् । “सावेकाचः०” इत्यादिना विभक्तेरुदात्तत्वम् ।
महद्भ्यस्वा वा । छान्दसः शतृप्रत्ययलोपः छि । अस्य मसिद्भ्यस्वा
इन्द्रस्य महानि मंहनीयानि सुकृता सुकृतानि सुष्ठु संपादितानि
पुरुणि बहूनि कर्म कर्माणि पनयन्ति स्तुवन्ति स्तोतारः । तेषु
एकं कर्म अत्रोपवर्ण्यते । अभिभूत्यभोजाः अभिभूतिरभिभवः ।
अभिभवितु ओजो बलं यस्य । अयं वा शत्र्वभिभवे समर्थम्
भोजो यस्य स तथोक्तः । छि अभिभूतिरभिभवनम् । भावे
क्तिन् । “तादौ च निति०” इत्यभेः प्रकृतिस्वरत्वम् । अभि-
भूता ओमः अस्येति “सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिः” इति
समासः । बहुव्रीहौ पूर्वपदप्रकृतिस्वरः छि । तादृश इन्द्रो वृजनेन
आवर्जकेन बलेन आयुधेन वा वृजिनान् पापरूपान् असुरान् सं
पिपेय सम्यक् चूर्णीकृतवान् । तथा मायाभिः स्वशक्तिभिः दस्यून्
उपक्षपयितृन् शत्रून् सं पिपेय ॥

इन पूजनीय इन्द्रदेवके मंशसनीय पूर्णरूपसे पूर्ण किये हुए
बहुतसे कर्मोंकी स्तोता पुरुष स्तुति करते हैं । (उनमेंका एक
कर्म यहाँ वर्णन किया जाता है, कि-) जिनमें शत्रुओंको दवाने
की शक्ति है ऐसे इन्द्रने अपने आवर्जक आयुधसे पापरूप असुरों
को भली प्रकार चूर्ण कर डाला है । तथा अपनी शक्तियोंसे
छोप करने वालोंको पीस डाला है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

युधेन्द्रो म॒ह्ना वरि॑वश्चकार दे॒वेभ्यः॑ सत्प॑न्तिश्चर्पणि॒प्राः ।

विवस्वतः सद्ने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो
गृणन्ति ॥ ७ ॥

युधा । इन्द्रः । महा । वरिवः । चकार । देवेभ्यः । सत्स्पतिः ।
चर्पणिष्माः ।

विवस्वतः । सद्ने । अस्य । तानि । विप्राः । उक्थेभिः । कवयः ।
गृणन्ति ॥ ७ ॥

इन्द्रो देवः युधा युद्धेन । ॐ युध संपहारे । भावे संपदादि-
लक्षणः विवप् । “सावेकाचः०” इति विभक्तेरुदात्तता ॐ । महा
स्वमहत्त्वेन । अन्यनैरपेक्ष्येत्यर्थः । देवेभ्यः । दीप्यतिरत्र स्तु-
त्यर्थः । स्तोतृभ्यः तेषामर्पय वरिवः । धननामैतत् । वरणीयं
धनं चकार कृतवान् । ॐ वृष् वरणे । इत्यस्य यङ्लुकि रूपम् ।
“श्रुतश्च” इति अभ्यासस्य रिगागमः । तदन्ताद् अमुन् । चाहु-
लकाटिलोपः । निस्वरः ॐ । इन्द्रो विशेष्यते । सत्पतिः सतां
कर्मानुष्ठापिनां यजमानानां पालकः चर्पणिष्माः चर्पणयो मनुष्याः ।
तेषाम् अभिमतफलपूरकः । कुत्र वरिवश्चकारेति उच्यते । विव-
स्वतः । विवस्वान् आदित्यः । तस्य सद्ने स्थाने वृष्टिप्रतियन्ध-
कान् अमुरान् पराजित्य वृष्टिलक्षणं धनं चकारेत्यर्थः । अथ वा
एतद् उच्यते संवध्यते । विवस्वतः विशेषेण अग्निहोत्रादिकर्मार्थं
वसतो यजमानस्य सद्ने गृहे । ॐ विपूर्वाद् वस निवासे इत्य-
स्मात् संपदादिलक्षणो भावे विवप् । तद् अस्यास्तीति मतुप् ।
“भादुषवायाः०” इत्यादिना तभ्य वत्वम् । प्रत्ययस्य पित्वाद्
अनुदात्तत्वे घातुस्वर एव । अवग्रहाभावश्चान्दसः ॐ । अस्य
उक्तमहिमोपेतस्य इन्द्रस्य तानि प्रसिद्धानि वृषवधादिलक्षणानि
कर्माणि विप्रा मेधाविनः श्रुत्विजः । कीदृशाः । कवयः क्रान्त-

महाः अनूचाना वा । “ये वा अनूचानास्ते कवयः” इति [ऐ०
ब्रा० २. २] श्रुतेः । उक्थेभिः । उक्थैः आज्यप्रजगादिशस्त्रैः
गृणन्ति स्तुवन्ति ॥

इन्द्रदेवने किसी दूसरेकी अपेक्षा न रख अपनी ही महिमासे
पुद्ध करके, स्तोताओंके लिये धनको किया है । यह इन्द्रदेव
कर्मानुष्ठानी सज्जन यजमानोंके पालक हैं । मनुष्योंके अभिल-
षित फलको देने वाले हैं । (कहाँ ?) विशेषरूपसे अग्निहोत्र
आदि कर्मके लिये ही बसने वाले यजमानके धर्ममें (यह उक्त
फल करते हैं) इन महिमावान् इन्द्रके वृत्रवध आदिक प्रसिद्ध
कर्मोंका विद्वान् पुरुष उक्थोंसे गाँन करते हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वर्पश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥
सत्रासहम् । वरेण्यम् । सहः प्रदाम् । ससवांसम् । स्वर्गः । अपः ।
च । देवीः ।

ससान । यः । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । इन्द्रम् । मदन्ति ।
अनु । धीरणासः ॥ ८ ॥

सत्रासाहम् । सह त्रायते स्वापिनम् इति सत्रा सेना । शत्रु-
सेनाया अभिभवितारम् अथ वा सत्रासहम् एकप्रपत्नेनैव शत्रु-
सेनाया अभिभवितारम् । ॐ यह मर्षणे । छान्दस उपधावृद्धय-
भावः । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । वरेण्यम् सर्वैः
स्वस्वफलार्थिभिर्वरणीयं सेवनीयं सहोदाम् । सह इति बलनाम ।
बलस्य दातारम् तथा स्वः स्वर्गस्य देवीः देवनशीला अपश्च
ससवांसम् । ॐ वन पण संभक्ता । अस्य कवर्मा इडभावे नका-

रत्नोपे रूपम् ॐ । एवं महानुभावम् इन्द्रं धीरणासः धीरणाः धीषु
स्तुतिषु कर्मसु वा रणं रमणं येषां ते तथोक्ताः तादृशस्तोतारो
यजमानाश्च इन्द्रम् अनु मदन्ति अनुक्रमेण हर्षयन्ति स्तुत्या हवि-
रादिना च । इन्द्रमेव विशिनष्टि । यं इन्द्रः पृथिवीम् विस्तीर्णा
याम् दिवम् इषां पृथिवीं च द्यावापृथिव्यां सप्तान देवेभ्यो मनुष्ये-
भ्यश्च प्रादात् । तम् इन्द्रं मदन्तीति संबन्धः ॥

जो शत्रुसेनाको एक बार ही दबा देते हैं, सब फल चाहने
वाले अपने २ लिये जिनका वरण करते हैं, जो बलदाता हैं, जो
स्वर्गका और जलोंका सेवन करने वाले हैं, जिन इन्द्रदेवने इस
विस्तीर्ण पृथिवीको और धल्लोकको देवता और मनुष्योंके लिये
प्रदान किया है, ऐसे महानुभाव इन्द्रको स्तुतिपौमें रमण करने
वाले स्तोता और यजमान स्तुति और हवि-आदिसे प्रसन्न
करते हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सप्तानात्प्रां उत सूर्यं सप्तानेन्द्रः सप्तान पुरुभोजसं
गाम् ।

हिरण्ययमुत्भोगं सप्तान हत्वी दस्यून् प्रायं वर्ण-
मावत् ॥ ९ ॥

सप्तान । अत्यान् । उत । सूर्यम् । सप्तान । इन्द्रः । सप्तान । पुरु-
भोजसम् । गाम् ।

हिरण्ययम् । उत । भोगम् । सप्तान । हत्वी । दस्यून् । म ।
आर्गम् । वर्णम् । आवत् ॥ ९ ॥

अत्यान् अतनार्हान् अरवान् । उपलक्षणम् एतत् । सुरगग-

जोष्ट्रादिकानि वाहनानि प्राणिनां व्यवहाराय इन्द्रो देवः ससान
 मादात् । ॐ पणु दाने । लिटि रूपम् ॐ । उत अपिच सूर्यम्
 सर्वस्य प्रकाशकं देवं प्राणिनां व्यवहारार्थं ससान । एवं पुरुभो-
 जसम् पयोदव्यादिलक्षणबहुप्रकारभोगसाधनां बहुविधप्राणिभो-
 गसाधनां वा गाम् । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । गाः ससान ।
 एतन्महिष्यादेरपि उपलक्षणम् । उत अपिच हिरण्यम् हिरण्यमयं
 हिरण्यविकारात्मकं भोगम् भोगसाधनं कटकमुकुटादिकं ससान ।
 ॐ हिरण्यशब्दाद् विकारार्थे “मयद्वैतयोः” इति विहितस्य
 छन्दसि विषये “ऋत्प्यवास्व्यवास्वभाच्चीहिरण्ययानि च्छ-
 न्दसि” इति निपातनाद् मयटो मकारलोपः । प्रत्ययस्वरः ॐ ।
 किंच दस्पून् उपलक्षयितुं प्राणिविघातकान् असुरादीन् इत्वी
 इत्वा । ॐ हन्तेः त्वर्थे “स्नात्प्यादयश्च” इति निपातितः ॐ ।
 आर्यम् उच्चमं वर्णं ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यात्मकं यजनादिकर्माधिकार-
 वन्तं भावत् प्रकर्षेण रक्षितवान् ॥

इन्द्रदेवने सदा गमन करने वाले घोड़े गज ऊँट आदिको
 प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है । और सर्वप्रकाशक
 सूर्यदेवको भी प्राणियोंके व्यवहारके लिये प्रदान किया है ।
 और घृत दुग्ध आदि बहुतसे रूपोंमें प्राणियोंके उपभोगकी साधन
 गाँ भैंस आदिको भी प्रदान किया है और सुवर्णके बने हुए
 भोगसाधन मुकुट कंकण आदिको भी प्रदान किया है । और
 प्राणियोंका संहार करने वाले असुरोंको मार कर इन्द्रदेवने यह
 करनेके अधिकार वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य (आर्य) की
 बड़ी भारी रक्षा की है ॥ ६ ॥

दशमी ॥

इन्द्रोपधीरसनोदहानि वनस्पतीरसनोदन्तरिक्षम् ।
 विभेदं बलं जुनुदे विवाचोद्यामवद् दमिताभिकतूनाम् ।

इन्द्रः । ओषधीः । असनोत् । अहानि । वनस्पतीन् । असनोत् ।

अन्तरिक्षम् ।

विभेद । बलम् । जुनुदे । विवाचः । अथ । अभवत् । दमिता ।

अभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

उक्तमहिमोपेतः स एव इन्द्रः ओषधीः व्रीहियवादिका अस-
नोत् प्राणेषुपभोगार्थं सृष्ट्वा प्रादात् । तथा अहानि असनोत् दिव-
सान्यपि प्राणेषुपभोगार्थं कल्पयित्वा प्रायच्छत् । एवं वनस्पतीन्
तल्लेशचूतपनसाद्यान् असनोत् सृष्ट्वा प्रायच्छत् । एवम् अन्तरिक्षम्
अन्तरा ज्ञान्ते भवति सर्वम् इत्यन्तरिक्षम् आकाशः । तदपि सर्वो-
पकारार्थम् असनोत् । किञ्च बलम् एतन्नामानम् असुरं विभेद
अदारयत् । विवाचः विरुद्धा मतिकूला वाग् येषां ते विवाचः ।
तानपि जुनुदे दूरं निराचकार । अथ अनन्तरम् अभिक्रतूनाम् ।
क्रतवः कर्माणि । अभिगतकर्मणाम् अनुष्ठितविरुद्धकर्मणां दुष्टानां
दमितां शमयितां अभवत् अभूत् । अनेन प्राणिनाम् इष्टप्राप्तिम्
अनिष्टपरिहारं च कृतवान् इत्युक्तं भवति ॥

पूर्वोक्तं महिमा वाले इन्द्रदेवने ही व्रीहि यव आदि औषधियों
को प्राणियोंके भोगके लिये रच कर प्राणियोंको प्रदान किया
है । दिनोंको भी प्राणियोंके उपभोगके लिये रच कर प्रदान
किया है आत्र आदि वनस्पतियोंको भी रच कर प्रदान किया
है । और अन्तरिक्षको भी सबके उपकारके लिये दिया है । और
शक्रने बलामुरको विदीर्ण कर डाला था और विरुद्ध बोलने
वालोंको भी तिरस्कृत कर दिया था और विरुद्ध कर्मोंका अनु-
ष्ठान करने वालोंको भी शमन कर दिया था । [इससे यह कहा
है, कि-शक्रने प्राणियोंकी इष्टप्राप्ति और अनिष्टपरिहार किया है] ॥

एकादशी ॥

शुनं हुवेम मघवान्मिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
 शृण्वन्तमुग्रमृतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं
 धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् । हुवेम । मघवानम् । इन्द्रम् । अस्मिन् । भरे । नृतमम् ।
 वाजसातौ ।

शृण्वन्तम् । उग्रम् । ऊनये । समत्सु । घ्नन्तम् । वृत्राणि । सम्-
 जितम् । धनानाम् ॥ ११ ॥

शुनम् शूनम् अभिवृद्धं सर्वैर्गुणैरुत्कृष्टम् । अथ वा शुनम्
 इति सुखनाम । सुखकरं वा । ॐ हुग्रोरिव गतिवृद्धयोः । निष्ठायां
 “यस्य विभाषा” इति इट्प्रतिषेधः । यजादित्वात् संप्रसारणम् ।
 दीर्घाभावरद्धान्दसः । “ओदितश्च” इति निष्ठोऽनन्तत्वम् । प्रत्यय-
 स्वरः ॐ । मघवानम् । मघम् इति धननाम । अनवन्तम् अस्मिन्
 एतस्मिन् भरे । भर इति संग्रामनाम भरणात् हरणाच्च । संग्रामे ।
 यद्वा ये ये संग्रामनामानस्ते सर्वे यज्ञनामान इति व्यपदेशाद् अस्मिन्
 भरे अस्मिन् यज्ञे वाजसातौ । वाजः अन्नम् । तस्य सातिर्लाभः
 अन्नलाभे निमित्तभूते । अथ वा एतद् भरविशेषणम् । वाजस्य
 सातिर्यस्मिन् तस्मिन् भरे नृतमम् नेतृत्वं संग्रामे पुरतो गन्तारं
 यज्ञस्य नेतारं वा शृण्वन्तम् आह्वानस्य श्रोतारम् उग्रम् उद्गूर्ण-
 बलं समत्सु संग्रामेषु वृत्राणि आवरकान् शत्रून् घ्नन्तम् हिंसन्तं
 धनानाम् शत्रुसंबन्धिनां संजितम् सम्यग्जेतारम् एवं महानुभावम्
 इन्द्रम् ऊनये रक्षणेयम् हुवेम आह्वयेम ॥

इति एकादशं भूक्तम् ॥

सुखदायक धनवान् इन्द्रको इम इस संग्राममें युक्ताते हैं (वा इस यज्ञमें युक्ताते हैं) इम जिसमें अन्नकी प्राप्ति होती है उस संग्राम (वा यज्ञ) में आह्वानको भुनने वाले प्रचण्ड बली इन्द्र को रक्षाके लिये युक्ताते हैं । संग्रामोंमें शत्रुओंका नाश करने वाले और धनोंको भली प्रकार जीतने वाले इन्द्रदेवको युक्ताते हैं ११

प्रथम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (६२७) ॥

“उदु ब्रह्माणि” इति सूक्तस्य विनियोग उक्तः ॥

“उदु ब्रह्माणि” इस सूक्तका विनियोग कह दिया है ।

तत्र प्रथमा ॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्थं महया वसिष्ठ ।

आ यो विश्वानि शवसा तनानोपश्रोता म ईवतो
वचांसि ॥ १ ॥

उदु । ऊं इति । ब्रह्माणि । ऐरत । श्रवस्या । इन्द्रम् । समर्थं ।
महय । वसिष्ठ ।

आ । यः । विश्वानि । शवसा । तनान । उपश्रोता । मे ।
ईवतः । वचांसि ॥ १ ॥

हे ऋत्विजः यूयं श्रवस्या श्रवस्यया । श्रवत इति श्रवः अक्षम् ।
तस्येच्छया ब्रह्माणि स्तोत्राणि चदैरत प्रेरयेत । हे वसिष्ठ यजमान
समर्थं मयैर्मर्त्यैर्ऋत्विग्भिः सहिते । यद्वा मर्या मर्यादा । तत्सहिते
यतो इन्द्रं देवं महय पूजय । हविरादिभिः साधनैरिति शेषः । एनम्
आत्मानमेव परोक्षीकृत्य निर्दिदेश । य इन्द्रः शवसा बलेन
विश्वानि भूतजातानि आ तनान वितस्तार । स इन्द्रः ईवतः गच्छतः
परिचरतः । ईदु गतौ । विवप् । ईर्गमनम् । “तदस्यास्त्य-

स्मिन्०" इति मतुप् । "इन्द्रसिरः" इति मतुपो वत्वम् । मतुपः
पित्वाद् अनुदात्तत्वे घानुस्वरः ॐ । तादृशस्य मे वचांसि स्तुति-
रूपाणि वाक्यानि उपश्रोता उपेत्य श्रोता । भवत्विति शेषः ॥

हे ऋत्विजो ! तुम अन्नकी इच्छासे मन्त्रोंका (स्तोत्रोंका)
उच्चारण करो । हे इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले यजमान ! आप
मर्त्यधर्मी ऋत्विजोंसे सम्पन्न यज्ञमें इन्द्रदेवकी इवि आदिसे पूजा
करिये । जिन इन्द्रदेवने अपने बलसे सब प्राणियोंको विस्तृत किया
है वह इन्द्र हम सेवा करने वालोंके स्तुतिरूप वाक्योंको सुनें ॥१॥

द्वितीया ॥

अयामि घोषं इन्द्र देवजांमिरिज्यन्त यच्छुरुधो
विवाचि ।

नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदं हांस्यति पप्यस्मान्

अयामि । घोषः । इन्द्र । देवजामिः । इरज्यन्त । यत् । शुरुधः ।

विवाचि ।

नहि । स्वम् । आयुः । चिकिते । जनेषु । तानि । इत् । हांसि । अति ।

पपि । अस्मान् ॥ २ ॥

हे इन्द्र देवजामिः देवा जामयो बन्धवो यस्य स तादृशो घोषः
शब्दः उक्तलक्षणं स्तोत्रम् अयामि । अकारात्पर्यः । ॐ यम
उपरमे । कर्मणि चिण् ॐ । यत् यस्मात् कारणाद् विवाचि विग-
तवचसि नियमस्ये । अथवा विविधा मन्त्ररूपा वाचो यस्य तादृशो
यजमाने तस्मिन्निमित्तभूते सति शुरुधः शुचं रुन्धन्तीति शुरुधः ।
ॐ ककारलोपश्चान्दसः ॐ । जनिमृतिलक्षणशोकनिवर्तकाः
स्वर्गफलकाः सोमा इरज्यन्त अवर्धन्त । ॐ इरज् ईर्ष्यायाम् इति

धातुरत्र वृद्धयर्थः । अस्मात् कण्डूनादेर्यक् । सनादित्वाद् धातु-
संशायाम् अस्मात्प्रवृत् । “बहुलं ह्यन्दसि” इति अटभावः । एका-
देशस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । एवं स्तोत्रेण दधिना च इन्द्रं परि-
तोष्य अथ स्वाभिमतं याचते नदीत्यादिना । जनेषु मनुष्येषु ।
मनुष्याणाम् इत्यर्थः । यद्वा जनाः जननात् जन्मानि निमित्तभू-
तानि । तेषु सत्सु अयं जनी यजमानः स्वम् स्वकीयम् आयुः
आयुष्यं न चिकित्ते न ज्ञातवान् । एतावद् आयुष्यं ममास्तीति न
जानातीत्यर्थः । अतस्त्वदीययागाद्यनुष्ठानोपयोगार्थं दीर्घम् आयुः
प्रयच्छेति शेषः । वल्लस्य शतसंवत्सरलक्षणस्यायुषोऽन्वीमावे
अंष्टसां कारणत्वात् तदसंस्पर्शं माथेयते । तानीत् तान्यपि आयुः
क्षपणहेतुत्वेन प्रसिद्धान्यपि अंष्टांसि पापानि अस्मान् त्वां संभ-
जमानान् अति अतिक्रम्य परि पालय ॥

हे इन्द्रदेव । मैं देवता जिसके बंधु हैं ऐसे घोष (स्तोत्र) का
उच्चारण करता हूँ, क्योंकि—इससे अनेक प्रकारकी मंत्ररूपा वाणियों
से सम्पन्न यजमानके निमित्त जन्ममरणकी निवृत्तिरूप स्वर्गफल-
प्रद सोम (याग) बढ़ते हैं [इस प्रकार स्तोत्र और दधिसे इन्द्र
को संतुष्ट करके अपने अभिमत फलकी याचना करते हैं, कि—]
मनुष्योंमें रहता हुआ यह यजमान मेरी इतनी आयु है, इस बात
को नहीं जानता है । अतः आप इसको अपने यागके अनुष्ठानकी
उपयोगी आयुः प्रदान करिये । [पापोंके ही कारण सौ वर्षकी
पूर्ण आयुसे कम आयु होनी है अतः पापोंसे शून्य रहनेकी प्रार्थना
करते हैं, कि—] आयुका नाश करनेमें प्रसिद्ध जो पाप हैं आप
अपना सेवन करने वालोंको उन पापोंसे दूर रखते हुए पालन करिये

तृतीया ॥

युजे रथं गवेपणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।

विवाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघ-
नवान् ॥ ३ ॥

युजे । रथम् । गोऽर्पणम् । हरिभ्याम् । उप । ब्रह्माणि ।
जुजुषाणम् । अस्थुः ।

वि । वाधिष्ट । स्यः । रोदसी इति । महित्वा । इन्द्रः । वृत्राणि ।
अप्रति । जघनवान् ॥ ३ ॥

य इन्द्रो गवेषणम् गवां प्रापयितारं रथम् । ॐ “अवह् स्फो-
टायनस्य” इति अवह् आदेशः ॐ । हरिभ्याम् । हरी इन्द्रस्या-
साधारणावर्वा । ताभ्यां युजे युधुजे युनक्ति । यागसदनं प्राप्तुम्
इति शेरः । ब्रह्माणि अस्मदीयानि प्रवृद्धानि स्तोत्राण्यपि जुजु-
षाणम् सेवमानं सर्वैः सेव्यमानं वा इन्द्रम् उपास्थुः उपतिष्ठन्ते
सेवन्ते । स्यः ॥ इन्द्रः महित्वा स्वमहत्त्वेन रोदसी धावापृथिव्यां
वि वाधिष्ट व्यवाधिष्ट । आचक्रामेत्यर्थः । किं च वृत्राणि स्वाव-
रकान् शत्रून् अप्रति न विद्यते प्रतिगतिः पुनःप्राप्तिर्येस्मिन् कर्मणि
तद् अप्रति । नद् यथा भवति तथा जघनवान् नाशितवान् ।
ॐ हन्तेतिटः क्वसुः । अभ्यासस्य कृत्वम् । “विभाषा गमहन०”
इति इडभावः ॐ ॥

इन्द्रदेव गौओंको प्राप्त कराने वाले अपने रथमें अपने असा-
धारण अश्व हरी नामक घोड़ोंको यागशृङ्गमें आनेके लिये जोतते
हैं । और हमारे स्तोत्र भी सर्वोंसे सेवनीय इन्द्रकी ही सेवा करते
हैं । इन इन्द्रदेवने अपनी महिमासे धावापृथिवीको दबा रक्ता
है । और इन इन्द्रदेवने अपने शत्रुओंको जिस प्रकार उन पर फिर
न जाना पड़े, इस प्रकार नष्ट कर डाला है ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आपश्चित् पिप्यु स्तयो न गावो नक्षन्तं जरि-
तारस्त इन्द्र ।

याहि वायुर्न नियुतो नो अच्चा त्वं हि धीभिर्दयसे
वि वाजान् ॥ ४ ॥

आपः । चित् । पिप्युः । स्तयः । न । गावः । नक्षन् । श्रुतम् ।
जरितारः । ते । इन्द्र ।

याहि । वायुः । न । नियुतः । न । अच्चा । त्वम् । हि । धीभिः ।
दयसे । वि । वाजान् ॥ ४ ॥

हे इन्द्र आपश्चित् आपोपि सोमाभिषवार्थाः स्तयो न गावः
स्तयो वशा गाव इव पिप्युः अभिष्टुता आसन् । ॐ प्यायी हृदौ ।
“प्यायः पी” इति पीभावः ॐ । हे इन्द्र ते तव जरितारः स्तो-
तार ऋत्विजः श्रुतम् सत्यफलं यज्ञं नक्षन् आप्नुवन् । ॐ नक्ष
गता ॐ । यत एवम् मनो नः अस्माकं नियुतः नियोजनानि स्तो-
त्राणि अच्चा लक्ष्मीकृत्य याहि आगच्छ । तत्र दृष्टान्तः । वायुर्न
नियुतः । नियुतो वायोरश्वाः । वायुर्देवो यथा स्वीयान् अश्वान्
मति यानि यज्ञदेशमाप्त्यर्थम् तद्वत् । त्वं हि त्वं खलु धीभिः कर्म-
भिस्तुष्टः सन् वाजान् । वाजः अन्नम् । अन्नानि वि दयसे ।
ॐ दयतिरत्र दानार्थः ॐ । अयच्छसि ॥

हे इन्द्र ! ये सोमके अभिषवके जल वशा गौ आदिकी समान
बड़ गए हैं और हे इन्द्र ! आपकी स्तुति करने वाले ऋत्विज
सत्यफल वाले यज्ञमें आ गए हैं, इस कारण आप हमारे स्तोत्रों

को ध्यानमें रख कर यज्ञभूमिमें इस प्रकार आइये जिस प्रकार वायुदेव यागमें जानेके लिये अपने नियुक्त नामक घोड़ोंकी ओर जाते हैं । आप कर्मासे सन्तुष्ट होकर अन्न प्रदान करते हैं ॥४॥

पञ्चमी ॥

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे
एको देवत्रा दयसे हि मर्तान् अस्मिन् सवने मादयस्व
ते । त्वा । मदाः । इन्द्र । मादयन्तु । शुष्मिणम् । तुविऽराधसम् ।
जरित्रे ।

एकः । देवऽत्रा । दयसे । हि । मर्तान् । अस्मिन् । शूर । सवने ।
मादयस्व ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते अभिषत्वादिना संस्कृताः प्रसिद्धा मदा मदकराः सोमास्त्वा त्वाम् मादयन्तु मदयुक्तं कुर्वन्तु । कीदृशं त्वाम् । शुष्मिणम् बलवन्तं जरित्रे स्तोत्रे स्तोतुरर्थाय तुविराधसम् प्रभूतधनम् । किं च त्वं देवत्रा देवेषु मध्ये । ❀ “देवमनुष्य०” इत्यादिना सप्तम्यर्थे आप्रत्ययः ❀ । त्वम् एक एव मर्तान् मनुष्यान् दयसे हि दयां करोषि रक्षसि खलु । ❀ हिशब्दयोगाद् अनिघातः ❀ । मनुष्यरक्षणे त्वम् एक एव नान्यो देव इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्मात् हे शूर शौर्येपित इन्द्र अस्मिन् सवने यागे माध्यंदिनसवने वा मादयस्व अभिमतप्रदानेन अस्मान् हर्षय स्वात्मानं वा सोमपानेन हर्षय ॥

हे इन्द्रदेव ! अभिषव आदिसे संस्कृत मद करने वाले सोम आपको हर्षित करें, आप बलवान् हैं, और स्तुति करने वालोंके लिये आपके पास बहुतसा धन है, और देवताओंमें आप एक

ही मनुष्यों पर दया करते हैं-उनकी रक्षा करते हैं । इस कारण
हैं शूरतासम्पन्न शक्र ! आप इस माध्यन्दिनसवनमें अभिलषित
फल देकर हमको दर्पित करिये ॥ ५ ॥

पद्यी ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रवाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स न स्तुतो वीरवद् धातुगोमद्यूयपात स्वस्तिभिः
सदा नः ॥ ६ ॥

एव । इत् । इन्द्रम् । वृषणम् । वज्रवाहुम् । वसिष्ठासः । अभि ।
अर्चन्ति । अर्कैः ।

सः । नः । स्तुतः । वीरवत् । धातु । गोमद्यूयम् । पात ।
स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ६ ॥

उक्तां स्तुतिम् उपसंहरति । एव एवम् उक्तप्रकारेण वृषणम्
वर्षकं कामानां वज्रवाहुम् वज्रं बाहौ यस्य स तादृशम् इन्द्रं वसि-
ष्ठासः वसिष्ठा अर्कैः अर्चनीयैः स्तोत्रैः अभ्यर्चन्ति अभिपूजयन्ति ।
स इन्द्रः स्तुतः स्तोत्रैः पूजितः सन् नः अस्मभ्यं वीरवत् बहुभि-
र्वीरैः पुत्रादिभिरुपेतं गोमद्यूयं बहुभिर्गोभिरुपेतं धनं धातु दधातु
प्रयच्छतु । ॐ “बहुलं बन्दसि” इति श्लोकरभावः ॐ । हे देवा यूपं
च इन्द्रम् अनुसृत्य नः अस्मान् स्वस्तिभिः क्षेमैः सदा पात रक्षत ॥

[अब इस स्तुतिका उपसंहार करते हैं, कि-] इस प्रकार
कामनाओं की वर्षा करने वाले, हाथमें वज्रको धारण करने वाले
शक्रकी इन्द्रियोंको दमन करने वाले पुरुष स्तोत्रोंसे स्तुति करते
हैं । स्तोत्रोंसे पूजित होते हुए इन्द्रदेव हमको बहुतसे पुत्र आदि

वीरों वाला, बहुतसी गोओं वाला धन प्रदान करें। और हे देवताओं ! तुम भी इन्द्रकी ओर ध्यान देकर हमारी रक्षा करो ६ पञ्चमी ॥

ऋजीपी वज्री वृषभस्तुरापाद् शुष्मी राजा वृत्रहा सोम-
पावा ।

युक्त्वा हरिभ्यामुषं यासदर्वाद् माध्यंदिने सवने
मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीपी । वज्री । वृषभः । तुरापाद् । शुष्मी । राजा । वृत्रहा ।
सोमपावा ।

युक्त्वा । हरिभ्याम् । उषं । यासन् । अर्वाद् । माध्यंदिने । सवने ।
मत्सत् । इन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋजीपी प्रातर्माध्यंदिनसवनाभ्याम् अभिषवेण गतसारस्व-
तीयसवन उपयोद्धपमाणः सोम ऋजीपः । “तस्मात् तृतीयसवन
ऋजीपम् अभिषुषवन्ति” इति [तै० सं० १. ६. ४] श्रुतेः ।
तद्वान् ऋजीपी । अनेन मवनत्रयेपि इन्द्रस्य सोमसम्बन्ध उक्तो
भवति । वज्री वज्रवान् वृषभः कामानां वर्षिता तुरापाद् । तुरा-
स्त्वरमाणाः शत्रवः । तेषाम् अभिषविता शुष्मी । शुष्मं शत्रुशो-
षकं बलम् । तद्वान् राजा देवेषु मध्ये क्षत्रियजातीयः सर्वस्य स्वामी
वा वृत्रहा वृत्रस्य हन्ता सोमपावा यत्रयत्र सोमाभिषवोस्ति तत्र-
नत्रं नियमेन सोमस्य पाता एवमहानुभाव इन्द्रः हरिभ्याम् अस्वा-
भ्यां युक्त्वा रथं योजयित्वा अर्वाद् अस्मदभिमुखाञ्चनः सन् उप

यासत् उपागच्छतु गत्वा च अस्मिन् माध्यन्दिने सवने मत्सत् अस्मा-
भिर्दत्तेन सोमेन माद्यतु ॥

इति द्वादशं सूक्तम् ॥

[मातःसवन और माध्यन्दिन सवनोंके द्वारा अभिषवसे गत-
सार तृतीय सवनमें उपयोगमें लाया जाने वाला सोम ऋजीप
कहलाता है । तैत्तिरीयसंहिता ६ । १ । ६ । ४ की श्रुतिमें कहा
है, कि—“तस्मात् तृतीयसवन ऋजीपम् अभिषुण्वन्ति ।—इस
स्तिये तृतीयसवनमें ऋजीपका अभिषव करते हैं” ऐसे ऋजीप
भाग वाले] ऋजीपी [इससे तीनों सवनोंमें इन्द्रका सोमसंबंध
बता दिया] वज्रधारी, कामनाओंकी पूर्णा करने वाले, त्वरा
करने वाले शत्रुओंको दवाने वाले, शत्रुशोषक बलसे सम्पन्न,
देवताओंमें राजा, वृत्रासुरका संहार करने वाले, और जहाँ कहीं
सोमका अभिषव हो तहाँ नियमपूर्वक सोमका पान करने वाले
इन्द्रदेव अपने हरि नामक अश्वोंसे रथको जोत कर हमारे अभि-
मुख आवें और माध्यन्दिनसवनमें हमारे दिये हुए सोमसे प्रसन्न
होवें ॥ ७ ॥

प्रथम अनुशाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६२८) ॥

उपोतिष्टोमादिषु क्रतुषु “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते” इत्याद्या-
स्तिस्र ऋचस्तेषामेव त्विजां त्रयाणां क्रमेण तार्तीयसवनिक्यः प्र-
स्थितयाज्याः । सूत्रितं हि । “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पत इति
प्रस्थितयाज्याः” इति [वै० ३. १२] ॥

“ऐभिरग्ने” [४] इत्यनया आग्नीध्रः पात्रीवतग्रहं यजेत ।
सूत्रितं हि । “ऐभिरग्ने इत्युपांशु पात्रीवनस्य आग्नीध्रो यजति”
इति [वै० ३. १३] ॥

उपोतिष्टोम आदि क्रतुओंमें “इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते”
इत्यादि तीन ऋचाएँ इन ही तीन ऋत्विजोंकी क्रमशः तार्तीय-

सवनिकी प्रस्थितयाज्या है । सूत्रमें भी कहा है, कि—“इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पति इति प्रस्थितयाज्याः” (वैतानसूत्र ३ । १२) ॥

“ऐभिस्मने” इस चौथी ऋचासे आग्नीध्र पात्नीवतग्रहका यजन करे । इस विषयमें वैतानसूत्र ३ । १३ का प्रमाण है, कि—“ऐभिस्मने इत्सुपांशु पात्नीवतस्य आग्नीध्रो यजति” ।

तत्र प्रथमा ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेस्मिन् यज्ञे मन्दसाना
वृषणवसू ।

आ वां विशन्तिवन्दवः स्वाभुवोस्मे रयिं सर्ववीरं नि
यच्छतम् ॥ १ ॥

इन्द्रः । च । सोमम् । पिबतम् । बृहस्पते । अस्मिन् । यज्ञे । मन्द-
साना । वृषणवसू इति वृषणवसू ।

आ । वाम् । विशन्तु । इन्दवः । सुऽआभुवः । अस्मे इति । रयिम् ।
सर्ववीरम् । नि । यच्छतम् ॥ १ ॥

हे बृहस्पते बृहतो वेदराशेः स्वामिन् एतन्नामकदेव त्वम् इन्द्रश्च युवां सोमं पिबतम् । कीदृशौ युवाम् । अस्मिन् यज्ञे मन्दसाना हृष्यन्तौ वृषणवसू वर्षितृधनौ । यजमानाय दीयमानधनावित्यर्थः । वाम् युवां स्वाभुवः सुष्ठु सर्वतो भवन्तः । कृत्स्नशरीरव्यापन-समर्था इत्यर्थः । तादृशा इन्दवः सोमाः आविशन्तु युवयोः शरीरं प्रविशन्तु । अस्मे अस्मभ्यं रयिम् धनं सर्ववीरम् सर्वपुत्राद्युपेतं नि यच्छतम् दत्तम् ॥

हे बृहत् वेदराशिके स्वामी बृहस्पति नामक देव ! आप और

इन्द्रदेव दोनों सोमका पान करिये । आप इस यज्ञमें हर्षमें भरे हुए हैं । और यजमानके लिये धन प्रदान करने वाले हैं, ऐसे आप दोनोंके शरीरोंमें सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होसकने वाले सोम प्रवेश करें । और हमारे लिये आप पुत्र आदि सब वीर्यसे उत्पन्न होने वालों सहित धन दीजिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ वां वहन्तु सप्तयो रघुप्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात्
वाहुभिः ।

सीदता वहिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो
अन्यसः ॥ २ ॥

आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुस्पदः । रघुस्पत्वानः । प्र ।
जिगात् । वाहुभिः ।

सीदत । आ । वहिः । उरु । वः । सदः । कृतम् । मादयध्वम् । मरुतः ।
मध्वः । अन्यसः ॥ २ ॥

हे मरुतः रघुप्यदः लघुस्यन्दना लघुगतयः सप्तयः सर्पणशीला
अरवाः वः युष्मान् आ वहन्तु यज्ञगृहं प्रति प्रापयन्तु । यूयं च
वाहुभिः शीघ्रगमनसाधनं रघुपत्वानः लघुपतनाः । ॐ पल्लु
गती । “अन्येभ्योपि दृश्यन्ते” इति वनिष् । कृदुत्तरपदमकृतिस्वरैण
प्रत्ययस्य पित्वाद् घातुस्वर एवं ॐ । तादृशः सन्तः प्र जिगात्
प्रकर्षेण गच्छत । ॐ जिगातीत्ययं गतिकर्मसु पठितः । गा स्तुती ।
जीहोत्यादिकः । लोएमध्यमबहुवचनस्य “तप्तन०” इत्यादिना
तयादेशः । तस्य पित्वेन ङित्वाभावाद् “ई हन्यघोः” इति ईत्वा-

भावः ॐ । वः युष्माकम् उरु विस्तीर्णं सदः सीदत्यत्रेति सदः
सदनं स्थानं वेदिलक्षणं कृतम् निष्पादितम् । तत्र बर्हिः आस्तीर्णं
बर्हिः सीदत बर्हिषि निषण्णा भवत । बर्हिरित्येतत् सद इत्यस्य
विशेषणं वा । बर्हिरूपेतं सदनम् इत्यर्थः । अथ वा सदः सदनार्हं
कृतं बर्हिः सीदतेति योज्यम् । निषद्य च मध्वः मधुरस्य अन्धसः
सोमलक्षणस्य अन्नस्य अंशम् । यद्वा मध्वः मधु अन्धसः अन्नं
सोमम् । पीत्वेति शेषः । मादयध्वम् वृत्ता भवत । ॐ मद तृप्ति-
योगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ॐ ॥

हे मरुत् देवताओं ! शीघ्रतासे चलने वाले, सर्पणशील घोड़े
तुमको यज्ञगृहमें लावें, तुम भी शीघ्रगमनकी साधन भुजाओंसे
शीघ्रतासे चलते हुए आओ । आपके लिये विशाल वेदीरूप
स्थान बना दिया गया है । तहाँ कुशा विश्वादी गई है उस कुशा-
सन पर तुम बैठो और बैठकर मधुर रस वाले सोमके अंशका पान
करके वृत्त होओ ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्येनं मुख्ये मा रिषामा
वयं तव ॥ ३ ॥

इमम् । स्तोमम् । अर्हते । जातवेदसे । रथम् । इव । सम् । महेम ।
मनीषया ।

भद्रा । हि । नः । प्रमतिः । अस्य । सम् । जसदि । अग्रे । सद्ये ।
मा । रिषाम । वयम् । तव ॥ ३ ॥

अर्हते पूज्याय । ॐ अर्ह मशमायाम् इति घातोः लुटः शवा-

देशः ॐ । जातवेदसे जातमघ्नाय जातधनाय वा जातानाम् उत्प-
न्नानां वेदित्रे वा इमम् इदानीं क्रियमाणं स्तोमम् एतत् स्तोत्रं
मनीषया निशितया बुद्ध्या सं महिम सम्यक् पूजयेम निष्पादयेम ।
तत्र दृष्टान्तः । रयमिव यथा रयं रयकारः अन्नफलकाद्यवयवसं-
योजनेन संस्करोति तद्वत् । महानुभावस्याग्नेः स्तोमनिष्पादने अति-
शयितया बुद्ध्या भवितव्यम् इति प्राप्ते तत्सद्भावदर्शयति । अस्य
पूज्यस्याग्नेः संसदि संसदने उपसर्त्ता तद्विषये नः अस्माकं प्रमतिः
प्रकृष्टा मतिः भद्रा हि कन्याणीं खलु । अतः हे अग्ने तव सरथं
बन्धुभावे सति वयं स्तोतारो मा रिषाम हिंसिता न भवेम ॥

पूजनीय, उत्पन्नहुओंको मानने वाले जातवेदा अग्निके लिये
हम इस स्तोत्रको अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे इस प्रकार निष्पन्न
करते हैं, जिस प्रकार रयको रयकार अन्नफलक आदि अवयवों
से संस्कृत करता है [महानुभाव अग्निकी पूजाके लिये बड़ी
बुद्धि होनी चाहिये ऐसी प्राप्ति होने पर दिखाते हैं, कि—] इन
पूजनीय अग्निदेवके संसदनमें हमारी श्रेष्ठ बुद्धि कन्याणमयी है,
अत एव हे अग्ने! हम स्तोता बन्धुभावके होने पर हिंसित न होवें ३
चतुर्थी ॥

ऐभिर्ऋते सरथं याह्यर्वाह् नानारथं वा विभवो ह्यर्वाः
पत्नीवत् तस्मिंशतं त्रींश्च देवाननुज्वधमा वह मादयस्व ४

आ । एभिः । अग्ने । सरथम् । याहि । अर्वाह् । नानाऽरथम् ।

वा । विज्वधः । हि । अर्वाः ।

पत्नीवत्तः । त्रिशतम् । त्रीन् । च । देवान् । अनुज्वधम् । आ ।

वह । मादयस्व ॥ ४ ॥

हे अग्ने एभिः वक्ष्यमाणैस्त्रयस्त्रिंशत्संख्याकैर्देवैः सह सरथम् समानः एक एव रथो यस्मिन्नागमनकर्मणि तत् सरथं तद् यथा भवति तथा अर्वाङ् अस्मदभिमुखम् आ याहि आगच्छ । सरथम् इति न नियम इत्याह । नानारथं वा नाना पृथग्भूता रथा यस्मिन् कर्मणि तद् नानारथम् । तत्तत्प्रतिनियतं रथम् आरुह्येत्यर्थः । सरथपक्षे बहूनां देवानाम् एकेनैव रथेन आनयनम् अतिभारत्वात् कथं घटन इति तत्राह विभवो ह्यरवा इति । अरवास्तथ रथे नियुक्ता विभवो हि शक्ताः खलु । अतः पत्नीवतः स्वकीयाभिः पत्नी-भिर्युक्तान् त्रिंशत्तम् त्रींश्च श्रुत्तरत्रिंशत्संख्याकान् देवान् “ये देवा दिव्येकादश स्य” इति [तै० सं० १. ४. १०. १] मन्त्रोक्तान् अनुष्वषम् । स्वधेत्यन्नाम । तां तां स्वधाम् अनुलक्ष्य यदा-यदा सोमो हूयते तदा तदेत्यर्थः । आ वह तान् देवान् प्रापय । आवाह्य च मादयस्व सोमप्रदानेन हर्षय ॥

इति त्रयोदशं सूक्तम् ॥

विंशे काण्डे प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे अग्निदेव ! आगे कहे जाने वाले तैत्तीस देवताओंके साथ एक रथमें बैठ कर आइये । वा अनेक रथोंमें बैठ कर आइये (सब देवता एक रथमें बैठ कर आवेंगे तो घोड़े उस रथको कैसे खेंचेंगे तो कहते हैं, कि—) आपके रथमें जुते हुए घोड़े समर्थ हैं । अतः अपनी २ पत्नियोंसे युक्त उन तैत्तीस देवताओंको जब २ उनको स्वधा (अन्न) दी जावे तब २ प्राप्त कराइये और आवाहन करके उनको सामप्रदानसे हर्षित करिये ॥ ४ ॥

त्रयोदश सूक्त समाप्त (६२९)

धीसर्गे काण्डमे प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

द्वितीयानुवाके चत्वारि सूक्तानि । तानि च उक्थ्ये क्रमां ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्यान्तिमा शस्त्रयाज्या ।

“उक्थ्ये मैत्रावरुणादिभ्यः” इति प्रक्रम्य सूत्रितं वैताने । “वयमु त्वामपूर्व्य [२०. १४. १] यो न इदमिदं पुरा [२०. १४. ३] इति स्तोत्रियानुरूपो । स्तोत्रियस्य मयमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण संधायानसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्याश्चोत्तमम् उत्तरेण संधायानसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकु-
भानां स्तोत्रियानुरूपाणां प्रग्रयनम् । इनः पच्छः शंसति । प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये [२०. १५] इत्युक्थ्यमुखम् । उदप्रतो न वयो रक्षमाणाः [२०. १६] इति चार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मनयः स्वर्विदः [२०. १७] इति पर्वासः । इत्ये-
काहिकानाम् उत्तमया परिदधाति परया यजति” इति [वै० ४. १] ॥

दूसरे अनुवाकमें चार मूक्त हैं । वे उक्थ्य क्रतुमें ब्राह्मणा-
च्छंसीके शस्त्रमें विनियुक्त होते हैं । चतुर्थमूक्तकी अन्तिम श्रुचा
शस्त्रयाज्या है । “उक्थ्ये मैत्रावरुणादिभ्यः” को कह कर वैतान-
मूत्र ४ । १ में कहा है, कि-“वयमु त्वामपूर्व्य (२० । १४ । १)
यो न इदमिदं पुरा (२० । १४ । ३) इति स्तोत्रियानुरूपो ।
स्तोत्रियस्य मयमां शस्त्वा तस्या उत्तमं पादं द्वितीयस्याः पूर्वेण
संधायानसाय द्वितीयेन द्वितीयां शंसति । तस्याश्चोत्तमं उत्तरेण
संधायानसायोत्तमेन तृतीयाम् । एवं काकुभानां स्तोत्रियानुरूपाणां
प्रग्रयनम् । इनः पच्छः शंसति । प्रमंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये (२० । १५)
इत्युक्थ्यमुखम् उदप्रतो न वयो रक्षमाणाः (२० । १६) इति
चार्हस्पत्यं सांशंसिकम् । अच्छा म इन्द्रं मनयः स्वर्विदः (२० । १७)
इति पर्वासः । इत्येकाहिकानां उत्तमया परिदधाति परया यजति”
(वैतानमूत्र ४ । १) ॥

तत्र मयमा ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कञ्चिद् मरन्तोवस्यवः ।

राजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वपम् । ऊं इति । त्वाम् । अपूर्व्यम् । स्थूरम् । न । कत् । चित्रम् ।

भरन्तः । अवस्यवः ।

वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे अपूर्व्यम् । पूर्वम् अर्हतीति पूर्व्यः । न पूर्व्यः अपूर्व्यः । सत्यपि सर्वदा गमने नूतन इत्यर्थः । अनेन तस्य सर्वदा अनादरविषयत्वाभाव उक्तो भवति । तादृश इन्द्र चित्रम् चायनीयं पूजनीयं त्वां भरन्तः हविरादिना पोषयन्तः अवस्यवः रक्षाकामाः । ॐ अवतेरसुनि “व्याच्छन्दसि” इति उभत्ययः ॐ । वाजे । वाजः अन्नम् । अन्ने निमित्तभूते सति । अथ वा वाजः संग्रामः । तस्मिन् तज्जयार्थं वयम् वयमेव हवामहे आह्वयामः । अस्मान् मत्पेव त्वम् आगच्छ नास्मत्प्रतिपत्तान् इत्यमुम् अर्थं द्योतयितुम् उशब्दः । तत्र दृष्टान्तः स्थूरं न कश्चित् । यथा लोके कश्चित् कदाचित् स्थूरम् स्थूलं गुणाढ्यं राजादिकं भरन्तः तदभिमतप्रदानेन पोषयन्तो जनाः स्वजयार्थम् आह्वयन्ति तद्वत् ॥

हे बारम्बार गमन करने पर भी गवीन ही रहने वाले अपूर्व्य (अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होता) इन्द्र! आप पूजनीयका अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिमें पोषण करने वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं आप हमारी ओर ही विजय दिलाने के लिये आइये हमारे प्रतिपत्तियोंकी ओर न जाइये, क्योंकि— हम ही आपका आवाहन कर रहे हैं । जैसे मनुष्य किसी परम गुणी राजाको अभिमत फलदेकर पुष्ट करते हैं उसको ही अपनी विजयके लिये बुलाते हैं, इसी प्रकार हम आपका आवाहन करते हैं?

द्वितीया ॥

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्रंक्राम यो धृपन् ।

खलु । स्तुत्य इति शेषः । अतः उक्तगुणविशिष्टत्वात् तमेवेन्द्रं
स्तुपे इत्यर्थः । यद्वा यः अमन्दत यो नरः इन्द्रदत्तेन धनेन तप्त
आसीत् स हि स्म स एव नरः उक्तलक्षणम् इन्द्रं तु दृपति । स
मघवा धनवान् इन्द्रः । तुशब्दो वाक्यच्छेदे । स्तोतृभ्यां नः अ-
स्मभ्यं शतम् शतसंख्याकं गव्यम् गोसमूहम् अश्व्यम् शतसंख्या-
कम् अश्वसमूहं च आ वयति प्रापयतु । ॐ वीगत्यादिषु ।
अस्मान् लोष्टि अडागमः ॐ ॥

इति द्वितीयेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

जिन इन्द्रदेवके हरि नामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ कर्म करने वाले
मनुष्योंके पालक हैं और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन
इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते
हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह धनवान् इन्द्र हम स्तुति करने
वालोंको सौ गौओंका और सौ घोड़ोंका झुण्ड प्रदान करें ॥४॥

द्वितीय अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६३०)

“प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये” इति सूक्तस्य उवाच्ये क्रतौ ब्राह्मण-
च्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये” सूक्तका उवाच्य क्रतुके ब्राह्मण-
च्छंसिशस्त्रमें विनियोग कहा है, कि—

तत्र प्रथमा ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राघो विश्वायु शवसे
अपावृतम् ॥ १ ॥

प्र । मंहिष्ठाय । बृहते । बृहद्रये । सत्यशुष्माय । तवसे ।
मतिम् । भरे ।

अपाम्ऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरम् । राघः । निरवऽआयु ।

शवसे । अपऽवृतम् ॥ १ ॥

मंदिष्टाय अतिशयेन मंहनीयाय दातृतपाय वा बृहते महते गुणेः
मृदाय वृद्धये । रयिरिति धननाम । प्रभृतघनाय सत्यशुष्माय
सत्यवत्ताय अतितथसःमर्थ्याय तवसे । तवो बलम् । अतिशयि-
तवलाय इन्द्राय । अथ वा तवसे बललाभाय उक्तगुणकाय इन्द्राय
मतिं प्र भरे स्तोत्रं संपादयामि । यस्य उक्तगुणविशिष्टेन्द्रस्य
विश्वायु । आयवो मनुष्याः । विश्वेषां मनुष्याणां पोषणसमर्थ
राघः धनम् अपामिव प्रवणे । प्रवणः अवनतो देशः । तस्मिन्
अपां पूर इव न यथा दुर्धरो भवति एतं दुर्धरं धनं शवसे बलाय
प्रयोजनाय अपावृतम् अपगतावरणं कृतम् । तस्मा इन्द्राय मतिं
भर इति संबन्धः ॥

परम दाता गुणोंमें वृद्ध, महाधनी, अमोघ सामर्थ्य वाले इन्द्र
के स्तोत्रका मैं उच्चारण करता हूँ । जिन इन्द्रदेवका धनबल
सम्पूर्ण मनुष्योंका पोषण करनेमें समर्थ है । और बलकाव वाले
स्थानमें जलका अहला जैसे दुराधर्ष होता है ऐसे ही प्रयोजन
के समय जिनका धनबल दुराधर्ष होता है, उन इन्द्रदेवके लिये
मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अथ ते विश्वमनु हासदिष्ट्य आपो निम्नेव सवन्ता
हविष्मंतः ।

यत् पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्रथिना
हिरण्ययः ॥ २ ॥

अथ । ते । विश्वम् । अनु । इ । असत् । इष्टये । आपः । निम्ना
इव । सवना । हविष्मन्तः ।

यत् । पर्वते । न । सम्प्रअशीत । ह्येतः । इन्द्रस्य । वज्रः ।
श्रयिता । हिरण्यगः ॥ २ ॥

अथ अथ हे इन्द्र ते तव इष्टये एषणाय यागाय वा विश्वम्
सर्वं जगत् अनु हामत् । हेति प्रसिद्धा । अनुकूल भवेत् । तत्र
दृष्टान्तः । आपो निम्नेव निम्नानि स्थलानि आप इव । ता यथा
अनुक्रमेण प्रवहन्ति तद्वद् विश्वम् अनु हासद् इति संबन्धः । अथ
वा उत्तरत्र दृष्टान्तः । आपो निम्नानीव हविष्मन्तः यजमानस्य
सवना सवनानि ग्रीष्मपि त्वाम् अनुगच्छन्ति । यत् यस्मात् ह्येतः
कान्तः कमनीयः श्रयिता शश्रूणां हिंसको हिरण्यगः हिरण्यमयो
हिरण्येन भूयिन् इन्द्रस्य वज्रः पर्वते न । नशब्दः अप्यर्थः । पर्व-
तेपि न समशीत न मत्कोभूत् किं तु व्यदारयदेव । अतो विश्वम्
अनु हासद् इति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी इष्टिके लिये सब जगत् इस प्रकार अनु-
कूल होवे, जिस प्रकार जल निम्नस्थलके अनुकूल होता है ।
इसी प्रकार हवि वाले यजमानके तीनों सवन आपके अनुकूल
होने हैं । क्योंकि कमनीय, शत्रुओंको मसलने वाले, सुपर्णविभू-
षित इन्द्रका वज्र पर्वतमें भी नहीं हिलगा, किंतु उसको विदीर्ण
न कर सका अत एव जगत् उनके अनुकूल होता है ॥ २ ॥

ॐ वृतीया ॥

अस्मै भीमाय नमसा समञ्चर उपो न शुभ्र आ भरा
पनीयसे ।

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे

अस्मै । भीमाय । नमसा । सम् । अध्वरे । उपः । न । शुभ्रे ।

आ । भर । पनीयसे ।

यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इन्द्रियम् । ज्योतिः । अकारि ।

हरितः । न । अयसे ॥ ३ ॥

हे शुभ्रे दीप्ते हे उपः उपोदेवने भीमाय । विभेत्यस्माद् इति भीमः । शत्रूणां भयंकराय पनीयमे अतिशयेन स्तोतव्याय अस्मै इन्द्राय । यागः क्रियन् इति शेषः । अनो नमसा न । नमः अन्नं च । नशब्दः चार्थे । चकाराद् उक्तलक्षणम् इन्द्रं च समा भर सम्यग् आह्वय अस्मद्यज्ञं प्रापय । अस्मदभिमतम् अन्नं यष्टव्यम् इन्द्रं च आनयेत्पर्यः । उपम्युदितायां सत्यामेव इन्द्रस्यागमनाद् उपस इन्द्राहरणव्यपदेशः । अय वा नशब्दः अनर्थकः । उक्त लक्षणाय इन्द्राय नमसा । नमः अन्नम् । आ भर । अन्ने समृद्धे सत्येव इन्द्रम् उद्दिश्य यागप्रवृत्तेरेवम् उक्तम् । यस्य इन्द्रस्य धाम सर्वेषां धारकं पोषकम् इन्द्रियम् इन्द्रहितम् इन्द्रदत्तं वा । ❀ "इन्द्रियम् इन्द्रलिङ्गम् इन्द्रदृष्टम् इन्द्रसृष्टम्" इत्यादिना इन्द्रिय-शब्दो निपातितः ❀ । उक्तलक्षणं नाम सर्वेषां नामकम् उदकं श्रवसे अन्नाय तत्समृद्धये भवति । येन च इन्द्रेण हरितो न हरितामिव दिशामिव अयसे प्राणिनां गमनाय गमनादिव्यवहाराय । ❀ अय पय गर्तो इत्यस्माद् अनुत्तम् ❀ । ज्योतिः अकारि क्रियते । तं समा भरेति पूर्वत्र संबन्धः ॥

हे दीप्ति उपा देवते । जिनसे शत्रु डरते हैं, उन भीम-स्तुतिके परम पात्र इन इन्द्रदेवके लिये याग किया जा रहा है अतः अन्नको

और इन्द्रको भी हमारे यज्ञमें ला । [उपाके उदित होने पर ही इन्द्रका आगमन होनेसे उपाका इन्द्रानयनका वर्णन किया है । अथवा मूलका न शब्द अनर्थक माना जाय तो पूर्वोक्त लक्षणों वाले इन्द्रके लिये अन्नको ला, क्योंकि-समृद्ध अन्नके होने पर ही इन्द्रके उद्देश्यसे यागकी प्रवृत्ति होसकती है] जिन इन्द्रका सबका पोषक धाम (जल) अन्नसमृद्धिके लिये होता है, जिन इन्द्रने प्राणियोंके गमन आदिके व्यवहारके लिये दिशाओंमें उद्योति की है उनको यज्ञमें ला ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

इमे तं इन्द्र ते वयं पुरुषुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति
नो हर्य तद् वचः ॥ ४ ॥

इमे । ते । इन्द्र । ते । वयम् । पुरुऽस्तुत । ये । त्वा । आऽरभ्य ।
चरामसि । प्रभूवसो इति प्रभुज्वसो ।

नहि । त्वत् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सघत् । क्षोणीऽइव ।
प्रति । ना । हर्य । तद् । वचः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त इमे । प्रसिद्धिवाचकस्तच्छब्दः । इदम् शब्दः अप-
रोक्षवाची । त्वदर्थकत्वेन प्रसिद्धा वयं ते तव स्वभृताः । हे पुरु-
षुत बहुभिर्बहुप्रकारं वा स्तुत । एतद् इन्द्रेत्यस्य विशेषणम् ।
॥ इत्युक्तम् कीदृशास्त इत्यत्राह । ये वयम् हे प्रभूवसो प्रभूतधन
इन्द्र त्वा त्वाम् आरभ्य आश्रित्य त्वामेव शरणं प्राप्य चरामसि
चरामः । ते वयम् इति पूर्वव्र संवन्धः । हे गिर्वणः गीर्भिर्वननीय

इन्द्र त्वदन्यः त्वत्तो व्यतिरिक्तो देवः गिरः अस्मदीयानि वचांसि
नहि सद्यत् न खलु सहते । स्तुत्यस्य तव महिम्नो निरवधित्वाद्
अस्मदीयानां स्तुतिवचसाम् अत्यल्पत्वाच्च तादृग्वचस्त्वयैव सोढ-
व्यम् इत्यर्थः । ॐ सहेल्लेदि अडागमः । वर्णविपर्ययेण हकारस्य
यकारः ॐ । तत्र दृष्टान्तः क्षोणीरिव क्षोण्य इव । क्षोणीशब्दे-
नात्र मजा विवक्ष्यन्ते । मजा राक्षो यद्यद् विज्ञापयन्ति तत् सर्वं
स राजा यथा सहते तद्वद् इत्यर्थः । यस्माद् एवं तस्माद् नः अ-
स्माकं तद् वचः तादृग्वचनं प्रति हर्यं प्रतिकामय ॥

हे वाणियोसे स्तुति करने योग्य ! हे बहुतसे धन वाले ! जो
हम आपका ही आश्रय लेकर रहते हैं, वे हम आपके ही हैं
आपके अतिरिक्त और कोई देव हमारी वाणियोंको नहीं सह
सकता, क्योंकि—आप स्तुति करने वालेकी महिमा अवधि-
रहित है और हमारे स्तुतिवचन थोड़े ही हैं अत एव ऐसे
वचन आपको सहने ही चाहिये । जैसे मजाएँ राजासे जो कुछ
कहती हैं, राजा उनको सहन करता है, इसी प्रकार आप हमारे
वचनोंकी कामना करिये ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

भूरिं त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन् काम-
ममा पृण ।

अनुं ते द्यौर्वृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम
ओजसे ॥ ५ ॥

भूरि । ते । इन्द्र । वीर्यम् । नव । स्ममि । अस्य । स्तोतुः ।
मयञ्चन । कामम् । आ । पृण ।

अनु । ते । द्यौः । बृहती । वीर्यम् । ममे । इयम् । च । ते ।
पृथिवी । नेमे । ओजसे ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ते तव वीर्यम् वीरकर्म वृत्रवधादिलक्षणं भूरि अतिबहु
यतः अतो वयं तव स्मसि स्मः तव विधेया भवामः । “श्रसो-
रलोपः” इति अकारलोपः । “इदन्तो मसिः” । अस्य स्तीतुः
स्नयं कुर्वतोस्य यजमानस्य कामम् अभिलषितम् । हे मधवन्
धनवन् इन्द्र आ पूण आपूरय । पूण प्रीणने । तीदादिकः ।
अत्र पूरणार्थः । “अतो हेः” इति हेर्लुक् । भूरि त इन्द्र वीर्यम्
इत्पृक्तं वीर्यबहुत्वमेव स्पष्टयति । ते तव वीर्यं बृहती महती द्यौः
महान् अलोकः अनु ममे अनुक्रमेण माति परिद्धिनत्ति । इन्द्रस्य
वृष्ट्युदकादेरास्पदत्वेन द्यौरेव ममे । अन्यः कश्चित् परि-
च्छेत्ता नास्तीत्यर्थः । माङ् माने । लिटादि सर्वम् । न
केवलं द्यौरेव इयं पृथिवी च ते ओजसे तव ओजसा चलेन निमि-
त्तेन नेमे ननाम नम्रा भवति । त्वदोजासंभूतेन गिरितरुगुल्ममा-
द्यपादिधारणेनेत्यभिप्रायः । अनः पृथिवी च वीर्यं ममे इति भावः ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके वृत्रवध आदि वीरकर्म बहुत बड़ा है,
अन एव हम आपके सेवक बनते हैं । इस स्तुति करने वाले
यजमानकी अभिलाषाकी हे धनी इन्द्र ! आप पूर्ण करिये
आपके वीर्यकी विशाल अलोक ही, वृष्टिचल आदिका स्थान
होनेमें मान करना है । और कोई परिच्छेत्ता नहीं है । वा-यह
पृथिवी भी आपके चलने में नम्र होजाती है । अतएव यह भी मान
करती है ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन् पर्वशश्च कर्तिथी ।

अवांसृजो निवृत्ताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिपे
केवलं सहः ॥ ६ ॥

त्वम् । तम् । इन्द्र । पर्वतम् । महाम् । चरुम् । वज्रेण । वज्रिन् ।
पर्वशः । चकृतिथ ।

अव । असृजः । निवृत्ताः । सर्तवै । अपः । सत्रा । विश्वम् ।
दधिपे । केवलम् । सहः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् त्वं तं प्रसिद्धं महाम् महान्तं महत्त्वो-
पेतम् । ॐ नकारतकारपोलोपरब्धान्दसः ॐ । चरुम् अतिप्रभूतं
पर्वतम् पर्ववन्तं गिरिम् । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । गिरीन् वज्रे-
ण आयुधेन पर्वशः अवयवशः पक्षादिक्रमेण चकृतिथ शकली-
कृतवान् असि । ॐ कृती छेदने । थलि कादिनिपमात् इट् ।
गुणः ॐ । यद्वा अत्र पर्वतशब्दः उत्तरत्र दृष्ट्यभिधानाद् मेघ-
वाची । उक्तलक्षणं मेघं वज्रेण पर्वशो विदारितवान् असीत्यर्थः ।
अनन्तरं निवृत्ताः नितरां मेघेन वृता अपः सर्तवै नद्याद्यात्मना
सरणाय अवांसृजः अवाङ्मुखं विसृष्टवान् असि । एवमाद्यात्मकं
केवलम् असाधारणं विश्वम् सर्वं बलं त्वं दधिपे धारयसि ।
एतत् सत्रा सत्यं न मृषा । सत्रेति सत्यनाम ॥

इति द्वितीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रधारी इन्द्र । आपने महत्त्वमय परमविशाल पर्व बाले
पर्वत (वा मेघ) को (पर आदिके क्रमसे) टुकड़े २ कर डाला
या । तथा आपने मेघमे घिरे हुए जलको सरकनेके लिये नदी-
रूपसे छोड़ दिया था । ऐसे असाधारण सब बलोंको आप धारण
करते हैं । यह बात सत्य है, मिथ्या नहीं है ॥ ६ ॥

द्वितीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६३१)

“उदमुतः” इति सूक्तस्य उक्त्ये क्रतौ ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

“उदमुतः” सूक्तका उक्त्ये क्रतुके ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमे विनियोग कह दिया है ॥

तत्र प्रथमा ॥

उदमुतो नवयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोपाः
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन्
उदमुतः । न । नयः । रक्षमाणाः । वावदतः । अभ्रियस्यऽइव ।

घोपाः ।

गिरिभ्रजः । न । नोर्मयः । मदन्तः । बृहस्पतिम् । अभि ।

अर्काः । अनावन् ॥ १ ॥

उदमुतः उदकेषु गच्छन्तश्चरन्तः । ॐ छान्दसत्वाद् असंज्ञा-
यामपि उदकशब्दस्य उदादेशः ॐ । रक्षमाणाः आत्मानं व्याधा-
दिभ्यः पालयन्तो वयो न पक्षिण इव ते यथाः उच्चैर्ध्वनन्ति ।
वावदतः भृशं शब्दं कुर्वतः । ॐ वदेर्यदलुकि शतरि रूपम् ।
“अभ्यस्तानाम् आदिः” इति आनुदात्तः ॐ । अभ्रियस्यः मेघ-
समूहस्य घोपाः शब्दा इव । तथा गिरिभ्रजः । गिरिरिति मेघ-
नाम । मेघेभ्यः सकाशाद् गच्छन्तः अधः पतन्तः मदन्तः सस्या-
दींस्तर्पयन्तः । अनेन घाराध्वनिरुपलक्ष्यते । नोर्मयो न नोर्मयः
उदकानि ते यथा अधः पतन्समये शब्दं कुर्वन्ति एवम् अर्काः
अर्चनसाधना मन्त्राः । ॐ अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चन्तीति
निरुक्तम् [नि० ५: ४] ॐ । अथ वा अर्काः अर्चकाः स्तोतारो
बृहस्पतिम् बृहतो मन्त्रराशेः स्वाधिनम् एतन्नामानं देवम् अभ्य-
नावन् अभिस्तुवन्ति । ॐ नोतिश्छान्दसे लङि न्यस्येन शप् ॐ ।

जलमें विचरण करने वाले, व्याधि आदिसे बचाने वाले, पक्षियोंकी समान उच्च ध्वनि वाले, मेघोंके गड़गड़ानेकी समान शब्द करने वाले, मेघोंसे धारापातरूपसे चलने वाली शब्दायमान ऊर्मियें नीचेको गिरनेके समय शब्दको करती है, इसी प्रकार पूजा के मन्त्र मन्त्रराशिके स्वामी बृहस्पतिदेवकी स्तुति करते हैं ॥१॥

द्वितीया ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशू-
रिवाजौ ॥ २ ॥

सम् । गोभिः । आङ्गिरसः । नक्षमाणः । भगःऽइव । इत् । अर्य-
मणम् । निनाय ।

जने । मित्रः । न । दम्पती इति दम्पती । अनक्ति । बृहस्पते ।
वाजय । आशून्ऽइव । आजौ ॥ २ ॥

आङ्गिरसः अङ्गिरो गोत्रोन्पन्नः एतन्नामा महर्षिः गोभिः ।
विकारे प्रकृतिशब्दः । गोविकारैराज्यैः । यद्वा गोभिः स्तुति-
वाग्भिः नक्षमाणः व्याप्नुवन् भग इवेत् एतन्नामको देव इव स
यथा बधूवरौ अर्यमणं देवं नयति विवाहसमये एवम् अर्यमणम्
विवाहहोमाभिमानिनम् एतन्नामानं देवं दम्पती सं निनाय नयते ।
किं च जने प्राणिसमूहे मित्रो न मित्रारयो देव इव स यथा स्व-
रश्मिर्न अनक्ति प्रकाशाय एवं स एव महर्षिः दम्पती बधूवरौ
अनक्ति योजयति ॥ हे बृहस्पते देव त्वं च आशून् आज्ञाविद्व
यथा संग्रामे योद्धारः आशून् व्यापकान् अश्वान योजयन्ति एवं
बधूवरौ वाजय संयोजये ॥

अंगिरागोत्रमें उत्पन्न द्रुए अंगिरस नामक महर्षि भगदेवता की समान गोघृत आदिसे विवाहके समय दम्पतीको जिस प्रकार अर्यमा देवकी शरणमें लेजाते हैं । इसी प्रकार विवाहहोमाभिधानी अर्यमा नामक देवको दम्पतीको प्राप्त करावे और माणियों में सूर्य जैसे अपनी किरणोंको प्रकाशके लिये संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार महर्षि बधूवरोंको संयुक्त करें । और हे बृहस्पति देव ! आप भी संग्राममें योधा जैसे व्यापक अश्वोंको युक्त करते हैं, इसी प्रकार बधू और वरको संयुक्त करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

साध्वर्या अतिथिनीः शिपिरा स्पर्हाः सुवर्णा अनवद्य-
रूपाः ।

बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थि-
विभ्यः ॥ ३ ॥

साधुः अर्याः । अतिथिनीः । शिपिराः । स्पर्हाः । सुवर्णाः ।
अनवद्यरूपाः ।

बृहस्पतिः । पर्वतेभ्यः । वितूर्य । निः । गाः । ऊपे । यवमिव ।
स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥

साध्वर्याः साध्वभिगन्तव्या अतिथिनीः अतिथितर्पका अतन-
शीला वा शिपिराः पृथ्वीयाः स्पर्हाः सर्वेः स्पृहणीयाः सुवर्णाः
शोभनशुक्लादिवर्णोपेता अनवद्यरूपाः अनिन्दितरूपाः मशस्त-
रूपाः । ॐ “अवद्यपण्य०” इत्यादिना गार्ग्ये अवद्यशब्दो निपा-
तितः । पूर्वपदप्रकृतिस्वरः ॐ । एवंलक्षणा गाः बृहस्पतिर्देवः पर्व-

तेभ्यः बलसंवन्धिभिरसुरैः पिहितेभ्यः पर्वतेभ्यः सकाशाद् वितूर्य
निर्गमय्य निरूपे निर्घपति निष्कृष्य प्रयच्छति स्तोतृभ्यः । तत्र
दृष्टान्तः । यवमिव स्थिविभ्यः । स्थिवयः स्थिरा यवकाण्डाः ।
तेभ्यः सकाशाद् यथा यवं निष्कृष्य चपति तद्वत् । यद्वा स्थिवयः
कुमुदाः । तेभ्यः सकाशाद् यवमिव ॥

जैसे कोठियोंमेंसे यवोंको निकालते हैं इसी प्रकार बृहस्पतिदेव
स्तुति करने वालोंके लिये, साधुओंके योग्य, अतिथियोंको वृत्त
करने वाली, अभिलाषा करने योग्य, सबसे स्पृहणीय, शुक्र
आदि शोभन वर्णसे सम्पन्न अनिन्दित रूप वाली बल नामक
असुरोंके द्वारा छिपाई हुई गौओंको पर्वतोंसे निकाल कर प्रदान
करते हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

आप्रुपायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्का-
मिव द्योः ।

बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्देव वि त्वचं
विभेद ॥ ४ ॥

आप्रुपायन् । मधुना । ऋतस्य । योनिम् । अवक्षिपन् । अर्कः ।
उल्काम् । इव । द्योः ।

बृहस्पतिः । उद्धरन् । अश्मनः । गाः । भूम्याः । उद्गाइव ।
वि । त्वचम् । विभेद ॥ ४ ॥

बृहस्पतिदेवः मधुना । मधु इति उदकनाम । उदकेन आप्रुपा-
यन् भूमिं सर्वतः सिञ्चन् । ॐ प्रप प्लुप स्नेहममेचनपूरणेषु ।

व्यत्ययेन विकरणस्य शायजादेशः । चित्स्वरः ॐ । अतस्य योनिम् उदकस्य कारणभूतं मेघम् । यद्वा अतस्य योनिरित्युदकनाम । मेघम् उदकं वा । ॐ मधुन अतस्येत्यत्र संहितायाम् “अत्यकः” इत्यत्र ह्रस्व इत्यनुवर्तनात् ह्रस्वत्वम् ॐ । यो घ-लोकसकाशाद् अवक्षिपन् अवाङ्मुखं मेरयन् । तत्र दृष्टान्तः । अर्कः आदित्यः योः सकाशाद् उन्कांमिव तां यथा अवक्षिपति तद्वत् । किं च स बृहस्पतिः अरमनः मेघसकाशाद् गां उदकानि उद्धरन् व्यावयन् । अथ चां अरमनः पणिभिः पिहितात् पर्वताद् तदुद्धारेण गां तैरपहृत्य स्थापितां उद्धरन् अपगमयन् उद्धने उदकंनेव तेन यथा भूम्यांस्त्वचं विभिनत्ति उच्छूर्नां करोति एवं भूम्यास्त्वचं गोखुराग्रैः वि विभेद विदारितवान् । सर्वत्र गां समचारयद् इत्यर्थः ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव घुलोकसे उन्काको अधोमुखी करके गिराते हैं, इसी प्रकार बृहस्पतिदेव जलसे भूमिको सींचते हुए मेघको नीचेकी ओर मुख वाला करके मेरित करते हैं, और वह बृहस्पति देव पणि नामक असुरोंके द्वारा पर्वतसे छिपाई हुई गौओंको निकाल कर भूमिकी त्वचाको गोखुरोंसे इस प्रकार विभिन्न कर डालते हैं, जिस प्रकार जलसे भूमिको फुलां देते हैं अर्थात् सर्वत्र गौओंका सञ्चार कर देते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षाद्बुधः शीपालमिव वातं आजत् ।

बृहस्पतिस्सुमृश्यां वलस्याभ्रमिव वात आचक्र आ गाः ॥ ५ ॥

अप । ज्योतिषा । तमः । अन्तरिक्षात् । उद्गमः । शीपालम्भश्च ।
वातः । आजत् ।

बृहस्पतिः । अनुष्मृश्य । बलस्य । अभ्रम्भश्च । वातः । आ । चक्रे ।
आ । गाः ॥ ५ ॥

बृहस्पतिर्देवः ज्योतिषा दीप्त्या प्रकाशेन अन्तरिक्षात् आका-
शाद् गिरिकुहरात् तमः अन्धकारं गवाम् आवरकम् उदाजत् उद-
गमयत् । तत्र दृष्टान्तः । वातः वायुः उद्गमः उदकात् । “पद्म०”
इत्यादिना उदकशब्दस्य उदग्नादेशः । “अल्लोपोनः” इति अका-
रलोपः । उदात्तनिवृत्तिस्वरः । तत्सकाशात् शीपालमिव
शीपालं शैवालम् । वर्णव्यत्ययेन ऐकारवकारयोरीकारप-
कारौ । तद् यथा उदजति अपगमयति तद्वत् । किं च बृह-
स्पतिर्देवो बलस्य एतन्नामकस्याश्वस्य गवाम् अवस्थानप्रदेशम्
अनुष्मृश्य पशुमृश्य वातः वायुः अभ्रमिव स यथा मेघम् आकरोति
सर्वतः प्रसारयति अन्तरिक्षे एवं गाः बलेन अपेहृत्य ओच्छन्नाः
आ चक्रे सर्वतो व्याप्ता अकरोत् ॥

जिस प्रकार वायु जलसे सिंघारको दूर कर देता है, तिसी
प्रकार बृहस्पतिदेव गिरिकन्दरासे प्रकाशके द्वारा गौओंको
रोकने वाले अन्धकारको हटा देते हैं । और बृहस्पतिदेव बल
नामक अश्वरके गोस्थानको विचार कर, वायुके मेघको छितरा
देनेकी समान बलके द्वारा रोकती हुई गौओंको चारों ओर फैला
देते हैं ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

यदा बलस्य पीयंतो जसुं भेद् बृहस्पतिरभितपोभिर्देवैः ।

दन्निर्न जिह्वा परिविष्टमादंदाविर्निर्घास्कृणोदुस्त्रिया-
णाम् ॥ ६ ॥

यदा । बलस्य । पीयतः । जसुम् । भेत् । बृहस्पतिः । अमितपः-
ग्भिः । अर्कैः ।

दत्तग्भिः । न । जिह्वा । परिविष्टम् । आदत् । आभिः ।
निग्धीन् । अकृणोत् । उस्त्रियाणाम् ॥ ६ ॥

बृहस्पतिर्देवो यदा यस्मिन् काले बलस्य एतन्नामकस्यामुरस्य
पीयतः । हिंसाकर्मैतत् । हिंसकस्य तस्य जसुम् हिंसासाधनम्
आयुधं भेत् अभेद् अभिनत् । ॐ मिदिर् विदारणे । लोट् ।
लघुपञ्चगुणः । “इतश्च लोपः” संयोगान्तलोपश्च । ध्वान्दसत्त्वाद्
अटभावः ॐ । कः साधनैरित्युच्यते । अमितपोभिः अग्निवत्सा-
पकैः अर्कैः दीप्तैः स्वरश्मिभिः मन्त्रैर्वा । तदा दन्निः दन्तैः परि-
विष्टम् परितः स्वादितं मण्डकादिलक्षणम् अन्नं जिह्वा यथा अस्ति
तद्वद् बलनामानम् अमुरम् आदत् अभक्षयत् । ततश्च उस्त्रिया-
णाम् गवां निग्धीन् आविरकृणोत् स्पष्टान् अकरोत् ॥

बृहस्पति देवने जिस समय बल नामक अमुरको हिंसक आयुध
को अग्निकी समान संतप्त करने वाले मन्त्रोंसे तोड़ डाला, उस
समय दोनोंसे तोड़े हुए अन्नको जिस प्रकार जिह्वा खाती है
तिस प्रकार वह बल नामक अमुरको खागए, फिर उन्होंने दूध
देने वाली उसरिया गौओंकी निधियोंको प्रकट किया ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

बृहस्पतिरगंत हित्यदांसां नाम स्त्रीणां सदेने गुहा
यत् ।

आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुक्षियाः पर्वतस्य
त्मनाजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिः । अमत् । हि । त्यत् । आसाम् । नाम् । स्वरीणाम् ।
सदने । गुहा । यत् ।

आण्डाड्डेव । भित्त्वा । शकुनस्य । गर्भम् । उद् । उक्षियाः ।
पर्वतस्य । त्मना । आजत् ॥ ७ ॥

बृहस्पतिदेवः गुहा गुहायां सदने । सीदित्यत्रेति सदने स्नानम् ।
तस्मिन् स्वरीणाम् शब्दायमानानाम् आसाम् गवां त्यत् तत् प्रसिद्धं
नामधेयं यत् यदा अमत् हि ज्ञातवान् । ॐ मनु अवबोधने ।
लुहि “तर्नादिभ्यस्तयासोः” इति सिचो लुक् । “हि चे” इति
निघानप्रतिषेधः । अडागमस्वरः ॐ । तर्ना पर्वतस्य गिरिरन्तः
स्थिता उक्षियाः । उक्षम् उत्सावणं क्षीरस्यन्दनम् अहन्तीत्युक्षिया
गावः । ता त्मना आत्मनैव सहायनरपेक्षेणैव । ॐ “मन्त्रेष्व-
ङ्ग्यादेरात्मन” इति आदेराकारस्य लोपः ॐ । उदजित् पर्वत
विभेदनेन उदगमयत् । तत्र दृष्टान्तः । आण्डेव भित्त्वेति । शकु-
नस्य पक्षिणो मयूरादेः आण्डानि भित्त्वा तदन्ते स्थितं गर्भम्
उदगमयति तद्वत् ॥

बृहस्पतिदेवने गुहास्थानमें शब्द करती हुई इन गौओंके नाम
को जब जाना, तब इन पर्वतके भीतर स्थित गौओंको अपने
आप पर्वत भेद करके इस प्रकार निकाल लिया जिस प्रकार
मयूर आदि पक्षियोंके अण्डोंको भेद कर उसके भीतर स्थित गर्भ
को प्रकट किया जाता है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

अश्रापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि
क्षियन्तम् ।

निष्टज्जभारचमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य
अश्रा । अपिऽनद्धम् । मधु । परि । अपश्यत् । मत्स्यम् । न ।
दीने । उदनि । क्षियन्तम् ।

निः । तत् । जभारः । चमसम् । न । वृक्षात् । बृहस्पतिः । विऽ-
रवेण । विऽकृत्य ॥ ८ ॥

बृहस्पतिर्देवः अश्रा अपचना पर्वतेन अपिनद्धं मधु मधुवज्रो-
गयोग्यं गोसमूहं पर्यपश्यत् अद्राक्षीत् । आवरणभूतपर्वतापसार-
णेनेति शेषः । तत्र दृष्टान्तः । दीने परिक्षीणे अन्पे उदनि उदके ।
❀ उदकशब्दस्य उदन्नादेशे “विभाषा-द्विर्योः” इत्यन्लोपा-
भावपक्षे रूपम् ❀ । तस्मिन् क्षियन्तम् निवमन्तं मत्स्यं न मत्स्य-
मिव । तं यथा जनः पश्यति तद्वत् । तत् गोलक्ष्णं मधु चमसं
न वृक्षात् । चम्यते भक्ष्यते अनेनेति चमसः सोमपात्रम् । चमसं
यथा तदुपादानभूतान्निष्कृत्य हरति तद्वत् । विरवेण विविध-
शब्देन हम्भालक्षणेन लिङ्गेन ज्ञात्वा विकृत्य बलारूपम् असुरं
गौरूपपारिणं द्विर्या निर्जभार विलान्निजहार ॥

जिस प्रकार जलके सूखने पर अन्य जलमें मनुष्य यक्षलीको
देख लेता है; इसी प्रकार बृहस्पतिदेवने, आवरणभूत पर्वतको
हटा कर पश्यते देके हुए मधुकी समान भोगनेयोग्य गोसमूह
को देखा और उसे चमस नामक भोजनपात्रको उपादानभूत

वृत्तसे निकालते हैं तिम प्रकार हंसा आदि विविध लिंगोंसे गौओं को जान कर गोरूपधारी बल नामक असुरको मार कर गौओं को बिलमे निकाल डाला ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सोपामविन्दत् स स्वः१ सो अग्निं सो अर्केण वि
ववाधे तमांसि ।

बृहस्पतिर्गोवपुषो बलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार६

सः । उपाम् । अविन्दत् । सः । स्वः१रिति स्वः । सः । अग्निम् ।

सः । अर्केण । वि । ववाधे । तमांसि ।

बृहस्पतिः । गोवपुषः । बलस्य । निः । मज्जानम् । न । पर्वणः ।

जभार ॥ ६ ॥

स पूर्वोक्तो बृहस्पतिः पर्वतकुहरे अन्धकारावस्थितानां गवां दशनाय उपाम् उपासम् उपमम् । ॐ आन्दसः सकारलोपः ॐ अविन्दत् अलभत । स एव बृहस्पतिः स्वः । स्वरादित्यः । आदित्य च प्रकाशाय अविन्दत् । एवम् असौ अग्निं च अविन्दत् । लब्ध्वा च अर्केण तेजसा तमांसि वि ववाधे विशेषेण बाधितवान् । तदनन्तरं गोवपुषः वृषभरूपधारिणो बलस्य असुरस्य हननेन मज्जानं न पर्वणः अस्थनः संबन्धिनं मज्जानम् पष्टं धातुं पर्वणः अस्तिर्यस्यैकशब्दाद् यथा बलाद् निर्देन्ति तद्वत् गा निर्जभार निष्कृष्य आहूतवान् ॥

इन बृहस्पतिदेवने पर्वतकी गुफामें अन्धकारमें पड़ी हुई गौओं को देखनेके लिये उपाको पाया, और इन ही बृहस्पतिदेवने सूर्य को भी प्रकाशके लिये प्राप्त किया, और अग्निको भी प्राप्त किया ।

आर गीत करके तेजसे अन्धकारोंको विशेषरूपसे नष्ट करे-वाला। तदनन्तर वृषभका रूप धारण करने वाले अमरको नष्ट करके अस्थियोंके जोड़से यज्ञा नष्ट करनेकी समान वस्तुपूर्वक गीतोंको निकाल लिया ॥ ६ ॥

दशमी ॥

हिमेव पर्णा मुपिता वनानि बृहस्पतिना कृपयद् बलो

गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार याव सूर्यामासा मिथ उच्चरातः

हिमाश्च । पर्णा । मुपिता । वनानि । बृहस्पतिना । अकृपयत् ।

बलः । गाः ।

अननुकृत्यम् । अपुनरिति । चकार । याव । सूर्यामासा । मिथः ।

उच्चरातः ॥ १० ॥

बृहस्पतिना देवेन हिमेव पर्णा हिमानि पर्णानीव । यथा हिमानि पर्णानि निःसाराणि कृत्वा मुप्यन्ति एवं वनानि वननीयानि धनानि गोलवृणानि मुपिता मुपितानि । आसन् । स च बलोपि गाः मुपिता अकृपयेन् । मायच्छद् इत्यर्थः । किं च स बृहस्पतिः साहक्यं कर्म अननुकृत्यम् अन्यैरननुकरणीयम् अन्येन कर्तुम् अशक्यं तथा अपुनः नः त्रियते पुनस्तत् कर्म यस्मिन् तद् अपुनः पुनःकरणरहितं च चकार कृतवान् । अन्यकर्तव्यरहितं स्वेनापि पुनः कर्तव्यरहितं चाकरोद् इत्यर्थः । किं तत् कर्मेति उच्यते । याव । यद् इत्यर्थः । ॐ छान्दसो दीव्यः । सूर्यामासा । मस्यते परिमीयते स्वकलावृद्धिद्वानिभ्याम् इति माश्रन्द्रमाः । मातीनि वा माश्रन्द्रः । सूर्याचन्द्रमसौ । ॐ देवतादन्द्रे

च" इति आनङ् । "देवनादन्धे च" इति उभयपदप्रकृतिस्वर-
त्वम् । "सुपां सुलुक्" इत्यादिना विभक्तेराकारः ॐ । तौ
मियः परस्परम् अहोरात्रयोः उचरातः उचरतः ऊर्ध्वं गच्छन् इति
यत् तच्चकार ॥

बृहस्पति नामक देवने, हिमजैसेपर्वतोंको निःसार करके ग्रहण
कर लेता है तिस प्रकार, सेवनीय गोरूप धनको ग्रहण कर
लिया था । और चलने भी चुराई हुई गाँवें बृहस्पतिजीको देदीं
यीं । तथा बृहस्पति देवने एक और भी ऐसा कर्म किया है, कि-
दूसरे उसको नहीं कर सकते और उन्हें भी उसको दूसरी बार
नहीं करना पड़ा । वह कर्म यह है, कि-सूर्य और चन्द्रमा दिन
और रातको करते हुए ऊपर विचरण करते रहते हैं ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अभि श्यावं न कुशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्याम-
पिशन् ।

रात्र्यां तमो अदधुज्योतिरहन् बृहस्पतिं भिनदद्रिं विदद्
गाः ॥ ११ ॥

अभि । श्यावम् । न । कुशनेभिः । अश्वम् । नक्षत्रेभिः । पितरः ।
द्याम् । अपिशन् ।

रात्र्याम् । तमः । अदधुः । ज्योतिः । अहन् । बृहस्पतिः । भिनद ।
अद्रिम् । विदत् । गाः ॥ ११ ॥

बृहस्पतिदेवः यदा अद्रिम् गवाम् आच्छादकं गिरिं भिनत्
अभिनद विदारितवान् विदार्य च यदा गाश्च विदत् । ॐ विदल
लाभे । लुब्धं लृप्तिनाम् अङ् ॐ । तदा पितरः पालका देवा

इन्द्राद्याः श्यावं न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमिव तं यथा लोके
 कुशनेभिः । कुशनम् इति सुवर्णनाम । कुशनैः सुवर्णमयैरामरणैः
 पिशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षत्रात् नाशात्त्रायन्तीति
 नक्षत्राणि न विद्यते तत्रं बलम् एवम् इति वा नक्षत्राणि ग्रह-
 तारकादीनि । तैः याम् ध्रुलोकम् अपिशन् अलंकुरुः । ॐ पिश
 अवयवे । रुधादिः ॐ । एवं रात्र्याम् । निशि तमः अन्धकारम्
 शब्दधुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं
 तेजः आदित्याख्यम् अददुः ॥

जब बृहस्पतिदेवने गौओंके आच्छादक गिरिको विदीर्ण
 किया और विदीर्ण करके गौओंको प्राप्त किया, उस समय पालक
 देवता (पितर) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस
 प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, जिस प्रकार
 ध्रु लोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने रात्रिमें
 अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिवाने वाले तेज
 मयको स्थापित किया ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

इदमंकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोत्तमीति ।
 बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स
 नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

इदम् । अंकर्म । नमः । अभ्रियाय । यः । पूर्वीः । अन्तु । आ-
 नो नवीभिः ।

बृहस्पतिः । मः । हि । गोभिः । मः । अश्वैः । सः । वीरेभिः ।

मः । नृभिः । नः । वयः । धात् ॥ १२ ॥

अत्रिणाय अभ्रम् अर्हतीति अत्रियः । ॐ “०अभ्राद् घः”
इति घमत्ययः ॐ । मेघनिदाराणेन जलं प्रयच्छने बृहस्पतये इदं
नमः नमस्कारो गच्छति नम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अर्घ्यम्
ययम् अन्तर्घ्यम् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्ले-
लुङि कृते “इन्द्रम्युभयथा” इति तिङ् आर्घ्यात् कृत्वाद् द्वि-
ज्जावाभावे गुणः ॐ । यो बृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीर्ऋचः अनुक्रमेण
आनोनवीति अन्यर्थम् आभिमुख्येन व्रवीति साधु स्तुतवान् इति
व्रूते । स हि स खलु बृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः
अन्नम् अथात् प्रयच्छति निति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापियोज्यम् ।
स एव बृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहितं वयोधात् । स बृहस्पतिः
वीरेभिः वीरैः पुनैरुपेतं वयोधान् । स च बृहस्पतिः नृभिः नेतृ-
भिर्भृत्यादिभिः सहितं वयोधात् ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको निरीर्ण करके जलको प्रदान करनेवाले बृहस्पति देवके
लिये, हम इस हवि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि-जो बृहस्पतिदेव
बहुतसी ऋषियोंके विषयमें अनुक्रमसे कहते हैं कि-बड़ी अच्छी
स्तुति हुई । वह बृहस्पति देव हमको गाँवों सहित अन्न प्रदान
करे, वह घोड़ों सहित, पुत्रोंसहित और भृत्य आदिसे सम्पन्न
अन्न प्रदान करे ॥ १२ ॥

त्रिणाय अनुशास्त्रमे तृतीयं सूक्तं समाप्तम् (६३२) ।

‘अच्छा म इन्द्रम्’ इति सूक्तमपि तथैव उच्यते ब्रह्मणस्त्रे
विनियुक्तम् । तत्र “बृहस्पतिर्नः परि पातु” [११] इत्येषा परि-
धानीया । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” [१२] इत्येषा शस्त्रयाज्या ॥

“अच्छा म इन्द्रम्” यह सूक्त भी वहाँ ही उच्यते ब्रह्मणस्त्रे
में विनियुक्त होता है । वहाँ ‘बृहस्पतिर्नः परि पातु’ (११) यह
परिधानीया है । “बृहस्पते युवमिन्द्रश्च” (१२) यह शस्त्रयाज्या है

इन्द्राद्याः स्यात् न अश्वम् कपिशवर्णम् अश्वमित्रं तं यथा लोके
 कुशनेभिः । कुशनम् इति सुवर्णनाम । कुशनैः सुवर्णमयैराभरणैः
 पिशन्ति अलंकुर्वन्ति एवं नक्षत्रेभिः । नक्षत्रात् नाशात् प्रायन्तीति
 नक्षत्राणि न विद्यते क्षत्रं बलम् एवम् इति वा नक्षत्राणि ग्रह-
 तारकादीनि । तैः याम् घृलोकम् अपिशन् अलंकुरुः । ॐ पिश
 अवयवे । रुधादिः ॐ । एवं राज्याम् । निशि तमः अन्धकारम्
 शब्धुः स्थापितवन्तः । एवम् अहन् अहनि ज्योतिः सर्वस्य दीपकं
 तेजः आदित्याख्यम् अददुः ॥

जय घृहस्पतिदेवने गौर्धोके आच्छादक गिरिको विदीर्ण
 क्रिया और विदीर्ण करके गौर्धोको प्राप्त किया, उस समय पालक
 देवता (पितर) इन्द्र आदिने, कपिश वर्ण वाले घोड़ेको जिस
 प्रकार सुवर्णके आभूषणोंसे अलंकृत करते हैं, तिस प्रकार
 घृलोकको नक्षत्रोंसे अलंकृत किया था । और उन्होंने राजिमें
 अंधकारको स्थापित किया तथा दिनमें सबको दिवाने वाले तेज
 मूर्धको स्थापित किया ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वोऽन्वानो नन्धीति ।
 बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरोभिः स
 नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥

इदम् । अकर्म । नमः । अभ्रियाय । यः । पूर्वोः । अनु । आ-
 नन्धीति ।

बृहस्पतिः । सः । हि । गोभिः । मः । अश्वैः । सः । वीरेभिः ।

मः । नृभिः । नः । वयः । धात् ॥ १२ ॥

अभिवाय अभम् अर्हनीति अभ्रियः । ॐ “०अभाद् घः”
इति घपत्ययः ॐ । मेघविदारणेन जलं प्रयच्छते घृहस्पतये इदं
नमः नमस्कारो गन्तव्यम् अन्नम् अन्नसाधनं वा स्तोत्रम् अग्नौ
ययम् अन्नाग्नौ । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्ले-
लुङि कृते “लृन्दस्युभयथा” इति तिङ् आर्षधातुवत्त्वाद् ङि-
ञ्जाभावात् गुणः ॐ । यो घृहस्पतिः पूर्वीः बह्वीश्वरः अनुक्रमेण
आनोनरीति अन्यर्थम् आभिमुख्येन गन्तीति साधु स्तुतवान् इति
ब्रूते । स हि स खलु घृहस्पतिः नः गोभिः बह्वीभिः सहितं वयः
अन्नम् अथात् प्रयच्छति इति संबन्धः । एवम् उत्तरत्रापि योज्यम् ।
स एव घृहस्पतिः अश्वैर्बहुभिः सहितं वयोधात् । स घृहस्पतिः
वीरेभिः वीरैः पुनैरुपेतं वयोधान् । स च घृहस्पतिः नृभिः नेतृ-
भिर्भृत्यादिभिः सहितं वयोधात् ॥

इति द्वितीयेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

मेघको विदीर्ण करके जलको प्रदान करनेवाले घृहस्पति देवके
लिये हम हम हनि वा स्तोत्रको अर्पण करते हैं, कि-जो घृहस्पतिदेव
बहुतसी श्रद्धाओंके विषयमें अनुक्रमसे रहते हैं शि-बड़ी अच्छी
स्तुति हुई । वह घृहस्पति देव हमको गाँवों सहित अन्न प्रदान
करे, वह घोड़ों सहित, पुषोंसहित और भूम्य आदिसे सम्पन्न
अन्न प्रदान करे ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमे तृतीय सूक्त समाप्त (६२८) ।

‘अच्छा म इन्द्रम्’ इति सूक्तमपि तत्रैव उपर्युक्ते अक्षयशस्त्रे
विनियुक्तम् । तत्र “घृहस्पतिर्नः परि पातु” [११] इत्येषा पणि-
धानीया । “घृहस्पते युवमिन्द्रश्च” [१२] इत्येषा शस्त्रयाज्या ॥

“अच्छा म इन्द्रम्” यह सूक्त भी वहाँ ही उपर्युक्तमें अक्षयशस्त्र
में विनियुक्त होता है । तहाँ ‘घृहस्पतिर्नः परि पातु’ (११) यह
परिधानीया है । “घृहस्पते युवमिन्द्रश्च” (१२) यह शस्त्रयाज्या है

तत्र प्रथमा ॥

अच्छां म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वां उश-
तीरनूपत ।

परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मय-
वानमृतये ॥ १ ॥

अच्छ । मे । इन्द्रम् । मतयः । स्वः । विदः । सध्रीचीः । विश्वाः ।
उशतीः । अनूपत ।

परि । स्वजन्ते । जनयः । यथा । पतिम् । मर्यम् । न । शुन्ध्युम् ।
मयः । वानम् । कृतये ॥ १ ॥

इन्द्रं देवम् अच्छ अभिमुखीकृत्य मे मम सुहस्त्यस्य धीपेयस्य
मतयः स्तुतयः अनूपत स्तुवन्ति । ॐ जु स्तुनौ । प्लोः सिच् ।
“लिङ्सिचावात्मनेपदेषु” इति किद्वद्भावाद् गुणभावः ॐ ।
मतयो विशेष्यन्ते । स्वर्विदः स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भयिष्यः
सध्रीचीः सहाश्वनाः परस्परं संगताः । ॐ अश्नु गतिपूजनयोः ।
“अस्तिवदृक्स्त्रिगुं”, इत्यादिना नकारलोपः । सहस्य सध्रया-
देशः । “अश्नतेरचोपसंख्यानम्” इति ङीप् । मसंज्ञायाम्
“अचः” इत्यकारलोपः ॐ । विश्वाः व्याप्ता उशतीः इन्द्रं काम-
यमानाः । आदर्शतिशयद्योतनाय उक्तमेवार्थः, सहस्रान्तं पुनराह
परि ष्वजन्ते इति । जनयः जनयन्ति उत्पादयन्ति अपत्यम् इति
जनयो योषिणः । ता यथा षन्ति परि ष्वजन्ते दृढम् आलिङ्गन्ति ।
किं च शुन्ध्युम् शोधकं मर्यं न मर्त्यस्मिन् यथा पित्रादिकं दूरम्
आगतं पुत्रादयो यन्धुभ्रना कृतये स्वरक्षणाय परिष्वजन्ते तद्वद्

मयवानम् मयवन्तं घनवन्तम् इन्द्रम् ऊतये रक्षणाय मे मतयः परि
ष्वजन्ते । निर्धनस्य रक्षाकरणायोगाद् मयवन्तम् इत्युक्तम् ॥

इन्द्रदेवको लक्ष्मणों रख कर मुझ सुन्दर हाथ और घोष वाली
की स्तुतियों स्तुति करती हैं । यह स्तुतियों स्वर्ग की प्राप्ति कराने
वाली हैं, परस्पर मिली हुई हैं, व्याप्त हैं और इन्द्र की कामना करती
रहती हैं । जिस प्रकार सन्तान को उत्पन्न करने वाली स्त्रियों
पति का दृढ़ता से आलिंगन करती हैं और जिस प्रकार शोधक
पिता आदिको दूर से आते देख कर पुत्र आदि बांधव अपनी
रक्षा के लिये उससे लिपट जाते हैं । इसी प्रकार घनवान् इन्द्रको
रक्षा के लिये मेरी स्तुतियों आलिंगन करती हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

न घां त्वद्रिगपं वेति मे मनस्त्वे इत् कामं पुरुहूत
शिश्नय ।

राजेव दस्म नि पदोधिं बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमैवपानं-
मस्तु ते ॥ २ ॥

न । घ । त्वद्रिक् । अप । वेति । मे । मनः । त्वे इति । इत् ।
कामम् । पुरुहूत । शिश्नय ।

राजाऽऽप । दस्म । नि । सदः । अधि । बर्हिषि । अस्मिन् । सु ।
सोमे । अवपानम् । अस्तु । ते ॥ २ ॥

हे पुरुहूत बहुभिराहूत इन्द्र त्वद्रिक्-त्वां गच्छत् मे मम मनः
न घ न खलु अप वेति अपगच्छति कदांचिदपि त्वत्तो नापसरति
किं तु त्वे इत् त्वय्येव कामम् अभिलाषं शिश्नय अथनि आश्र-

यति । ॐ त्रिभुं सेवायाम् । द्यान्दसे लिटि “एलुत्तमो वा” इति
 वृद्धयभावे रूपम् ॐ । यस्माद् एवं तस्मात् हे दस्म शत्रूणाम्
 उपक्षयितः दर्शनीय वा इन्द्र त्वं राजेव यथा राजा सिंहासने
 निपीदति । एवम् अधि बहिषि । ॐ अधिः सप्तम्यर्थानुवादी ॐ ।
 आस्तीर्णे दमे नि पदः निपीद । निपीदतेऽत्र को लाभ इति
 उच्यते । अस्मिन् सोमे सोमयागे संस्कृते वा सोमे ते तव अवपा-
 नम् अवनतं पानम् अस्तु भवतु ॥

हे पुरुहूत इन्द्र ! आपको प्राप्त होता हुआ मेरा मन, कभी
 भी आपसे अलग नहीं होता है, किंतु आपमें ही अभिलाषा
 रखता है । इस कारण हे शत्रुओंका संहार करने वाले इन्द्र !
 जिस प्रकार राजा सिंहासन पर बैठता है, तिस प्रकार कुशासन
 पर बैठिये । इस संस्कृतसोमयागमें आपका अवपान होवे ॥२॥

तृतीया ॥

विपूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मधवा वस्व
 ईशते ।

तस्येदिमे प्रवणे सप्तसिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य
 शुष्मिणः ॥ ३ ॥

विपुष्टव् । इन्द्रः । अमतेः । उत । क्षुधः । सः । इत् । रायः ।
 मधवा । वस्वः । ईशते ।

तस्य । इत् । इमे । प्रवणे । सप्त । सिन्धवः । वयोः । वर्धन्ति ।
 वृषभस्य । शुष्मिणः ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवः अस्माकम् अमनः दारिद्र्यस्य शून्याया मतेर्वा

वर्ततेः विपूवृत् विष्वग् वर्तयिता मच्यावयिता भवतु । ॐ विपु-
 शन्दोपपदाद् वर्ततेः विवप् ॐ । उत अपि च इन्द्रः क्षुधः पुष्ट-
 ताया विपूवृद् भवतु । सत्स्वन्येषु देवेषु इन्द्र एव कथं प्रार्थ्यत
 इति तत्राह । स इत् स एव मघवा धनवान् इन्द्रः रायः दानार्हस्य
 वस्वः वसुनो वासकस्य धनस्य ईशते ईष्टे स्वामी भवति । ॐ “तिर्ह्यं
 तिहो भवन्ति” इत्येकवचनस्थाने बहुवचनम् ॐ । किं च वृष-
 मस्य वर्षकस्य शुष्मिणः बलवतः तस्यैव तस्यैवेन्द्रस्य संबन्धिनः
 इमे प्रसिद्धाः सप्त सिन्धवः स्पन्दनशीलाः “इमं मे गङ्गे” [अ०
 १०. ७५. ५] इतिमन्त्रोक्ता गङ्गायाः सप्त सिन्धवः प्रवणे अव-
 नते देशे वयो वर्धन्ति अन्नं समर्पयन्ति । ॐ वृधु वृद्धौ । एिच् ।
 “छन्दस्पुभयथा” इत्यार्धधातुकसंज्ञायां णिलोपः ॐ ॥

इन्द्रदेव हमारी दग्निद्रताको मली भाँति नष्ट करने वाले वनें,
 और इन्द्रदेव हमारी भूखको दूर करें (और देवताओंके होने
 पर भी इन्द्रदेवकी ही प्रार्थना क्यों की जाती है तो कहते हैं,
 कि-)यह धनी इन्द्र ही वासक धनके स्वामी हैं । और इन वर्षक
 बली इन्द्रदेवकी ही गंगा आदि सात नदियें अवनत स्थानमें
 अन्नको बढ़ाती हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमांस इन्द्रं मन्दिन-
 श्रमूपदेः ।

प्रेषामनीकं शवंसा दविद्युतद् विदत् स्वर्धनवे-
 ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

वयः । न । वृक्षम् । सुपलाशम् । आ । असदन् । सोमांसः ।

इन्द्रम् । मन्दिनः । चमूऽसदः ।

प्र । एषाम् । अनीकम् । शवसा । दविद्युतत् । विदत् । स्वः ।

मनवे । ज्योतिः । आर्यम् ॥ ४ ॥

वयो न वृत्तम् यया वयः पक्षिणः सुगलाशम् शोभनपर्णोपितं
पल्लवितं वृत्तम् आसीदन्ति तद्वद् मन्दिनः मदकराः चमूषदः
चम्बोरधिपवणफलकयोरवस्थिताः सोमासः सोमा इन्द्रम् आस-
दन् । एषां सोमानाम् अनीकम् समूहो मुखं वा शवसा दविद्युतत्
घोतते । ॐ “दाधर्ति द्यर्धनि” इत्यादिना यद्भुगन्ताद् घृतेः
शनरि अभ्यासस्य संपसारणमात्रः अभ्यासस्य अस्त्वं विगाग-
मश्च निषान्यते । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ॐ । किं
च तद् अनीकं स्वः आदित्याख्यम् आर्यम् अर्यम् अरणीयम्
अभिगमनीयं ज्योतिः मनवे मनुष्याय मनुष्याणां प्रकाशाय विदत्
अविदत् प्रायच्छद् इत्यर्थः ॥

जैसे पक्षी सुन्दर पक्षों वाले पल्लवित वृत्त पर बैठते हैं, इसी
प्रकार मद करने वाले अधिपवणके फलकों पर स्थित सोम इन्द्र
का आश्रय लेते हैं । इन सोमोंका मुख दमकता रहता है । उस
मुखने आदित्य नाम वाली सेवनीय ज्योतिको मनुष्योंके प्रकाश
के लिये दिया है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं
जयत् ।

न तत् ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुंराणो मघवन्
नोत नृत्तनः ॥ ५ ॥

कृतम् । न । श्वघ्नी । वि । चिनोति । देवने । समुस्वर्गम् ।

यत् । मघवा । सूर्यम् । जयत् ।

न । तत् । ते । अन्यः । अनु । वीर्यम् । शक्त् । न । पुराणः ।

मघवन् । न । उत । नूननः ॥ ५ ॥

कृतं न शक्नी । वर्णव्यत्ययेन सकारस्य शकारः । स्वम्
आत्मानं हन्त्यनेनेति शक्नं घ्नम् । तद् अस्यास्तीति शक्नी ।
यद्वा स्वम् आत्मानं हतवान् शक्नी कितवः । स यथा देवने घृते
कृतम् कृतशब्दवाच्यं लाभहेतुम् अयं विचिनोति विचयं करोति
एवम् इन्द्रम् अस्मदीया स्तुतिः देवने क्रीडने ममोदे वा निमित्त-
भूते सति वि चिनोति । ॐ शक्नीति । स्वशब्दोपपदात् हन्तेः
“घवर्णे कविधानम्” इति कप्त्ययः । “अत इनिठनौ” इति
इनिप्त्ययः । यद्वा “बहुलं छन्दसि” इति वचनाद् ब्रह्मादिव्य-
तिरिक्तेषुपपदे हन्तेः क्विप् । “ऋन्नेभ्यः०” इति ङीप् । “अल्लो-
पोनः” इत्यकारलोपः । “हो हन्तेः०” इति घत्वम् । व्यत्ययेन
स्त्रीलिङ्गना ॐ । यत् यस्मात् कारणाद् मघवा धनवान् इन्द्रः
संवर्गं रसस्य तमसो वा संवर्जकं सूर्यं देवं जयत् अजयत् । सकल-
जगत्प्रकाशनाय दिवि स्थापितवान् इत्यर्थः ॥ अथ प्रत्यक्षकृतः ।
हे मघवन् इन्द्र ते तव तत् उक्तलक्षणं वीर्यम् अन्यस्त्वत्तोऽपरो
नानु शक्त् अनुकर्तुं न शक्नोति । अन्यमेव विशिनष्टि । त्वत्तो-
ऽन्यः पुराणः पूर्वकालीनः नानु शक्त् । उत अपि च नूतनः
आधुनिकोपि नानु शक्त् ॥

जैसे जुमारी जुएमें लाभ देने वाले कृन नामक फाँसिका चरण
करता है, इसी प्रकार हमारी स्तुति ममोदके लिये इन्द्रका चरण
करती है, क्योंकि— इन्द्रदेवने अंधकारको दूर करने वाले संवर्जक
सूर्यको सकल जगत्को प्रकाशित करनेके लिये घुल्लोकमें स्थापित
कर दिया है । हे इन्द्रदेव ! आपके ऐसे वीर्यकी और कोई अनु-
कृति (नकल) नहीं कर सकेगा, और आपसे माचीन भी कोई

ऐसा काम नहीं कर सका था और आज कलका भी कोई नहीं कर सका है ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

विशंविशं मधवा पर्यशायत् जनानां धेनां अवचा-
कशद् वृषा ।

यस्याहं शक्रः सवनेषु रणयति स तीव्रैः सोमैः सहते
पृतन्यतः ॥ ६ ॥

विशम् विशम् । मधवा । परि । अशायत् । जनानाम् । धेनाः ।
अवचाकशत् । वृषा ।

यस्य । अहं । शक्रः । सवनेषु । रणयति । सः । तीव्रैः । सोमैः ।
सहते । पृतन्यतः ॥ ६ ॥

वृषा कामानां वर्णिता मधवा धनवान् । अभिमतप्रदानं धन-
वत एव युज्यत इत्यस्य प्रकृष्टधनवत्त्वाभिधानाय अत्र मधवेत्यु-
क्तम् । उक्तशुणक्त इन्द्रो विशंविशम् तंतं यजमानं पर्यशायत् परि-
शेते । ये ये यष्टारः सन्ति तास्तान् सर्वानपि स्वविभूत्या समकाल
एव प्राप्तवान् इत्यर्थः । किं च जनानाम् स्तोतॄणां धेनाः भीष्म-
पित्रीः स्तुतीरेककाल एव अवचाकशत् । ॐ रणयतिकर्मैतत् ॐ ।
अभिपश्यति । स्तोत्रं शृणोतीत्यर्थः । एवं शक्रः शक्त इन्द्रो यस्य
यजमानस्य सवनेषु त्रिष्वपि रणयति रमते । ॐ रणयतिः क्रीडा-
कर्मा । व्यत्ययेन शयन् । यच्छब्दयोगाद् अनिघातः ॐ । स
यजमानः तीव्रैः अत्यन्तपदकरैः सोमैः सोमरसैः । ॐ सवनत्र-
यापेक्षया बहुवचनम् ॐ । सोमपानेन पृतन्यतः संग्रामम् इच्छतः
शत्रून् सहते अभिभवति ॥

कामनाओंकी पूर्णा करने वाले धनवान् इन्द्रदेव जो २ पूजा करने वाले हैं उन सबके पास अपनी विभूतिसे एक समयमें ही प्राप्त होजाते हैं। और स्तोता मनुष्योंकी प्रसन्न करनेवाली स्तुतियों को एक समयमें ही सुनते हैं ऐसे समर्थ इन्द्रदेव जिस यजमानके तीजों सबनोंमें स्मरण करते हैं वह यजमान बड़ा मद करने वाले सोमपानके प्रभाववश सेना लेकर संग्राम करना चाहने वाले शत्रुओंको दबा देता है ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमांस इन्द्रं

कुल्या इव हृदम् ।

वर्धन्ति विषा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन

दानुना ॥ ७ ॥

आपः । न । सिन्धुम् । अभि । यत् । सम्प्रक्षरन् । सोमांसः ।

इन्द्रम् । कुल्याऽइव । हृदम् ।

वर्धन्ति । विषाः । महः । अस्य । सादने । यवम् । न । वृष्टिः ।

दिव्येन । दानुना ॥ ७ ॥

यत् यदा सोमांसः सोमाः आपो न सिन्धुम् आपः सिन्धुम् समुद्रमिव कुल्याः अन्गाः सरितश्च हृदमिव इन्द्रं देवं प्रति अभि समक्षरन् अभिक्षरन्ति तदा विषाः मेघाविनः स्तोतारः सादने यज्ञगृहे अस्य इन्द्रस्य महः माहात्म्यं वर्धन्ति वर्धयन्ति । स्तुतिभिरिति शेषः । अभिवर्धने दृष्टान्तः, यवं न वृष्टिरिति । वृष्टिः । वर्षतीति-वृष्टिर्मेघः । स यथा दिव्येन दिवि भवेन दानुना लक्ष्मदानेन वृष्टिरेव वा दिव्येन स्वकीयेन दानेन यवं न यवमिव तं यथा वर्धयति तद्वत्

नव सोम, जलके सिंधुमें प्रवेश करनेकी समान, छोटी २ नदियोंके सरोवरमें प्रवेश करनेकी समान, इंद्रदेवकी ओर अभि-
क्षरण करते हैं, नव स्तुति करने वाले विद्वान् पुरुष यज्ञघरमें इन
इंद्रदेवके माहात्म्यकी स्तुतियोंसे बढ़ाने हैं। जैसे मेघ दिव्य जलदान
से सबको बढ़ाने हैं इसी प्रकार स्तोता स्तुतियोंसे इंद्रको बढ़ाने हैं०
अष्टमी ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद् रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा
अपः ।

स मुन्वते मयवा जीरदानवेविन्दुज्योतिर्मनवे हवि-
ष्मते ॥ ८ ॥

वृषा । न । क्रुद्धः । पतयन् । रजःस्रु । आ । यः । अर्यपत्नीः । अकृ-
णोन् । इमाः । अपः ।

मः । मुन्वते । मयवा । जीरदानवे । अविन्दन् । ज्योतिः ।
मनवे । हविष्मते ॥ ८ ॥

य इन्द्रः अर्यपत्नीः अर्येण अभिगन्वा आदित्येन पालिता इमाः
ममिदा अपः उद्गानि अकृणोन् करोति भूमिष्ठानि करोति स
इन्द्रो वृषा न क्रुद्धः यथा क्रुद्धः क्रोधेन अन्धीभूतो वृषा वृषमः
सर्वतः पतति गच्छति स्वयतिमर्त्तं वृषमं पराभविनुम् एवं स इन्द्रो
रजःस्रु लोकेषु आ सर्वतः पतयन् पतति गच्छति । मेयं दारयि-
नुम् इति शेषः । अनन्तरं मयवा धनवान् इन्द्रः मुन्वते सोमाभि-
पतं कुर्वते जीरदानवे क्षिप्रदानाय शीघ्रे हविः मयच्छते हविष्मते
हविर्भिः सोमादिभिस्तृते मनवे मननवते यजमानाय ज्योतिः प्रका-
शकं नेमः अविन्दन् अलमन मायच्छन् मयच्छति ॥

— ओ इंद्रदेव सूर्यसे-पालित-ईर्न-जलोंको भूमिष्ठ करते हैं;
 यह इंद्रदेव क्रोधमें मरा हुआ, बिल जैमे । अपने अतिमेट मन्त्र
 का पराभव करनेके लिये सर्वतो भावसे जाता है; इसी, मंकार
 लोको पर मेघको विदीर्ण करनेके लिये पूर्णरीतिसे गमन करते
 हैं, इसके अतिरिक्त वह-धनी इंद्र-सोमाभिषव करने वाले;
 शीघ्रतासे इवि मदान करने वाले इविष्मान् वज्रपानके, लिये तेज
 मदान करते हैं ॥ २ ॥

उज्जायतां परशुज्योतिषा सह भूया अतस्य सुदुघा
 पुराणवत् ।
 वि रोचतामरुधो भानुना शुचिः स्वर्णं शुक्रं शुशुचीत
 । सत्स्यतिः ॥ ६ ॥

परशुः इंद्रस्य वज्रः ज्योतिषा स्वतेजसा सह उज्जायिताम्
 ऊर्ध्वं मादुर्भवतु मेघविदारणार्थम् । किं च अतस्य उदकस्य सं-
 बन्धिनी सुदुघा-सुष्ठु दोहयित्री माध्यमिका वाक् । “दुहः
 कथञ्च” इति कप् । इकारस्य-घकारः । पुराणवत्-पूर्व-यथा
 इदानीमपि, एवं भूयाः भूयात् । पुरुषव्यत्ययः । किं-च
 अरुधः आरोचमानो भानुना स्वतेजसा शुचिः मज्जन् वि रोच-

तां प्रकाशतोम् ॥ चित्तमेवार्थं सदृष्टान्ते पुनरोद्भवः ॥ स्वयं शुक्रम्
स्वः आदित्यः सत्यथा शुक्रम् दीप्तं तेजः प्रकाशयति ॥ तेजसा
स्वयं दीप्यत इत्यर्थः ॥ एवं सत्पतिः सती पालक इन्द्रः शुशुचीत
अत्यन्तं दीप्यताम् ॥ ॐ शुचि शोकेन न्येत्ययेन आत्मनेपदम् ॥
लिङ्गि "बहुलाब्धन्दसि" इति आपः पलुः ॥ सीपुटोदिः ॥ ॥
इन्द्रदेवको विष्णुः मेघका विदारण करनेके लिये अपने ॥ तेजके
साथ ऊपरको प्रकट होवे । और जलको दुहनेवाली माधवमिका
वाणी पहिलेकी समान इस समर्थ श्री प्रकट होवे । और अपने
तेजमे दमकती हुई प्रकाशित होवे और जैसे दमकता हुआ सूर्य
अपने तेजसे अपने आप ही दमकता है, इसी प्रकार सबजनोंके
पालक इन्द्रदेव परम मदीत होवे ॥ ६ ॥

गोभिष्टरेमामर्तिं दुरेवां यवेनं चुर्त्तं पुरुहूतः विश्वांस ।

अथ राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम

गोभिः । तरेम । अमतिम् । दुःस्पनाम् । तपेन । क्षुभम् । पुरुःश्रुत ।

। प्रविशाम् । गेयम् । मीढम् । अष्टाङ्गम् । अक्षरम् । प्राज्ञानम् । श्री

नयम् । राज्ञभिः । प्रथमाः । पुनानि । अस्याकेन । हृजनेन ।

प्रजयम् ॥१०॥ तदर्थः ॥ तदर्थः ॥ तदर्थः ॥ तदर्थः ॥ तदर्थः ॥

संवेयानुपेक्षिताः सन्ती गोभिः त्वया दत्ताभिः दूरेषाम् दिष्टगवः

नाम् अमन्तिम् दारिद्र्यं तरेम निस्तरेम । किं च यदेन । उपलब्ध-
नाम् प्रेम् । तरेम दैर्घ्यं तरेम निस्तरेम । किं च यदेन । उपलब्ध-

दिविपतां क्षुधम् अशनेज्याम् । सरेमेति शोषात् । हिंस्रः मय्याः

§ 8-8.1.1

तवानुग्रहेण समानानां मध्ये मुख्यभूता त्रयं-राजभिः-सन्निधैर्भू-
पालैर्यत्नानि वहन्ति । लभेमहीति शेषः-एषु संपन्नेषु सत्सु अस्मा-
केन अस्मत्सयन्धिना । ॐ संवन्धार्थे अणि विहिते "तस्मिन्नणि
च युष्माकास्माका" इति अस्माकादेशः । वृद्धयभावश्चानन्दसः ॐ ।

वृजनेनैवलोत जयेम । शत्रून् इति शेषः ॥ अत्र ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥
१०८ हे पुरुहुत, इंद्र । हम यज्ञमणि आपका, अनुग्रह पाते हुए आप
की दी हुई गाँओसे दुर्दशामें डालने वाले दरिद्र के पार, जावें ।
और आपके दिये हुए जौं धाने आदिसे पुत्र मृत्यु आदिकी भूल
को दूर कर सकें । और आपके, अनुग्रहसे समान पुरुषोंमें मुख्य
हुए हम राजाओंसे बहुतसे धनकी प्राप्ति करें, इन सबके होनेपर
हम अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

विश्व काण्डम् - विश्व काण्डम् - विश्व काण्डम्

वृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः
कृणोतु ॥ ११ ॥

वृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः
कृणोतु ॥ ११ ॥

वृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः
कृणोतु ॥ ११ ॥

वृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः
कृणोतु ॥ ११ ॥

वृहस्पतिर्देवः पश्चात् पश्चादुतोत्तरस्मादधरादधायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः
कृणोतु ॥ ११ ॥

सर्वतो रक्षतु । अतः अपि च उत्तरस्माद् अधराच्च देशाद् आ-
गच्छतः अघोरयोः नः अस्मान् परि पातु । एवम् इन्द्रोऽपि देवः
पुरस्ताद् आगच्छतः अघोरयोः परि पातु । मध्यतः मध्यमाद् देशा-
दप्यगच्छतः परि पातु । एवं सर्वतो रक्षां कृत्वा सखा मित्रभूत
इन्द्रः सखिभ्यः सखिभूतेभ्यः अस्मभ्यं वरिचा । धनं नामैवत् ।
धनं कृणोतु करोतु मयच्छतु । हविःप्रदानवरप्रदानाभ्यां परस्परं
सखिभावो द्रष्टव्यः । अतः तन्मात्रं विना न विना न विना न विना न
वृहस्पतिदेव हमको, दूसरेके लिये हिंसापूर्णः पापको न चाहने
पाले हिंसक-अघोरसे सर्वत्र वचार्थे । और उत्तर तथा अधर दिशा
से आते हुए अघोरसे हमको बचार्थे । इन्द्रदेव सामनेसे आते हुए
मध्यदेशसे आते हुए हिंसकसे भी हमारी रक्षा करे । इस प्रकार
चारों ओरसे रक्षा करके मित्रभूत इन्द्र हम मित्र बने हुआको
धन प्रदान करे । यहाँ हविः प्रदान और वरदानसे मित्रभाव
समझना चाहिये ॥ ११ ॥

वृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यरेयं शोधे उत पार्थिवस्य
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये त्रिव्यूयं पान स्वस्तिभिः सदा नः

वृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । शोधे । इति ।

उत पार्थिवस्य । धत्तम् । रयिम् । स्तुवते । कीरये । त्रिव्यूयम् । पानम् । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

धत्तम् । रयिम् । स्तुवते । कीरये । त्रिव्यूयम् । पानम् । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ १२ ॥

वृहस्पते त्वं च इन्द्रश्च युवम् युवाम् ॥ "मयमायाश्च दि-

वनने भाषायाम्" इति विहितम् आत्वं सन्तुति म भवति ॥

दिव्यस्यं दिवि भवस्य वस्वः वसुनः ईशाये स्वामिनी भवथः ।
 उत अपि च पार्थिवस्य पृथिवीसंघन्धिनो वस्व ईशाये । यस्माद्-
 एवं तस्माद् स्तुवते स्तोत्रं कुर्वते कीरये स्तोत्रे मह्यम् । विद् इति
 पूरणः । वयिम्-धनं धनम् प्रयच्छतम् । गतम् अन्यत् ॥

द्वितीयेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥
 (१) इति विंशे काण्डे द्वितीयोऽनुवाकः ॥

हे धृष्टस्यते ! आप और इन्द्रदेव ! दोनों धुलोकके धनके
 स्वामी हो और पृथिवीलोकके धनके भी स्वामी हो, इस कारण
 मुझका स्तुति करने वालेको धन-प्रदान करो और आप-अपनी
 रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

द्वितीय अनुवाकमें चतुर्थं सूक्तं समाप्त (६३३)

वींशे काण्डमें द्वितीय अनुवाक समाप्त

तृतीयेनुवाके त्रयोदश सूक्तानि । तत्र आद्यानि चत्वारि
 सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ प्रथमपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनि-
 युक्तानि । चतुर्थसूक्तस्य अन्तिमा "य इहोन्दि" इत्येषा परि-
 धानीया । "अतिरात्रे होरात्रादिभ्यः" इति प्रक्रम्य सूत्रितं वैताने ।
 "वयमु त्वा तदिदयाः [१] वयमिन्द्र त्वायवः [४] इति स्तो-
 त्रियानुरूपं । ऊर्ध्वं सर्वत्र प्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः ।
 य उदधि [२०, २१, ११] इति परिधानीया । अप्सु धृतस्य
 [२०, ३३, १] इति याज्या । इति [वै० ४, ३] ॥

स्तोत्रियानुरूपाणां शंसनप्रकारस्तत्रैव उक्तः । "स्तोत्रियानु-
 रूपयोः प्रथमे पर्याये प्रथमानि पदानि पुनरादायम् अर्धर्चशस्य-
 पच्छंसनि । मध्यमे पर्याये मध्यमानि । उत्तमे उत्तमानि" इति
 [वै० ४, २] ॥

तीसरे अनुवाकमें तेरह सूक्त हैं । इनमें पहिले चार सूक्त
 अतिरात्र क्रतुके प्रथम पर्यायमें ब्राह्मणाच्छंसिके शस्त्रमें विनि-

(११०)) अथर्ववेदसंहिता सभाष्ये-भाषानुवादसहित ६ ॥ ७ ॥

युक्तं होतुं हे । यथै मूक्तकी अतिमः "य उद् अचीन्द्र" अचो
परिधानीया है । "अतिरात्रेऽहोरात्रादिभ्यः" को । आरम्भे करके
वैतानमूत्रमे कहा है, कि- "वैयमु त्वां तदिदयाः (१३) वय-
मिन्द्र त्वायको (१४) इति स्तोत्रियानुरूप्यो । अथर्वः सर्वत्र प्रीणि
मूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्याप्तः । य उद् अचि (१२० । २१ । ११)
इति परिधानीया । "अप्मु धिनेस्यार २०० । ३३ । १) इति
योऽया" (वैतानमूत्र १४ । २००) । मन्त्र प्राप्त ! मन्त्रपु १

"स्तोत्रियानुरूप्यो" को शंसनमकारभी तहाँ ही कहा है, कि- "स्तो-
त्रियः नुरूप्योः प्रथमे पर्याये प्रथमानि पदानि पुनरादायि अर्धव-
शस्य वच्छंमति" । यिष्यमो पर्याये मध्यमानि पदानि चतुर्थे चतुर्थानि ।

वैतानमूत्र २०० । १४ । २०० । ३३ । १ । २०० । ३३ । १ । २०० । ३३ । १ ।

तत्र मध्यमा ॥

वैयमु त्वां तदिदया इन्द्र त्वायन्तः सखायगर्ज
कणवाः उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १३ ॥

वैयमु त्वां तदिदया इन्द्र त्वायन्तः सखायगर्ज
कणवाः उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १३ ॥

कणवाः उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १३ ॥

इन्द्र तदिदयाः तदेव स्तोत्रमू अर्थः प्रयाजनं यथा तै तदि-
दयाः त्वायन्तः त्वाम् आत्मन इच्छन्तो वयं सखायः तव सखि-
भूताः । अथवा त्वां यन्तः सखायो वयं कणवाः तदिदयाः तदेक-

जरन्तरे गम्यन्ते ॥

महर्षयः कणतिः

शब्दार्थः । ॐ अष्टमशीत्यादिना [८० १. १४६] वचने प्रत्ययः ।

निस्वादे आद्य दातः । "कणवादिभ्यो गोत्रे" इति अणोने तस्य
पदेषु लुक् । स पदे स्वरः ॐ । उक्थेभिः उक्थैः । तच्चयन्त इत्यु-

क्यानि स्तोत्राणि । तैर्जग्न्ते मनुवन्ति । ॐ जरनिर्नरुक्तो धातुः
स्तुत्यर्थे वर्तते ॥

हे इन्द्रदेव ! यह स्तोत्र ही हे प्रयोजन जिनका ऐसे, आपको
चाहते हुए, आपक मित्रभूत हम कण्वगोत्री उषसा (स्तोत्र) से
आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥
न धमत्यदा पपन वज्रिन्नपसो न विष्टौ ।

तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
न । ध । इम् । अन्पुन । आ । पपन । वज्रिन् । अपसः । न विष्टौ ।
तव । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । चिकेत ॥ २ ॥

हे वज्रिन् वज्रैर्जग्निन्द्र अपसः कर्मणो यागान्मनो न विष्टौ तव-
नस्य स्तुतेरेपणार्या सत्यां तवोयाम् इष्टौ वा नूतने यागे कर्तव्ये
सति । ॐ शकन्वादित्रात् पररुगत्वम् ॥ इम् इदानीम् अन्पुन
त्वदिषयाह अपरम् अन्यदेवताविषय स्तोत्र न य नैव आ पपन
अभिष्टौमि । ॐ पनतेः स्तुतिकर्मणः उत्तमं एतत् रूपम् ॥ किं
तु तवेदु तवैव स्तोमम् स्तोत्रं चिकेत जानामि ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! अपरम् नवीनं यज्ञक समय में आपके
अतिरिक्त दूसरे देवताकी स्तुति नहीं करता हूँ किन्तु आपके ही
स्तोत्रको जानता हूँ ॥ २ ॥

इच्छन्ति देवाः सुव्रन्त न स्वमाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादिमतन्द्राः ॥ ३ ॥
इच्छन्ति । देवाः । सुव्रन्तम् । न । स्वमायम् । स्पृहयन्ति ।
यन्ति । प्रमादिमतन्द्राः ॥ ३ ॥

यन्ति । प्रमादम् । अतन्द्राः ॥ ३ ॥

देवाः इन्द्राद्याः सुन्वन्नम् सोमाभिषव कुर्वन्तम् यजमानम्
इच्छन्ति रक्षितुम् इच्छां कुर्वन्ति । स्वमाय । स्वमशब्देन अनादरो
लक्ष्यते । तद्विषयानादराय न स्पृहयन्ति नेच्छन्ति । अनादसीत्यं
न कुर्वन्तीत्यर्थः । ॐ “स्पृहेरीप्सितः” इति कर्मणि चतुर्थी ॐ ।
किं तु प्रमादम् प्रकर्षेण मादयितारं तं तस्य मदकरं सोमं वा उदि-
श्य अतन्द्राः अनलसाः सन्तो यन्ति गच्छन्त्येव । ॐ स्पृहय-
न्तीति । स्पृह ईप्सायाम् । पुरादिरदन्तः ॥ १ ॥

इन्द्र आदि देवता सोमका अभिषव करने वाले यजमान की
इच्छा करते हैं—अर्थात् उसकी रक्षा करना चाहते हैं—उसके विषय
में अनादसीनता नहीं करते हैं, किंतु प्रकृष्टतासे मदमें भरने वाले
सोमको लक्ष्यमें रख आलस्यशून्य हो जाते ही हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोभि प्र णानुमो वृणन् ॥ ४ ॥
विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ५ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । अभि । प्र । नोनुमः । वृणन् ।

विद्धि । तु । अस्य । नः । वसो इति ॥ ५ ॥

हे वृणन् कामानां वर्षक इन्द्र त्वायवः त्वाम् इच्छन्तो वयम् ।
ॐ “मुप आत्मनः वयच्” । “मत्ययोत्तरपदयोश्च” इति स्वा-
देशः । कुदन्तस्वात् प्रातिपदिकसंज्ञायां सुपो लुक् । “वयोच्छन्-
सि” इति उपत्ययः । मत्ययस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । अभि प्र णा-
नुमः आभिप्रात्येन प्रकर्षेण स्तुमः । तु अपि च हे वसो वासक
इन्द्र त्वपि नः अस्मदीयम् अस्य एतत् स्तोत्रं विद्धि कामये ॥

द्रष्टव्यः । वृत्रघ्नः कर्म इत्यर्थे वा ब्राह्मणादित्वात् प्यञ् । अत्राह
आद्युदात्तः ॐ । शवसे बलाय अपि च पृतनापाद्याय परकीय
सेनाभिभवाय ॥ १ ॥ यह अभिभव इत्यस्माद् भावे “शक्तिसहोश्च”
इति यत् । सहितायां “सहः पृतनार्थाभ्यां च” इति परत्वम् । छान्दसो
दीर्घः ॐ । तदर्थं स्वा स्वाम् आवर्तयामसि आवर्तयामः । अस्म-
दभिमुखं कुर्मः ॥

इमं वृत्रघ्नं न रूपं कर्म के लिये, बल दिखाने के लिये, शत्रुओं
की सेनाओं का तिरस्कार करने के लिये आपको अपने अभिमुख
करते हैं ॥ १ ॥

अर्वाचीनं सु ते मनः उत चक्षुः शतक्रतो ॥ २ ॥
इन्द्रं कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्वाचीनम् । सु ते । मनः । उत । चक्षुः । शतक्रतो इति शतक्रतो ।
इन्द्रः । कृण्वन्तु । वाघतः ॥ २ ॥

हे शतक्रतो बहुकर्मन्द्रते त्वं मनः वाघतः यज्ञनिर्वाहका अतिवजः
सु सुष्ठु अर्वाचीनम् अस्मदभिमुखं कृण्वन्तु ॥ “विभाषाऽश्वे-
रदिकस्त्रियाम्” इति स्वभक्त्यर्थः । स्वस्य इनादेशः । भक्त्यर्थस्वरः ॥
उत अपि च ते चक्षुः तव दृष्टिमपि अस्मदभिमुखाम् अस्मात्
कृपावर्ती कुर्वन्तु ॥

हे अनेक कर्मों से सम्पन्न शतक्रतो इन्द्र ! यज्ञ के निर्वाहक
अतिवज आपको भली प्रकार हमारे अभिमुख करें आपकी दृष्टि
को भी हमारी ओर कृपा भरी करें ॥ २ ॥

तृतीया ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीभिर्महः ।

प्राप्तां स्थानानां शतेन युक्तस्य । असंख्यातस्थानवन इत्यर्थः ।
 चर्पणीधृतः । चर्पणयो मनुष्याः । तान् धारयति रक्षतीति चर्पणी-
 धृत् । तस्य उक्तलक्षणस्येन्द्रस्य । उक्तलक्षणम् इन्द्रम् इत्यर्थः ।
 महयाममि महयामः पूजयामः स्तुमः । यद्वा शतेन शतसंख्याकेन
 स्तोत्रेण उक्तलक्षणम् इन्द्रं महयामसीति योज्यम् ॥

बहुनसे स्तोत्राओंसे स्तुत, सैकड़ों तेजोंसे सम्पन्न और मनुष्यों
 की रक्षा करने वाले इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुपं ब्रुवे ।

भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥

इन्द्रम् । वृत्राय । हन्तवे । पुरुहूतम् । उप । ब्रुवे ।

भरेषु । वाजसातये ॥ ५ ॥

पुरुहूतम् बहुभिर्यजमानैराहृतं संग्रामे वा स्वस्वजगार्थं बहुभि-
 राहृतम् इन्द्रं वृत्राय । “क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्” इति कर्मणः
 संप्रदानत्वम् । वृत्रनाशानम् असुरं पापं वेत्यर्थः । हन्तवे
 हन्तुम् । “तुमर्थे” तवेन् प्रत्ययः । निस्वरः । किं च
 भरेषु । संग्रामनामेनत् । संग्रामेषु वाजसातये । वाजः अन्नम् ।
 “अन्नं वै वाजः” इति श्रुतेः [तै० सं० ५, ४, ६, ६] । अन्न-
 लाभाय । शत्रुजयम् अन्तरेण तदीयस्यान्नस्य लाभाभावात् तज्ज-
 यायेत्युक्तम् भवति । उक्तलक्षणोपयविषययोजनाय इन्द्रम् उपं
 ब्रुवे उपेन्य म्तामि ॥

यज्ञमें बहुतमे यजमानोंमें और संग्राममें अपनी २ विजेयके
 लिये बहुतसे योधाओंमें आह्वान किये हुए इन्द्रदेवको मैं पापको

नष्ट करनेके लिये और संग्राममें वाजे अर्थात् अन्न^१ पानेके लिये
इन्द्रकी स्तुति करता है ॥ ५ ॥

वाजेषु सासहिर्भव त्वामोमहे शतक्रतो ।

इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥

वाजेषु । सासहिः । भव । त्वाम् । ओमहे । शतक्रतो इति शतः क्रतो ।

इन्द्र । वृत्राय । हन्तवे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र त्वं वाजेषु संग्रामेषु सासहिः शत्रूणां अभिभविता
भव । ॐ सदेयं हन्तात् किमत्ययः ॐ । तदर्थम् हे शतक्रतो बहु-
कर्मन्त्र त्वाम् ओमहे याचामहे ॥ अथ परोक्षवादः । किं च-इन्द्र
देवं वृत्राय हन्तव वृत्रम् असुरं पापं वा हन्तुम् ॥ स्तामीति शेषः ।
अथ वा इन्द्रशब्दो यागिकोत्र द्रष्टव्यः । इन्द्रं परमेश्वर्ययुक्तं त्वा
वृत्राय हन्तवे ओमहे इति संबन्धः ॥

हे इन्द्रदेव । आप संग्राममें शत्रुओंके तिरस्कारक बने, इसके
लिये हे शतक्रतो । हम आपकी मार्यना करते हैं । हे इन्द्रदेव । मैं
पापका संहार करनेके लिये आपकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

धुम्नेषु पृत्नाज्ये पृत्सुतृषु श्रवःसु च ।

इन्द्र साक्ष्याभिमानिषु ॥ ७ ॥

धुम्नेषु । पृत्नाज्ये । पृत्सुतृषु । श्रवःसु । च ।

^१ तीक्ष्णगीर्वाहिना ५ । ४ । ६ । ६ में अन्नको वाज कहा है,
यथा “अन्नं वै वाजः” ॥

इन्द्र । साच्च । अभिऽमातिषु ॥ ७ ॥

हे इन्द्र पृतनाज्ये । संग्रामनामैतत् । पृतनानाम् अजनं जयो वाऽत्रेतित्युत्पत्तिः । संग्रामे । ॐ पृतनाशब्दोपपदाद् अजतेर्जयतेर्वा "अघ्न्यादयश्च" [उ० ४. १११] इति यक् प्रत्ययः । अनतिपक्षे "वा यति" इति षीमावविषयः । जयतेस्तु टिलोपो निपातनात् ॐ । घन्नेषु द्योतमानेषु घनेषु मातृव्येषु पृत्सुतृषु पृतनासु तर्तव्यासु च । ॐ पृतनाशब्दस्य सौ परंतो "मांसपृत्सूनाम् उप-संख्यानम्" इति पृदादेशः । अतिवरा संभ्रमे इति संपदादिलक्षणः विवर्णः । "उवरत्वर०" इत्यादिना ऊट् । "तत्पुरुषे कृति बहु-लम्" इति सप्तम्या अलुक् । कृदुत्तरपदमकृतिस्वरः ॐ । तथा अवासु च । अन्ननामैतत् । ॐ अत्र इत्यन्ननाम अयत् इति सत् निवृत्तम् [नि० १०. ३] ॐ । अन्नेषु च लव्यव्येषु एवम् अभि-मातिषु शत्रुषु पापेषु वा । इन्तयेद्विति शेषः । एतेषु फलेषु निमित्त-भूतेषु साच्च अस्मान् सचस्व अनुमर । ॐ पद अभिभवे । लोटि "बहुलं द्वादसि" इति शपोलुक् कुत्वपत्वे । दीयंश्चान्दसः ॐ ॥

इति तृतीयेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! संग्रामके समय, दमकते हुए घनोंको मांस करते समय सेनाओंको तरनेके समय, अन्नमांसिके अवसर पर और शत्रु वा पापोंको नष्ट करनेके अवसरों पर आप हमारा अनुमरण करिये ॥ ७ ॥

८.३ सूतीय अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६३५)

— "द्युष्मिन्तमं न ऊनये" इति सूक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणार्च्यंसिनः मयमपर्यायशस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

— "द्युष्मिन्तमं न ऊनये" सूक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणार्च्यंसी के मयमपर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥ १ ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये शुम्निनं पाहि जागृविम् ।

इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥

शुष्मिन्तमम् । न ऊतये । शुम्निनम् । पाहि । जागृविम् ।

इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतःक्रतो ॥ १ ॥

हे शतक्रतो-बहुकर्मन्द्ः नः-अस्माकं संबन्धिनः शुष्मिन्तमम्

अतिशयेन बलवन्तम् । ॐ "नाइ यस्य" इति जुडागमः ।

शुम्निनम् द्योतनवन्तं जागृविम् जागरणशीलं स्वमनिवारकम् ।

न हि सोमं पीतवतः स्वप्नसङ्गोऽस्ति अस्वप्नत्वसाधनत्वात् तस्य ।

वक्तृमहिमोपेतं सोमम् ऊतये अस्माकं रक्षायै पाहि पिब ॥

हे शतक्रतु इन्द्रदेव । आप हमारे परमबलप्रद, दमकत-रूप-
स्वमनिवारक सोमका हमारी रक्षाके लिये पान करिये ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु ।

इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतःक्रतो । या । ते । जनेषु पञ्चसु

इन्द्र । तानि । ते । आ । वृणे ॥ २ ॥

हे शतक्रतो हे इन्द्र ये तव संबन्धीनि यानि प्रसिद्धानि इन्द्रि-

याणि इन्द्रस्य इन्द्रदेवानि वा वीर्याणि दर्शनश्रवणादिलोका-

यानि पञ्चसु जनेषु देवमनुष्यपितृसुररक्षासु निपादपञ्चमेषु पदेषु

प्राज्ञेषु वा विद्यन्ते ते तव स्वयुतानि तानि आ वृणे संमजेय ।

ॐ वृद् संभक्तौ इत्यस्य लटि रूपम् ॥

हे इन्द्रदेव ! हे शतक्रो ! आपके जो दर्शन श्रवण आदिरूप
वीर्य, देव मनुष्य पितर अमुर और राक्षसोंमें है उन सबको मैं
प्राप्त करूँ ॥ २ ॥

वृणीया ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टम् ।
उत् ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व । दुष्टम् ।
उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र- तव संबन्धि बृहत् महत्-मभूत्, श्रवः अगन्-अगन्
अस्मान् गच्छतु । यद्वा उक्तरूपं सोमलक्षणम्, अग्ने स्वाम् अगन्
प्राप्नोत् । * गमेल्लिङि "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् । "इल्-
इया०" इत्यादिना तिलोपः । "मो-नो धातोः" इति-मकारस्य
नकारः । अडागमः । स्वरः । त्वं च तदनन्तरं श्रवणश्रवण-
अयोग्यं द्युम्नं द्योतमानं यशो

स्थापय । वयं तु ते शुष्मम् वलम् उत् तिरामसि सोमेन स्तोत्रेण
च वर्षयामः । * तृ सवनतरणयोः । लटि व्यत्ययेन शः ।
"अत इदातोः" इति इच्चम् । "इदन्तो मसिः" ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी विशाल अन्न हमकी प्राप्त होवे और आप
शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकते । हुए घनेको हममें स्थापित
करिये, और हम तो आपके बलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं
चतुर्थी ॥

अर्वावतो न आ गह्यथो शक्रं परावतः ।
उ लोको यस्ते अदिव इन्द्रेह-तत आ गेहि ॥ ४ ॥

(१२२) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये-भाषानुवादसहितः

अर्वाञ्चतः । नः । आ गहि । अयो इति । शक्र । पराञ्चतः ।
 उ इति । लोकः । ते । अद्रिञ्चः । इन्द्र । इह । ततः । आ । गहि

हे शक्र बलवन्निन्द्र अर्वाञ्चतः अर्वाचीनात् समीपाद् देशाद्
 अयो अपि चत्पराञ्चतः अतिदूराद् देशात् । नि । उपसर्गा-
 च्छन्दसि घात्वर्थे" इति वृत्तिः । प्रत्ययस्वरः । नः । अस्मात्
 अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ । उ इति वाक्यालंकारः । अद्रिञ्चः ।
 अत्ति भक्तपति शत्रून् इति । अद्रिर्वचः । आदृणातीति वा । तद्वत्
 ते तव यो लोकः उत्तमो लोकोस्ति हे इन्द्र ततस्तस्मादेपि लोकाद्
 इह अस्मिन् देवयजने देशे सोमपानार्थम्-आ गहि आगच्छ ।
 गम्लं सृपलं गितो । "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् । संहि-
 रादेशः । हेरपित्वाद् हिन्दुत्वात् "अनुदात्तोपदेशः" इत्यादिना
 अनुनासिकलोपः ।

हे पत्न्यान् इन्द्र । आपः समीपके स्थलमेवास्ती समीपके स्थल
 से-आर दूरके स्थलमेवास्ती दूरसे हमारे पास आइये, हे पुत्र-
 पारिन् इन्द्र । आपका जो उत्तम लोक है उस स्थानसे भी आप
 सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ४ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी पदप चुन्यवत् ।
 सा हि स्थिरो विचपणिः ॥ ५ ॥
 इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । सत् । अप । चुन्यवत् ।
 सः । हि । स्थिरः । विचपणिः ॥ ५ ॥

अङ्गेति आत्मानम् अतिवजं वा अभिमुखीकृत्य व्रते । इन्द्रो
 देवः अस्माकम् उत्पन्नं महत्-मधुतम् अन्यैः परिहर्तुम् अशक्य

भयम् अभी पद् अभिमवतिपरिहरति । ॐ अभिपूर्वात् सदेर्लङ् । बहुलवचनाद् अहमावः । "इत्थं" लोपः । संयोगान्तलोपः । "सदिरमतेः" इति पत्वम् । निपातस्य च" इति दीर्घः । ॐ । किं भयस्य अभिमवमानम् नेत्याह अप चुच्यवद् इति । भयम् अप-
 च्यावयति अस्मत्तः प्रयक्त्वस्य दूरतोपसारयति । ईदृशः सामर्थ्यस्य
 संभावनाम् आह । स हि स खल्विन्द्रः स्थिरः स्वयम् अन्यनान
 च्याव्यः विचर्षणिः विरवस्य द्रष्टा । भयकृतः मच्छन्नान् प्रका-
 शांश्च रक्षणीयान् अस्मांश्च जानातीत्यर्थः । ॐ अप चुच्यवद्
 इति । च्युङ् प्लुङ् गतौ इत्यस्मात् लुङि णिलोपे उपधाह्रस्वत्वे
 "त्वरतिमृणोति०" इत्यादिना अभ्यासस्य विकल्पेन इवम् ।
 "बहुलं छन्दसि०" इति अहमावः ॥

हे आत्मा वा अत्विज ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरा
 से नः हटाने योग्यः बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं ।
 और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देने हैं, वह इन्द्रदेव
 स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनकी च्युत नहीं कर सकता
 और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् द्विपे हुए भय देने वालों
 को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ५ ॥
 तत्र संयोगान्तलोपः पठ्यो ॥

इन्द्रश्च मृलयति नः नः पश्चादथ नशत् ।
 भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥

इन्द्रः । च । मृलयति । नः । नः । पश्चात् । अयम् । नशत् ।
 भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ६ ॥

इन्द्रश्च । च शब्दशेदये । अस्माभिः शरणं गन्तव्यो देवः
 इन्द्रश्चेत् परमैश्वर्यगुणविशिष्टः सर्वभूतस्य रक्षकश्चेद् नः अस्मान्

(१२४) अथर्ववेदसंहिता समाख्यः भाषाभूषादंसहितः २८

सुखयानि सुखयतु । ॐ मृदयनेलेटि आदि कृते रूपम् । ॐ । स
तादृशयेत् पश्चात् पृष्ठतो नः अस्मान् अभयं दुःखं न नश्वं न
मोमोतु । ॐ नशेलेट् । किं च नः अस्माकं पुरः पुरस्ताद
भद्रम् मद्गले च भवति भवतु । ॐ भवतेलेट् ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हो तो वह हमको सुख देव, यदि
इन्द्रदेव हमारे रक्षक हो तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावे, और
हमारे सामने यद्गल होवे ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करतु ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

इन्द्रः आशाभ्यः परि सर्वाभ्यः अभयम् करतु ।

जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥

स इन्द्रः सर्वाभ्य आशाभ्यस्परि परीतिपञ्चमीद्योतकः ।

दिग्भ्यो विदिग्भ्यः उपर्यधोदिग्भ्यां च अस्माकम् अभयम् भय-

नाहित्यं क्षेमं करतु करोतु । सकलदिग्गतभयपरिहारसामर्थ्यं तस्य

संभावयति । स इन्द्रः शत्रून् जेता सर्वास्वपि दिक्षु अस्माकं ये

भयकारिणः शत्रवः सन्ति तेषां सर्वेषाम् अभिमयिता विचर्षणिः

तेषां विद्रष्टा च ॥

इति तृतीयनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले
भयोंको दूर करे । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु
होंगे उनको गुप्ततासे देखने वाले हैं ॥ ७ ॥

तृतीय अनुवाकमें तृतीयं सूक्तं समाप्त (६३६)

(१२६) अथर्ववेदसंहिता समोप्य-भाषानुवादसहितः १२६

घोरः क्षिप्तं लभते तद्वत् । अतोऽस्मभ्यं धनं दातुं शक्त इति भावः ।
द्रविणोद्देशु धनस्य दातृषु पुरुषेषु दुष्टदुनिः असमीचीनाः स्तुतिः
न शस्यते, नाभिधीयते न युज्यते वा । अतः सुवार्चं प्रभूरा महे इति
पूर्वेण संबन्धः ॥ १२६ ॥

महान् इन्द्रदेवके लिये हम सुन्दर बाणी वाली स्तुतिका पूर्ण-
रीतिसे प्रयोग करते हैं, क्योंकि-सेवा करने वाले यजमानके यह-
गृहमें इन्द्रके लिये स्तुतियें उच्चारण की जा रही हैं, क्योंकि-बहु
इन्द्रदेव, घोर जैसे सोने वालोंके धनकी शीघ्रतासे ले लेता है इसी
प्रकार असुरोंके धनकी शीघ्रतासे प्राप्त कर लेते हैं [तत्पर्य यह
है, कि-तब हमको धन दे सकते हैं] और धनको प्रदान करने
वाले पुरुषोंके लिये ओम् स्तुति उपयुक्त नहीं होती अतः एव मैं
सुन्दर, बाणी, वाली स्तुतिका पूर्णरीतिसे प्रयोग करता हूँ ॥१॥

द्वितीया ॥

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गौरसि दुरो यवस्य वसुन
इहस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकरीनः सखा सखिभ्यस्तेमिदं
तम् गृणीमस्मि ॥ ३ ॥

दुरोः अश्वस्य । दुरोः इन्द्र । गोः । अस्मिन् दुरः । यवस्य ।
वसुनः । इहः । पतिः ।

शिक्षानरः । प्रदिवः । अकामकरीनः । सखा । सखिभ्यः ।
तम् । इहम् । गृणीमस्मि ॥ ३ ॥

हे इन्द्र त्वम् अश्वस्य । ॐ जातावकवचनम् ॐ अश्वानाम्

एतद्-गनादीनामपि-उपलक्षणम् । अश्वगजादिवाहनानां-दुरः
 दाता असि । ॐ इदाब् दाने । मन्दिवाशीत्यादिना [३० १.
 ३८] विधीयमान उरच् मत्पयो बहुलवचनाद् अस्मादिपि भवेति ।
 अतः-एव आकारलोपः ॐ । तथा गोः । एतद् उपलक्षणं महि-
 प्यादेः । गोमहिष्यादीनां दुरोसि । तथा यवस्य । एतद् ब्रीह्या-
 दिधान्यजातस्य उपलक्षणम् । तस्य दुरोसि । एवं वसुनः धनस्य
 हिरण्यमणिमुक्तादिरूपस्य इतः स्वामी पनिः पालरुधासि । शिञ्जा-
 नरः । ॐ शिञ्जतिर्दानकर्मा ॐ । शिञ्जाया दानस्य नेतासि ।
 यद्वा शिञ्जाविषयभूता नरो मनुष्या यस्य स शिञ्जानरः । मन्दिवाः
 भगतां दिवो दिवसा यस्य स तथोक्तः । पुराण-इत्यर्थः । अकाम-
 कर्शनः कामानां कर्शकः कामकर्शनः स न भवतीत्यकामकर्शनः ।
 स्वमेविनां कामवर्धक इत्यर्थः । एवं सखिभ्यः समानख्यानेभ्यः
 सखिभूतेभ्य ऋत्विग्भ्यः सखा मित्रभूतः एवंमहिमा य इन्द्रोस्ति
 तांताह्वाम् इन्द्रम् इदं स्तोत्रं गृणीमसि गृणीमः उच्चारयामः कुर्मः ।
 ॐ गृ शब्दे । क्रैपादिकः । “प्वादीनां ह्रस्वः” इति “ह्रस्वत्वम् ।
 “इदन्तो मसिः” इति मसं इकारः ॥ इन्द्रदेवः ।
 हे इन्द्रदेव ! आप अश्वगजान् आदि वाहनोक्तो प्रदान । करने
 वाले हैं, गौ भैंस आदिके प्रदान करने वाले हैं, जौ पान आदि
 के दाता हैं तथा हिरण्य मुक्ता आदि धनके स्वामी और रक्षक
 हैं, मनुष्योंको शिञ्जा देने वाले हैं, आपको बहुत दिने भीत गए
 हैं अर्थात् आप भर्चीन हैं, आप अपने मेवकोंके कामोंको बढ़ाने
 वाले हैं और आप समान ख्याति वाले ऋत्विजोंके मित्ररूप हैं,
 ऐसे इन्द्रदेवके लिये हम इसे स्तोत्रका उच्चारण करते हैं ॥ २ ॥

(१२८) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये भाषानुवादसहित

अतः संगृह्याभिभूत आभर मा त्वीयतो जंरितुः

काममूनयीः ॥ ३ ॥

शचीश्वः । इन्द्र । पुरुकृत । धूमत्तम । तवे । इत् । इदम् ।

अभितः । चेकिते । वसु ।

अतः । समृष्टम् । अभिभूते । आ । भर । मा । त्वीयतो ।

जंरितुः । कामम् । ऊनयीः ॥ ३ ॥

हे शचीश्वः । मज्जानामेतत् । मज्जानवन्निन्द्रः । “मर्तुवसो वा

संयुद्धा वन्दसि” इति रुत्वम् । पाष्टिकम् आमन्त्रिताद्य दातृत्वम् ।

हे इन्द्र परमैश्वर्यगुणविशिष्ट पुरुकृतः बहूनां कर्तृ । धूमत्तम, दीप्ति-

मत्तमः । “एषाम् इन्द्रादीनाम् आष्टिकं सर्वानुदात्तत्वम् । न

च “आमन्त्रितं पूर्वम् अविद्यमानं वत्” इत्यविद्यमानवत्त्वम् । “ना-

मन्त्रिते समात्ताधिकरणे” इति निषेधात् । “एवंमहानुभाव

इन्द्र अभितः सर्वत्र यद्वा वसु धनं विद्यते तद् इदं सर्वं तवेत् तवेव

स्वम् । धनजातस्य सर्वस्यापि त्वमेव स्वामीत्यर्थः । इत्थं चेकिते

भूयम् अस्माभिर्दायते । कितं ज्ञाने । अस्माद् यदन्ताद् वर्त-

माने लिटि “० अमन्त्रे ०” इति निषेधाद् आमन्त्रयामाभावे सति

ही प्रज्ञानवान्, परमैश्वर्यविशिष्ट, बहुतसे कर्मोंको करने वाले, परम प्रदीप्त इन्द्रदेव । चारों ओर जो धन है वडं, सब आपका ही है अर्थात् उस सब धनके आप ही-स्वामी हैं, इस बातको हम अच्छी तरह जानते हैं । हे शत्रुओंको दवाने वाले इन्द्र ! इस कारण आप सब धनको संग्रह करके हमें प्रदान करिये, अपने लिये आपकी इच्छा करने वाले मुक्त स्तोताको आप काम मन करिये, पूरा करिये ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो, अमति

गोशिरशिवनाः । इन्द्रेण दस्युं दुरयन्त इन्दुभिर्द्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि

एभिः । य एभिः । सुमनाः । एभिः । इन्दुभिः । निरुन्धानः । अमतिम् । गोभिः । अशिवनाः ।

इन्द्रेण । दस्युम् । दुरयन्तः । इन्दुभिः । द्युतद्वेषसः । समिषा । रभेमहि ॥ ४ ॥

॥ हे इन्द्र ! एभिः अस्माभिर्देतैः द्युभिः दीप्तैश्च पुरोडाशोद्भिभिः एवम् एभिः अस्माभिर्देतैः इन्दुभिः सोमैश्च भीतस्त्वम् अस्माकम् अमतिम् दारिद्र्यम् गोभिर्वह्नीभिः अशिवना अश्ववना धनं च निरुन्धानः निवर्तयन् सुमनाः शोभनमनाः । भवेति शेषः । वयम् इन्दुभिः अस्माभिर्देतैः सोमैः भीतेन इन्द्रेण दस्युम् उपक्षपयित्वा शत्रु दुरयन्तः दारयन्ता हिसन्तः अत एव द्युतद्वेषसः । अत्र योतिरमिश्रणार्थः । पृथग्भूतद्वेषाः अपगतशत्रवः सन्तः । इषा अन्नं इन्द्रदेवेन सं रभेमहि सं रन्वा भवेम । संगता भवेमेत्यर्थः ॥

एतेपि त्वाम् अमदन् । ते असिद्धाः सोमासः सोमा अपि त्वाम्
 अमदन् । येतुः गदा कारवे । स्तोतृनामैतत् । स्तोत्रे बहिष्मते याग-
 वते यजमानाय दशः सहस्राणि धृत्राणि । आवरकाणि तृपापाति
 अमिश्रान् वा अमर्नि मेतिरा इतं यथा भवति तथा । तिः बर्हयः । अन्य-
 वरीः । तदा नीम् इति पूर्वेण संबन्धः । तिः बर्हयति हि सा कर्मा ।
 लुकि " बहुलं छन्दस्येमाकचोगेपि " इत्यदभुवः । शपः पितृवाइ
 अनुशचत्वे लिखेः स्वरः शिष्यते । यद्वैतचयोगाद् अन्विघातः ॥
 ति हे सञ्जनोके पालक इन्द्रदेव । शंभोके नाश करनेके अंश-
 सरो पर मदकारी घृतः पुरोडाश आदि आपको इर्ष देवें और
 फलोंकी वर्ण करने वाले आपको स्तोत्र भी आपको इर्ष दें, और
 वह असिद्ध सोम भी आपको इर्ष में भरें । जिस समय आप स्तुति
 करने वाले कुशा वाले यजमानके लिये दश हजार घेरने वालों
 को अपुनर्भरुामें मारें तब ये सोम आदि आपकी आज्ञा देवें व
 णी ॥ इन्द्र नि तिम नीसत्तमीपांशान्द्रा इन्द्र इन्द्र तिम
 युधा युधमुप धेदपि धृष्णुया पुरा पुरं समिदा हंस्योज्जसा
 नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निवर्हयो नमुर्वि नाम
 मायिनम् ॥ ७ ॥

युधा । युधम् ॥ ७ ॥ य । इत् । एवि । धृष्णुया । पुरा । पुरम् ।

सम् । इदम् । इति । ओजसा । ॥ ७ ॥ अन्ते । तिमि ।

यौ पितृ । इन्द्र । सख्या । परावति । निवर्हयो । नमुर्विम् ।
 नाम । मायिनम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वे युधा नमिहरणसाधनेन बभूव आमुपेत । अयथा

योधनं युध् तेन । प्रहरणेनेत्यर्थः । ॐ संपदादिलक्षणः खिप् ॐ ।
 कीदृशेन । धृष्टगुणा धर्षकेण युधम् शत्रोरायुधं प्रहरणं वा उप
 घेदेपि । घेति पूरणः । उपैष्येव उपगच्छस्येव । अनेनास्य द्वन्द्व-
 युद्धकुशलत्वम् उक्तं भवति । एवं पुरा नगरेण । अत्र पूरशब्देन
 तत्रस्या भटा, लक्ष्यन्ते । पुरस्थैः स्वकीयैर्योद्धृभिर्मकुलभृतिभिः
 इदम् इदानीं पुरम् शत्रुनगरं पुरस्यान् योद्धृन् वा ओजसा बलेन
 संहंसि सन्त्यग् नाशयसि । यत् यस्मात् कारणात् नम्पा नम्पया
 सर्वैः महीभक्षितुम् अर्हवा सरुपा - सखिभूतया शक्त्या आपुधेन
 परावति दूरदेशे नमुचि नाम नमुचिनामपेयम्, असुरं मायिनम्
 मायावन्तं निषर्हयः निनगम् अहिंसीः । अतस्त्वम् । एवं स्तुयस
 इत्यर्थः ॥ ११ ॥

“हे इंद्रदेव । आप धर्षक महारके साधन आयुधसे शत्रुपक्ष आपुध
 पर दृष्ट ही पड़ते हैं, (इससे इंद्रदेवका 'द्वन्द्वयुद्धमें कुशली होना
 कहा) और अपने पुरमें स्थित मरुत् आदि भटोंसे शत्रुनगर
 निवासी योधाओंको बलपूर्वक मरवा देते हैं । क्योंकि—आपने
 सबसे ज़रमनीय मित्ररूपा शक्ति आपुधसे दूरदेशमें मायावी नमुचि
 को मार डाला है अत एव आपकी स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

त्वं करञ्जमुत प्रणये वर्षास्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।

त्वं शता बद्धशृङ्गस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिपूता
 ऋजिर्वना ॥ ८ ॥

त्वम् । करञ्जम् । उत । प्रणयम् । वर्षाः । तेजिष्ठया । अतिथि-
 ग्वस्य । वर्तनी ।

त्वम् । शता । बह्वृदस्य । अभिनत् । पुरः । अननुद् । परि-
 त्तम् । अजिरवना ॥ ८३ ॥ अतिशयः । अतिशयः । अतिशयः ।
 हे इन्द्र त्वं करञ्जम् एतन्नामानम् असुरं वधीः अवधी इतवान्
 असि । ॐ इन्तेर्लुङि सिचि "लुङि च" इति विधादेशः । तस्य
 अदन्तस्याद् वृद्धयभावात् । अत एव अनेकास्तवाद् इदमतिषेधा-
 भावात् । "इड ईटि" इति सिचो लोपः ॐ । अने अपि च पर्ययम्
 एतत्संहकम् असुरं वधीः । किमर्थम् अवधीरिति तत्राह । अति-
 धिवस्य अतिध्वर्षा गावो यस्यासौ अतिधिवर्षा । तस्यैराशः
 प्रयोजनाय । केन साधनेनेति उच्यते । तेजिष्ठया अतिशयेन
 तेजोवत्या । ॐ तेजःशब्दाद् "अस्मायामेधास्रजो विनिः" इति
 मत्वर्थायो विनिः । तस्माद् अतिशयनिष्ठेष्टम् । "विन्यंतो लुक्"
 इति विनो लुक् । "टो" इति ङिलोपः । निस्वाद् आद्युदात्त-
 रत्वम् ॐ । तादृश्या वर्तनी यतेन्या शक्त्या एतन्नामकेन (आयु-
 मेन) । किं च त्वम् अजिरवना एतन्नामकेन राहा मिमिक्षेत्
 परिपूताः परितोऽवर्षद्व्याः शता शताति शतसंख्याका बह्वृदस्य
 एतत्संहकस्य असुरस्य पुरः पुराणि नगराणि अभिनत्तांशि-
 तवान् । कीदृशस्त्वम् । अननुद्ः नुदति शत्रून् अपसारयतीति
 नुदः न तादृशोऽनुदः अपेक्षः । तादृशो न भवतीत्यनानुदः ।
 सर्वदा शत्रून् यविक इत्यर्थः । अथ वा अनु पश्चाद् यति स्वर्णय-
 तीत्यनुदः अनुचरः । अथवा नास्ति सोऽनानुदः । असहाय-
 मुन इत्यर्थः । ॐ दो अवलएदने । "आदेचः" इत्यास्त्वम् ।
 "आतश्चोपमर्गे" इति कर्मत्वयः । नास्ति अनुदास्य इति बहुव्रीहौ
 "नञ्मुभ्याम्" इति उत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ॐ ॥
 हे इन्द्र देव । आपने अतिधिव नाम बाले राभाके कारण परम
 तेजोमयी वर्तनी नामक शक्तिसे करञ्ज नाम बाले असुरको मार

ढाला या, और, पर्णय, नामक असुरको भी आपने-मार ढाला
था और आपने किसीकी सहायता न, लेकर-अजिश्नन् नामक
राजाके लिये बहूद, नामक असुरके सौ रत्तिन पुरोंको-नष्ट कर
ढाला या ॥ ८ ॥

नवमी ॥

त्वमेतां जन्तराज्ञो द्विर्दशान्धुनाः सुश्रवसोपजग्मुषः ।
पष्टिं सहस्रां नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या
ः दुष्पदावृणक् ॥ ६ ॥

स्वम् । एतान् । जनराज्ञः । द्विः । दश । अबन्धुना । सुश्रवसा ।

उपजग्मुषः ।

पष्टिं सहस्रां ।

पष्टिम् । सहस्रां । नवतिम् । नव । श्रुतः । नि । चक्रेण । रथ्या ।

दुःस्पदा । अवृणक् ॥ ६ ॥

॥ ०० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

एतद् इन्द्र श्रुतः विमयातस्त्वम्, अबन्धुना । अन्धुरहितेन, सहायव-
र्जितेन सुश्रवसा एतन्नामकेन राज्ञा, तिमितेन एतान्, मसिद्धान्
उपजग्मुषः उपगतान् निरोधं, कृतवतः द्विर्दश-द्विगुणितान् दशसं-
ख्याकान् । विंशतिसंख्याकान् इत्यर्थः । तथा पष्टिं सहस्रां, सह-
स्राणां पष्टिम्, पष्टिसहस्रसंख्याकान् तथा नवतिं नव नवोत्तरनव-
तिसंख्याकान् जनराज्ञः जनानां भटानां, स्वामिनः सक्तसंख्या-
कान् सेनानायकान् दुष्पदा दुष्पदनेन-शत्रुभिर्गन्तुम् अशक्येन
रथ्या रथार्हेण । ॐ "रथाइ यत्" इति, यत् ॐ । चक्रेण न्यवृ-
णक् न्यवर्जयः, अनाशयः, । ॐ वृणीवर्जने । रौपादिवः । लङि
मर्यापेकवचने "हल्ङ्यावृण्यः" इति, सिपो लोपः । "चोः कुः"
इति कुत्वम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपं मंसिद्ध हं आपने सहायकरहित सुश्रवा
 रामाके कारण उसको घेरने वाले बीस, सौठ हजार और निन्यानबे
 सेनानायकोंको चक्रसे मार डाला था शत्रु उस चक्रको पहुँच नहीं
 सकते थे ॥ ६ ॥

दर्शनी ॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्व-
 पाणम् । नि तिष्ठ तव त्विन्द्रात् । त्विन्द्रात् ॥ ७ ॥
 त्वमस्मै कृतसमतिथिग्वमायुं महाराज्ञे यूने अरन्धनायः

त्वम् । आविथ । सुश्रवसम् । तव । कृतिभिः । तव । त्रामभिः ।

इन्द्र । तूर्वपाणम् ।

त्वम् । अस्मै । कृतसम् । अतिथिग्वम् । आयुम् । महो । राज्ञे । यूने ।

अरन्धनायः ॥ १० ॥

हे इन्द्र त्वम् सुश्रवसम् पूर्वमन्त्रे अवन्धुनाः सुश्रवसेत्युक्तम्
 असंहाये दुर्मलम् येनन्नेमानं राजानं तव कृतिभि रक्षाभि
 आविथ रक्षयि । तथा तस्यैव राज्ञोर्यायः तूर्वपाणम् एतत्संज्ञकं
 राजानं तव त्रामभिः पालनेः । आविथेति संबन्धः । ॐ त्रै-
 पालने । “आदेचः” इति आश्रयम् । “आतो मनिने” इति
 मनिने । निष्वाद् आश्रयदात्तत्वम् । एवं त्वम् अस्मै सुश्रवसे
 राज्ञे । कीदृशाय । महो महते यूने वयास्यायुं युवराजधृताय सुश्र-
 वसे कृतसम् अतिथिग्वम् आयुं च अरन्धनायः वशम् अनैषीः ।
 ॐ रन्धनं नशीकरणं करोति । “तत् करोति” इति णिच् ।
 “इष्टवर्षणी मातिपदिकस्य” इति इष्टवर्षावाहितोपे । त्विन्द्रात् सिपि
 दीधरद्वान्दसः ॥

हे इन्द्रदेव! आपने सुश्रवा नामक राजाकी अपनी रक्त शक्तियोंसे रत्ना की है और उसी राजाके लिये तूर्वयाण नामक राजाका पालकशक्तियोंसे पालन किया है। इस युवराज सुश्रवा राजाको कुंसे अतिथिगु और आपुको सौंप दिया था ॥ १० ॥

य उदचीन्द्रदेवगोपाः संखायस्ते शिवतमाः असाम् ॥

त्वां स्तोषाम् त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं

दधानाः ॥ ११ ॥

ये । वतुश्च । इन्द्र । देवगोपाः । संखायः । ते । शिवतमाः ।

असाम् । स्तोषाम् । त्वया । सुवीराः । द्राघीयः । आयुः ।

प्रतरं । दधानाः ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ये वयम् उदचि उदकं यज्ञसमाप्तौ वर्तमाना देवगोपाः

देवेन त्वया पालिताः ते तव संखायः सखिवद् अत्यन्तमियाः

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

अत एव शिवतमा असाम् अतिशयेन कन्याणां अभूमः ॥ १० ॥

(१३८) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये-भाषानुवादसहितः ६०१

हं इन्द्रा-जो हम हैं बड़ा इस यज्ञकी समाप्तिके समय आपसे देवतासे रक्षित रहे हेमा आपकी मित्रकी समान परम प्रिय हैं अतः एतद्वय परम कल्याणको प्राप्त होवें । हमें यज्ञसमाप्तिके अनंतर भी आपकी स्तुति करते रहें । आपकी स्तुति करनेसे आपकी दया पानेके कारण हम शोभनः पुत्रोंसे सम्पन्न रहें, दीर्घायु पावें आदि श्रेष्ठतासे तरने । प्रीत्यः आयुको प्राप्ते ॥ ११ ॥ अथवा

तृतीय अनुश्रवणमनुयुक्तसमाप्त (६३७) ।

अतिरात्रे क्रतु मध्यमपर्याय ब्राह्मणाच्छेदसिन् शस्त्रे "अभि त्वा हृषभा सुते" इत्यादीनि चत्वारि सूक्तानि । चित्तियुक्तानि । चतुर्थसूक्तस्ये अन्तिमा परिधानीया । मन्त्रिमा परिधानीया । सूत्रितं हि । "मध्यमे प्रिवृदसि" इति मन्त्रस्य "अभि त्वा हृषभा सुते" [१०] अभि म गोपति गिरा [४] इति स्तोत्रियानुरूपा । बहिर्वा यस्त्वपत्याय [२०, २५, ३५] इति परिधानीया । मोघो पीतिम् [२०, २५, ७०] इति "वाङ्मया" इति [१०, ४, २०] ॥ अथवा अतिरात्रे क्रतु मध्यमपर्याय ब्राह्मणाच्छेदसिन् शस्त्रे "अभि त्वा हृषभा सुते" इत्यादीनि चत्वारि सूक्तानि । अन्त्येऽपश्यः पर्यासः इति [१०, ४, २०] सूत्रितत्वात् सर्वत्र त्रिषु पर्यायेषु स्तोत्रियानुरूपा भवाम् । अथ सूक्तत्रयं शांतिनीयम् । अतः "आ तू न इन्द्र मद्रयक्" [२०, २३] इत्यादिमूक्तत्रयस्य मध्यमपर्यायशस्त्रे विनियोग वतन्तः ॥ अन्त्येऽपश्यः "अरवावृत्ति" [२०, २५] इत्यस्य तृतीयः सूक्तस्य अन्तिमा परिधानीयात्वेन सूक्तता सूत्रिता ॥ अथवा अतिरात्रे क्रतुके मध्यमपर्याय ब्राह्मणाच्छेदसिन् शस्त्रे "अभि त्वा हृषभा सुते" आदि चारू सूक्तानि विनियोगात् । चतुर्थसूक्तकी अन्तिम आवा "बहिर्वा यस्त्वपत्याय" अथवा परिधानीया है । इस नियमसे सूक्तसमाप्त भी है, कि- "मध्यमे प्रिवृदसि" इति मन्त्रस्य "अभि त्वा हृषभा सुते (१) अभि म

[अ० ३ सू० २२] द्रव्यं - विशं कायदम् (१३६)

गोपनिगिराः (१४) इति स्तोत्रियानुरूपं । चर्हिर्वा यत्स्वपत्याय
(२० । २५ । ६) इति परिधानीया प्रोप्रां पीतिम् (२०१२५७)
इति याज्या (वैतानमूत्र ४ । २) ॥

“ऊर्ध्वं सर्वत्र शीलिं सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः । पहिले
सर्वत्र तीन सूक्तों को कहे, फिर अन्त्य पच्छः पर्यास को कहे” इस
प्रकार वैतानमूत्र ४ । २ में सूचित होने के कारण ‘सर्वत्र’ तीनों
पर्यायों में स्तोत्रियानुरूपों में पहिले तीनों सूक्तों को कहना चाहिये ।
अतः “आ तू न इन्द्र मद्रथक” (२० । २३) आदि तीन सूक्तों
का मध्यमपर्यायशस्त्र में विनियोग उपपन्न है । अत एव “अश्वा-
वृत्ति” (२० । २५) इस तृतीय सूक्त की अन्तिम श्रुति को सूत्र-
कार ने परिधानीया बताया है ।

अभि त्वा वृषभा सुत सुत सूत्रामि पीतय ।

तृप्ता व्यश्नुही मदम् ।

तृप्ता वि अभि त्वा मदम् ।

हे नर्पक इन्द्रदेव ! हम सोम के अभिपूत होने पर अभिपूत
आदिसे संस्कृत सोम का पान करने के लिये आपको संयुक्त करते

हे । आप उत सोमसे वस इमिये और आप उत मदकरी सोमको
व्याप्त कर लीजिये ॥ १ ॥

॥ द्वितीया ॥

मा । त्वा । मूरा अविष्यवो । मोपहस्वानः । आ । दधन् ।

माकी ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥

मा । त्वा । मूरा । अविष्यवो । मोपहस्वानः । आ । दधन् ।

माकीम् । ब्रह्मद्विषः । वनः ॥ २ ॥

हे इन्द्र देव । त्वाम् अविष्यवः अवि कर्तुम् इच्छन्तः । अयं वा

आत्मानं पालयितुं कामयमानाः । स्वदनुग्रहम् अन्तरेण आत्मानं

रक्षन्तः । ॐ अविशब्दात् यच्च “क्याचलन्दसि” इति उभस्यपः ।

प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ॥ अत एव मूराः मूढा आत्महितो-

पायम् अजानन्तः । ॐ मूरशब्दस्य मूढशब्दपर्यायतां यास्क

आह । ‘मूरा अमूर न वयं विक्रियः ॥ मूढाः पयं स्मः । अमूढ-

स्त्वम् असीति [नि० ६. ८] ॥ मा दधन् मा हिंसन्तु । तथा

उपहस्वानः उपहसनकतारोपि त्वां मा दधन् । ॐ उपपूर्वात् हसतेः

“अन्वेभ्योपि हरयन्ते” इति वनिष् । कृदुत्तरपदमकृतिस्वरेण मयो-

दात्तः ॥ त्वं च ब्रह्मद्विषः ब्रह्मणद्वेष्टन् माकीम् । माशब्दपर्यायो

माकीशब्दः । मा वनः मा भजेयाः । ॐ वनः पण संभक्ती । लङ् ।

मयमकवचनम् । “न मारुयोगे” इति अटभावः ॥

हे इन्द्रदेव । आपके बिना अपनी रक्षा करना चाहने वाले
मूढ पुरुष आपका हनन न कर सकें, तथा इसी उद्देशे वाले भी
आपको न दबा सकें, आप ब्रह्मद्विषियों का सेवन न करिये । ३।
तृतीया ॥
इह त्वा गोपरीणसा महः मन्दन्तु राधसे ।

सरो गौरो यथा पिवता ३ ॥

इह । स्वा । गोपरीणसा । महे । मन्दन्तु । आपसे ।

सरः । गौरः । यथा । पिवता ३ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वाम् इह यागे गोपरीणसा । ॐ विकारे प्रकृति-
शब्दः ॐ । गोविकारेण पयसा मिश्रितेन सोमेन । ॐ परिपूर्वाद्
व्याप्तिकर्मणो नसतेः विषय । "अन्येषामपि दृश्यते" इति दीर्घः ॐ ।
महे महते आपसे घनाय मन्दन्तु श्रुतिर्गो मादयन्तु । त्वं च सरः
सरणीलीलम् उदके सरःस्थं वा गौरः गौरमृगो यथा अस्पन्त-
तुपितः सन् निकामं पिवति तथा पिव ॥

हे इन्द्र । इस यागमें श्रुतिव्रज आपको गौदुग्ध मिले हुए सोम
से महाघनकी प्राप्तिके लिये इपित् करें और आप भी प्यासा
गौरमृग सरोवरके जलको जैसे पीता है तिस प्रकार सोमको
पीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अभि प्र गोपतिं गिरिन्द्रमर्च यथा विदे-

सूनु सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

अभि । प्र । गोपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।

सूनुम् । सत्यस्य । सत्पतिम् ॥ ४ ॥

हे स्तोता गोपतिम् स्वर्गस्य गवां वा स्वामिनम् इन्द्रम् यथा
येन प्रकारेण विदे अस्मान् स्वीयंतया जानाति । ॐ विदेर्व्यत्य-
येन लिङात्मनेपदम् । द्विर्वचनमकरणे "द्वन्द्वसि वेति वक्तव्यम्"
इति द्विर्वचनाभावः । "यावयथाभ्याम्" इति निघातप्रतिषेधः ।

(१४२) अथवेवेदसंहितासभाष्य-भाषानुवादसहित ॥ ६ ॥

मत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ॐ । त्र्यां । गिरा । अभि । मार्च । गिर्येण
अभ्यर्च पुनय । कीदृशम् इन्द्रम् । सत्यस्य सत्यफलस्य यज्ञस्य
सत्यस्यैव वा मनुम् पुत्रस्यानीयम् । यत्र यज्ञस्तथेन्द्र इति पितृ-
पुत्रवद् अथर्वहिनसंबन्धात् मनुत्वोपपत्तारः ॥ सत्यतिम् । सताः स-
सेव कानां पालयितारम् ॥ ४ ॥
हे स्तोत्रः । स्वर्गके स्वामी इन्द्रदेव जिस प्रकार हमको अपना
सम्भूत तमी वाणीसे आप पुनकी पूजा करिये । यह इन्द्रदेव सत्य
फल वाले यज्ञके पुत्रस्यानीय हैं । जहाँ यज्ञ होता है तहाँ इन्द्र
होते हैं इस प्रकार पिता पुत्रकी समान अथर्वहित सम्बंध होने
से पुत्रत्वका उपचार है । और यह इन्द्रदेव सम्भजन सेवकोंका
पालन करने वाले हैं ॥ ४ ॥

आ । हरयः । ससृजिरे । अरुपीः । अधि । वहिपि ।
यत्र । अभि । समुज्जवामहे ॥ ५ ॥

आ । हरयः । ससृजिरे । अरुपीः । अधि । वहिपि ।
यत्र । अभि । समुज्जवामहे ॥ ५ ॥
अरुपीः अरुण्यः । अरुणम् इति रूपनाम् । आरीचमानाः ।
आह् पूर्वाद् । रुचिर्वाहुतकाद् । उच्यते । टिलोपः । आदीहस्वम् ।
“अन्येनो ङीप्” । टणादिच्वाद् आद्युदात्तः ॐ । उक्तरूपा हरयः
अधि वहिपि । ॐ अधि । समुज्जवामहे । ॐ विहिपि आस्तुते
आ ससृजिरे आससृजिरे । आसृजन्तु । इन्द्ररथम् इति शेषः । यम
यस्मिन् विहिपि इन्द्रम् अभि संनवामहे । अभिसंस्तुयः । ॐ
स्तुती । ॐ “आदितमस्य पिच्व” इति पिच्वोद् घातुस्वरेण आद्यु-
दात्तः ॐ ॥ ५ ॥

रूपवान् घोड़े कुशाओंके पिछाने पर इन्द्रके रथको उन कुशाओं
पर लावे जहाँ किन्तु हम स्तुति कर रहे हैं ॥ ५ ॥
पृष्ठी ॥

इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु
यत् सीमुपहरे विदत् ॥ ६ ॥

इन्द्राय । गावः । आशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ।
यत् । सीम् । उपहरे । विदत् ॥ ६ ॥

वज्रिणे वज्रयुक्ताय इन्द्राय गावो मधु मधुरम् आशिरम् आश्र-
यणसाधनं मयः दुदुहे दुहते । दुहप्रकरणे "बहुलं चन्दसि"
इति लिटि रुट् । वचनव्यत्ययः । मत्पर्यस्तरेण अन्नोदात्तः । महा
इरेच इकारलोपरद्धान्दसः । चिन्त्वाद् अन्तोदात्तः । यत् यदा
उपहरेः सप्तीपे वर्तमानं मधु । मधुर्न स्वानुभूतः सोमं । सीम्-सर्वमः
विदत् अ. इन्द्रो लभते नी । विदत् लोभेति । लृटिच्वाह् अह् ।
"बहुलं चन्दसि०" इति अडभावः । "निपातपद्यदि०" इत्या-
दिना निधानप्रतिषेधः । मत्पर्यस्तरेण अन्नोदात्तः ॥

ननु इन्द्रोऽपि ननुवाकेऽप्यमं सुक्तम् ॥

जब इन्द्रदेव ममीयमें वर्तमान मधुकी समान स्वादु, सोमकी
सब ओरसे पाते हैं तब वज्रधारी इन्द्रके लिये गाँव मधुर दुग्धको
दुहती हैं ॥ ६ ॥
स्वायं अनुवाकमे पञ्चमं सूक्तं समाप्तं (६३८)

"आ तू न इन्द्र मद्रयक्" इति सूक्तस्य अनिरात्रे मध्यमे रात्रि-
पर्याये ब्राह्मण, च्छंसिनः शस्त्रे विनियोग उक्तः ॥

"आ तू न इन्द्र मद्रयक्" सूक्तका अनिरात्रके मध्यम रात्रि-
पर्यायमें ब्राह्मण, च्छंसिमीके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

(१४४) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये भाषानुवादसहितः ७००

तत्र प्रथमोऽङ्कः ॥

आ तू न इन्द्रं मद्रयन्धुवानः सोमपीतये ।

हरिभ्यां याहाद्रिवः ॥ १ ॥

आ । तू । नः । इन्द्र । मद्रयन्धु । वानः । सोमपीतये ।

हरिभ्याम् । याहि । अद्रिवः ॥ १ ॥

हे अद्रिवः । अद्रिरिति वज्रनाम इन्द्र हुवानः ह्यमानस्त्वं मद्रयन्धु

मदभिमुखः सन् नः अस्मदीये यज्ञे सोमपीतये सोमपानार्थम् हरि-

भ्याम् आ याहि आगच्छ । अमद्रयन्धु इति । याम् अश्नतीति

“अद्रिवग्दृष्टकू” इत्यादिना विवन् प्रत्ययः । “प्रत्ययोत्तरपदयोश्च”

इति अस्मच्छब्दस्य कवचने पर्यन्तस्य सादेशः । “विष्वक्देवयोश्च

देवद्रव्यश्च तावत्प्रत्यये” इति टेः अद्रि इत्यादेशः । अद्रिसघघोरन्तो-

दात्तनिपातनं कृत्स्वरनिवृत्त्यर्थम् । इति वचनान्न अद्रपादेशोऽ

न्तोदात्तः । यणादेशो कृते “उदात्तस्वरितयोर्णः” इति ऋणः

स्वरितत्वम् । “विन्प्रत्ययेयस्य कुः” इति कृत्वम् ।

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आहानं क्रिये भाते द्रुप आपो हमारे

अभिमुख होकर हमारे यज्ञमें सोमपान करनेके लिये हरि नामक

घोड़ोंके द्वारा आइये ॥ १ ॥

हे इन्द्र-नः अस्मदीये-यज्ञे होता एतन्नामिकः अतिक् अतिव्यः
 प्राप्तकालः सन् । "इन्द्रसि-यम्" इति-यम् । यणादेशः ।
 मृत्यपस्वरः । सत्तः निपण्योभूते । कर्त्तरि-क्तः । सर्व-
 विधीनां इन्द्रसि विकल्पितस्वाद् निष्पन्नत्वाभावः । तथा बहिः-
 वेद्याम् आनुपक् अनुपक्तं परस्परसंबद्धं यथा भवति तथा तिस्तिरे
 स्तीर्णम् अभूत् । स्तवः कर्मणि लिटि रूपम् । "अन इदातो"
 इति इत्थम् । द्विवचनम् । "शर्पिर्वाः स्वयः" इति तृकारस्य शेषः ।
 "लिठस्तभयोरेशिरेच्" इति ऐशं इत्यादेशः । एवं मानः
 मातःसवने अद्रयः ग्रावाणः सोमाभिपवाचार्थम् अयुजन् संगता
 अभूवन् ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे यज्ञमें होतानांमिकः अतिविजं संमणं आने पर
 वपस्थित-है तथा वेदीमें कुशाभी परस्पर मिले हुए विद्ये हुए हैं ।
 इसी प्रकार मातःसवनमें सोमाभिपक्के पत्परः भी सोमका अभि-
 वष करनेके लिये संगत होगए हैं ॥ १॥ इति ॥
 इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्ते आ बहिः सीदन्ती
 वीहि शूर पुरोलाशम् ॥ ३ ॥
 इमा । ब्रह्म । ब्रह्मवाहः । क्रियन्ते । आ । बहिः । सीदन्ती ।
 वीहि । शूर । पुरोलाशम् ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मवाहः । ब्रह्मणा मन्त्रेण-स्तोत्ररूपेण प्राप्यते इति ब्रह्म-
 वाहाः । तस्य संबोधनम् । तादृश इन्द्र तुभ्यम् इमा इमानि ब्रह्म
 ब्रह्माणि स्तोत्राणि अस्माभिः क्रियन्ते । अतस्त्वं बहिः आ
 सीद उपविश । हे शूर शौर्योपित इन्द्र आसन्नस्त्वं-पुरोलाशम्
 अस्माभिर्दीयमानं वीहि भक्षय ॥

(१४६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवार्तसहितः ६०२

“हे मन्त्रोसे प्राप्त होने योग्य ब्रह्मवाह इन्द्र । हिम आपके लिये
 इन स्तोत्रोक्तों के र रहे हैं, अतः एवं आप कुशाग्र पर विराजिये ।
 हे शरतासम्पन्न इन्द्र । विराजमान हुए आप हमारे दिये हुए
 पुरोडाशका मन्त्रण करिये ॥ ३ ॥ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवार्तसहितः ६०२
 रारन्विः सवनेषु ए पुपु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
 उक्थे विवन्द गिर्वणः ॥ ४ ॥ “वृत्रहो नृपतिरावहन्”
 ररन्विः सवनेषु ए पुपु स्तोमेषु वृत्रहन् ।
 ॥ ४ ॥

उक्थेपुः । इन्द्रः । गिर्वणः ॥ ४ ॥ “वृत्रहो नृपतिरावहन्”
 । हे गिर्वणः गीर्भिः स्तुतिभिर्वनेगीय इन्द्र । वृत्रहन् वृत्रहृत् इन्द्रः
 हो इन्द्र नमः । अस्मीकं सवनेषु गिर्वणिः पुंशुः क्रियमाणेषु स्तोमेषु
 स्तोमेषु उक्थेषु शस्त्रेषु च ररन्विः रमस्कः । अमते लोहितः “बहुलं
 धन्दसि” इति शपः स्तुः ॥ “वाहिधन्दसि” इति हेः पितृवेन
 ॥ ४ ॥

इन्द्र । आप तीनों सवनाधीन के जाने वाले स्तोत्रार्चन और शस्त्रों
 में भी हमण करिये ॥ ४ ॥ अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवार्तसहितः ६०२
 पञ्चमी ॥

मृतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसं स्पातम् ।
 इन्द्रं वरसं नः मातरः ॥ ५ ॥ “वृत्रहो नृपतिरावहन्”
 मृतयः । सोमपामुरुं । शवसं । रिहन्ति । शवसः । पितृभिः ।
 इन्द्रम् । वरसम् । नः । मातरः ॥ ५ ॥ “वृत्रहो नृपतिरावहन्”

मृतयः अस्माभिः क्रियमाणाः स्तुतयः । ॐ मनः काने इत्य-
स्मात् कर्मणि, "मन्त्रे वृष०" इत्यादिना क्तिन्नुदात्तः ॥ १ ॥ उक्तम्
महान्तं सोमपाम् सोमस्य पातारं शवसः बलस्य पतिम् स्वामि-
नम् इन्द्रं रिहन्ति लिहन्ति प्राप्नुवन्ति । तत्र दृष्टान्तः । वत्सं न
मातरः यथा वत्सं मातरो गावो लिहन्ति तद्वत् ॥ २ ॥

हमारी की हुई स्तुतिर्ये सोमका पान करनेवाले बलके स्वामी
महान् इन्द्रदेवको इस प्रकार प्राप्त होती है, जिसमें मेकार बहदेको
गौएँ चाटती हैं ॥ ५ ॥

॥ ५ ॥ पृष्ठी ॥ ॥ १ ॥ ॥ १ ॥ ॥ १ ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे ।

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

सः । मन्दस्व । हि । अन्धमः । राधसे । तन्वा । महे ।

न स्तोतारं निदं करः ॥ ६ ॥

— हे इन्द्र-स, तया विषम्यं तन्वा त्व शरीरेण, निमित्तेन शरीर-

बलाय अन्धसः अन्नस्य सोमलक्षणस्य पानेन मन्दस्व-रूपो भव ।

ॐ मदेमोदार्थस्य लोटि-रूपम् । नात्र विश्वयोगाद्, निधानप्रति-

पेयः । हेरन् समुच्चयार्थत्वात् ॥ महे राधसे अनाय-प्रभूतय-

नाय-च । हर्षणस्य प्रयोजनद्वयम् । हर्षण्येन्द्रस्य शरीरवृद्धिः

हविःप्रदातृयजमानस्य धनलाम्ब्य-हि । किंच ते स्तोतारं मां निदं

परकृतनिन्दायै । ॐ संपदादिलक्षणः क्विप् । आगमानुशास-

नस्य अनित्यत्वान्नुममावर्त्त ॥ न करः नाकार्पी । ॐ करो

तेलु डि च्लेरड् ॥ ॥ = ॥

हे इन्द्रदेव ! ऐसे आप शारीरिक बलके लिये सोमरूपी अन्न
के पानसे इधमें भरिये, बहुनमे धनके लिये भी हर्षमें भरिये ।

(६४६) अथर्ववेदसंहिता समाख्ये-आषाढिर्वाहसंहिता ६०१

[हर्म्ये भरनेके दो मयोजन है; १ हर्म्ये भरने हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २ हविषप्रदाना यजेमानको धनकी प्राप्ति] और सुभे स्तोत्रीकी दूसरेकी निदामे न लगाइये ॥ ६॥

वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे ॥

उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥

ययम् । इन्द्र । त्वायवः । हविष्मन्तः । जरामहे ।

उत । त्वम् । अस्मैऽयुः । वसोऽस्ति ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना नृपः हविष्मन्तः । इदित्सतेन सोमलक्षणेन हविषा तदन्तः सन्तो जरामहे त्वां स्तुमः ।

यव इति । इन्द्रार्थि कयचि मयिष्यन्तस्य त्वादेशो "कयारब्धसि" इति उपत्यये त्वयव इति प्राप्ता ।

"युष्मदस्मदोरनादेशो" इति अभिभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । प्रत्ययस्वरः ।

उत अपि च हे वसो सर्वस्य वासके इन्द्र त्वम् अस्मयुः अभिमनप्रदानाय अस्मान् कामयिता भव ॥

हे इन्द्रदेवः आपकी कामना करते हुए हम, दो जाले वाली सोमरूपी हविसे सम्पन्न होकर आपकी स्तुति करते हैं । और

हे वासक इन्द्रदेव आपकी हमें अभिमन फल देना चाहिये ॥

अष्टमी ॥

यार अस्मद् वि सुमुत्रो हरिषिषात्राह याहि ।

इन्द्र स्वधावो मस्वेह ॥ ८ ॥

मा । आरे । अस्मद् । वि । सुमुत्रः । हरिषिषा । अर्वाह । याहि ।

इन्द्र । स्वधावः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिमिय । इसी एतन्नामानावरवा प्रियायस्य स तथोक्तः ।
तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः । आरे । दूरे मा । वि मुमुषुः ।
हरिमियेत्युक्तत्वाद् रथयुक्तावरवा-पो । विमोचय किं तु रथारुढ
एव अवीर्य अस्मद्भिमुखं याहि । आगच्छ । आगत्य च हे स्व-
धावः । हविर्लक्षणेनान्नेन तद्वाग्निन्द्र इह अस्मिन् । दैवयजनं मत्स्व
सौमयानेन-हृष्टो भव । छिमदिस्तुतीत्यादि । अस्य लोटि "बहुलं
छन्दसि" इति विकरणस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अरिधमामव-
त्वाद् अनिघातः ॥ ८ ॥

हे हरि नामक अश्वोक्ता प्रिय समंभने वाला इन्द्र । आपे आपने
रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किंतु रथ पर आरुढ़
ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे हविरूप अन्नके पात्र
इन्द्र ! इस देवयागमें सोमपानसे प्रसन्न हजिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अवीर्यं त्वां सुखे रथे बहतामिन्द्र केशिनी ।
घृतस्नू बर्हिः आसदे ॥ ९ ॥

अवीर्यम् । त्वां । सुखे । रथे । बहताम् । इन्द्र । केशिनी ।
घृतस्नू इति घृतस्नू । बर्हिः । आसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां सुखे शरीरापीडनेन सुखकरं रथे केशिनी
केशवन्ती रस्यप्रदेशे लम्बमानकेशयुक्ता घृतस्नू श्रमेजनितस्त्र-
योदकस्राविण्णावरवा आसदे आसदनीयं बर्हिः अवीर्यम् अभि-
मुखं बहताम् मापयताम् । छि घृतस्नू इति । घृतशब्दात् । सु-
प्रसवणे इत्यस्मान् संपदाविलक्षणः निवेप । घृतस्य रसु अवीर्य

[हर्षमे धरनेके दी मयोजन है; १ हर्षमे भरे हुए इन्द्रके शरीरकी अभिवृद्धि और २ हविःप्रदानो यज्ञमार्गको धनको प्राप्ति] और सुभक्त स्तोत्रीकी दूसरेकी निदामर्ग न लगाइये ॥ ६ ॥

वयमिन्द्र त्वांयवो हविष्मन्तो जरामहे ।
उत त्वमस्मयुवसो ॥ ७ ॥

वयम् । इन्द्र । त्वायवः । हविष्मन्तः । जरामहे ।
उत । त्वम् । अस्मयुवः । युवसो इति ॥ ७ ॥

हे इन्द्र त्वायवः त्वां कामयमाना यवः हविष्मन्तः । हिसितने सोमलक्षणोन हविषा तदन्तः सन्तो जरामहे त्वां स्तुमः । ॐ त्वायव इति । इन्द्रायि यवेचि मययन्तस्य स्वादेशो "वयास्त्वन्दसि" इति उपस्यये स्वयव इति प्राप्ता । "मुष्मदस्मदोरनादेशो" इति अभिभक्तावपि हलादौ व्यत्ययेन आत्वम् । मययस्वरः ॐ । उत अपि च हे नमो सर्वस्य वासिके इन्द्र त्वम् अस्मयुः अभिमतप्रदानाय अस्मान् कामयिता भव ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी कामना करत हुए हम, दी जनि वाली सोमरूपी हविसे सम्पन्न होकर आपकी स्तुति करत है । और हे वासक इन्द्रदेव ! आपकी हमे अभिमत फल देना चाहिये ॥

मार् अस्मद् वि मुमुवो हरिमिवाद् याहि ।
इन्द्र स्वभावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

मार् । अस्मद् । वि । मुमुवः । हरिमिवाद् । याहि ।
इन्द्र स्वभावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥

इन्द्र । स्वधांश्वः । मत्स्व । इह ॥ ८ ॥

हे हरिमिय । इसी एतन्नामानावश्वौ प्रियायस्य स तपोक्तः । तस्य संबोधनम् । अस्मत् अस्मत्तः-आरे, दूरे मा, वि सुमुचः । हरिमियेत्युक्तत्वाद् रथयुक्तावश्वौ मा विमोचय किं तु, रथारुह एव अर्वाह् अस्मद्भिमुखं याहि आगच्छ । आगत्य च हे स्वधावः हविर्लक्षणान्मेत तर्द्वाभिन्द्र इह अस्मिन् दैवयजने मत्स्व सोमपानेन हृष्टो भव । छिमदिस्तुनीत्यादि । अस्य लोटि “बहुलं छन्दसि” इति विकरणस्य लुक् । आमन्त्रितस्य अविद्यमानवत्त्वाद् अनिघतिः ॥

हे हरि नामक अश्वोको मिय समझने वाले इन्द्र । आप अपने रथमें जुड़े हुए घोड़ोंको दूर पर मत छोड़िये, किन्तु रथ पर आरुह ही हमारे अभिमुख आइये । और आकर हे हविरूप अन्नके पात्र इन्द्र । इस देवयागमें सोमपानसे मत्स्व हजिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अर्वांश्च त्वां सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना ।
घृतस्नु वह्निरासदे ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चम् । त्वा । सुखे । रथे । वहताम् । इन्द्र । केशिना ।
घृतस्नु इति घृतस्नु । वह्निः । आसदे ॥ ९ ॥

हे इन्द्र त्वा त्वां सुखे शरीरार्पादनेन सुखकरे रथे केशिना केशवन्तौ मन्व्यमदेशे लम्बमानकेशयुक्ता घृतस्नु अमन्त्रितस्व-दोदकसाविष्ठावश्वो आमदे आसदर्नायं वह्निः अर्वाञ्चम् अभिमुखं वहताम् माषयताम् । छ घृतस्नु इति । घृतजन्तान् शुभसिक्वणे इत्यम्मान् मण्डादिलक्षणः विवप् । घृतस्य रसु मवर्त्ता

ययोस्ताविति बहुव्रीहौ पूर्वपदमकृतिस्वरेण मध्योदात्तः । आसदे ।
कृत्यार्थे केन मत्त

हे इन्द्रदेव । शरीरको सुख देने वाले रथमें विराजमान आप
को लम्बे अयाल वाले, अमकी चूँदीको बहाने वाले घोड़े, बैठने
योग्य कुशासन पर हमारे अभिमुख लावे ॥ ६ ॥

“उप नः सुतमा गहि” इति सूक्तस्य । अनिरात्रिर्वेदी मध्यमे
रात्रिपर्याये ब्राह्मणाच्छंसिसंस्तुते विनियोगः उक्तः ॥ १॥

“उप नः सुतमा गहि” इस सूक्तका अनिरात्रिर्वेदी मध्यमे रात्रि-
पर्यायके ब्राह्मणाच्छंसिसंस्तुते विनियोग कहा है ॥ १ ॥

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् ।
हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥

उप । नः । सुतम् । आ । गहि । सोमम् । इन्द्र । गौऽवाशिरम् ।
हरिऽभ्याम् । यः । ते । अस्मयुः ॥ १ ॥

हे इन्द्र नः अस्मदीयं सुतम् अभिपुत गवाशिरम् गव्यं यथा
आश्रयणसाधनं यस्य तम् । आङ्पूर्वात् श्रीणातेः क्विप्ति
“अपस्पृशेयाम् आनृचुः” इत्यादिना शिर इत्यादेशः । बहुव्रीहौ
पूर्वपदस्वरः । ते सोमं मेति उपो गहि समीपे आगच्छे । यतः
हरिभ्याम् अश्वोभ्यां युक्तः तौ तत्र रथः अस्मयुः अस्मान् काम-
यमानो वर्तते ॥

हे इन्द्रदेव । हमारे अभिपुन गवाशिरः (गौके-दधमे-औदे-
हुए) सोमके मयीप आइये, क्योंकि-हरि-नामक अश्वोंसे जुता
हुआ आपका रथ हमारी कामना कर रहा है ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तमिन्द्रमदमा गहि वहिष्ठां ग्रावभिः सुतम् ।

कुविन्न्वस्य तृणवः ॥ २ ॥

तम् । इन्द्र । मदम् । आ । गहि । वहिः । ज्याम् । ग्रावऽभिः । सुतम् ।

कुवित् । नु । अस्य । तृणवः ॥ २ ॥

हे इन्द्र तं प्रसिद्धं मदम् पदकरं वहिष्ठाम् वहिषि स्थितं ग्रावभिः
पापाणैः सुतम् अभिपुतं सोमम् अभिलक्ष्य आ गहि आगच्छ ।
नु क्षिप्रम् अस्य सोमस्य पानेन कुवित् । बहुनामैतत् । प्रभूतं
यथा भवति तथा तृणवः, तृणो मवः । ॐ त्वं प्रीणने इत्यस्य
लेटि अडागमः । व्यत्ययेन श्नुविकरणः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुशाग्रौ पर स्थित, पदकारी, पापाणोसे
अभिपुत सोमको लक्ष्यमें, रख कर आइये और शीघ्र ही इस
सोमके पानसे अतिवृत्त हजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

इन्द्रमिथा गिरौ ममाच्छागुरिपिता इतः ।

आश्रुते सोमं पीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् । इत्था । गिरः । मम । अच्छ । अगुः । इपिताः । इतः ।

आश्रुते । सोमं पीतये ॥ ३ ॥

इन्द्रम् अच्छ इन्द्रम् अभिलक्ष्य मम गिरः स्तुतिरूपा वाचः
इपिताः अस्माभिः मेरिताः सत्पः इतः अस्माद् देवयजनसंक्रा-
शब्दं इत्या इत्यम् उच्चार्यमाणप्रकारेण अगुः प्राप्ताः । ॐ इन्द्र-
शब्दात् “या हेतौ च च्छन्दसि” इति व्यत्ययेन यामत्ययः । इदम्

“एतेतौ रथोः” इति इत् इत्यादेशः । मत्ययस्वरः ॐ । किमर्थम् ।
 आहुते आवर्तनाय अस्मद्यज्ञं प्रति आगमनाय । ॐ वृत्तु-वर्तने ।
 अस्य संपदाविलक्षणः विवप् । मादिसमाप्तः । कुदुचरपदमकृति-
 स्वरः ॐ । आहुतिरपि किमर्थेति त्रिचांद्रं । सोमपीतये सोमपानाम् ॥

इन्द्रको लक्ष्यमें-रथ, कुरु हमसे, मेरित, हुई, इस देवयज्ञस्थलसे
 उच्चारण की हुई स्तुतिरूपा वालिये हमारे यज्ञमें लानेके लिये
 और सोमपानके लिये इन्द्रको प्राप्त होती है ॥३॥ ॥ १॥ ॥ ३॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमिरिह देवामहे ।

उक्थेभिः कुविद्रागमत् ॥ ४॥

इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये । स्तोमैः । इह । देवामहे ॥ ४॥

उक्थेभिः । कुविद्र । आगमत् ॥ ४॥

इन्द्रं देवं सोमस्य पीतये, पाताय इह अस्मिन् यज्ञे स्तोमैः त्रि-
 दशपञ्चदशादिस्तोमसाध्याः स्तोत्रैः उक्थेभिः उक्थैः आज्यमजगा-
 दिशस्त्रसाध्याभिः स्तुतिभिश्च देवामहे आह्वयामः । स च आहुत
 इन्द्रः कुनित् बहुवारम् आगमत् अस्मद्यज्ञं प्रति आगच्छेत् । ॐ गमे-
 लीटि अडागमः । कुविद्योगाद् अनिघातः । “आगमा अनुदात्ताः”
 इति अद्योनुदात्तत्वाद् धातुस्वरः । “तिष्ठ चोदात्तवति” इति गते-
 निघातः ॥

इन्द्र देव सोमपानके लिये इस यज्ञमें त्रिवृत् पञ्चदश आदि
 स्तोमनाम् स्तोमोंसे और आज्य, मजगादि शस्त्रसाध्य स्तुतियों
 से भी आह्वान करते हैं । बहु-बुलाये हुए इन्द्रदेव, हमारे यज्ञमें
 बहुत बार आवे ॥ ४॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो ॥ १ ॥

जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

इन्द्र । सोमाः । सुताः । इमे । तान् । दधिष्व । शतक्रतो इति शतक्रतो ।
जठरे । वाजिनीवसो इति वाजिनीवसो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र इमे ग्रहचमससंस्थिताः सोमाः सुताः त्वदर्थम् अभिष-
वादिना संस्कृता इति शतक्रतो बहुकर्मन् हे वाजिनीवसो अन्नपेन ।
यदा वाजः अन्नं फलरूपम् आस्विति वाजिन्यः क्रियास्तासां
वासक इन्द्र । वाजशब्दाग्न्यर्थपर्यय इति । अन्नपेन इति
कीप् ॥ तासां वसो ॥ संयुदौत्व इति गुणः ॥ तान्
त्वदर्थम् अभिषुतान् सोमान् जठरे दधिष्व धारय ॥

हे इन्द्र । ये ग्रह चमस आदिमं स्थितं सोमं अभिषव आदि
से आपके लिपे संस्कृत किये गए हैं, हे अन्नपेन इन्द्र । इनको
आप अपने त्वदर्थमें धारण करिये ॥ ५ ॥

विद्वा हि त्वा घनं जयं वाजेषु दृष्टुं कवे ।
अथा ते सुप्तमामहे ॥ ६ ॥

विद्वा । हि । त्वा । घनं जयम् । वाजेषु । दृष्टुम् । कवे ।
अथा । ते । सुप्तम् । इमहे ॥ ६ ॥

हे कवे कान्तमह इन्द्र त्वा त्वा वाजेषु संग्रामेषु दृष्टुम् अतिशयेन
शत्रुघर्षकं घनं जयम् शत्रुघनस्य जितारं विद्वा जानीमः । अथ अतः
कारणात् ते तव सुप्तम् सुखं सुखकरं घनं वा इमहे याचामहे ।

ॐ धनंजयम् इति । जि जये इत्यस्माद् धन उपपदे "संज्ञायां भृ-
तवृजिं०" इति खच् । "अरुद्धिपदजन्तस्य०" इतिः सुम्, आगम् ।
दधुपम् इति । धृपेर्धुलुगन्तात्पचाद्यचि "यङोऽचि च" इति प्रहो-
लुक् । लचूपप्रगुणे प्राप्ते "न धातुलोपे०" इति तस्य प्रतिषेधः ॥

हे सुद्धिमान् इंद्र ! आपको हम संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने
वाला और शत्रुओंके धनको जीतने वाला जानते हैं । इस कारण
हम आपके सुखकर धनकी याचना करते हैं ॥ ६ ॥

इममिन्द्र गवांशिरं यवांशिरं च नः पिब ॥
आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥

इयम् । इन्द्र ! गोऽंशोशिरम् । यवऽंशोशिरम् । च नः । पिब ।
आगत्य । वृषभिः । सुतम् ॥ ७ ॥

हे इंद्र ! गवांशिरम् । विकारे मकृतिशब्दः । गव्याख्या-
शीर्द्रव्योपेतं तथा यवांशिरं च यिबेलक्षणमिधंणद्रव्योपेतं वृषभिः
वर्षकैर्ग्रावभिः सुतं नः अस्मदीयम् इमं सोमम् आगत्य अस्मदभि-
सुखं प्राप्य पिब । गवांशिरं यवांशिरम् इत्युभयत्र
आरुपूर्वस्य श्रीणानेः क्वपि "अपस्पृश्याम् आनुचुः०" इत्या-
दिना शिर् इत्यादेशः । यद्व्योही पूर्वपदमकृतिस्वरः ॥

हे इंद्र ! आप गव्य और जी पिले हुए, वर्षक पत्थरोंसे तिलोहे
हुए इस सोमको आकर पीजिये ॥ ७ ॥

यष्टमी ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओषधे सोमं चोदामि पीतये ॥
एष सरन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥

तुभ्य । इत् । इन्द्र । स्वे । ओक्वे । सोमम् । चोदामि । पीतये ।
एषः । ररन्तु । ते । हृदि ॥ ८ ॥

हे इन्द्र तुभ्य इत् तुभ्यमेव । ॐ “सुषो सुलुक्” इति सुषो
लुक् ॐ । पीतये पानार्थं स्वे स्वीये ओक्वे ओकसि स्यात्ते जठरे ।
ॐ वस्वादित्वात् स्वार्थिको यत् ॐ । सोमं पीतये पानाय चोदामि
प्रेरयामि । स एष पीतः सोमः ते तव हृदि हृदये ररन्तु अत्यर्थं
रसताम् । ॐ रसु क्रीडायां इत्यस्य यङ्लुकि लोटि सर्वविधीनां
छन्दसि विकल्पितत्वाद् अभ्यासस्य जुगभावाः । संहितायाम्
“अन्येषामपि हरयते” इति अभ्यासस्य दीर्घः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपको ही पान करनेके लिये अपने जठररूप
स्थानमें सोमकी धारण करनेके लिये प्रेरणा करता हूँ, वह पिया
हुआ सोम आपके हृदयमें धारम्भार-रमण करता रहे ॥ ८ ॥

नवमी ॥ । योतोति

त्वां सुतस्य पीतये मत्नमिन्द्र हवामहे ।
कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥ । योतोति

त्वाम् । सुतस्य । पीतये । मत्नम् । इन्द्र । हवामहे ।

कुशिकासः । अवस्यवः ॥ ९ ॥ । योतोति

हे इन्द्र मत्नम् पुरातनं त्वां सुतस्य अभिषुतस्य सोमस्य पीतये
पानाय कुशिकासः कुशिकगोत्रोत्पन्ना वयम् अवस्यवः रत्ताकामाः
सन्तो हवामहे आह्वयामः । ॐ कुशिकासो अवस्यव इत्यत्र संहि-
तायाम् “अव्यादवधादवक्रमुरप्रतायमवत्वंवस्येषु च” इति एङः
प्रकृतिभावः ॐ ॥ । योतोति । योतोति । योतोति ।
योतोति । इति तृतीयेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥ १५५ ॥

॥ इन्द्रदेवः ॥ कुशिकगोश्रमेऽर्च्यन्ते इषं रक्षाः प्राहते ॥ इषं इषं
आप माचीन देवताको अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आह्वान
करते हैं ॥ ६ ॥

तृतीय अनुवाकम् समम् सुक्तं समाप्तं ॥ ६४० ॥
अरवावति प्रथमः इति सूक्तस्य अतिरात्रि कृतौ मन्थये

स्तवोतिभिः । ॥ ३ ॥

तमित् पृणक्षि वसुना भवोयसा सिन्धुर्मपो यथाभितो
विवेतसः ॥ १ ॥ ३ ॥

अरवावति । प्रथमः । गोपुन गच्छति । सिन्धुर्मपो यथाभितो
मर्त्यः । तव । कुतिभिः ॥ ३ ॥

तम् । इत् पृणक्षि वसुना भवोयसा सिन्धुर्मपो यथाभितो
मर्त्यः । अरवावति बहुमिररवेस्तदति युद्धे यद्वा । अरवेनो-
पेते जने । यदरवावति मर्त्यः । तेषु प्रथमः सुहृयः सन् गच्छति

मुख्यो भवति। तयो गोषु गोमत्सु प्रथमो गोच्यति। बहुपशुको
भवतीत्यर्थः। स्वमपि मवीयसा बहुतरेण भवितुमेन वा। बहु-
मावं प्राप्नुवता। ॥ भवितुशब्दात् "तुरब्दसि" इति ईयसुन्।
"तुरिष्टेपेयः" इति तृलोपः। धमुना धनेन अभितः तमित्
तेमेव पुरुषं पूणेति संपृक्तं करोषि। ॥ पृचीः संपर्कः। रीया-
दिकः। तत्र दृष्टान्तः। यथा विचेतसः विशिष्टज्ञानसाधना
आपः यथा अभितः सिन्धुसमुद्रं पूरयन्ति तद्वत् ॥
हिन्द्रो जो पुरुष आपकी रक्षाओंसे भली प्रकार रक्षित
होता है, वह पुरुष बहुतसे अरबों वाले युद्धमें वा बहुतसे घुड़-
सवारोंमें मुख्य होजाता है। तथा गाँवों वालोंमें भी मुख्य होता
है अर्थात् बहुतसे पशुओं वाला होता है, और विशिष्ट ज्ञानके
साधन जल चारों ओरसे समुद्रको भरते हैं, इसी प्रकार आप भी
बहुतसे रूपोंको प्राप्त होनेवाले धनसे उसी पुरुषको सम्पन्न बनाते हैं
किन्तु आप सिन्धुसमुद्र को पूरितोया ॥

आपो न देवीरूपं यन्ति होत्रियं भवः पश्यन्ति विततं
यथा रजः। ॥ प्राचेदेवासः प्रणयन्ति देवयु ब्रह्ममियं जोषयन्ते वरा
इव ॥ २ ॥

आपः न देवीरूपं यन्ति होत्रियम्। भवः पश्यन्ति।
विततम्। यथा। रजः।
प्राचेः देवासः। प्रणयन्ति देवयुम्। ब्रह्ममियम्। जोषयन्ते।
वराः इव ॥ २ ॥

(१५८)) अथर्ववेदसंहिता समाप्त्यः-भाषानुवादसहितः ॥ १०८ ॥

॥ हे इन्द्र होशिमम् होशार्हस्वाम् आपो न देवीः द्योतमाना आपो
यथा उपपन्ति उपगच्छन्ति तिष्ठन्, मदंशः समुद्रादिकं वा एवम्
उपपन्ति स्वाम् उपगच्छन्ति ॥ सामर्थ्यात् स्तुतयः स्तोतारो वेति
लाभ्यते ॥ तथा अवः पश्यन्ति अवः अवस्तात् पश्यन्ति ॥ तव
स्वरूपं द्रष्टुम् अशक्ता इत्यर्थः ॥ तत्र दृष्टान्तः ॥ यथा विततम् विस्तृतं
रजः ॥ ॐ उपोती रज उज्यत इति निरुक्तम् [४८-१६] ॥
सर्वतो व्याप्तं सावित्रं तेजो यथा द्रष्टुम् अशक्ता अवस्तात् पश्य-
न्ति तद्वत् किं स देवामः स्तोताश्च अस्मिन् त्वा माचैः माचीनं
म एषन्ति त्रेयभिमुखं गमयन्ति ॥ यद्वा त्वदर्थं सोमम् अग्निं च
माश्वं म एषन्ति ॥ यद्वामियम् ॥ यत्न परिवृष्टं स्तोत्रं कर्म वा ॥ तत्
मियं यस्य स तादृशो त्वा वरा इव यथा वराः कन्या जोषयन्ते
एवम् अस्मिन् जोषयन्ते सेवन्ति ॥ १ ॥
॥ हे इन्द्रदेवग दमकते हुं ए जल जैसे निर्झरस्थलमेंको वा समुद्र
मेंको जाते हैं, इसी प्रकार स्तुतियों, होशार्ह आपको ही प्राप्त होती
हैं ॥ जैसे विस्तृत सूर्यके, मकराशिकी देखनेमें असमर्थ हुए, पुरुष
नीचेको देखने लगते हैं, इसी प्रकार आपके स्वरूपसे घांपाये
हुए पुरुष भी नीचेको देखने लगते हैं ॥ और स्तुति करने वाले
अस्मिन् आप माचीनको वेशीके अभिमुख भोजते हैं, जैसे वर
कन्याओंका सेवन करते हैं इसी प्रकार अस्मिन् आपको सेवन
करते हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अग्निं द्यौरदधा उक्थ्यैव चो यतसु चामिथुनाया
संपर्यतः ।

॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥

असंयतो व्रते ते चेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमा-
नाय सुन्वते ॥ ३ ॥

॥ १०८ ॥ १०८ ॥ १०८ ॥

[अ० ३ सू० २५] ६४१ । विंशं काण्डम् ॥ (१५६)

अधि । द्वयोः । अर्थाः । उच्यम् । वचः । यतः । सूचा । मियुना ।

या । सपर्यतः ।

असम्पत्तः । वने । ते । सेति । पुष्यति । भद्रो । शक्तिः । यश-
मानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् द्वयोर्हविर्धानयोरहदिप्यतोरधि-उपरि उच्यं
उच्यं स्तोत्रं तद्योग्यं वचः “युजेर्वा वचः” [१८. ३. ३६] इत्यादि
रूपम् उपयोर्पुष्यति तृतीयच्छदिः स्थानीयं वचः वचनम् अध्य-
दधाः निहितवान् असि । उपे हविर्धाने विशेष्यते । यतः सूचा यताः
संबद्धाः सूचः ग्रहचपसादिलक्षणा यज्ञसाधनानि पात्राणि यथोक्ते
तादृशे मियुना युगलरूपेण वर्तमाने, या ये हविर्धाने । सर्वत्र
“सुषा सुलुक्”-इति विभक्तेराकारः । तादृशे हविर्धाने सपर्यतः
इन्द्रं पूजयतः । सोमपानोचितपात्रधारणे द्वारेणेति भाषः । तयोर-
पीति, पूर्वभान्वयः ॥ किं, हे, इन्द्र ते, व्रते, तव कर्मणि त्वदुद्देशे
यागे यजमानः असंगतो व्यापान्तरेष्वसंबद्धः सन् सेति निवसति
पुष्यति आत्मानं भजापरवादिना । सुन्वते त्वदर्थम् अभिपरं कुर्वते
यजमानाय । पष्ठपथं, चतुर्थी । तस्य भद्रा कन्याणी शक्तिः
बलम् अस्तु । त्वदनुग्रहाद् इति शेषः ॥ अयं मन्त्र ऐतरेयब्राह्मणे
व्याख्यातः । “अधि द्वयोरर्ध्वो उच्यं वच इति । द्वयोर्ह तत्
तृतीयं छदिर्धिनिधीयते ॥ उच्यं वच, इति यदाह यज्ञियं वै
कर्मोच्यं वचो यज्ञमेवैतेन समर्थयति ॥ यतः सूचा मियुना या स-
पर्यतः ॥ असंगतो व्रते ते सेति पुष्यतीति । यदेवादः पूर्वं यच-
त्तत् पदम् आह तदेवैतेन शान्त्या शमयति ॥ भद्रा शक्तिर्यजमा-
नाय सुन्वते इत्याशिषम् आशास्ते” इति [ऐ० ब्रा० १. २६] ॥

हे ब्राह्मणाच्छंसिन् । विनये ग्रह चपस आदि आदिक यज्ञके

नीपाद्यग्निमन्तस्ते नरः नेतारः अद्विरसः पणोः । एतन्नामकस्या-
सुरस्य सर्पम् ययद् अपहृतम् आसीत् तत् सर्वं भोजनम् घनं सम
विन्दन्त समलमन्त । भोजनं विशिनष्टि । अश्वावन्तम् बहुभिर-
श्वैर्घुक्तं गोमन्तम् चट्ठीभिर्गोभिर्घुक्तम् । आ इति चार्थः । पशुम् आ
घृत्ताश्वगोव्यतिरिक्तम् अजाव्यादि अन्यत् पशुजातं च समविन्दन्त
। -दे इन्द्र ! अगिरा गोत्रं वालोने जघ पणियोने गौं छीनी थी
सप्त समय पहिले ही आपके लिये इवीरूप अन्नको सम्पादन
किया था । ये अगिरावंशी अग्निष्टोम आदि शोभन कर्मोंसे
आहवनीय अग्निको मज्जलित रखते हैं और इन नेता अग्नि-
रसोंने पणि नामक असुरका छीना हुआ बहुतसे अरवोंवाला और
गौओं-वाला तथा भेड़ बकरी आदिवाला घन पाया था ॥ ४ ॥

॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातम्-
मृतं यजामहे ॥ ५ ॥

यज्ञै । अथर्वा । प्रथमः । पथः । तते । ततः । सूर्यः । व्रतपाः ।
वेन । आ । आजनि ।

आ । गाः । आजत् । दुशना । काव्यः । सचा । यमस्य । जातम् ।
मृतम् । यजामहे ॥ ५ ॥

अथर्वा एतन्नामा महर्षिः यज्ञैः इन्द्रम् वह्निर्य क्रियमाणैर्यागैः
साधनैः प्रथमः सूर्यादिभ्यः पूर्वभूतः सन् पथः अपहृतानां गवां
पार्श्वान् तते विस्तारितवान् । ज्ञातवान् इत्यर्थः । ततः अनन्तरं
वेनः कान्तः सूर्यो व्रतपाः गवानयनकर्मणः पालयित्वा आजनि

मादुरभूत् । अन्धकाराविष्टानां गवां प्रकाशकोभृद् इत्यर्थः । अ-
नन्तरं काव्यः कवेः पुत्र उराना मृगुः सुवा इन्द्रसहायभूतः स-
गाः आजत् अभिमुख्येन मामोत् । यमस्य सर्वनियन्तुः । सूर्यस्य
मयोजनाय जातम् मादुरभूतम् अथ वा यमस्य यमात् नियन्तुरीश्व-
रात् जातम् अयुतम् अमरणधर्माणम् इन्द्रं यजामहे पूजयाम् ॥
१ ॥ अथर्वा नामकं महर्षिने इन्द्रके निमित्तं किये हुए पागोंसे सूर्य
आदिकसे पहिले होकर सुराई हुई गौओंके मार्गको जान लिया
था । तदनन्तरं गवायन कर्मके पालयिता कमनीय सूर्यदेव ब्राह्म-
र्भूत हुए थे अर्थात् उन्होंने अंधकारसे आहत गौओंको प्रकाशित
किया था । तदनन्तरं कविके पुत्र उरानाने इन्द्रकी सहायता पाकर
गौओंको अभिमुख होकर पाया था, नियन्ता ईश्वरसे प्रकट हुए
अमरणधर्मी इन्द्रदेवकी हम पूजा करते हैं ॥ १ ॥

वर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते को वा श्लोकमाधोपते दिवि
ग्रावा यत्र वदति कारुक्क्य १ तस्येदिन्द्रो अभिपि-
त्वेषु रणपति ॥ ६ ॥

वर्हिः । वा । यत् । स्वपत्याय । वृज्यते । अर्कः । वा । श्लोकम् ।
आधोपते । दिवि ।
ग्रावा । यत्र । वदति । कारुक्क्यः । तस्य । इत् । इन्द्रः ।
अभिपित्वेषु । रणपति ॥ ६ ॥

यत् यस्य यस्य संबन्धि वर्हिः स्वपत्याय शोभनायत्याय
कलाय यज्ञपात्राणां शोभनायतनाय वा वृज्यते द्विषते । आस्ती-
र्यत इत्यर्थः । ॐ यच्चन्द्रयोगाद् अनिमित्तः ॐ । अर्कः वा अर्च-

नसाधनमन्त्रोपेनो होता च श्लोकम् । वाङ्मामैतत् । वागात्मकं
शस्त्रादिकं यत् यत्र दिवि द्योतमाने यज्ञे आधोपते उच्चारयति ।
ॐ अत्रापि यच्छब्दोऽनुवर्तते । यद्योगाद् अनिघातः ॐ । यत्र
च यज्ञे ग्रावा अभिषवसाधनः पापाणः कारुक्थ्यः । लुप्तोपमम्
एतत् । उक्थाईः स्तोतेन वदति शब्दं करोति । तस्येत् तादृशस्यैव
यज्ञस्य अभिषित्वेषु समीपदेशेषु इन्द्रो देवः रयति रमते । उक्त
लक्षणो यागः अस्मदर्थं भविष्यतीति हर्षशब्दं करोति वा ॐ रमु
क्रोडापाम् । व्यत्ययेन रयन् परस्मैपदं च । अन्त्यविकाररक्षा
शब्दसः । यद्वा रण शब्दार्थः । व्यत्ययेन रयन् ॐ ॥

- जो यज्ञकी कुशा शोमन सन्तानरूप फलको पानेके लिये
बिछाई जाती है, पूजाके साधनसे सम्पन्न होता भी जिस वागात्मक
शस्त्र आदिका द्योतमान, यज्ञमें उच्चारण करता है और जिस
यज्ञमें अभिषवका साधन पापाण उक्थाई स्तोताकी समान शब्द
करता है, उस यज्ञके समीपके स्थानोंमें इन्द्र रमण करते हैं ६

सप्तमी ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयमि सत्यां प्रथे सुतस्य । हर्यश्च
तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व । धीभिर्विश्वाभिः शय्या
गृणानः ॥ ७ ॥

प्र । उग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयमि । सत्याम् । प्रथे । सुतस्य ।
हरिऽश्चर्यम् । तुभ्यम् ।
इन्द्र । धेनाभिः । इह । मादयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शय्या ।
गृणानः ॥ ७ ॥

हे हर्यश्वं हरिनामकांश्चोपेत इन्द्रं हृष्ये अभिमतं कलवपिप्रेमये
 मकृष्टगमनाय तुभ्यं सुतस्य अभिपुतस्य सोमरसस्य उग्राम् उद-
 गूर्णचलां सत्याम् अवितमसामध्या पीतिम् पानं मेयमि मेरयामि
 हे इन्द्रस्वं च इह अस्मिन् यज्ञे धेनामिः मीलियित्रीभिः विश्वाभिः
 तर्षाभिः धीभिः स्तुतिभिस्तदात्मकैः कर्मभिः । यद्वा धेनेति वाक्-
 नाम । धीपूर्विकाभिः स्तुतिभिः शच्या । कर्मनामेतत् । कर्मणा
 यागेन निमित्तेन यत्नेन वायुणानः स्तूयमानो मादयस्व हृष्टो भव ॥
 इति तृतीयेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! 'अभिलपित' कलकी वर्षा
 करने वाली और श्रेष्ठ गमन वाली आपके लिये मैं अभिपुत सोम-
 रसगी उदगूर्ण बलशालिनी पीति (पान) की मेरित करता
 हूँ । और हे इन्द्रदेव ! आप भी इस यज्ञमें मसन्न करने वाली
 सफल स्तुतियोंसे और कर्मसे स्तुति पाते हुए मसन्न होजिये ॥
 इति तृतीये अनुवाकमे अष्टमं सूक्तं समाप्तं (६३१) ॥

“योगेयोगे तवस्तरम्” इति चत्वारि सूक्तानि अतिरात्रे क्रतौ
 तृतीये रात्रिपर्याये ब्रह्मशस्त्रे विनियुक्तानि । तत्र आद्यौ
 तृती स्तोत्रियानुरूपौ । “उत्तम आरोहोसि” इत्यारभ्य सूत्रितं
 यैताने । “योगेयोगे तवस्तरम् [२०. २६. १] युञ्जन्ति प्रधानम-
 रूपम् [२०. २६. ४.] ” इति स्तोत्रियानुरूपौ । अथाः पूर्वेषाम्
 [२०. ३२. ३] इति परिधानीया । ऊर्तौ सचीवः [२०. ३३. ३]
 इति याज्या” इति [वै० ४. २] ॥

“अत्रापि” ऊर्ध्वं सर्वत्र त्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पञ्चदश पर्यासः”
 इति [वै० ४. २] सूत्रितत्वाद् “यदिन्द्राहम्” इत्युत्तरेषां त्रयाणां
 सूक्तानाम् अत्रैव तृतीयपर्याये ब्रह्मशस्त्रे विनियोग उपपन्नः । अत-
 एव “प्र ते महे” इति सूक्तस्य अन्तिमां “अथाः पूर्वेषाम् [२०,
 ३२. ३] इत्येषा अहं परिधानीया” इति सूत्रितम् [वै० ४. २] ॥

“योगे योगे तवस्तरम्” ये चार सूक्त अतिरात्रि ऋतुके तृतीय रात्रिपर्यायमें - ब्राह्मणाच्छेसिशस्त्रमें विनियुक्त होते हैं। इनमें पहिले दो तृच स्तोत्रियानुरूप हैं। “उत्तम आरोहोऽसि” का आरम्भ करके बैतानसूत्रमें सूचित किया है, कि—“योगे योगे तवस्तरम् (२० । २६ । १) युञ्जन्ति घ्नन्मरुपम् (२० । २६ । ४) इति स्तोत्रियानुरूपौ । अपाः पूर्वेषां (२० । ३२ । ३) इति परिधानीया । ऊती शचीवः (२० । ३३ । ३) इति याव्या” (बैतानसूत्र ४ । २) ॥

यहाँ भी “ऊर्वै सर्वत्र ग्रीणि सूक्तानि । अन्त्यं पच्छः पर्यासः” इस प्रकार बैतानसूत्र ४ । २ में सूचित होनेसे “यदिन्द्राहम्” आदि अगले तीन सूक्तोंका यहाँ ही तृतीयपर्यायके ब्रह्मशस्त्रमें विनियोग उपपन्न है। अत एव “म ते महे” सूक्तकी अन्तिम ऋचा परिधानीया है “अपाः पूर्वेषां (२० । ३२ । ३) इत्येषा ऋक् परिधानीया” बैतानसूत्र ४ । २

तत्र मथमा ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

योगेयोगे । तव स्तरम् । वाजेवाजे । हवामहे ।

सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ १ ॥

योगेयोगे शत्रुसेनादेः संगमेसममे सति सत्तथागकर्षणः संप्राप्ती मर्त्या वा । ॐ युजिर् योगे । ‘हलश्च’ इति घञ् । “चजोः कु घिएण्यतो.” इति वृत्तम् । आधुदात्तत्वम् । “नित्यवीप्सयो.” इति वीप्सायां द्विभावे सति आधेडितानुदात्तत्वम् ॐ । तवस्तरम् अतिशयेन बलवन्तम् इन्द्रम् । ॐ तवम्शब्दाद् “अस्मायामेधा०”

इति मत्वर्गीयो विनिः । तस्य छान्दसो लोपः ॐ । संखायः सखि-
भूता ययम् ऊतये रत्तणान इवामहे आह्वयामः । तथा वाजेवाजे
अन्नेऽन्ने यदायदा अन्नं लब्धव्यं भवति तदातदा उक्तमहिमो-
पेतम् इन्द्रं इवामहे ॥

शत्रुसेना आदिका योग होने पर वा प्रत्येक यागकर्मकी प्राप्ति
होने पर मिश्रभूत हम यली इन्द्रका आह्वान करते हैं तथा जब २
अन्नप्राप्तिका अवसर आता है तब हम २ इन्द्रनेयका आह्वान
किया करते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

आ घा गमत् यदि श्रवत्सहस्रिणीभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

आ । घ । गमत् । यदि । श्रवत् । सहस्रिणीभिः । कृतिभिः ।
वाजेभिः । उप । नः । हवम् ॥ २ ॥

स इन्द्रः यदि नो हवम् आह्वानं श्रवत् शृणुयात् । ॐ मृणो-
तेल्लेय्यडागमः ॐ । तर्हि सहस्रिणीभिः सहस्रसंख्यायुक्ताभिः
कृतिभिः वाजेभी रक्षाभिः वाजैरन्नैश्च सह । येति प्रसिद्धी । उपा
गमत् उपागच्छेदेव । ॐ गमेल्लेय्यडागमः । “इत्थ लोपः” इति
इकारलोपः । यद्वा छान्दसे लुङि “पुपादिद्युताय्लृदितः पर-
स्मैपदेषु” इति च्लेः अङ् आदेशः । “बहुलं छन्दस्यमाङ्गयोगेपि”
इति अङ्भावः ॐ ॥

वह इन्द्रदेव यदि आह्वानको सुने तो सहस्रों रक्षाओं और
अन्नोंके साथ सभीपरम अवश्य आवें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।

यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

अनु । मत्नस्य । ओकसः । हुवे । सुविप्रतिम् । नरम् ।

पम् । ते । पूर्वम् । पिता । हुवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र मत्नस्य पुरातनस्य ओकसः स्वर्गाख्यस्य स्थानस्य अधिपतिं सुविप्रतिम् बहूनां योद्धृणां प्रतिनिधिभूतं नरम् नेतां त्वाम् अनु आनुलोम्येन हुवे आह्वयामि । यं ते त्वां पूर्वम् पूर्वकाले पिता मदीयस्नातः स्वाभिमनसिद्वये हुवे आहूतवान् । तम् इन्द्रं हुवे इति पूर्वत्र संबन्धः । ॐ हे प्रो लिटि “बहुलं-द्वन्द्वसि” इति संप्रसारणपरपूर्वत्वे । द्विर्वचनप्रकरणे “द्वन्द्वसि धेति षक्त-ष्पम्” इति द्विर्वचनाभावः । यद्वचनचयोगाद् अनिपातः । मत्नस्य-स्वः । पूर्वस्य तु पादादित्वाद् अनिपातः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! पुरातन स्वर्ग नामक स्थानके अधिपति और बहुतसे योद्धाओंके प्रतिनिधिरूप आपका मैं आह्वान करता हूँ । पूर्वकालमें मेरे पिताने अभिमनसिद्विके लिये आपका आह्वान किया था, ऐसे आपको ही मैं बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

युञ्जन्ति ब्रह्ममरुपं चरन्तं परि तस्थुषः ।

रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥

युञ्जन्ति । ब्रह्मम् । अरुपम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ।

रोचन्ते । रोचना । दिवि ॥ ४ ॥

ब्रह्मम् महान्तम् । महन्तामैतद् । अरुपम् आरोचमानं तस्थुषः स्थावरान् परि । यतज्जहमानाम् अपि उपलक्ष्यम् । स्थावरज-

मानाम् उपरि चरन्तम् स्वर्गनिस्थान् । सूर्यात्मना वा परिचरन्तम्
 एवं महानुभावम् इन्द्रं युञ्जन्ति रथे योजयन्ति । अत्र सामर्थ्यात्
 हरिनामकान् अश्वान् इति गम्यते । रोचना रोचनानि रथयुक्ता-
 नाम् अश्वानां रथस्य च रश्मयो दिवि । रोचन्ते दीप्यन्ते । अयं
 मन्त्रः उत्तरमन्त्रे “युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी” इति हर्म्यो रथयोज-
 नाभिधानात् तदनुसारेण केवलेन्द्रपरतया व्याख्यातः । तदनन्तर-
 मन्त्रे “केतुं कृण्वन्केतवे” इति केतुपाधिकस्य इन्द्रस्याभिधानात्
 तदनुसारेणैव सूर्यात्मकेन्द्रपरतयापि व्याख्येयः । प्रधानशब्दः
 सूर्यपरोपयः । बध्नाति नियमयति सर्वं जगद् इति बध्नः सूर्यः ।
 तं रथे युञ्जन्ति हरितोऽश्वः । अरुपं चरन्तं परितस्तथुप इत्येतत्
 समानम् । तस्य रोचना रोचनानि रश्मिजालानि दिवि रोचन्त
 इति ॥ अयं मन्त्रो ब्राह्मणे

“ । आग्वा अरुपः ।

वायुर्वै चरन् । वायु-

मेवास्मै युनाक्त । पार तस्तथुप इत्याह । इमं वै लोकाः परि तस्तथुपः ।

इमान् एवास्मै लोकान् युनक्ति । रोचन्ते रोचना दिवोत्याह ।

नक्षत्राणि वै रोचना दिवि । नक्षत्राण्येवास्मै रोचयति” इति

[तै० ब्रा० ३. ६. ४. २] ॥

महान्, दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विच-

रण करते हुए इन्द्रके रथमें हरिनामके अश्व जुतते हैं और वे

दमकते हुए अश्व, अलोकमें दमकते हैं । [तैचिरीयब्राह्मण-३-

६ । ४ । २ में इस मंत्रकी आदित्य अग्नि वायु और लोकपरक

व्याख्या भी की है] ॥ ४ ॥

अथ ३० मन्त्रके अर्थ । पञ्चमी ॥ ३० । ३० मन्त्रके अर्थ

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणा धृण नृवाहसा ॥ ५ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विस्पत्तसा । रथे ।

शोणा धृण इति । नृवाहसा ॥ ५ ॥

अस्य उक्तलक्षणस्य रथे हरी एतन्नामानावश्चो युञ्जन्ति

रथे योजयन्ति सारथयः । कीदृशी । काम्या काम्यो काम्यपितृव्यो

विपत्तसम्बन्धिषे पत्तसी स्त्रीये रथसंबन्धिषी वा ययोस्ती तादृशी ।

रथोपपार्श्वस्थिनावित्यर्थः । शोणा रक्तवर्णी धृण धर्षकी नृवा-

हसा नृणां सारथिमृत्तीनां बोधारी ॥

इन ईदृदेवके रथमे सारथी हरी नामे वाले अश्वोंकी जोतते

है । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबटोमें रहते

हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंकी

सवारी देने वाले हैं ॥ ५ ॥

केतुं कुण्वन्नकतवे पेशा मर्या अपेशसे ।

समुपन्द्रिरजायथाः ॥ ६ ॥

केतुम् कुण्वन् अकतवे पेशा मर्या अपेशसे ।

समुपन्द्रिमिः । अजायथाः ॥ ६ ॥

हे मर्याः अरण्यमार्गो मनुष्याः । अर्धं सूर्यात्मकम् इन्द्रोपरय-

यथाः । ॐ व्यत्ययेन मध्यमः ॥ १ ॥ समजायत संभूताः ॥ २ ॥
मृयात्मना संभूतम् हे मर्गाः पश्यतेत्यर्थः ॥

इति तृतीयेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे मरणधर्मी मनुष्यो ! मन्वात्तरहित-पुरुषको ज्ञान-देने, बाले
और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप
प्रदान करने वाले इन मृयात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी
किरणोंके साथ मथर-हुप-हूँ ॥ ६ ॥

इति तृतीयेनुवाकमे नवमं सूक्तं समाप्तं ॥

“यदिन्द्राहम्” इति सूक्तस्य अतिरात्रे तृतीये पर्याये ब्राह्मण-
चंद्रसिन्धुः शस्त्रे विनियोगोक्तः ॥ १ ॥
“यदिन्द्राहम्” सूक्तका अतिरात्रके तृतीयपर्यायमें ब्राह्मण-
चंद्रसिन्धुके शस्त्रमें विनियोग कहा है ।

तत्र मयमा ॥
यदिन्द्राह यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ॥

स्तोता मे गोपत्वा स्यात् ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । अहम् । यथा । त्वम् । ईशीय । वस्वः । एकः । इत् ।
स्तोता । मे । गोपत्वा । स्यात् ॥ १ ॥

हे इन्द्र परमेश्वर्युक्त यथा त्वम् एक इत् दिवानो मध्य-एक
एव वस्वः वासुकृष्य घनस्य ईशीये तथा यत् यदि अहमपि एक
एव वस्वः वसुनो घनस्य ईशीय ईश्वरः स्यात् तर्हि यथा तव
स्तोता गोपत्वा स्याद् एवं मे मम स्तोतापि गोपत्वा स्यात्
यदीनां गवां इत्तमी भवेत् । त्वत्तत्त्वम् एतत् । सर्वेश्वर्युक्तो
भवतीत्यर्थः । तस्मात् तव स्तोतारं मां हवत्सदृशं कुर्वित्यभिप्रायः ।

ॐ गोपत्वैत्यत्रः सुपामादित्वात् एत्वम् । दासीमारादित्वात् पूर्व-
पदमकृतिस्वरेण भाष्यदातः ॥

हे परमेश्वर्यसम्पन्न इन्द्र ! जैसे आप देवताओं में धन के अनु-
पम स्वामी हैं, इसी प्रकार मैं भी धन का एक ही ईश्वर रहूँ !
जैसे आपका स्तोत्र गौओं का सखा होता है । इसी प्रकार मेरा
स्तोत्र गौ आदि सब वस्तुओं का स्वामी होवे । तात्पर्य यह है,
कि-युक्त स्तोत्रा को भी आप अपनी समान कर लीजिये ॥१॥

शिक्षेयम् अस्मै दिक्सेयम् शचीपते मनीषिणे ।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । अस्मै । दिक्सेयम् । शचीपते । मनीषिणे ।

यत् । अहम् । गोपतिः । स्याम् ॥ २ ॥

हे शचीपते इन्द्र ! अस्मै मनीषिणे मनस ईशिषे स्तोत्रे दिक्से-
यम् दानानि दातुम् इच्छेयम् । छिदा दाने । सन । "सनि
मीमा०" इत्यादिनाऽसम्भावः । "अत्र लोपोभ्यासस्य" इति
अभ्यासलोपः । वाक्यभेदाद् अनिघातः "सस्यार्धधातुके" इति
संकारस्वत्वम् । "स्वरि च" इति त्वत्वम् । तथा शिक्षेयमपि
मार्थितं धनं दया च । शिस्ततिर्दीनकर्म । कर्तव्यं स्याम्
इति तत्राह । यत् यदा अहं तव स्तोत्रो त्वदनुग्रहाद् गोपतिः स्यां
तदा दिक्सेयं शिक्षेयं च । तस्मान्मां तादृक्सामर्थ्यं कुरिति भावः ॥

हे शचीपते इन्द्र ! मैं स्तोत्रा जब आपके अनुग्रहसे गोपति हो
जाऊँ तब इस विद्वान् स्तोत्रा को धन देना चाहूँ और मार्थित
धन दे भी सकूँ । तात्पर्य यह है कि इस लिये आप मुझमें ऐसी
शक्ति दीजिये ॥ २ ॥

तृतीया ॥

धेनुष्टं इन्द्र सृष्टता यजमानाय सुन्वते ।

गोमश्वे पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
 घेनुः । ते । इन्द्र । सुवृता । यजमानाय । सुन्वते ।
 गोमश्वे पिप्युषी । दुहे ॥ ३ ॥
 ॥ हे इन्द्रं सुवृतां वाहनामैतत् । अस्मदीयां मियं सत्यात्मिकां वाक्
 ते तर घेनुः दोग्ध्री गोमश्वौ गोवत् । मीणयित्री भूत्वा सुन्वते सोमा-
 भिपवं कुर्वन् यजमानाय पिप्युषी नमेव यजमानं वर्ध्यायत्री सती गोम्
 अश्वं च । उरलक्षणम् एतत् । गवाश्वादिकं सर्वम् अभिलषितं
 दुगे दुग्धे । ॐ ह्यन्दसे लिटि द्विर्वचनमकरणे ॥ इन्द्रसिंवेति
 वक्तव्यम् ॥ इति वचनाद् द्विर्वचनाभावः । पिप्युषी । स्फापी
 ओप्यापी वृद्धौ । अस्मात्सिट् । “प्यायः पी” । “लिट्पद्येय”
 इति परत्वेन द्विर्वचनात् पूर्वमेव पीभावः । पुनः प्रसङ्गविज्ञानाद्
 द्विर्वचनम् अस्यास्ये ह्यन्वः । “क्वमुध” इति लिटि क्वमुन्वा-
 देशः । “अगितश्च” इति ङीप् कृते “वेसोः” सूत्रसारणम् ॥ इति
 सूत्रसारणम् ॥ “आदेशमत्यययोः” इति पत्वम् । मित्ययस्वरस्य
 मयोदात्तः ॥ ॥ ॥
 ॥ हे इन्द्रदेव । हमारी सत्य और मिये बोली आपकी गोमी
 सुमान वृत्ति करती हुई सोमाभिपव करने वाले यजमानके लिये
 बहोतगी करती हुई सब गो और घोड़े आदि अभिलषित पदार्थों
 को दुहती है ॥ ३ ॥
 चतुर्थी ॥
 न । ते । वृतास्ति । राधस । इन्द्र । देवा । न । मृत्यः ।
 मद् दित्संसि स्तुतो भवम् ॥ ४ ॥
 न । ते । वर्ता । अस्ति । राधसः । इन्द्रः । देवः । न । मृत्यः ।
 यत् । दित्सति । स्तुतः । भवम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्रा ते तव राशेसः धनस्य वर्ता निवारको नभोऽनोस्त्येव ।
निवारणनिषेधस्य षण्योगसिद्धये निषेधान् संभावितान् निर्दि-
शति देवो न मर्त्य इति । वर्ता देवो नास्ति । वर्ता मर्त्यो मनु-
ष्योपि नास्ति । अतः यदि स्तुतः अस्मीभिः स्तुतिमाप्तः प्रख्या-
पितगुणः सन् मेघम् मंहीयं धनं दत्तसि दातुम् इच्छसि । तर्हि
वर्ता न कोप्यस्ति ॥

हे इन्द्र ! आपके धनका, निवारक कोई नहीं है । देवता आप
के धनको नहीं हटा सकते, मनुष्य भी आपके धनको नष्ट नहीं
कर सकते, यदि आप हमसे स्तुति पाकर मशसनीय धनको देना
चाहे तो उस धनको हटाने वाला कोई नहीं होसकेगा ॥ ४ ॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्यद् भूमिं च्यवर्तयन्तः ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥

यज्ञः अस्माभिरनुप्रीयमानः इन्द्रं देवम् अवर्धयत् । इति वा
स्तुत्या वा अभिवृद्धम् अकरोत् । कृदेत्युच्यते । यत् यदा दिवि
अन्तरिक्षे मेघम् ओपशम् सवत् उपशयानं चक्राणः कुर्वन् भूमिं
अपवर्तयत् । वृष्टौ वृष्ट्यद्वकेन उच्छूनाम् अकरोत् । वृष्टिद्वारा
सस्यादिसमृद्ध्या भूमिं पुष्टाम् अकरोत् तदिति संबन्धः । ओ-
पशम् इति आहुःपूर्वात् शीङ्गः “अन्येष्वपि दृश्यते” इतिङः ॥

जब अन्तरिक्षमें इन्द्र मेघको चारों ओर लेटने वाला और
पृथ्वीको वृष्टिजलसे फूलने वाली करत है अर्थात् वृष्टिके द्वारा

धान्यसमृद्धिसे भूमि को पुष्ट करतें हैं, उस-समय हमारा अनुष्ठित
यज्ञ इति वा स्तुतिसे इन्द्र को बढ़ाता है ॥ ५ ॥

पृथ्वी ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

वृद्धधानस्य । ते । वयम् । विश्वा । धनानि । जिग्युषः ।

ऊतिम् । इन्द्र । आ । वृणीमहे ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! वृद्धधानस्य वर्धमानस्य-स्तुत्या-वर्धमानस्य विश्वा वि-

श्वानि धनानि शत्रुसम्बन्धीनि जिग्युषः जितवतः । जि जये ।

लिङ् द्विर्वचने । “सन्लिटोर्जेः” इति कृत्वम् । लिटः ववसुरादेशः ।

भसंज्ञायां “वसोः संपसारणम्” इति संपसारणम् । “एकानु-

बन्धकग्रहणे न अनुबन्धकस्य” इति न्यायात् । ववसोः संपसार-

णम् इति चैह उकारोच्चारणसामर्थ्याद् येषां ववसुग्रहणं सिद्धं

तथैव वसोरपि ग्रहणम् इष्यते । प्रत्ययस्वरेण मण्योदात्तः ।

तादृशस्य ते तव ऊतिम् रक्षां आ वृणीमहे आभिमुख्येन संभ-

जामहे ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तुतिसे बढ़ते हुए, शत्रुसम्बन्धी सकल धनो को

जीते हुए आपकी रक्षा का हम अभिमुख होकर चरण करते हैं ।

सप्तमी ॥

व्यंश्नन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना ।

इन्द्रो यदभिन्दु वलम् ॥ १ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ।

इन्द्रः । यत् । अभिनत् । बलम् ॥ ११ ॥

इन्द्रो देवः रोचनां रोचमानं दीप्यमानम् अन्तरिक्षं व्यतिरत् व्यवर्धयत् । वृष्ट्यदकेन अभिवृद्धम् अकरोत् । कस्मिन् सहाये सतीति उच्यते । सोमस्य सोमरसस्य पानेन मदे संजाते सति । कदेन्युच्यते । यत् यदा इन्द्रो बलम् सर्वम् आवृत्य वर्तमानम् एत-
आमकम् असुरम् वक्तलक्ष्णं मेघं वा अभिनत् सोमपानजनितेन मदेन व्यदारयत् । तदेत्यन्वयः ॥ ॥

सोमरसके पानसे मद होने पर जब बल नामक असुरको वा मेघको विदीर्ण किया भवे इन्द्रदेवने । दमकते हुए अन्तरिक्षको वृष्टिके जलसे बढ़ा दिया था ॥ १ ॥

अष्टमी ॥
उद्गा । आजदङ्गिरोभ्यः आविष्कृतवत् गुहा सतीः ।

अर्वाञ्च नुनुदे बलम् ॥ १२ ॥

गाः । आजत् । अङ्गिरः । भ्यः । आविः । कृतवत् । गुहा । सतीः ।

अर्वाञ्चम् । नुनुदे । बलम् ॥ २ ॥

इन्द्रो देवः अङ्गिरोभ्यः तेषाम् अर्वाञ्चं गुहा गुहायां सतीः

अपकाशं विश्रमानाः । ॐ "गुहेः कन्" इति कन् मत्पयः ।

"सुवां सुलुकं" इत्यादिना डराकारः । सतीरिति । अस्तेल्लटः

शत्रादेशः । "अमोरलोपः" इत्यकारलोपः । "उगितश्च" इति

डोपः । "वा लुक्" इति ।

नयनादी" इति ।
स्वरः ॐ । गाः ।
गमयद् बहिर्देशं प्रापयत् । तदर्थं गेवाम् अपहर्तारं बलम् असुरम् अर्वाञ्चम् अवाङ्मुखं नुनुदे अपातयत् ॥

इन्द्रदेवेन अंगिरा गोत्र चाले मरिष्योके, लिये, गृहामे ॥ दी
हई अत एव अमकाशित गोओंको मकाशित किया था और फिर
उनको बाहर ले आए थे और उन्होंने गोओंको अपहरण करने
वाले असुरको भी अग्नि मुख बरके गिरा दिया था ॥ २ ॥

अत एव अमकाशित गोओंको मकाशित किया था और फिर
उनको बाहर ले आए थे और उन्होंने गोओंको अपहरण करने
वाले असुरको भी अग्नि मुख बरके गिरा दिया था ॥ २ ॥
इन्द्रेण रोचनादिवो दृहानि दृहितानि च स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
इन्द्रेण ॥ रोचना ॥ दिवः ॥ दृहानि ॥ दृहितानि ॥ च ॥ स्थिराणि ॥ न ॥ पराणुदे ॥ ३ ॥

इन्द्रेण देवेन दिवः संबन्धीनि रोचना रोचमानानि ग्रहनक्षत्रा-
दीनि दृहानि दृहावयवानि बलवन्ति कृतानि तथा दृहितानि च
दृढीकृतानि । पूर्वतः स्थान्यम् अपरत्र बलवत्त्वम् इति विवेकः ।
अत एव स्थिराणि तानि न पराणुदे परानोदनीयानि भवन्ति ।
न केनापि मर्त्यावियतुं शक्यानीत्यर्थः ॥ ३ ॥ परत्युपसर्गपूर्वति
युग प्रेरणे इत्यस्मात् कृत्यार्थे केन मर्त्ययः । "उपसर्गादिः असमा-
सेति णोपदेशस्य" इति शास्त्रम् । अस्य णोपदेशत्वं कथम् इति
चेत् "सर्वे णादयो णोपदेशाः नृत्तिनन्दिनदिनविकनादिनाथ-
नाघनवर्जम्" इति वचनात् णोपदेशत्व सिद्धम् । मर्त्ययस्य
नित्वात् कदुत्तरपदमकृतिस्वरूपेण उत्तरपदाश्रयात्तत्त्वम् ॥

इन्द्रदेवेन आकाशके दमकने हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल
किया है और दृढ किया है, अत एव स्थिर होनेके कारण उनको
कोई इष्ट नष्ट नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

अपामृभिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ॥
दशमी ॥

वि ते मदां अराजिषुः ॥ ४ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन् इव । स्तोमः । इन्द्र । अजिरायते ।

वि । ते । मदाः । अराजिषुः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ते स्तोमः त्वद्विषयं स्तोत्रम् अपाम् । अप्रशब्देन तदा-
श्रयभूताः समुद्रादयो लक्ष्यन्ते । तासां मदन्निव दृष्ट्युदकेन हृष्य-
न्निव । ऊर्मि रसः । स इव अजिरायते । अजिरः क्षिप्रगामी ।
स इवाचरति । त्वरया त्वां प्रति मुखान्निर्गच्छतीत्यर्थः । यद्वा
अपामूर्धिरित्येतावदेव दृष्टान्वचनं लुप्तेशब्दकम् मदन्निव स्तोमो-
जिरायते इति दाष्टान्तिकाभिधानम् । ॐ अञ्जू व्यक्तिम्लक्षण-
कान्तिगतिषु । अजिरशिशिरेत्यादिना [उ० १. ५३] किर-
त्पत्ययान्तो निपातितः । स इवाचरतीत्यर्थे “कर्तुं क्यङ् सलो-
पश्च” इति क्यङ् । सनादित्वाद् घातुसंज्ञायां लडादि कार्यम् ।
“अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः” इति अकारस्य दीर्घः ॐ । ते तव
मदाः सोमपानजनिता व्यराजिषुः विशेषेण राजन्ते दीप्यन्ते ॥

इति एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्तोत्र समुद्र आदिको दृष्टिजलसे हर्षसा-
देता हुआ और रसकी समान क्षिप्रतासे आपके लिये मुखसे
निकलता है । आपके सोमपानजनित मद विशेषरूपसे दमकते हैं

एकादश सूक्त समाप्त (६४४)

“त्वं हि स्तोमवर्धनः” इति सूक्तस्य अनिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसि-
न-तृतीयपर्याये विनियोगोभिहितः ॥

“त्वं हि स्तोमवर्धनः” सूक्तका अतिरात्रये ब्राह्मणाच्छंसिके
तृतीयपर्याये विनियोग कहा है ।

तत्र प्रथमा ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः ॥ १ ॥

स्तोतृणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥

त्वम् । हि । स्तोमवर्धनः । इन्द्र । असि । उक्थवर्धनः ।

स्तोतृणाम् । उत । भद्रकृत् ॥ १ ॥

हे इन्द्र त्वं खलु स्तोमवर्धनः स्तोमैस्त्रिवृदादिभिर्वर्धनीयोसि तथा उक्थवर्धनः उक्थैर्वर्धनीयश्चासि । ॐ स्तोमशब्दोपपदाद् उक्थशब्दोपपदाच्च वर्धते: “कृत्यन्वुटो बहुलम्” इति आर्यै न्वुट् । कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरेण लिच्वाद् आद्युदात्तत्वम् ॐ । उत अपि च त्वं स्तोतृणां भद्रकृत् भद्रस्य कन्याणस्य कर्तासि ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ऋत्विग् आदि स्तोत्रोक्ते और उक्थ आदि स्तोत्रोक्ते वर्धनीय हैं । और आप स्तोताओंका भी कन्याण करने वाले हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

इन्द्रमित् केशिना हरीं सोमपेयाय वक्षतः ।

उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥

इन्द्रम् । इत् । केशिना । हरी इति । सोमपेयाय । वक्षतः ।

उप । यज्ञम् । सुराधसम् ॥ २ ॥

केशिना स्कन्धप्रदेशस्थितकेशी हरी एतन्नामानावर्षा सुराधसम् शोभनधनफलोपेतम् अस्मद्यज्ञं प्रति सोमपेयाय सोमपानाय इन्द्रमित् इन्द्रमेव उप वक्षतः उपवहतः । यद्वा यज्ञं सुराधसम् इत्येतद् द्वयम् इन्द्रविशेषणतया योज्यम् । यज्ञम् यष्टव्यं सुराधसम्

शोभनेन धनेन दातव्येन तद्वन्तम् इति तयोरर्थः । तादृशम् इन्द्रं
वक्षतः वदताम् । ॐ वह धारणे । लेट् । “सिन्वद्दुलं लेटि” इति
सिप् । “होदः” इति ढत्वम् । “पढोः कः सि” इति कत्वम् ।
“आदेशमत्ययोः” इति षत्वम् । निघातः ॐ ॥

अयाल वाले हरी नामक अश्वशोभन धनरूपी फलसे सम्पन्न
हमारे यज्ञके प्रति सोमपानके लिये इन्द्रको अवश्य लावें ॥ २ ॥

तृतीया ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिरं इन्द्रोदवर्तयः ।

विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥

अपाम् । फेनेन । नमुचेः । शिरः । इन्द्र । उत् । अवर्तयः ।

विश्वाः । यत् । अजयः । स्पृधः ॥ ३ ॥

पुरा किलेन्द्रः असुरान् जित्वा नमुचिम् असुरं ग्रहीतुं न
शशाकः । स चेन्द्रो युद्धे तेनासुरेण गृहीतो भूत् । स चासुरः इन्द्रम्
एवम् उवाच । त्वां विसृजामि । त्वं मां रात्रावहनि च काले शुष्केण
आर्द्रेण च साधनेन मा हिंसीरिति । एवं समयं कृत्वा इन्द्रं विस-
सर्ज । स च विसृष्टः सन् अहोरात्रयोः संधौ शुष्कार्द्रविलक्षणेन
अपां फेनेन नमुचेः शिरश्चिच्छेद । अयम् अर्थः अध्वर्युर्ब्राह्मणे
प्रपञ्चितः । “इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाव्य नमुचिम् आसु-
रम् नालभत” [तै० ब्रा० १. ७. १. ६] इत्यादिना । सौर्यः
अनेन मन्त्रेणाभिधीयते । हे इन्द्र त्वम् अपां फेनेन वज्रीभूतेन नमुचेः
एतन्नामकस्यासुरस्य । ॐ न मुञ्चतीति नमुचिः । “नभ्राएन-
पात्” इत्यादिना नञः प्रकृतिभावः ॐ । शिरः उदवर्तयः शरी-
राद् उद्धृतम् अकार्पाः । अच्छेत्सीरित्यर्थः । वदैवम् इत्युच्यते ।
यत् यदा विश्वाः सर्वाः स्पृधः स्पर्धमाना असुरसेना अजयाः

जिनवान् अस्ति । ॐ स्पर्धन्त इति स्पृघः । “अन्येभ्योपि हरयते इति किरप्” । दक्षिणप्रद्वयान् संपसारणम् । पृषोदरादित्वाद् रेफस्य ऋकारः अकारलोपश्च । घानुस्वरेण आप, दात्तः ॐ ॥

[पहिले इन्द्रने असुरोंको जीव लिया, परन्तु नमृचि नामक असुरको न पकड़ सके, परन्तु उस असुरने ही युद्धमें इन्द्रको पकड़ लिया । वह असुर फिर इन्द्रसे हम प्रकार कहने लगा, कि-मैं आपको इस प्रतिज्ञा पर छोड़ना हूँ, कि-आप मुझको दिनमें, रातमें, मूखे वा गीले साधनसे भी न मारें । इस प्रकार प्रतिज्ञा कराके उसने इन्द्रको छोड़ दिया । तब इन्द्रदेवने छूटकर दिन और रात्रिकी संधिमें मूखे और गीलेसे, विलक्षण जलके फेनसे नमृचिके शिरको काट डाला । इस घानको अध्वर्यु ब्राह्मण में कहा है, कि-“इन्द्रो वृषं हत्वा असुरान् पराभाव्य नमृचि आसुरम् नालमत” (तैत्तिरीय ब्राह्मण १ । ७ । १ । ६) वही कथा हम मन्त्रमें है, कि-] हे इन्द्रदेव ! वज्र हुए जलके फेनसे नमृचि नामक असुरके शिरको आपने शरीरसे उगार लिया या (कव) जब सकल स्पर्धा करती हुई सेनाओंको आपने जीव लिया या ॥ ३ ॥

अनुर्थी ॥

मायाभिरुत्तिसृप्सत इन्द्र द्यामाऋक्षतः ।

अथ दस्यूरघ्नूनाः ॥ ४ ॥

मायाभिः । उत्तिसृप्सतः । इन्द्र । द्याम् । आऋक्षतः ।

अथ । दस्यून् । अघ्नूनाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र त्वं मायाभिः आत्मीयाभिर्वचनाभिः उत्तिसृप्सतः उत्तिसर्गच्छन् उद्गमनेच्छन् असुरान् । ॐ मृष्यु गर्ता । इन्द्रार्थे,

सन् । “सन्यदोः” इति द्विवचनम् । चरदत्त्वम् । “सन्यता” इति
इत्त्वम् । सन्नन्ताद् । तस्य शत्रादेशः । कुदुत्तरपदमकृतिस्वरेण
“अभ्यस्तानाम् आदिः” इति आद्युदात्तत्वम् ॐ । तान् उत्ति-
सृष्ट्वन् याम् आरुक्षतः आरुक्षन् द्रस्यन् हे इन्द्र त्वम् अवाधू-
नुयाः अवाहसुखम् अपातयः ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी मायाओंसे उद्धमन करना चाहने
वाले और धूलों पर चढ़ना चाहने वाले असुरोंको आंधा मुख
करके नीचेको गिरादेते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

असुन्वामिन्द्र संसदं विपूचीं व्यनाशयः ।

सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥

असुन्वाम् । इन्द्र । सम्सदम् । विपूचीम् । वि । अनाशयः ।

सोमपाः । उत्तरः । भवन् ॥ ५ ॥

हे इन्द्र सोमपाः सोमस्य पाता त्वम् उत्तरो भवन् सोमपानज-
नितबलेन उत्तरः उत्कृष्टतरो भवन् असुन्वाम् सोमाभिपवहीनां
संसदम् अपष्टसर्गां विपूचीम् विष्वगञ्चनां कृत्वा व्यनाशयः विशो-
षेण नष्टाम् अकरोः । ॐ असुन्वाम् इति । पुञ् अभिपवे । लटः
शानच् । स्वादिभ्यः श्नुः । ततष्ठाप् । अमि कृते नकारलोपश्चा-
न्दसः । नञ्समासे बहुव्रीही “नञ्सुभ्याम्” इति उत्तरपदान्तो-
दात्तत्वम् । अय वा अस्मादेव धातोः सुवः कित् [उ० ३. ३५]
इति नुमत्ययः कित्च्चावश्च । न विद्यते सुनुः अभिपवो यस्याः
सेति असुनुः । “सुगां सुगो भवन्ति” इति अगो हिरादेशः ।
“इति ह्रस्वश्च” इति चिकन्पेन नदीसंज्ञायां ङेरादेशः ।
आडागमादि । पूर्वोक्त एव स्वरः ॐ ॥

इति तृतीयेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमपानसे बली होकर सोमाभिषवसे हीन
अयप्री सभाको चारों ओर बखेर कर विशेषरूपसे नष्ट कर डालते हैं
नृनाथ अनुयाकमें एकादश सूक्त समाप्त (६४५)

“प्र ते महे विदधे” इति मृक्तस्य अतिरात्रे ब्राह्मणाच्छंसिन-
स्तृतीयपर्यायशस्त्रे विनियोगोपिहितः । अस्यान्तिमा “अपाः
पूर्वपाम्” [१३] इत्येषा ऋक् परिधानीया ॥

“प्र ते महे विदधे” मृक्तका अतिरात्रमें ब्राह्मणाच्छंसीके तृतीय-
पर्यायशस्त्रमें विनियोग कहा है । इसकी अन्तकी “अपाः पूर्व-
पाम्” यह तेरहवीं ऋचा परिधानीया है ॥

तत्र मयमा ॥

प्र ते महे विदधे शंसिपं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं
मदम् ।

घृतं न यो हरिभिश्चारुसेचत आत्वा विशन्तु हरि-
वर्षसं गिरः ॥ १ ॥

प्र । ते । महे । विदधे । शंसिपम् । हरी इति । प्र । ते । वन्वे ।
वनुषः । हर्यतम् । मदम् ।

घृतम् । न । यः । हरिभिः । चारु । सेचते । आ । त्वा ।
विशन्तु । हरिर्वर्षसम् । गिरः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! महे महति विदधे । विद्यते कर्त्तव्यतया ज्ञायत इति
विदधो यज्ञः । नस्मिन् ते नव हरी एनन्नामानावर्षा तव शीघ्रा-
गमनाय प्र शंसिपम् प्रास्ताविपम् । ॐ शंसु स्तुता । लुटि “च्लेः
सिच्” । अटभावरद्धान्दसः ॐ । तथा वनुषः शत्रुहिंसकस्य याच्य-

मानस्य वा ते तव हर्यतम् कमनीयं मदम् सोमपानजनितं म वन्वे
प्रदाचे । अस्मदभिमतम् इति शेषः । ॐ वन्तु याचने । तनादि-
त्वाद् उच्यते । ॐ । य इन्द्रो घृतं न घृतं यथा अग्नौ होमार्थं
सिञ्चन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैरश्वैः सहागम्य चारुस्मणीयं धनं
सेवने वर्पयति । तं तादृशं हरिर्दर्शयन् । वर्प इति लुपनाम् । हरित-
वर्णं त्वा त्वां गिरः अस्मदीयाः स्तुतिवाचः आ विशन्तु मविशन्तु
तव बुद्धौ संगता भवन्तु ॥

हे इन्द्र ! विशाल यज्ञमें आपके हरि नामक अश्वोंकी मैशजि
आगमनके लिये प्रशंसा करता हूँ । तथा शत्रुहिसक आपके कम-
नीय सोमपानमदजनित मदमें अपने कमितुषित फलकी याचना
करता हूँ, जो इन्द्रदेव, जैसे घृतको अग्निमें होमके लिये सींचने हैं
तिस प्रकार, हरित वर्ण वाले अश्वोंके साथ आकर स्मणीय धन
की वर्पा करते हैं उन हरितवर्ण वाले आपको हमारी स्तुति
मात होवें ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन् हिन्वन्तो हरी दिव्यं
यथा सदः ।

आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शृणं हरिन्त-
मर्चत ॥ २ ॥

हरिम् । हि । योनिम् । अभि । ये । सम् । अस्वरन् । हिन्वन्तः ।

हरी इति । दिव्यम् । यथा । सदः ।

आ । यम् । पृणन्ति । हरिभिः । न । धेनवः । इन्द्राय । शृणम् ।

हरिज्वन्तम् । अर्चतः ॥ २ ॥

ये पूर्वमहर्षयो हरिम् हरणशीलं हरिवर्षसम् इत्युक्तत्वात् हरित-
वर्णं वा योनिम् सर्वेषां मूलकारणम् इन्द्रं समस्वरन् हि समस्तु-
वनं खलु । ॐ स्रु शब्दोपतापयोः । “हि च” इति निघातप्रति-
पेधः ॐ । किं कुर्वन्तः । दिव्यम् देवसंघं च सदः सीदन्त्यत्र
देवा इति सदो यागगृहम् । तद् यथा येन प्रकारेण इन्द्रो गच्छति
तथा हरी एतन्नामानावरणं हिन्वन्तः प्रेरयन्तः रथे योजयन्तः । यं
च इन्द्रं त घेनवः । अत्र पुरस्तादुपाचारोपि नशब्द उपमाधीयः ।
घेनवो नवममृत्तिका गावो यथा स्वस्वामिनं क्षीरादिभिः पूरयन्ति
पूरयन्ति एवं हरिभिः हरितवर्णैः सोमरसेन च पूरयन्ति पूरयन्ति
यजमानास्तस्मै इन्द्राय । ॐ द्वितीयार्थे चतुर्थी ॐ । तम् इन्द्रं
शुभम् शत्रुशोषणसाधनबलोपेतं हरिवन्तम् हरिभिस्तद्वन्तम् अर्चन्त
पूजयन्त । हे अश्विज इति शेषः । यद्वा इन्द्राय इन्द्रस्य हरिवन्तं
शुभम् प्रीणनसाधनबलम् अर्चन्तेति ध्याख्येयम् । ॐ शुभिः प्रीण-
नार्थ इति माधवः ॐ ॥

दिव्य यज्ञगृहमें बैठे हुए माचीन महर्षियोंने इन्द्र जिस प्रकार
श्रीघ्नतासे यागागृहमें आये, इस लिये हरि नामक अरवोंको रथ
में जुतनेके लिये प्रेरित किया और हरितवर्ण बाले सधके मूल-
कारण इन्द्रकी स्तुति की थी । जिस प्रकार नवीन व्याई हुई
गाँवें क्षीर आदिसे अपने स्वामीको पूर्ण करती हैं इसी प्रकार
हरितवर्णके सोमोंमें यजमान इन्द्रदेवको पूर्ण करते हैं ऐसे शत्रुओं
को मूलान बाले बलसे संपन्न हरि नामक घोड़ों बाले इन्द्रदेवकी
हे अश्विजों ! तुम पूजा करो ॥ २ ॥

द्वितीया ॥

सो अस्व यज्ञो हरितो यथायसो हग्निकांमो हरिसा-
ममस्त्योः ।

धुम्नी सुशिमो हरिमन्युसायक इन्द्रे निरूपा हरिता
मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

सः । अस्य । वज्रः । हरितः । यः । आयसः । हरिः । निष्कामः ।
हरिः । आ । गभस्त्योः ।

धुम्नी । सुशिमः । हरिमन्युसायकः । इन्द्रे । नि । रूपा ।
हरिता । मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥

य आयसः अयोविकारो लोहमयो यो वज्रोस्ति अस्य इन्द्रस्य
स वज्रः हरितः हरितवर्णः । लोहमयत्वादेव । स निष्कामः नितरां
कमनीयः । इन्द्रोऽपि हरिः हरितवर्णः । स हरिः उक्तरूप इन्द्रः
गभस्त्योः । गभस्तिर्हस्तः । हस्तयोस्तं हरितं वज्रम् । आ दत्त
इति शेषः । धारयतीत्यर्थः । किं च इन्द्रः धुम्नी धुम्नवान् अन्न-
वान् धनवान् वा । सुशिमः । ॐ शिमे इन् नासिके वेति निरु-
क्तम् [नि० ६. १७] ॐ । शोभनहनुः शोभननासिको वा ।
स इन्द्रः हरिमन्युसायकः हरणशीलमन्युलक्षणसायकोपेतः हरित-
वर्णमननीयवाणोपेतो वा । हरयो मन्यवः सायकाश्च यस्येति वा
व्याख्येयम् । किं बहुना । यानियानि रूपा रूपाणि निरूपणी-
यानि आभरणादीनि सन्ति तानि सर्वाण्यपि हरिता हरितानि
हरितवर्णान्येव नि मिमिक्षिरे नियोजयितुम् इष्टानि बभूवुः । ॐ
मिहेः सन्नन्तात् कर्मणि लिटि रूपम् ॐ ॥

जो इन इन्द्रदेवका लोहेका वज्र है वह भी हरितवर्णका है
और यह परम कमनीय इन्द्रदेव भी हरितवर्ण है- ऐसे हरि इन्द्र
अपने हाथोंमें हरित वज्रको आरण करते हैं । और यह धनवान्
इन्द्र सुन्दर गोड़ी वाले हैं और इनके पास हरित वर्णका मान-

नीय चाण रहता है अधिक क्या इनके जो कुछ भी आभरण
आदिक हैं वे सब ही हरित वर्णके ही इष्ट दृष्ट हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

दिवि न केतुरधि धायि ह्यतो विव्यचद्र वज्रो हरितो
न रंशा ।

तुददहि हरिशिमो य आंसः सहस्रशोका अभवद्-
रिभरः ॥ ४ ॥

दिवि । न । केतुः । अधि । धावि । ह्यनः । विव्यचत् । वज्रः ।
हरितः । न । रंशा ।

तुदत् । अहिम् । हरिश्शिमः । यः । आंसः । सहस्रशोकाः ।
अभवत् । हरिम्भरः ॥ ४ ॥

यज्ञः इन्द्रसंबन्धी दिवि अन्तरिक्षे केतुर्न केतुरिव महापक
आदित्य इव वा ह्यनः कान्तः सन् अधि धायि अव्यधायि निश्चि
आसीत् । ॐ दधातेः कर्मणि लुङ् । चिणि युगागमा । अहमा-
वरद्धान्दसः ॐ । किं च स वज्रः हरितो न हरितवर्णो आदि-
स्यात्वा इव ते यथा रंशा रंशणीयानि प्रति । अथ वा रंशा वेगेन
व्याप्नुवन्ति तद्गद् विव्यचत् विशेषेण व्यप्नोति सर्वम् । यद्वा नेति
कार्ये । रंशाणि स्थानानि प्रति हरितः हरितवर्णो वज्रः विव्यचत्
व्याप्नोति च । अपि च य आंसो हरितवर्णो वज्रोस्ति तेन वज्रेण
हरिशिमः सोमयानेन हरितवर्णश्चिम् इन्द्रः अहिम् वृष्टं तुदत् अतु-
दत् व्यथितम् अकरोत् । किं च हरिभरः ह्योरश्चोर्भर्ता । ॐ हरि-
रंश्यापपदाद् भूयः “संज्ञायामृत्तृजि०” इत्यादिना खच् । दृष्
आंसः ॐ । इन्द्रः तेन वज्रेण साधनेन सहस्रशोकाः सहस्र-

शोकः सहस्रसंख्याकानां शत्रूणां शोचयिता अभवत् । यद्वा अप-
रिमितदीप्तिरभवत् ॥

इन्द्रदेवका वज्र अन्तरक्षिमें मद्गापक आदित्यकी समान स्थित
है, और वज्र जैसे सूर्यके घोड़े बेगसे गन्तव्योंको प्राप्त होते हैं,
तिस मकार व्याप्त होजाते हैं । और जो हरितवर्णका वज्र है उस
वज्रके द्वारा सोमपानसे हरितवर्ण वाले हुए इन्द्रने वृत्रासुरको
व्याधित किया था । और हरि नामक अश्वोंका भरण करनेवाले
इन्द्र उस वज्ररूपी साधनसे सहस्रों, शत्रुओंको शोक पहुँचाने
वाले हुए है ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

त्वं त्वं महर्षया उपस्तुतः पूर्वैभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वं मुक्थ्यं मसामि राधो हरिजात
हर्षतम् ॥ ५ ॥

त्वम् उपस्तुतम् । महर्षयाः । उपस्तुतः । पूर्वैभिः । इन्द्र । हरिः केश ।
यज्वभिः ।

त्वम् । हर्यसि । तव । विश्वम् । मुक्थ्यम् । मसामि । राधः ।
हरिः जात । हर्षतम् ॥ ५ ॥

हे हरिकेश हरिद्वर्णकेशोपेत उक्तवर्णकेशोपेतैरश्वरूपेत वा हे
इन्द्र त्वं त्वम् न्वमेव यत्र यत्र सोमादि हविरस्ति तत्र सर्वत्र त्वमेव ।
☉ "नित्यवीप्सयोः" इति कृदन्तत्वाद् वीप्सायां द्विर्वचनम् ।
आग्नेहितस्य अनुदात्तत्वाद् आद्युदात्तः ☉ । पूर्वैभिः पूर्वमनैः
यज्वभिः यजमानैः उपस्तुतः सन् महर्षयाः अकामययाः । साम-

धर्मान् सोमादिकम् इति गम्यते । तथा इदानीमपित्वम् त्वमेव हर्यसि
कामयसे हवीषि । अनः हे हरिजात हरिम्याम् अरवाम्या सह
यत्रे मादुर्मूत हरितवर्णत्वेन मादुर्मूत चा विश्वम् सर्व सोमादिकम्
उच्यम् प्रशस्यम् अस्मामि अनन्तं हर्यतम् कमनीयं राघः अन्नम्
सोमादिरूपं तत्र नवैव ॥

हे हरे वर्ण वाले केशोंसे सम्पन्न इन्द्र ! जहाँ २ सोम आदि
हवि होता है तहाँ सर्वत्र आप ही हैं । आप माचीन यजमानोंसे
स्तुति पाकर सोम आदि हविकी कामना किया करते हैं । तथा
इम समय भी आप ही हवि आदिकी कामना कर रहे हैं । अतः
एव हे हरि नामक अरवोंके साथ यज्ञस्थलमें मादुर्मूत होने वाले
इन्द्र ! सब सोम आदि, प्रशंसनीय उच्य और कमनीय अन्न
आपका ही है ॥ ४ ॥

पृष्ठी ॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रये बहतो हर्यता
हरी ।

पुरुषं सै सवनानि हर्यते इन्द्राय सोमा हरयो दध-
न्विरे ॥ १ ॥

ता । वज्रिणम् । मन्दिनम् । स्तोम्यम् । मदे । इन्द्रम् । रये ।
बहनः । हर्यता । हरी इति ।

पुरुषि । अस्मै । सवनानि । हर्यते । इन्द्राय । सोमा । हरयः ।
दधन्विरे ॥ १ ॥

हर्यता हर्यता गन्तारो कमनीयो वा ता ता मन्दिनी हरी एत-
न्नामकावरता वज्रिणम् वसोपेतं मन्दिनम् सोममानं हव्यमाणं

स्तोम्यम् स्तोमार्हं स्तुत्यम् एवं महानुभावम् इन्द्रं मदे सोमपान-
जनिताय मदाय रथे वहतः धारयतः अस्मदीयं यज्ञं प्रापयतः ।
इर्यते कान्ताय अस्मै इन्द्राय पुरुणि बहूनि त्रीण्यपि सवनानि
प्रातरादीनि हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे अधारयन् धारयन्ति
कमनीय हरी नामक घोड़े, प्रसन्न होते हुए स्तुतिके पात्र
वज्रधारी इन्द्रको सोमपानसे होने वाले मदके लिये हमारे यज्ञमें
लारहे हैं । इन कमनीय इन्द्रदेवके लिये प्रातःसवन आदि तीनों
सवनोको हरित वर्ण वाले सोम धारण करते हैं ॥ १ ॥

सप्तमी ॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन् हरयो
हरी तुरा ।

अर्वन्ध्रियो हरिभिर्जोषभीयते सो अम्य कामं हरि-
वन्तमानशे ॥ २ ॥

अरम् । कामाय । हरयः । दधन्विरे । स्थिराय । हिन्वन् । हरयः ।
हरी इति । तुरा ।

अर्वन्ध्रिभिः । यः । हरिभिः । जोषम् । ईर्यते । सः । अम्य ।

कामम् । हरिऽवन्तम् । आनशे ॥ २ ॥

कामाय कमनीयाय स्थिराय संग्रामे अविचलिताय इन्द्राय
अरम् अलम् अत्यर्थं हरयः हरितवर्णाः सोमा दधन्विरे सवनानि
धारयन्ति । त एव हरयः हरितवर्णाः सोमाः तुरा तुरी त्वरमाणौ
हरी अरवौ हिन्वन् अहिन्वन् प्रेरयन्ति यज्ञं प्रति प्रेरयन्ति । यः
य इन्द्रः अर्वन्धिः अरणवन्धिर्वेगवन्धिः हरिभिः अरवैः पाजम् यज्ञम्

ईयते गच्छति स इन्द्रः अस्य यज्ञस्य कामम् कामयितव्यं हरिवन्तम्
सोमवन्तं यजमानम् आनशे व्याप्नोति । यद्वा यो रथः अर्वाङ्गि-
हरिभिः वाजम् ईयते स रथः अस्येन्द्रस्य स्वभूतं कामं हरिवन्तम्
आनशे इन्द्रं धारयित्वा प्राप्नोति ॥

इन संग्राममें अविचल रहने वाले कमनीय इन्द्रदेवके लिये
हरितवर्ण सोम सबनोंको धारण करते हैं । और वे ही हरितवर्ण
वाले सोम त्वरा करने वाले हरि नामक अश्वोंको यज्ञकी ओर
मेरणा करते हैं । जो इन्द्रदेव वेगवान् घोड़ोंके द्वारा यज्ञमें आते
हैं । वह इन्द्र इस यज्ञके कमनीय सोमवान् यजमानको प्राप्त होते हैं २
अष्टमी ॥

हरिश्मशारुहरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत
अर्वाङ्गियो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता
पारिपज्जरी ॥ ३ ॥

हरिश्मशारुः । हरिश्केशः । आयसः । तुरःस्पेये । यः । हरिपाः ॥
अवर्धत ।
अर्वाङ्गिभिः । यः । हरिभिः । वाजिनीवसुः । अति । विश्वा ।
दुःश्रुता । पारिपत् । हरी इति ॥ ३ ॥

हरिश्मशारुः हरितवर्णश्मश्रुक्तः हरिकेशः हरितवर्णकेशोपेनः
आयसः अयोविकारभुनः । अयःसारवत्कठिनहृदय इत्यर्थः । क
एवमात्मक इति तम् आह । यः यः मसिद्ध इन्द्रः तुरस्पेये तूर्ण
पातये सोमे निष्पन्ने सति हरिपाः हरिद्वर्णस्य सोमस्य पाता
सन् अवर्धन वर्धते । यश्च वाजिनीवसुः वाजः अन्नं हविलक्षणं
सोऽस्यां क्रियायां विद्यते सा वाजिनी । सैव वसु धनं यस्य

तयोक्तः । अथ वा वाजिनमेव वाजिनी सैव वसु धनं यस्य स
 नादश इन्द्रः अर्बुद्विः अरणकुशलैः शीघ्रगामिभिः हरिभिः अश्वैः
 सोमपानाय आगच्छति तैर्वाजिनीवसुर्भवतीति वा योज्यम् । स
 तादश इन्द्रः हरी अश्वौ रये योजगित्वा आगत्य अस्माकं विश्वा
 विश्वानि सर्वाणि दुरिता दुरितानि पारिपन् पारयन्तु । नाशय-
 त्वित्यर्थः । अस्मान् दुरितानि विश्वानि पारिपन् पारयन्तु तारय-
 त्विति वा योज्यम् । ॐ पू पूरणे । चुरादिः । अत्र हिंसा-
 कर्मा । ययन्नात्पञ्चमलकारः । “सिन्वहुलं लेंटि” इति सिप् ।
 निघातः ॐ ।

हरित वर्णकी डाढ़ी मूँछ वाले, हरितवर्णके केशों वाले,
 लोहेकी समान कड़े हृदय वाले जो इन्द्रदेव हैं वह शीघ्रतासे पीने
 योग्य सोमके निष्यन्न (तयार) होने पर सोमको पीते हुए बढ़ते
 हैं । इति-रूपा क्रिया ही जिनका धन है वह इन्द्र शीघ्रगामी
 अश्वोंके द्वारा सोमपान करनेके लिये आते हैं । वह इन्द्र हरि
 नामक अश्वोंको रथमें जोत आकर हमारे सब पापोंको नष्ट कर
 डालें ॥ ३ ॥

नवमी ॥

सुवेवं यस्य हरिणी विपेनतुः शिमे वाजाय हरिणी
 दविध्वतः ।

प्रं यत् कृते चंभसे मर्मजुद्धरीं पीत्वा मदस्य हर्यत-
 स्यान्धंसः ॥ ४ ॥

सुवाञ्च । यस्य । हरिणी इति । विपेनतुः । शिमे इति । वाजाय ।
 हरिणी इति । दविध्वतः ।

(१६२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसरित

म । यन् । कुने । चमसे । मर्मृजत् । हरी इति । पीत्वा । मदस्य ।
हर्यनस्य । अन्धसः ॥ ४ ॥

यस्य इन्द्रस्य हरिणी हरितवर्णं शिमे हन् स्रवेव स्रवाविव ते
यथा यज्ञे संचरतः एवं सोमपानाय विपेततुः विपततः । चलत
इत्यर्थः । यस्य च वाजाय अन्नाय सोमलक्षणाया तत्पानाय हरिणी
हरितवर्णं शिमे दधिध्वतः कम्पयतः पुरतः स्थितस्य पानाय
चलतः । ॐ “दाघति०” इत्यादिना निपातितोपम् । यद्वद्वृत्तयो-
गाद् अनिपातः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ।
तथा यत् यदा चमसे पात्रे कुने संस्कृते सोमेन पूर्णं सति मदस्य
मदकरस्य हयनस्य कमनीयस्य अन्धमः सोमलक्षणास्यान्नस्य अंशं
पीत्वा हरी म मर्मृजत् हरितवर्णावश्वं प्रमार्ष्टि । स इन्द्रस्तदानीं
स्तुनः इत्यर्थः । अथ वा । ॐ कर्मणि षष्ठ्यन्ता पते ॐ । मदं
हर्यनम् अन्धः पीत्वा शिमे दधिध्वत इति योजयम् ॥

जिन इन्द्रदेवकी हरितवर्णकी ठोड़ी. स्रवे जैसे यज्ञमें चलते हैं,
निम प्रकार सोमपानके लिये चलती हैं । तथा जब चमसपात्रके
सोममे पूर्ण होने पर, कमनीय मदकर सोमरूपी अन्नके अंशकी
पीकर इन्द्र हरित वर्ण वाले अश्वोंका प्रमार्जन करते हैं तब उन
की ठोड़ी फड़कती है ॥ ४ ॥

दशमीः ॥

उत स्म सञ्जं हर्यतस्यं पस्त्योऽस्त्यो न वाजं हरिवां
आचिक्रदत् ।

मद्दी चिद्धि धिपणाह्यदोजंसा बृहद् वयो दधिपे
हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥

उत । स्म । सद्य । हर्यतस्य । पस्त्योः । अत्यः । न । वाजम् ।

हरिवान् । अचिक्रदत् ।

मही । चित् । हि । धिषणा । अहर्यत् । ओजसा । बृहत् । वयः ।

दधिपे । हर्षतः । चित् । आ ॥ ५ ॥

उत स्म । स्मेति पूरणः । अपि च हर्यतस्य गन्तव्यस्य कमनीयस्य वा इन्द्रस्य सद्यः सदनं पस्त्योः द्यावापृथिव्योः संबन्धि भवति । स इन्द्रः अत्यो न वाजम् । अत्य इति अरवनाम । अरवः संग्राममिव हरिवान् हरिभिषु क्तः सन् अचिक्रदत् यज्ञगृहं प्रति गच्छति । कदि कदि वैक्रव्ये । अत्र गत्यर्थः । छान्दसो लुङ् । स्त्वैर्वाङ् णिलोपः । सन्वद्धावाडु इत्त्वम् । निघातः छि । किं च मही चित् महती धिषणा अस्मदीया स्तुतिरपि ओजसा बलेन युक्तम् इन्द्रम् अहर्यत् कामयते । अतः हे इन्द्र हर्यतरि चित् कामयमानस्य यजमानस्यापि तदर्थम् आ आगत्य बृहत् महत् प्रभूतं वयः अन्नं दधिपे धारयसि प्रयच्छसि ॥

इन कमनीय इन्द्रका भवन द्यावापृथिवीमें रहता है, जैसे घोड़ा संग्राममें जाता है, तैसा यह इन्द्र हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न होकर यज्ञगृहकी ओर जाते हैं । और हमारी स्तुति भी बलसे सम्पन्न इन्द्रदेवकी कामना करती है । और हे इन्द्र ! आप भी कामना करते हुए यजमानके लिये आकर उसको विशाल परिमाणमें अन्न प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

एकादशी ॥

आ रोदंसी हर्षमाणो महित्वा नव्यं नव्यं हर्षसि
मन्म नु प्रियम् ।

प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय १

आ । रोदसी इति । हर्यमाणः । महित्वा । नव्यमनव्यम् ।

हर्यसि । मन्म । नु । मियम् ।

म । पस्त्यम् । असुर । हर्यतम् । गोः । आविः । कृधि ।

हरये । सूर्याय ॥ १ ॥

हे इन्द्र हर्यमाणः कामयमानस्त्वं महित्वा महत्त्वेन रोदसी ।
 सकारान्तपक्षे द्विवचनान्तम् एतत् । ईकारान्तपक्षे रोदसी रोद-
 स्यादित्यर्थः । "वा छन्दसि" इति पूर्वसवर्णदीर्घः । आवा-
 पृथिव्यौ आ । उासर्गश्रुनेर्योग्यक्रियाभ्याहारः । पूरयसि ।
 तथा हे इन्द्र नव्यमनव्यम् नवतरनवतरम् असकृच्छ्रतेपि सर्वदा
 नूतनम् अत एव मियम् हृदयंगमं मन्म मननीयं स्तोत्रं नु क्षिप्रं
 हर्यसि कामयसे । हे असुर असवः प्राणास्तदन् मकृष्टबलवन्मिन्द्र
 हर्यतम् स्पृहणीयं गोः । जातावेकवचनम् । गवाम् आवा-
 सभूतं पस्त्यम् । गृहनामैतत् । गृहं पण्डितिरपहृतानां गवां निवा-
 सस्थानं हरये हरणशीलाय हरिद्वर्णाय वा सूर्याय तदर्थं स
 यथा गाः प्रत्यर्पयति स्तोत्रं तथा आविष्कृधि मकटीकुरु ।
 अयं वा गोशब्दः उदकावाची । गवाम् उदकानां पस्त्यम् स्थानं
 हरये सूर्याय आविष्कृधि स यथा वृष्टिं प्रयच्छति तथा कुरु । आदि-
 त्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतेः [म० स्मृ० ३. ७६] ॥

हे कामना करने योग्य इन्द्र ! आप अपने महत्त्वसे आवा-
 पृथिवीको व्याप्त कर लेने हैं और हे इन्द्र ! चारम्बार सुनने पर
 भी सदा नवीन ही प्रतीत होने वाले अत एव मिय हृदयंगम
 स्तोत्रकी आप सदा कामना करते हैं । हे उत्कृष्ट प्राणवत्त्वसे
 सम्पन्न इन्द्र ! पण्डितोंसे हरी हुई गीओंके स्पृहणीय, स्थानको

आप सूर्यदेवको प्रदान करते हैं, और वह जैसे स्तोताओंके लिये
उनको प्रदान करें, तिस प्रकार करिये ॥ १ ॥

द्वादशी ॥

आ त्वां ह॒र्यन्तं प्र॒युजो॒ जनानां॑ रथे॑ वहन्तु॒ हरि॑ंशि-
प्रमिन्द्र ।

पि॒त्रा यथा॑ प्र॒तिभृ॑तस्य॒ मध्वो॑ ह॒र्यन् य॒ज्ञं स॒धमा॑दे
दशो॒णिम् ॥ २ ॥

आ । त्वा । ह॒र्यन्तम् । प्र॒युजः । ज॒नानाम् । रथे॑ । वह॒न्तु । हरि॑-
। ऽशि॒मम् । इन्द्र॒ ।

पि॒त्र । यथा॑ । प्र॒तिभृ॑तस्य । म॒ध्वः । ह॒र्यन् । य॒ज्ञम् । स॒धमा॑दे ।
दश॑ऽओणिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र हरिशिमम् सोमपानेन हरितवर्णाभ्यां हनुभ्यां युक्तं
त्वा त्वाम् । भाविगर्त्यवमुक्तः । आगतस्य सोमपाने सति शिम-
योर्हरिद्वर्णत्वसंभवात् । तादृशं ह॒र्यन्तम् सोमपानं कामयमानं त्वा
त्वां जनानाम् यजमानानाम् अर्थाय प्रयुजः प्रकर्षेण परस्परं
संयुक्ता अश्वाः रथे आ वहन्तु प्रापयन्तु । हे इन्द्र प्रतिभृतस्य
संभृतस्य ग्रहचमसेषु घृतस्य मध्वः मधुवत्प्रियभृतस्य सोमस्य ।
❀ कर्मणि षष्ठ्यां ❀ । प्रतिभृतं मधु ह॒र्यन् कामयमानो यज्ञम्
यज्ञसाधनभूतं दशोणिम् । ओणयः अङ्गुल्यः । दशभिरङ्गुलि-
भिर्निष्पीडितंसोमं सधमादे । सह माद्यन्त्यत्रेति सधमादो यज्ञः ।
तस्मिन् यथा पिब यथा पिबसि । तथा त्वां रथे वहन्तु इत्यर्थः ॥

हे इन्द्र ! सोमपानसे हरितवर्णकी हनुओंसे सम्पन्न होने वाले,
सोमपानकी कामना करने वाले आपको यजमानके लिये परस्पर

संयुक्त हुए अरब लाखें । हे इन्द्र ! ग्रह चमस आदिमें भरे हुए मधुकी समान मियभूत सोमके मधुकी कामना करते हुए पशुके साधन दश अंगुलियोंसे निचोड़े हुए सोमके घर यज्ञमें तुम जिस प्रकार पान कर सको तिस प्रकार छोड़े आपको लाखें ॥ २ ॥

अथोदशी ॥

अथाः पूर्वेणाम् हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषं जठर आ
वृषस्व ॥ ३ ॥

अथाः । पूर्वेणाम् । हरिवः । सुतानाम् । अथो इति । इदम् ।
सवनम् । केवलम् । ते ।

ममद्धि । सोमम् । मधुमन्तम् । इन्द्र । सत्रा । वृषन् । जठर ।
आ । वृषस्व ॥ ३ ॥

हे हरिवः हरिवन् हरिव्या तद्वन् इन्द्र त्वं सुतानाम् अभिपु-
तानो पूर्वेणाम् प्रातःसवनसंपादितानां सोमानाम् । माध्यंदिनसव-
नापेक्षया पूर्वत्वम् एषाम् । ॐ कर्मणि षष्ठ्यावेते ॐ । अभिपु-
तान् प्रातःसवनिकान् सोमान् अथाः पीतवान् असि । अथो अपि
च इदं माध्यंदिनं सवनं केवलम् असाधारणं ते तथैव । “माध्यं-
दिनं सवनं केवलं ते” इति हि [ऋ० ४. ३५. ७] मन्त्रान्तरम् ।
अतो माध्यंदिने सवने मधुमन्तम् माधुर्योपितं सोमं ममद्धि । मद-
याचिना मदिधातुना पानम् अन्तरेण मदाभावात् पानम् आचि-
प्यते । अनः पिबेत्पर्यः । ॐ मदि स्तुत्यादी । “बहुलं छन्दसि”
इति शपः रलुः । पादादिरवाद् अनिघातः । हेरपित्रात् प्रत्यय-

स्वरः ॐ । हे वृषन् वर्षक इन्द्र सत्रा साकम् एकधैव जठरे उदरे
आ वृषस्व आसिञ्च । यथा कुक्षेः पूर्तिर्भवति तथा पिबेत्यर्थः ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप अभिषुत, मातःसवन
में सम्पादित सोमोंका पान कर चुके हैं और यह माध्यन्दिनका
सवन भी आपका ही है । अतः आप माध्यन्दिन सवनमें इस
सोमका पान करके मदमें भरिये । हे वर्षक इन्द्र ! आप इसको
एक साथ जठरमें भर लीजिये ॥ ३ ॥

चतुर्दशी ॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः १

अप्सु । धूतस्य । हरिवः । पिबे । इह । नृभिः । सुतस्य ।
जठरम् । पृणस्व ।

मिमिक्षुः । यम् । अद्रयः । इन्द्र । तुभ्यम् । तेभिः । वर्धस्व ।
मदम् । उक्थवाहः ॥ १ ॥

हे हरिवः हरिवन् इन्द्र अप्सु उदकेषु सोमाभिषवार्थेषु धूतस्य
कम्पितस्य मिश्रितस्य । ॐ कर्मणि षष्ठी ॐ । अप्सु धूतं नृभिः
नेतृभिः अभ्यर्च्य ममृतिभिः सुतस्य सुतम् अभिषुतं सोमम् इह
अस्मिन् यज्ञे पिब पानं कुरु पीत्वा जठरं पृणस्व च पूरय । जठ-
रपूर्तिपर्यन्तं पिबेत्यर्थः । ॐ “चादिलोपे विभाषा” इति मथमा
तिङ्शितमक्तिर्न निहन्यते । पृणस्वेत्येषा द्वितीया तु निहन्यत एव ॐ ।
हे इन्द्र तुभ्यं स्वर्द्धं यं सोमम् अद्रयः अभिषवसाधना प्रावाणो
मिमिक्षुः सेक्तुम् अभिषवं कर्तुम् ऐन्द्रन् । तेभिस्तैरभिषुतैः सोम-

रसैः हे उवथवाहः उवथैः शस्त्रैरुद्यमान इन्द्र तव मदं वर्धस्व अभि-
ष्टदं कुरु । मघो भवेत्पर्यः ॥

हे हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! सोमाभिषवके जलोंमें
मिलाये हुए, अध्वर्यु आदिसे अभिषुत सोमका इस यज्ञमें आप
पान करिये । और पेट भर कर पीजिये । हे इन्द्र ! आपके लिये
जिस सोमको अभिषवके साधन पत्थर अभिषवकर चुके हैं उन
अभिषुत सोमरसोंसे हे शस्त्रोंसे उद्यमान इन्द्र ! अपने मदको बढ़ा-
इये-मत्त हजिये ॥ १ ॥

पञ्चदशी ॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्णं इयमि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व
तुभ्यम् ।

इन्द्र धेनाभिरिह मांदयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या
गृणानः ॥ २ ॥

म । उग्राम् । पीतिम् । वृष्णे । इयमि । सत्याम् । प्रयै । सुतस्य ।
हरिऽअश्व । तुभ्यम् ।

इन्द्र । धेनाभिः । इह । मांदयस्व । धीभिः । विश्वाभिः । शच्या ।
गृणानः ॥ २ ॥

हे हर्यश्व हग्निनामकाश्वोपेत इन्द्र वृष्णे अभिमतफलवर्षकाय
तुभ्यं प्रयै प्रकर्षेण गन्तुम् । ॐ मपूर्वाद् या मापणे इत्यस्मात्
“प्रयै रोहिष्यै अज्यधिष्यै” इति छन्दसि तुमर्ये कैमत्ययान्तो
निपातितः । प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तः ॐ । तदर्थं सुतस्य अभि-
षुतस्य सोमस्य उग्राम् उद्गूर्णयतां सत्याम् अवितयमदलात्तण-

फलोपेतां पीनिम् पानं प्रेषयिं प्रेरयामि । किं च हे इन्द्र शच्या ।
कर्मनामैतत् । यागेन निमित्तेन विश्वाभिः सर्वाभिः धीभिः स्तु-
तिभिः गृहानः स्तूयमानः सन् धेनाभिः ग्रीणयित्रीभिः स्तुति-
भिर्वाग्भिः इह अस्मिन् यज्ञे मादयस्व तृप्तो भव । ॐ मद वृत्ति-
योगे । चुरादिः । आत्मनेपदी ॐ ॥

हे हरि नामक अश्वों वाले इन्द्र ! अभीष्ट फलकी वर्षा करने-
वाले आपको प्राप्त होनेके लिये अभिषुत सोमके प्रचण्ड बलप्रद
वास्त्वमें मदरूपी फल वाले पानको प्रेरित करता हूँ । हे इन्द्र-
देव ! यागरूपी कर्मसे और सकल स्तुतियोंसे प्रशंसा पाते हुए
आप प्रशंसिका स्तुतियोंसे इस यज्ञमें तृप्त हूजिये ॥ २ ॥

षोडशी ॥

ऊ॒ती श॒चीव॒स्तव॑ वी॒र्ये॒ण व॒यो द॒धाना॑ उ॒शिजं॑ ऋ॒तज्ञाः॑
प्र॒जाव॑दिन्द्र॒ मनु॒षो दुरो॑णे त॒स्थुर्गृ॑णन्तः स॒धमा॑द्या॒सः ३
ऊ॒ती । श॒चीवः॑ । तव॑ । वी॒र्ये॒ण । व॒यः । द॒धानाः॑ । उ॒शिजः॑ ।
ऋ॒तज्ञाः॑ ।

प्र॒जाव॑त् । इन्द्र॒ । मनु॒षः । दुरो॑णे । त॒स्थुः । गृ॒णन्तः । स॒धमा॑-
द्या॒सः ॥ ३ ॥

हे शचीवः शक्तिमन् इन्द्र ऊती ऊत्या रक्षणेन तव वीर्येण
सामर्थ्येन च प्रजावत् पुत्रादिरूपाभिः प्रजाधिरूपेतं वयः अन्नं
दधानाः धारयन्तः उशिजः त्वां कामयमाना ऋतज्ञाः सत्यभूतफल
साधनं यज्ञं जानन्तः । पष्ठस्याहः प्रयोगस्य अतिगहनत्वाद् ऋतज्ञा
इत्युक्तम् । सत्रे ये यजमानास्ते ऋत्विज इति शास्त्रेण तार्वेपां यज-
मानभूतानाम् ऋत्विजां फलसाधारण्यात् प्रजावद् वयो दधाना

इति फलसंबन्धवचनं युक्तम् । एवंभूता अश्विजो मनुष्यः मनुष्यस्य यजमानस्य दुरोणे यागगृहे । ॐ दुरोण इति गृहनाम । दुरा भवन्ति दुस्तर्पा इति यास्कः [नि० ४. ५] ॐ । सप्रस्यं बहु-
कर्तृकत्वेऽपि केन चिद् यजमानेन अवश्यंभावाद् मनुषो दुरोण इत्युक्तम् । सधमाधासः सह मदनीयाः सन्तो गृणन्तः त्वां स्तु-
वन्तः तस्युः तिष्ठन्ति ॥

तृतीयेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

समाप्तश्च तृतीयोऽनुवाकः ॥

हे शक्तिसम्पन्न इन्द्र ! आपकी रक्षक शक्तिसे पुष्पादिरूप मन्त्रों वाले ऋन्को धारण करते हुए और आपकी कामना करते हुए सत्यफलसाधन यज्ञको जानते हुए अश्विज, मनुष्य यजमानके यागगृहमें आपकी स्तुति करते हुए विद्यमान हैं ॥३॥

तृतीय अनुवाकमें त्रयोदश सूक्तसमाप्त (१५६)

तृतीय अनुवाक समाप्त

चतुर्थेऽनुवाके चत्वारि सूक्तानि । तत्र “यो जात एव” इति प्रथमं सूक्तं सामसूक्तम् इति व्यवहियते । “अस्मां इदु मं तवसे” इति द्वितीयं सूक्तम् अहीनसूक्तम् इति व्यवहियते । द्वादशाष्टौ वैराजपृष्ठे विश्वजिति “यो जातः” इति सूक्तं ब्राह्मणाच्छंसिनः शस्त्रे विनियुक्तम् । सूत्रितं हि वैताने । “नवरात्रेभिर्जिह्विषुवान् विश्वजिच्चतुर्विंशत्” इत्युपक्रम्य “विश्वजिति वैराजपृष्ठे ‘यद् यान् इन्द्र ते शनम्’ [२०. ८१. १] ‘यद् इन्द्र यावत्तस्वम्’ [२०. ८२. १] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो यार्हती उक्ते योनी । ‘इन्द्र प्रतुं न आ भर’ [२०. ७६. १] इति तृतीयाम् । ‘इन्द्र मिधातु शरणम्’ [२०. ८३. १] इति सामप्रगायः । सुक्रीति-
वृषाकपी ‘यो जात एव प्रथमो मनस्वान्’ [२०. ३४.] इति सामसूक्तम् “अहीनसूक्तम् आनपते” इति [वै०. ६. ३] ॥

तथा अस्योर्गामिण क्रतावपि माध्यन्दिनसत्रने अस्य सूक्तस्य
ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे विनियोगः । “अस्योर्गामिण गर्भकारं शंसति”
इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “सुकीर्तिं वृषाभपि सापसूक्तम् अहीनसू-
क्तम् आवपते” इति [वै० ४. ३] ॥

एतत्सूक्तविषय इतिहासो बृहदेवतानुक्रमणायाम् उक्तः ॥

संयुज्यतपसात्मानम् ऐन्द्रं विभ्रन्महद् वपुः ।
अदृश्यत मुहूर्तेन दिवि च व्योम्नि चेह च ॥
तम् इन्द्र इति मत्वा तु दैत्यौ भीमपराक्रमौ ।
धुनिश्च चुमुरिश्चोभौ सायुधावभिपेक्षतुः ॥
विदित्वा स तयोर्भावम् ऋषिः पारं चिकीर्षतोः ।
यो जात इति सूक्तेन कर्माण्यैन्द्राण्यकीर्तयत् ॥

अपरे त्वन्यथा वर्णयन्ति ॥

पुरा किल महेन्द्राद्या वैन्ययज्ञं समामताः ।
ऋषिर्गृत्समदस्तत्र वैन्यस्य सदसि स्थितः ॥
असुराश्च समाजगुः शीघ्रम् इन्द्रजिघांसया ।
तान् दृष्ट्वा निर्जगामेन्द्रो यज्ञाद् गृत्समदाकृतिः ॥
निरगात् सोपि तद्यज्ञाद् ऋषिर्वैन्येन पूजितः ।
तं दृष्ट्वा चेन्द्र एवायम् इति ते जगद्गुः किल ॥
नाहम् इन्द्रोस्मि किं त्वेवंशुणोपेतः स इत्थृषिः ।
यो जात इति सूक्तेन निराचक्रे वधोद्यतान् ॥ इति ॥

केचित् तु अत्र सूक्ते “यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उते-
पाहुर्नैपो अस्तीत्येनम्” इति [५] इन्द्रस्य नास्तित्ववचनाद्
अन्यत्रापि “नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ई ददर्श” इति
[अ० ८. १००. ३] इन्द्रस्याभावश्रवणाच्च तत्सद्भावं निरा-
कुवाणान् प्रति अस्मिन् सूक्ते इन्द्रस्य असाधारणमाहात्म्यकथनै-
स्तदस्तित्वम् अवागमयद् इति केचिद् आहुः ॥

चौथे अनुवाकमें चार सूक्त हैं । इनमें “यो जात एव” यह प्रथम सूक्त सामसूक्त कहलाता है । “अस्मा इदु म तवसे” यह द्वितीय सूक्त अहीनसूक्त कहलाता है । द्वादशाह आदिमें वैराज-पृष्ठके विश्वजित्में “यो जाता” सूक्त ब्राह्मणाच्छंसीके शास्त्रमें विनियुक्त होता है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, “नव-रात्रेऽभिजिद् विषुवान् विश्वजिच्चतुर्निशवत्” का आरंभ करके “विश्वजिति वैराजपृष्ठे ‘यद् धाव इन्द्र ते शतम्’ (२० । ८१ । १) ‘यद्दिद्र यावतस्त्वम्’ (२० । ८२ । १) इति पृष्ठस्तोत्रियानुक्ता भार्गवा उक्ते धोनी । ‘इन्द्रं क्रतु न आ भर’ (२० । ७६ । १) इति तृतीयाम् । ‘इन्द्र प्रियातु शरणम्’ (२० । ८३ । १) इति सामप्रगाथः । सुकीर्तिवृषाकपी ‘यो जात एव प्रथमो मनस्वान्’ (२० । ३४) इति सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते” (वैतान-सूत्र ६ । ३) ॥

तथा अतोर्षाणके क्रतुमें भी माध्यन्दिनसवनमें इस सूक्तका ब्राह्मणाच्छंसीशास्त्रमें विनियोग है । “अतोर्षामिण गर्भकारं शंसनि” का प्रक्रम करके वैतानसूत्र ४ । ३ में कहा है, कि-“सुकीर्तिवृषाकपि सामसूक्तं अहीनसूक्तं आवपते” ॥

इस सूक्तसे संयन्त्र रखने वाला इतिहास धृष्टदेवतानुक्रमणिका में कहा है । उसकी अर्थ यह है, कि-“एतस्मद् अश्विने तप करके इन्द्रके प्रशंसनीय रूपको धारण कर लिया और वह सुहृत् भरमें पलोकमें भूलोकमें और अन्तरिक्षमें दौखने लगे । धुनि और धुमुरि नामक दो मयङ्गुर पराक्रमी दैत्य ये वे एतस्मद् अश्विको इन्द्र समझ उन पर आयुध लेकर दृष्ट पड़े । जिन पाप करना चाहने वालोंके भावको जान कर अश्वि ‘यो जात एव’ सूक्तसे इन्द्रके कर्मोंका कीर्तन करने लगे ।” दूसरे इसका भिन्नरूपमें वर्णन करते हैं, कि-पहिले “महेन्द्र आदि वेन्दके पदमें आए ये

तहाँ वेनपुत्रकी सभामें गृत्समद ऋषि भी बैठे हुए थे । इधर असुर भी इन्द्रको मारनेकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक आगए । उन को देख इन्द्र गृत्समद ऋषिका रूप धारण करके यज्ञसे बाहर निकलगए । और वैश्यसे सत्कार पाकर ऋषि भी उस यज्ञसे चलने लगे । उनको इन्द्र मान कर ऋषिको उन असुरोंने पकड़ लिया । तब ऋषिने कहा, 'कि-मैं इन्द्र नहीं हूँ किन्तु इन्द्र सा हूँ, और "यो जातः" सूक्तसे वध करनेके लिये उद्यत असुरोंको दूर कर दिया" ॥ कोई कहतेहैं कि—"यंस्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरं उतेमाहुर्नैपो अस्तीत्येनम्" इस पाँचवीं ऋचामें इन्द्रके नास्तित्व वचनसे, अन्यत्र भी "नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क ईम् ददर्श" ऋग्वेदसंहिता ८ । १०० । ३ में इन्द्रके अभावके श्रवण होनेसे उनके सद्भावका निराकरण करने वालोंके मति इस सूक्तमें इन्द्र का असाधारण माहात्म्य कह कर इन्द्रका अस्तित्व मतिपादन किया है ।

तत्र मयमा ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् ऋतुना पर्यभूषत् ।

यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृण्यस्य महा स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

यः । जातः । एव । मयमा । मनस्वान् । देवः । देवान् । ऋतुना । परिऽअभूषत् ।

यस्य । शुष्माद् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् । नृण्यस्य । महा । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १ ॥

य इन्द्रो देवः जात एव मादुर्भूतमात्रः सन् प्रथमः प्रकृतमो
 मुह्यः सन् । ॐ प्रथम इति मुख्यनाम प्रथमो भवतीति निरुक्तम्
 [नि० २. २२] ॐ । मनस्वान् प्रकृष्टेन अनुग्राहकेण मनसा
 युक्तो देवान् इतरान् क्रतुना कर्मणा असाधारणेन व्यापारेण
 पर्यभूयत् परिभाषयाचकार । स्वाधीनान् अकरोत् । रक्ष्यत्वेन
 पर्यगृह्याद् वा । यस्य इन्द्रस्य शुष्मात् शोषकाद् बलाद् रोदसी
 घावापृथिव्या अभ्यसेताम् भीते अभूयताम् । शुष्मात् इत्यनेन
 शारीरं बलम् अभिषाय सेनालक्षणं बलं मयसाधनतया अभि-
 धत्ते नृम्णस्य महति । नन् शत्रुजनान् प्रति अभिभावुकं मनो
 यस्य स तादृशः उक्तलक्षणान् नन् नमयतीति वा नृम्णं सेनादि-
 लक्षणं यताम् । तस्य महा महत्त्वेन च अभ्यसेताम् इति पूर्ववा-
 न्वयः । हे जनासः असुरजनाः स इन्द्रो नाहम् इति अपि
 आत्मन इन्द्रत्वे पर्यहरत् ॥ अस्य सूक्तस्य इन्द्रसद्भाषमतिपादन-
 परत्यक्षे हे जनासः इन्द्रो नास्तीति मन्यमाना जनाः उक्तगुणो-
 पेताः स इन्द्रोऽस्त्येवेति व्याख्येयम् । ॐ अत्र निरुक्तम् । यो जात
 एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना कर्मणा पर्यभूयत् पर्य-
 गृह्यात् पर्यरक्षद् अत्यक्रामद् इति वा । यस्य बलाद् घावापृथि-
 व्यापृथिविभीता नृम्णस्य महा बलस्य महत्त्वेन । जनास इन्द्र
 इत्यपेक्षार्थस्य प्रीतिर्मयत्पाद्यानसंयुक्तेति [नि० १०. १०] ।
 पर्यभूयत् इति । भवनेर्लुङि व्यत्ययेन स्तोत्रे वसः । “अथ कः
 किति” इति इट्प्रतिषेधः । “यद्वृत्तान्नित्यम्” इति निघातप्रति-
 षेधः । “तिष्ठि चोदाचवति” इति गतेनिघातः ॥

जिन इन्द्रदेवने प्रकट होते ही मुख्य वन कर अपने अपने अनुग्रह
 करने वाले मनसे अन्य देवताओंको अपने असाधारण व्यापार
 से रक्ष्य-रूपमें प्रदण्ड कर लिया है । जिन इन्द्रके शोषक शारी-
 रक बलसे घावा पृथिवी भयभीत होते हैं और जिनके सैनिक-

बलसे और महत्त्वसे धनापृथिवी भयभीत मृते है है सुख जनों ।
[मैं वह इन्द्र नहीं हूँ, इस प्रकार अग्नि अपना इन्द्रत्व हटाया
और इन्द्रके सद्भावके प्रतिपादन करनेके पक्षमें "पूर्वोक्त गुणों
वाले इन्द्रदेव हैं" यह व्याख्या करनी चाहिये] ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

यः पृथिवी व्यथमानामहं हृद् यः पर्वतान् प्रकुपितो
अरम्णात् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्भनात् स
जनाम् इन्द्रः ॥ २ ॥

यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । अहं हृत् । यः । पर्वतान् । प्रकु-
पितान् । अरम्णात् ।

यः । अन्तरिक्षम् । विममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तम्भनात् ।
सः । जनाम् । इन्द्रः ॥ २ ॥

हे जनामः जनाः य इन्द्रः व्यथमानाम् चलन्ती पृथिवीम् अहं-
हृत् शर्करादिभिर्दंडाम् अकरोत् । यश्च प्रकुपितान् पर्वतान् मारुपं मारुपान्
परस्परं युद्धाय इतस्ततश्चलतः पर्वतान् गिरीन् पक्षपुक्तान् अर-
म्णात् पक्षच्छेदेन नियमितवान् । यथा उत्प्लुत्योऽप्लुत्य प्राणि-
पीडां न कुर्वन्ति तथा स्वस्थाने स्थापितवान् इत्यर्थः । ॐ गमु
क्रीडायाम् । अस्य अन्तर्भावितव्यस्य । श्रापत्ययः । अस्य अहं-
हृत् इत्यस्य च यद्वद्वत्तयोगाद् अनिघातः । अडागमस्वरः ॐ ।
यश्च इन्द्रः अन्तरिक्षम् । अन्तरा ज्ञान्तं भवति सर्वम् इत्यन्तरि-
क्षम् । क्रीडशम् । वरीयः वरुतरम् इयत्ताशुन्यं विममे विमानम्

अकरोत् । ॐ माद् माने इत्यस्य ॐ । यश्च धाम् दिवम् अस्त-
 भ्नात्निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्
 हे असुरो ! जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा
 आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इषर
 उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर
 काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष
 को परिमाण शुन्य कर दिया है और जिन्होंने धुलोकको स्तंभित
 कर दिया है वह इन्द्रदेव हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपथा
 वलस्य ।

यो अश्मनोरन्तरग्निं जजानं संवृक् समत्सु स जनास
 इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । नः । गाः ।
 उदाजदपथा । अगध्या । वलस्य ।

यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजानः । सम्वृक् । समत्सु ।
 सः । जनासः । इन्द्रः ॥ २ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त
 सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गापद्मा
 ज्ञादिनदीर्वा अरिणात् मेरयत् । ॐ री गतिरेवणयोः । क्रयादिः ॐ ।
 यश्च वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्था-
 पिता गाः अगध्या । अग कुत्सितं धीयत इत्यपधा पिधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ॐ अपपूर्वाद् दधाते: “आतश्चोप-
सर्गे” इति अङ् । “सुपां सुलुक्” इति पञ्चम्या आकारः ॐ ।
यश्च अरुमनोः व्यास्योर्मेषयोरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् ।
मेषयोः संघर्षेण वैद्युतोन्मिर्जायत इति पसिद्धम् एतत् । अन्धार-
कत्वेन अतिशीतत्वात् तत्र आग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सा-
मर्थ्यम् । यश्च समस्तु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स
इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं श्लाघयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण
करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको
मेरित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हरी हुई
गौओंको बिलसे प्रकट किया है । और जो दो मेघोंमें भरे हुए
पत्थरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [जलधारक होनेसे अति-
शीतत्वमें भी अग्निको उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति
है] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं वह इन्द्र हैं मैं
तो भाई श्रुति हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा व्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं
गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्ष्माददर्यः पुष्टानि स जनास
इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । व्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् ।
अधरम् । गुहा । अकरित्यकः ।

अकरोत् । ॐ मादु माने इत्यस्य ॐ । यश्च धाम् दिवम् अस्त-
 भ्नात् निरुद्धाम् अकरोत् स इन्द्रः इतीन्द्रस्य सद्भावं मुनिरुपादिक्षत्
 हे अयुरो । जिन्होंने इस विचलित होती हुई पृथिवीको शर्करा
 आदिसे दृढ़ कर दिया है । और जिन्होंने क्रोधमें भर कर इषर
 उधर युद्धके लिये विचरण करने वाले पक्ष वाले पर्वतोंको पर
 काट कर नियमित कर दिया है और जिन्होंने विशाल अन्तरिक्ष
 को परिमाण शुन्य कर दिया है और जिन्होंने घुलोकको स्तम्भित
 कर दिया है वह इन्द्रदेव हैं ॥ २ ॥

तृतीया ॥

यो हत्वा हिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजं दपथा
 वलस्य ।

यो अश्मनो रन्तरग्निं जजानं संवृक् समत्सु स जनास
 इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः । हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । नः । गाः ।
 उद्भाजत् । अपथा । वलस्य ।

यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजानः । सम्वृक् । समत्सु ।
 सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ३ ॥

यः इन्द्रः अहिम् अन्तरिक्षे गन्तारं मेघं हत्वा विदार्य सप्त
 सर्पणशीलान् सिन्धून् । नदीरित्यर्थः । सप्तसंख्याका गङ्गापद्-
 मादिगदीर्वा अरिणात् प्रेरयत् । ॐ री गतिरेषणयोः । ऋषादिः ॐ ।
 यश्च वलस्य एतन्नामकस्यासुरस्य गाः असुरेणापहृता बिले स्वा-
 पिता गाः अपथा । अप कुत्सितं धीयत इत्यपथा पिधानम् ।

तस्माद् उदाजत् उदगमयत् । ॐ अपपूर्वाद् दधातेः “आतश्चोप-
सर्गे” इति अङ् । “सुषां सुलुक्” इति पञ्चम्या आकारः । ॐ ।
यश्च अरपनोः व्याप्तयोर्मेषयोरन्तः अग्निं जजान उदपादयत् ।
मेघयोः संघर्षेण वैद्युतोभिर्जायत इति प्रसिद्धम् एतत् । अग्न्या-
कत्वेन अतिशीतत्वात् तत्र अग्न्युत्पादनम् इन्द्रस्य असाधारणं सा-
मर्थ्यम् । यश्च समस्तु संग्रामेषु संवृक् शत्रुसंवर्जको भवति । स
इन्द्र इत्यसाधारणैः कर्मभिः एवम् इन्द्रं ज्ञापयामास ॥

जिन इन्द्रदेवने अन्तरिक्षमें विचरण करने वाले मेघको विदीर्ण
करके सरकनेके स्वभाव वाली गंगा यमुना आदि नदियोंको
घेरित किया है और जिन्होंने बल नामक असुरकी हरी हुई
गौओंको बिलसे प्रकट किया है । और जो दो मेघोंमें भरे हुए
पत्थरोंसे वैद्युताग्निको प्रकट करते हैं [जलधारक होनेसे अति-
शीतत्वमें भी अग्निको उत्पन्न करना इन्द्रकी असाधारण शक्ति
है] जो संग्रामोंमें शत्रुओंको नष्ट कर डालते हैं वह इन्द्र हैं मैं
तो आई अग्नि हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

येनेमा विश्वा व्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं
गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्ष्माददर्यः पुष्टानि स जनास
इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन । इमा । विश्वा । व्यवना । कृतानि । यः । दासम् । वर्णम् ।
अधरम् । गुहा । अकुरित्यकः ।

श्वघ्नीऽहम् । यः । जिगीवान् । लक्षम् । आदत् । अर्यः । पुष्टानि ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ४ ॥

येन इन्द्रेण इमा इमानि परिदृश्यमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि च परा वायव्यानि स्वेन व्यावपितव्यानि कृतानि । यद्वा चयव्यानि कृतानि । दृढीकृतानीत्यर्थः । ॐ श्युङ् प्लुङ् गतो । “कृत्यश्रुतो बहुलम्” इति श्युङ् । “शेरञ्जन्दसि बहुलम्” इति शेरुङ् ॐ । यश्च इन्द्रः दासम् उपक्षपयितारम् असुरं वर्णम् नीच-वर्णम् अथरम् निकृष्टं कृत्वा गुहा गुहायाम् अकः अकार्पात् । किं यलक्षम् लक्षं योयः प्रकाशभूतः शत्रुरस्ति तं जिगीवान् जिग-वान् । ॐ जि जरे वासो “सल्लिडोर्जः” इत्यभ्यासाद् लस-रस्य कृत्वम् । छान्दसो दीर्घः ॐ । तादृशो यः अर्यः अरेः पुष्टानि समृद्धानि धनानि आदत् स्वीकरोति । तम् दृष्टान्तः । श्वघ्नीश्च श्वभिः साधनैः मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः स यया जिगी-वान् सन् लक्ष्यमाणं मृगं स्वीकरोति तद्वत् । हे जनाः स इन्द्र इत्पृथिव्यै ॥

हे असुरों ! जिन्होंने इन दील्लेते हुए सब भुवनोंको हड़ किया है, और जो हानि पहुँचाने वाले नीच वर्णके असुरको निकृष्ट करके गुहामें डाल चुके हैं और जिन्होंने प्रकट शत्रुओंको जीत लिया है और जो शिकारीकी समान शत्रुके धनको हर लेते हैं, वह इन्द्र हैं, मैं इन्द्र नहीं हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

यं स्मां पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुत्तेमाहुर्नपो अस्ती-
त्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टीर्विजं इवा मिनाति श्रदस्मै घत्त स
जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

यम् । स्प । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उत । ईम् ।

आहुः । न । एषः । अस्ति । इति । एनम् ।

स । अर्यः । पुष्टीः । विजः इव । आ । मिनाति । श्रत् । अस्मै ।

घत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ५ ॥

घोरम् शत्रूणां हन्तारं भयङ्करं यम् इन्द्रं जनाः पृच्छन्ति स्म
प्रश्नं कुर्वन्ति । ॐ “निपातस्य च” इति स्मेत्यस्य संहितायां
दीर्घः ॐ । किमिति । इन्द्र इन्द्र इति सर्वे जना ब्रूवते स कुह
कुत्र वर्तते इति । उत अपि च ईम् एनम् इन्द्रम् आहुः । के च न
ब्रूवते । किमिति । एष इन्द्रो नास्तीति अस्ति चेत् दृष्टिपथं माप्नु-
यात् । न तथास्ति अत एव नास्तीति ब्रूवते । तथाच मन्त्रान्त-
रम् । “नेन्द्रो अस्तीति नेष उ त्व आह क ई ददर्श” [ऋ०
८, १००, ३] इति । एवं संशयो न कार्यः । स त्विन्द्रः अर्यः
अरेः पुष्टीः पोषिकाः सेनाः विज इव । इवशब्दः पदार्थे । उद्वे-
जक एव सन् । अथ वा विजो भयदेतुः व्याघ्रादिदुष्टमृगः । स
इव आ सर्वतो मिनाति दिनस्ति । ॐ सेति इत्यत्र “सोचिलोपे
चेत् पादपूरणम्” इति सोर्लोपे गुणः ॐ । अस्मा इन्द्राय इन्द्र-
विषये हे नराः श्रद्धा । श्रत् इति सत्यनाम । विश्वासं कुरुत ।
इन्द्रोस्ति चेत् कुत्र तिष्ठतीति स नास्त्येवेति वा अविश्वासं मा
कुरुत । स नास्ति चेत् वृत्रादिशत्रुसेनास्तदन्यः को जयेत् । अतो
र्यः शत्रुसेनानां जेनास्ति हे जेनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

शत्रुओंका हनन करने वाले जिन इन्द्रदेवके विषयमें मनुष्य

मक्ष करते हैं,—इन्द्र कहाँ हैं, इन्द्र कहाँ हैं ? वह इन्द्र कहाँ हैं ? कोई कहते हैं, कि—यह इन्द्र हैं ही नहीं, यदि होते तो दीखते, यह नहीं दीखते, अत एव नहीं हैं । (ऐसा संशय नहीं करना चाहिये, क्योंकि—) वह इन्द्र शत्रुओंको पुष्ट करने वाली सेनाओंको उद्देजक व्याघ्र आदिकी समान पूर्णरीतिसे नष्ट कर डालते हैं, ऐसे इन्द्रदेवके विषयमें हे नरो ! श्रद्धा करो, विश्वास करो, इन्द्र हैं तो वह कहाँ रहते हैं ? वह नहीं हैं इतना अविश्वास न करो, यदि वह नहीं होते तो वृष आदि शत्रुसेनाओंको उनके अतिरिक्त और कौन जीत लेता, अतः हे जनो ! जो शत्रु-सेनाओंके जेता हैं, वही इन्द्र हैं ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

यो रधस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमा-
नस्य कीरेः ।

युक्तप्राणो योविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनासु
इन्द्रः ॥ ६ ॥

यः । रधस्य । चोदिता । यः । कृशस्य । यः । ब्रह्मणः । नाध-
मानस्य । कीरेः ।

युक्तप्राणः । यः । अविता । सुशिप्रः । सुतसोमस्य । सः ।
जनासुः । इन्द्रः ॥ ६ ॥

य इन्द्रो रधस्य संरादस्य समृद्धस्यापि । ॐ रधेरीणादिको रक्
मत्पयः ॐ । चोदिता अभिमतफलपेरयिता समृद्धस्य राजादेर्यः
शत्रुः तस्य चोदिता अपगमयिता वा । यच्च कृशस्य घनादिरादि-

त्येन क्षीणस्यापि चोदिता तदभीष्टधनस्य प्रेरयिता । यद्य कीरेः ।
स्तोतृनामैतन् । स्तोत्रकर्तुः जायमानस्य अभिमतं फलं याचमानस्य
ब्रह्मणः ब्राह्मणस्यापि चोदिता । यद्य मुनिमः शोभनहनुमिन्द्रः
मुक्तग्राणः अभिपवाय प्रयुक्ताश्मनः सुतसोमस्य अभिपवादिना
संस्कृतसोमस्य यजमानस्य अविता रक्षिता एवं महानुभावो योस्ति
हे जनासः जनाः स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्र समृद्ध राजा आदिके शत्रुओंको भी दूर करने वाले
हैं जो धनशून्य होनेसे क्षीण हुए पुरुष पर भी अभीष्ट धनको
प्रेरित करने वाले हैं, जो स्तुति और प्रार्थना करते हुए ब्राह्मण
को अभीष्ट फल देने वाले हैं । जिनकी ठोड़ी सुन्दर है जो अभि-
पवके लिये पत्थरोंको उपयोगमें लाने वाले सोमको संस्कृत करने
वाले यजमानकी रक्षा करने वाले हैं, हे जनो ! सः इन्द्र हैं ६

सप्तमी ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य
विश्वे रथासः ।

यः सूर्यं य उपसंजजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः

यस्य । अश्वासः । प्रदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः ।

यस्य । विश्वे । रथासः ।

यः । सूर्यम् । यः । उपसम् । जजान । यः । अपाम् । नेता ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ७ ॥

पूर्वमन्त्रे घनिनो निर्घनस्य स्तोतुर्यष्टुश्च अभिमतप्रदाने यः
समर्थः स इन्द्र इत्युक्तम् । अत्र प्राणिनाम् अपेक्षिता अश्वगोरय-

प्रकाशवृष्टिलक्षणा ये अर्थाः सन्ति तेषां सर्वेषां प्रदाने यः समर्थः
 स इन्द्र इत्यभिधीयते । यस्य इन्द्रस्य प्रदिशि प्रदेशने अनुशासने
 संविधा वा । ॐ प्रपूर्वाद् दिश अतिसर्जने इत्यस्मात् विवप् ॐ ।
 अग्निभ्यो दातव्या अश्वासः अश्वाः । सन्तीति शेषः । यस्य च
 गावाः तदग्निभ्यो दातव्या बह्व्यो गावः । यस्य च ग्रामलाभका-
 मेभ्यो द्रिस्तिता ग्रामाः । यस्य च विश्वे सर्वे रथासः रथाः ।
 गजोष्ठ्यानादीनां पग्निग्राय विश्व इति विशोपितम् । यश्च इन्द्रो
 गमनादिसर्वव्यवहारोपयोगिमकाशाय सूर्यं जजान । तथा य उपसं
 च जजान उपादितवान् । यश्च अपाम् वृष्ट्युत्कानां नेताः माप-
 पिता देवोस्ति हे जनाः स इन्द्र इति ॥

[पूर्वमन्त्रमें “धनी निर्धन स्तोता और यष्टाको अभिमत फल
 देनेमें जो समर्थ हैं वह इन्द्र हैं” यह बात कही थी । अब यह बात
 कही है, कि—] “माणियोंके अपेक्षित, अश्व गाँ रथ प्रकाश वृष्टि
 आदि जो अर्थ हैं, उन सबका प्रदान करनेमें जो समर्थ हैं वह
 इन्द्र हैं ।” जिन इन्द्रदेवके अनुशासन और प्रशासनमें याचकोंको
 देनेके छोड़े हैं और याचकोंके लिये बहुतसी गाँएँ हैं और जिन
 की आज्ञामें ग्रामप्राप्तिकी अभिलाषा वालोंको लिये ग्राम हैं,
 जिनके पास रथ गज उष्ट्रयान आदि सब हैं और जिन इन्द्रदेवने
 गमन आदि सब व्यवहारोपयोगी प्रकाशके लिये सूर्यदेवको प्रकट
 किया है और जिन्होंने उपाको उत्पन्न किया है और जो वृष्टिके
 जलको लाने वाले देवता हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

यं क्रन्दंसी संयती विह्वयेते परेवर उभयां अमित्राः
 समानं चिद्रथं मातस्थिवांसा नानां हवेते स जनासु
 इन्द्रः ॥ ८ ॥

यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति सम्प्यती । विदयेते इति वि-
हयेते । परे । अवरै । उभयाः । अमित्राः ।

समानम् । चित् । रथम् । आतस्थिवांसा । नाना । ह्वेते इति ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ ८ ॥

संयती परस्परं संगच्छमाने क्रन्दसी शब्दं कुर्वन्ते । धावापृ-
थिव्यावित्यर्थः । स्वाशिनानां मालिनां दृष्ट्यर्थं पृथिवी यौश्च हवि-
रर्थम् इत्युभयोः क्रन्दनम् । अथ वा संयती परस्परं संगते क्रन्दसी
प्रतिभटान् प्रतियुद्धाय आह्वयन्त्यौ उभे शत्रु सेने विहयेते इन्द्रं
विनिधम् आह्वयतः । स्वस्वसहायायेति शेषः । ॐ क्रदि आह्वाने
रोदने च । असुन् । “दगिनश्च” इति ङीप् ॐ । उत्तमेवार्थं प्रका-
रान्तरेण स्पष्टम् आह । परे उत्कृष्टा अवरै निकृष्टाश्च । परस्परं
जयपराजयापेक्षया परत्वम् अवरत्वं च द्रष्टव्यम् । एवम् उभया
अमित्राः प्रतिद्वन्द्विसेनयोर्वर्तमानाः शत्रवः स्वस्वजयार्थं साहाय-
काय विहयन्ते । इत्थं सेनाद्वयान्तःस्थितानाम् इन्द्राह्वानम् अभि-
धाय अथ सेनास्वामिनोः परस्परप्रतिद्वन्द्विनोरिन्द्राह्वानम् अभि-
धत्ते । समानं चित् अश्वमारध्यादिभिः समानम् परस्परमदृशं
रथम् आतस्थिवांसा अधिष्ठितवन्तौ । ॐ तिष्ठतेलिङ् क्वसुः ।
“शर्पूर्वा लयः” इति स्वयः शेषः । अभ्यासस्य ह्रस्वत्वे “वञ्च-
काजाद्वयमाम्” इति इडागमः । भृत्पयस्वरः ॐ । तौ यं नाना
पृथक्पृथक् ह्वेते आह्वयतः । गनम् अन्यत् ॥

परस्पर मिले हुए शब्द करते हुए च लोक और पृथिवीलोक
इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करते हैं । अपने-आपसे मालियों
के कारण दृष्टिके लिये पृथिवी और हविके लिये चलोक जिन
इन्द्रका विविध प्रकारसे आह्वान करने हैं । अथवा-परस्पर दृष्टी

हुई, सामनेके घोधाओंको लड़नेके लिये बुलाती हुई दोनों सेनाएँ अनेक प्रकारसे इन्द्रदेवका आह्वान करती हैं [इसी बात को दूसरी रीतिसे कहते हैं, कि—] उत्कृष्ट और निकृष्ट प्रतिद्वंद्वी सेनाओंमें वर्तमान दोनों शत्रु अपनी २ विजयके लिये इन्द्रका आह्वान करते हैं [इस प्रकार दोनों ओरके सैनिकोंके इन्द्राह्वानको कह कर अब परस्परके प्रतिद्वंद्वी सेनास्वामियोंके आह्वान का वर्णन करते हैं, कि—] अश्व सारथी आदिसे समान रथमें विराजमान सेनापति जिनको अलग २ बुलाते हैं हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ८ ॥

नवमी ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनांसो यं युध्यमाना अवेसे
हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स
जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्मात् । न । ऋते । विजयन्ते । जनांसः । यम् । युध्यमानाः ।
अवेसे । हवन्ते ।

यः । विश्वस्य । प्रतिमानम् । बभूव । यः । अच्युतच्युत् । सः ।
जनासः । इन्द्रः ॥ ९ ॥

यस्माद् इन्द्रात् बलमदातुं ऋते इन्द्रसहायम् अनपेक्ष्य जनांसः
जनाः अप्रत्या दुर्धलाश्च सर्वेऽजयार्थिनो न विजयन्ते शत्रून् न परा-
भावयन्ति । अतश्च यम् इन्द्रं युध्यमानाः युद्धं कुर्याणा अवसे
स्वस्वरक्षणाय हवन्ते आह्वयन्ति । किं च यश्च इन्द्रो विश्वस्य

सर्वस्यापि वृत्रादिशत्रुजातस्य प्रतिमानम् । प्रतिधीयत इति प्रति-
मानं प्रतिनिधिर्बभूव । अथ वा “रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य
रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते” इति [अ०
६. ४७. १८] मन्त्रवर्णात् सर्वस्यापि प्राणिजातस्य तत्तत्पुण्य-
पापप्रत्यवेक्षणाय प्रतिबिम्बं बभूव । यश्च अन्युतच्युत् । अन्युतस्य
केनापि अच्चावयितव्यस्य वृत्रादेः च्युतिरहितस्य स्थावरस्य पर्व-
तादेर्वा रूपावयिता स जमास इन्द्र इति ॥

जिन बलपदाता इन्द्रकी सहायताके बिना दुर्बल वा मषल
सब बिजयामिलापी प्राणी शत्रुओंका पराभव नहीं कर सकते
अत एव युद्ध करते समय वे अपनी २ रक्षाके लिये इन्द्रका
आह्वान करते हैं । जो इन्द्रदेव सब प्राणियोंके पुण्य पापका
दर्शन करनेके लिये प्रतिबिम्ब + होजाते हैं और जो किसीसे भी
न हटाये जासकने वाले पर्वत आदिको च्युत करने वाले हैं, हे
जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ ६ ॥

दशमी ॥

यः शश्वतो मध्येना दधानानमन्यमानां ध्विर्वा जघानं
यः शर्धते नानुददाति श्रुध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास
इन्द्रः ॥ १० ॥

यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् । अमन्यमानान् । शर्वी ।
जघान ।

† अग्वेदसंहिता ६ । ४७ । १८ में कहा है, कि-“रूपं रूपं
प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय । इन्द्रो मायाभिः पुरु-
रूप ईयते ।-इन्द्र प्रत्येक आकृतिके अनुसार प्रत्येक रूपको धारण
करते हैं उनका वह रूप देखनेके लिये होता है, इन्द्र अपनी
मायाओंसे बहुतसे रूपोंको प्राप्त होजाते हैं” ॥

यः । शर्धते । न । अनुद्ददाति । मृध्याम् । यः । दस्योः ।

इन्ता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १० ॥

य इन्द्रो महि महत् अत्यधिकम् एनः पापं ब्रह्महत्यादिरूपं दधानान् धारयतः शरवतः । बहुनामैतत् । बहून् जनान् । जघानेति संबन्धः । के ते महापातकिन इति तान् आह । अमन्यमानान् इन्द्रम् उक्तमहिमोपेतं परदेवतेति मतिम् अकुर्वाणान् । स्तुत्या हविषा च इन्द्रम् अपूजयत इत्यर्थः । तादृशान् शर्वा हिंसक इन्द्रः । अथ वा शरुर्वज्रः । तेन वज्रेण जघान हिनस्ति । अथ वा अमन्यमानान् स्वान्मानं ब्रह्मतया अयुध्यमानान् । आत्मघातकान् इत्यर्थः । “असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः” इति [तै० आ० ८.६] श्रुतेः । अनात्मविदः पापिष्ठत्वं स्मरन्ते ।

किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ।

इति । तादृशानाम् इन्द्रकृतशिक्षा च श्रूयते । “अरुर्मुखान् यतीन् सल्लाहकेभ्यः मापच्छत्” इति [का० उ० ३. १] । “इन्द्रो यतीन्सल्लाहकेभ्यः मापच्छत्” इति च [तै० सं० ६. २. ७. ५] । यश्च शर्धते इन्द्रनैरपेक्ष्येण शत्रुषु बलम् उत्साहं वा कुर्वते पुरुषाय मृध्याम् बलसाधनं कर्म नानुददाति आनुकूल्येन न प्रयच्छति । ॐ हुदाञ् दाने । जीहोत्यादिकः । “अभ्यस्तानाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः । “तिरि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः ॐ । यश्च दस्योः वृषादेर्हन्ता घातकः स जनास इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव ब्रह्महत्या आदि महापापोंको धारण करने वाले, इन्द्रको परदेवता न मानने वालोंको हिंसक होकर मार डालते हैं [अथवा-अपनेको ब्रह्मस्वरूप समझने वाले आत्मघातियों को जो मार डालते हैं, तैत्तिरीय आरण्यक ८. ६ में कहा भी

है, कि—“असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तं एनं ततो विदुः ।—जो ब्रह्मको असत् समझता है वह असत् ही होता है जो ब्रह्मको सत् समझता है उसको सत् कहते हैं” अनात्मवेत्ताका पापिष्ठत्व भी कहा है, कि—“किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ।—जो आत्मस्वरूपको नहीं समझता उस आत्मापहारी चोरने क्या २ पाप नहीं किया” और ऐसे पुरुषोंको इन्द्रका दण्ड देना भी सुना जाता है, कि “अरु-
मुखां यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” (कौषीतकि उपनिषत् ३ । १) “इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्” (तैत्तिरीयसंहिता ६ । २ । ७ । ५) ॥] और जो इन्द्रकी अपेक्षा न रख कर बल दिखानेका उत्साह करने वालोंको बलसाधन कर्ममें अनुकूलता प्रदान नहीं करते हैं । जो वृत्र आदिदस्युओंके घातक हैं हे जनों ! वह इन्द्र है ॥ १० ॥

एकादशी ॥

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरान्बिन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनासु
इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि-
अनुम्बिन्दत् ।

ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । सः ।
जनासु । इन्द्रः ॥ ११ ॥

य इन्द्रः पर्वतेषु गिरिषु इन्द्रभीत्या क्षियन्तम् निवसन्तम् ।

पर्वतेष्विति यदुवचनेन इन्द्राद् भीतस्य शम्बरस्य एकत्रानवस्थानं सूचितं भवति । एवं गिरिगह्वरेष्वाध्वन्नं शम्बरम् एतन्नामकम् अमुरं चत्वारिंश्याम् । चत्वारिंशत्संख्यापूरणी चत्वारिंशी । तस्यां शरदि तस्मिन् संवत्सरे अन्वविन्दत् अन्विष्य लब्धवान् । लब्ध्वा शयनाशयद् इत्यर्थः । किं च य इन्द्रः शोजायमानम् ओजो बलम् । तद् इह आचरन्तम् । अनिशयितफलम् इत्यर्थः । ॐ “कर्तुः ययद् सलोपश्च” । “ओजसोऽसरसो नित्यम्” इति सकारलोपः ॐ । ज्ञादशम् अहिम् । आगत्य हन्तीत्यहिर्हृषः । शुनः कीदृशम् । दानुम् दानवं शयातम् शयनं कुर्वाणं जघान घातयामास । उक्तम् अन्यत् ॥

जिन इन्द्रदेवने पर्वतोंमें डर कर घूमने हुए शम्बरको चालीस मर्म तक हूँ कर मार डाला या और जिन इन्द्रदेवने बल दिखाने माले शयन करते हुए दानव दानुसुरको मार डाला या, हे जनो ! यह इन्द्र है ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

यः शम्बरं पर्यतरत् कसींभिर्यो चारुकास्नापिवत् सुतस्य अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्ध्वत् स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

य इन्द्रः कशीभिः दीप्तैर्वजायायुधैः स्वतेभ्योभिर्वा शम्बरम् अमुरं पर्यतरत् पर्यतारयत् । गिरिनदीसमुद्रादिकान् सर्वानपि अत्यक्राम-यद् इत्यर्थः । स्वयं वा तम् अमुरं पर्यतरत् । पर्यभवद् इत्यर्थः । यश्च अघोरकाम्ना अरमणीयेन आस्येन सुतम् अभिपुतं सोमम् अषालाघुलादिस्थितम् अपिवत् भानम् अकार्षात् । “इमे जम्भसूतं पिब धानावन्तं करम्भिणम्” इति हि यन्त्रवर्णः [अ० ८. ६१. २] । यस्मिन्नन्ध्रे हन्तव्ये सति अन्तर्गिरौ पर्वतस्य मध्ये शुद्धे देवयजनप्रदेशे यजमानम् सामयागं कुर्वाणं गृत्समदं बहुं जनम्

अध्वर्युप्रभृतिं सदःस्थितं जनसंघातं चामूर्ध्वत् आवर्त्रे । चुमुरिधु-
निप्रभृतिकोऽसुरसंघात इति शेषः । स जनास इन्द्र इति पूर्ववत् ॥

जो मदीस वज्र आयुध आदिसे शम्बरासुरका तिरस्कार कर
चुके हैं और जो पाले रहित पात्रमें निचोड़े हुए सोमका पान
कर चुके हैं, जिन इन्द्रदेवके मारनेके लिये, सोमपाग करते हुए
अध्वर्यु आदि जनसमूहको, चुमुरि धुनि आदि असुरोंने घेर
लिया था, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १२ ॥

त्रयोदशी ॥

यः सप्तसरिर्मर्षभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रवाहुर्मारोहन्तं स जनास
इन्द्रः ॥ १३ ॥

यः । सप्तसरिभः । वृषभः । तुविष्मान् । अवऽमसृजत् । सर्तवे ।
सप्त । सिन्धून् ।

यः । रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रवाहुः । याम् । आरोहन्तम् ।
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १३ ॥

य इन्द्रः सप्तसरिभः सप्तमंख्योकाः पर्जन्या एव रश्मयो यस्य
स तादृशः । अथ वा सप्तसरिमरादित्यः । तदात्मक इत्यर्थः । वृषभः
वर्षिता कामानाम् अर्षा वा । तुविष्मान् बलवान् सर्तवे सरणाय
प्रवहणाय सप्तसर्पणशीलान् सिन्धून् स्पन्दमानान्द्युदकानिश्चा-
सृजत् । अवाग् यथा भवति तथा निर्मितवान् । यद्वा सप्तसिन्धून्
सप्तसरयाक् गङ्गाद्या नदीरयासृजत् । यश्च वज्रवाहुः वज्रहस्तः
सन् याम् दिवम् आरोहन्तं रौहिणम् एतन्नामकन असुरम् आ-
सृजत् जघान ॐ स्फुरस्फुलसंचलने । तौदादिकः ॐ । अन्यद्गतम्

जो इन्द्र सप्तरश्मि सूर्यरूप हैं, कायनाभोंकी और जलोंकी वर्षा करने वाले हैं और जिन बली इन्द्रदेवने बहनेके लिये गंगा आदि सात नदियोंको प्रकट किया है, जिन इन्द्रने हाथमें वज्र धारण कर धलोकमें चढ़ते हुए रौहिण नामक अश्वको मार डाला था, वह इन्द्र हैं ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

द्यावां चिदस्मै पृथिवी नमते शुष्माञ्चिदस्य पर्वता
भयन्ते ।

यः सोमपा निचितो वज्रबाहुयो वज्रहस्तः स जनास
इन्द्रः ॥ १४ ॥

द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमते इति । शुष्मात् ।

चित् । अस्य । पर्वताः । भयन्ते ।

यः । सोमपाः । निचितः । वज्रबाहुः । यः । वज्रहस्तः ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १४ ॥

अस्मै इन्द्राय द्यावा द्यावा पृथिवी पृथिव्या । परस्परापेक्षया द्विवचनम् । चित् अप्यर्थे । नमते इन्द्रस्य महिम्ना स्वयमेव प्रही-
भवतः । अस्य इन्द्रस्य शुष्मात् बलात् पर्वताश्चित् पर्वता अपि
भयन्ते । पक्षव्येदाद् विभ्यति । ॐ विधी मये । “बहुलं चन्दसि”
इति शप् ॐ । यश्च इन्द्रः सोमपाः सोमस्य पाता सन् निचितः
प्रज्ञातः । यद्वा नितरां चितो निचितः । ददाह इत्यर्थः । वज्रबाहुः
वज्रवत् सारभूताभ्यां बाहुभ्याम् उपेतः यश्च वज्रहस्तः वज्रं हस्ते
धारयन् भवति स जनास इन्द्र इति ॥

इन इन्द्रके लिये घावापृथिवी नमती है अर्थात् इन्द्रकी महिमा से स्वयं ही महिन होजानी हैं, जिन इन्द्रदेवके बलसे पर्वत भी ढरते हैं, सोमपान कर जो इन्द्र दृढ़ शृंगों वाले हो गए हैं, जिन की भुमाएँ वज्रकी समान दृढ़ हैं, और जो हाथमें वज्रकी धारण किये रहते हैं वह इन्द्र हैं ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शश-
मानमून्ती

यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राघः स जनास
इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः । सुन्वन्तम् । अवति । यः । पचन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः ।
शशमानम् । कृती ।

यस्य । ब्रह्म । वर्धनम् । यस्य । सोमः । यस्य । इदम् । राघः ।
सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १५ ॥

यः सुन्वन्तम् सोमाभिषव कुर्वन्तं यजमानम् अवति रक्षति ।
यश्च पुरोडाशादीनि हवींषि पचन्तं यश्च कृती कृत्या रक्षणेन
निमित्तेन शंसन्तं स्तुवन्तं यश्च शशमानम् सामभिः स्तोत्रं कुर्वाणं
रक्षति । ब्रह्म परिवृद्धं स्तोत्रं यस्य वर्धनम् वृद्धिकरं भवति । तथा
यस्य सोमो वृद्धिहेतुर्भवति । यस्य च इदम् अस्मदीयं राघः पुरो-
डाशादिलक्षणम् अन्नं वृद्धिकरं भवति । स इन्द्र इत्यादि गतम् ॥

जो सोमाभिषव करने वाले यजमानकी रक्षा करते हैं, जो
पुरोडाश आदि हवियोंका पाक करने वालेकी रक्षा करते हैं जो

रक्षाके कारण मृत्ति करते हुए और सामसे स्तोत्रपाठ करते हुए
की रक्षा करते हैं, दृढ़ स्तोत्र जिनकी वृद्धि करने वाला है और
सोम जिसकी वृद्धिका हेतु है और हमारा पुरोडाश आदिरूप
अन्न जिसकी वृद्धि करने वाला है, हे जनों ! वह इन्द्र हैं १५
षोडशी ॥

जातो व्युत्ख्यत् पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितु परस्य
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद् व्रता देवानां स जनासु
इन्द्रः ॥ १६ ॥

य इन्द्रो जातः मादुर्यूतमात्र एव सन् पित्रोः धावापृथिव्योः
उपस्थे उत्सङ्गे तपोर्मध्ये व्युत्ख्यत् विख्यातवान् प्रकाशितोभूत् ।
यश्च इन्द्रः भुवः भुवं मातृभूतां न वेद न जानाति । तथा परस्य
उत्कृष्टस्य जनितुः उत्पादयितुं परम् उत्पादकं पितृस्थानीयं धु-
लोकमपि न वेद न जानाति । तपोर्वस्तुतः स्वजननं प्रति अका-
रणत्वाद् इत्यभिप्रायः । यद्वा भुवो जनितुः भूम्या उत्पादकस्य
परस्य अन्यस्य स्वरूपं भुवो जनितारं परम् अन्यम् इति वा व्या-
ख्येयम् । न वेद जानाति । स्वातिरेकेणेति शेषः । स्वस्यैव सर्व-
कारणत्वाद् इत्यभिप्रायः । किं च अस्मद् अस्मत्तः अस्माभिः
कविष्यमाणः स्तविष्यमाणः स्तूयमानश्च सन् । नशब्दः चार्थः ।
देवानां व्रता व्रतानि कर्माणि देवार्थान् आ ॥ ६ ॥ उपसर्गभूतेषां
ग्निक्रियाध्याहारः ॥ ६ ॥ आ पूरयति ॥ स इन्द्र इति ॥

जो इन्द्रदेव मादुर्मत होते ही धावापृथिवीके मध्यमें प्रकाशित
होंगए थे, जो इन्द्र मातृभूता पृथिवीको नहीं जानते हैं तथा उत्कृष्ट
वस्तुके उत्पादकः पितृस्थानीयः धुलोकको भी नहीं जानते हैं
[क्योंकि वे वास्तवमें अपने जननके प्रति अकारण हैं] अथवा
यह भूमिके उत्पादक अन्यके स्वरूपको—भूमिका उत्पन्न करने

वाला कोई और है इस बातको नहीं जानते हैं, क्योंकि—वह अपने आप ही सबके कारण हैं ।] और हमसे स्तुति पाते हुए वह इन्द्र देवताओंको पूरित करते हैं । हे जनों ! वह इन्द्र हैं १६ सप्तदशी ॥

यः सोमं कामो हर्षश्चः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वां ।

यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥

य इन्द्रः सोमकामः सोमं कामयमानः सन् हर्षश्चमूरिः हर्षाख्यानाम् अश्वानां सुष्ठु ईरयिता प्रेरयिता भवति । यागप्रदेश-स्यागमनायेति शेषः । अथ वा यः सोमकामः यश्च हर्षश्चः सूरि-विद्वांश्च । किं च यस्माद् इन्द्राद् विश्वा विश्वानि भुवना भुवनानि भूतजातानि रेजन्ते बिभ्यति । य इन्द्रः शम्बरम् असुरं जघान-यश्च शुष्णम् असुरं जघान घातयामास । यश्च एवं विधेषु असाधारणेषु व्यापारेषु एकवीरः असाधारणः शूरो भवति । स जनास इन्द्र इति उक्तार्थः ॥

सोमको चाहते हुए जो, हरि नामक अश्वोंको भली प्रकार चलाते हैं । और जिनसे सब भूत डरते हैं, जिन्होंने शम्बरासुर का संहार किया है, जिन्होंने शुष्ण असुरको मार डाला है, जो ऐसे असाधारण व्यापारोंमें असाधारण शूर होते हैं, हे जनों ! वह इन्द्र हैं ॥ १७ ॥

अष्टादशी ॥

य सुन्वते पचते दुध आ चिद् वाजं दर्दपि स किलासि सत्यः ।

वयं तं इन्द्र विश्वं ह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वेदेम
यः । सुन्वते । पचते । दुधः । आ । पितृ । वाजम् । दर्दपि ।

सः । किल । असि । सत्यः ।

वपम् । ते । इन्द्र । विश्वं ह । प्रियासः । सुवीरासः । विदथम् ।

आ । वद्रेम ॥ १८ ॥

अत्र अपि इन्द्रस्य अविद्यमानतां शङ्कमानानाम् अज्ञानितां
विश्वासं जनयन् इन्द्रं प्रत्यक्षीकृत्य ब्रूते । हे इन्द्र, यस्त्वं दुर्ध्वश्च
वस्तुनो दुर्धर्षोऽपि सुन्वते सोमाभिपर्वं कुर्वते यजमानाय तथा पचते
पशुपुरोडाशादिहविःपाकं कुर्वते च यजमानाय वाजम् तदभिमतम्
अन्नम् आ दर्दपि सर्वतो मृशं प्रयच्छसि । ॐ ह गतो । अस्मात्
क्रियासमभिहारे यक् । अभ्यासरस्य लोपः । अभ्यासस्य “रुग्रिकी
च लुकि” इति रुगागमः । यद्योगाद् अनिघातः । “अभ्यस्ता-
नाम् आदिः” इत्याद्युदात्तः ॐ । स तादृशस्त्वं सत्यः किलासि ।
मन्त्रद्रष्टुर्धर्षेः प्रत्यक्षत्वेऽपि इदानीं तनानां कथं प्रत्यक्षतेति शङ्कायां
यष्टृणाम् अभिमतान्नलक्षणफलस्य सत्यदृष्टत्वाद् इन्द्रोऽपि सत्य
एवेत्यभिप्रायेण स किलासि सत्य इति ब्रूते । वयं विश्वं विश्वे-
ष्वपि अहःसु सर्वदा । ॐ “सुषां सुलुक्” इत्यादिना सप्तमी-
बहुवचनस्य लुक् । शकन्वादित्वात् पररूपत्वम् । कटुपरपद-
प्रकृतिस्वरेण मध्योदात्तः ॐ । हे इन्द्र ते तव प्रियासः प्रियाः
सन्तः सुवीरासः शोभनपुत्रादिपुक्ताश्च सन्तः विदथम् वेदसाधनं
स्तोत्रम् आ वदेम ब्रूयाम ॥

इति चतुर्थेऽनुवाके मथनं सूक्तम् ॥

[इति अचामे अपि इन्द्रकी अविद्यमानताकी शङ्कां करतुं
अज्ञानिगीको, विश्वास कराते हुए इन्द्रकी प्रत्यक्ष करके कहते]

हैं, कि-] हे-इन्द्र ! आप वास्तवमें दुर्घर्ष होते हुए भी सोमाभि-
षव करने वाले यजमानके लिये और पुरोडाश आदिका पाक
करते हुए यजमानके लिये अभिमत अन्नको सब ओरसे प्रदान
करते हैं, ऐसे आप अवश्य सत्य हैं । [मन्त्रद्रष्टा महर्षिका प्रत्यक्ष-
त्व होने पर भी आधुनिक माणियोंके लिये उनका प्रत्यक्षत्व
कैसे हैं, ऐसी शंका होने पर कहते हैं, कि-यष्टाओंकी अभिमत
अन्नफलके सत्य दोखनेसे इन्द्र भी सत्य हैं] इस सब दिनोंमें
आपके भिय रहते हुए और शोभन पुत्र आदिसे सम्पन्न रहते
हुए आपके स्तोत्रका उच्चारण करते रहें ॥ १८ ॥

चतुर्थं अनुवाकमे प्रथमं सूक्तं समाप्तं (६५०)

चतुर्विंशोऽभिजिति विषुवति विश्वजिनि महाव्रते च ब्राह्मणा-
च्छंसिशस्त्रे “अस्मा इदु म तवसे तुराय” इति अहीनसूक्तसंज्ञकं
विनियुक्तम् । “चतुर्विंश ‘इन्द्रमित्राथिनो बृहद्’ [२०. ३८. ४]
इत्याज्यस्तोत्रियः” इति प्रक्रम्य सूत्रितम् । “अभि म चः सुरायसम्
[२०. ५१. १] म सु श्रुतं सुरायसम् [२०. ५१. ३] इति पृष्ठ-
स्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ प्रगायौ । मा चिदन्यद् वि शंसत [२०.
८५. १] यच्चिदि स्वा जना इमे [२०. ८५. ३] इति वा ।
अस्मा इदु म तवसे तुराय [२०. ३५] इत्यहीनसूक्तम् आव-
पते” इति [वै० ६. १] ॥

तथा अग्नोर्यामिण माध्यंदिनसवने तच्छस्त्र एव विनियुक्तम् ।
सूत्रितं हि । “अग्नोर्यामिण गर्भकारं शंसति” इति प्रक्रम्य सूक्तीति
वृषाकणि सामसूक्तम् अहीनसूक्तम् आवपते” इति [वै० ४. ३] ॥

“चतुर्विंश अभिजित्ये, विषुवत्ये, विश्वजित्ये, महाव्रतमे और
ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रमे “अस्मा इदु म तवसे तुराय” यह अहीन-
नामक सूक्त विनियुक्त होता है । “चतुर्विंश ‘इन्द्रमित्राथिनो बृहद्’
(२० । ३८ । ४) इत्याज्यस्तोत्रियः” का प्रक्रम करके सूत्रमें

कदा है, कि-“अभि प्र वः सुराधसम् (२० । ५१ । १) प्र सु
श्रुतं सुराधसम् (२० । ५१ । ३) इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ माहर्तो
प्रगार्यो । मा चिदन्यद् वि शंसत (२० । ८५ । १) यत्विदि
त्वा जना इमे (२० । ८५ । ३) इति वा । अस्मा इदु प्र तवसे
तुराय (२० । ३५ इति अहीनमूक्तं आवपते ” (वैतानमूत्र ६ । १)

तथा अतोर्गामके मध्यन्दिनसवनमें और उस शस्त्रमें भी विनि-
युक्त होता है । इस विषयमें वैतानमूत्र ४ । ३ का प्रणाम है,
कि-“अतोर्गाम्णि गर्भकारं शंसति” इति प्रक्रम्य मुकीर्ति वृषा-
कपिं साममूक्तं अहीनमूक्तं आवपते” ॥

तत्र प्रथमा ॥

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय
ऋचीपमायाधिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ?

अस्मै । इत् । ऊं इति । प्र । तवसे । तुराय । प्रयो । न । हर्मि ।
स्तोमम् । माहिनाय ।

ऋचीपमाय । अधिगवे । ओहम् । इन्द्राय । ब्रह्माणि । राततमा

अस्मा इदु । इदु उ इति निपातद्वयं पादपूरणम् । ॐ अथापि
पदपूरणाः कमीमिद्वितीति यास्कोक्ते [नि० १. ६] ॐ । अव-
धारणार्थं वा निपातद्वयम् । अस्मा एव इन्द्राय ओहम् वहनीयं
प्रापणीयं स्तोमम् स्तोत्रं प्र हर्मि प्रकर्षेण हरामि । प्रकरोमीत्यर्थः ।
कीदृशायेंद्राय । तवसे प्रहृदाय बलवते वा तुराय सोमपानार्थं
त्वरमाणा प्र शत्रु हिंसकाय वा माहिनाय । महन्नामैतत् । गुणैर्महते
ऋचीपमाय ऋचा स्तुतिसाधनया समाय । ऋग् यादृग्रूपं प्रति-
पादयति तादृग्रूप एव तत्रसंमिनो भवतीत्यृचीपम इत्यर्थः । अथवा

अक् स्तुतिः तथा समाय । वस्तुनः अपरिमेयगुणत्वेऽपि अत्र परि-
मीयत परिच्छिद्यते इत्युचीपमत्वाभिधानम् । अध्रिगवे अष्टगमन-
कर्मणे अमतिहतगमनाय इन्द्राय । स्तोत्रमेरणे दृष्टान्तम् आह ।
मयो नेति । मय इत्यन्ननाम । यथा क्षुधितस्य अन्नं मेरयति तद्वत्
स्तुतिकामाय स्तोमं महर्मात्यर्थः । न केवलं स्तोत्रम् अपि तु रात-
तमा राततमानि पूर्वैर्यजमानैस्त्यर्थं दत्तानि ब्रह्माणि प्रदत्तानि
सोमादिहवींष्यपि म हवींनि । ॐ अध्रिगव इत्यत्र अष्टगः अन्ये-
नानिवारितः गौर्गमनम् अस्येति तस्यावयवार्थः । “गोस्त्रियोरुप-
सर्जनस्य” इति ह्रस्वत्वम् । ऋगोदरादित्वाद् अष्टगशब्दस्य अध्रि-
भावः । ओहम् इति । बहतेः कर्मणि घञि ह्यन्तसं संप्रसारणम् ॥

मैं इन इन्द्रदेवके लिये ही मापणीय स्तोत्रको उत्कृष्टरूपसे
वचवारण करता हूँ । यह इन्द्रदेव बलवान् हैं, सोमपानके लिये
त्वरा करते रहते हैं, गुणोंमें महान् हैं, अत्रा इनके जैसे रूपका
प्रतिपादन करती है यह तैमे ही रूपपर सम्मन होजाते हैं तात्पर्य
यह है, कि-वास्तवमें अपरिमेय गुणों वाले होने पर भी अत्रा
से इनका परिच्छेद होना है अत एव यह अत्राचीपम हैं । और
इनका गमन अमतिहत हैं । ऐसे इन्द्रदेवके लिये, जिस प्रकार
भूखके पाम अन्नको मेरित करते हैं, तिस प्रकार स्तुतिको मेरित
करता हूँ । केवल स्तोत्रको ही मेरित नहीं करता हूँ, किन्तु पूर्व
यजमानोंके द्वारा विशाल परिमाणमें दी हुई इति आदिको भी
मेरित करना हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

अस्मा इदु प्रयं इव प्रयांसि भरांम्यद्गुपं वाधं सुवृत्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रवाय पत्ये धियो मर्जयन्त

अस्मै । इत् । ऊं इति । मयःऽइव । म । यंसि । भरामि । आहू-
पम् । वाधे । सुवृक्ति ।

इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । प्रजाय । पत्ये । धिये । मर्जयन्त

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय मय इव अन्नमिव म यंसि मय-
च्छामि । ॐ यम उपरमे । अस्माह्वति पुरुषम्यत्ययः । "बहुलं
छन्दसि" इति शपो लुक् ॐ । सामान्येनोक्तं विशिनष्टि भरामी-
त्यादिना । वाधे शत्रूणां वाधनाय सुवृक्ति सुष्ठु आवर्जकम् आहू-
पम् स्तोत्ररूपम् आयोषम् । ॐ आहू प स्तोम आयोष इति यास्कः
[नि० ५. ११] ॐ । भरामि संपादयामि । किं च प्रतनाय पुरा-
णाय पत्ये सर्वस्य स्वाभिने इन्द्राय अन्येपि अतिवजो हृदा हृदयेन
मनसा हृदयान्तवर्तिना अन्तःकरणेन मनीषा मनीषया बुद्ध्या
धियः स्तुतीः मर्जयन्त मार्जयन्ति संस्कुर्वन्ति ॥

इन इन्द्रदेवके लिये अन्नकी समान में स्तोत्रको भेजता है ।
शत्रुओंको वाधा देनेके लिये आवर्जक स्तोत्ररूप घोषका सम्पा-
दन करता है, और प्राचीन सर्वस्वामी इन्द्रके लिये अन्य अतिवज
भी हृदयसे मनसे और बुद्धिसे स्तुतिपोंको संस्कृत करते हैं २
तृतीया ॥

अस्मा इदु त्वमुपमं स्वर्णं भरांम्याह्वमूपमास्येन ।
मंहिष्ठमञ्जोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरि वावृधध्यं
अस्मै । इत् । ऊं इति । त्वम् । उपपम् । स्वःसाम् । भरामि ।
आहूयम् । आस्येन ।

मंहिष्ठम् । अञ्जोक्तिभिः । मनीनाम् । सुवृक्तिभिः । सूरिम् ।
ववृधध्यं ॥ ३ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय स्यं तं मसिद्धम् उपमम् । उप-
मीयते अनेनेत्युपमः । उपमास्थानभूतम् । ॐ “ध्वर्ये कविषा-
नम्” इति करणे कप्त्ययः । “आतो लोप इटि च” इत्याकार
लोपः ॐ । स्वर्गाम् सुष्ठु अरणीयस्य धनस्य दातारं स्वर्गस्य
प्रापकं वा एवंलक्षणम् आह्वयम् स्तोत्रलक्षणम् आघोषम् आस्येन
मुखेन भरादि संपादयामि । किमर्थम् मं हिष्टम् अतिशयेन धन-
वन्नम् अतिशयेन प्रवृद्धं वा सूरिम् सुष्ठु धनस्य ईरयितारं वि-
पश्चितं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वरुधर्ष्यं वर्धयितुं मतीनाम् स्तुतीनां
संबन्धिभिः । कैः साधनैः । सुवृत्तिभिः सुष्ठु आवर्जकैः अच्यो-
क्तिभिः स्वच्छवचनैः । आह्वयं भरामीति संबन्धः ॥

मैं इन ही इन्द्रदेवके लिये, उपमाके योग्य, सुन्दरतापूर्वक धन
प्रदान करने वाले स्तोत्ररूपी घोषका मुखसे सम्पादन करता हूँ ।
परमधनी धनको मली प्रकार प्रेरित करने वाले इन्द्रको स्तुतियों
से बढ़ानेके लिये स्वच्छ वचनोंसे मैं इन्द्रके स्तोत्रका सम्पादन
करना हूँ ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

अस्मा इदु स्तोमं सं हिंनोमि स्यं न तष्टेय तत्सिनाय
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृत्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेघिराय ४
अस्मै । इत् । ऊं इति । स्तोमम् । सम् । हिंनोमि । स्यम् । न ।

तष्टाञ्च । तत्सिनाय ।

गिरः । च । गिर्वाहसे । सुवृत्ति । इन्द्राय । विश्वम् । अन्वम् ।

मेघिराय ॥ ४ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय तत्सिनार्यं तद्वै सितं सोमादि-

लक्षणम् अन्नं यस्य तादृशाय इन्द्राय अथ वा तत्तिनाय रयसा-
ध्यान्नवते स्वाग्निने तष्टा शिन्पी रयं न यथा रयं संहिनोति तद्वत्
स्तोमं संहिनोमीति । किं च गिरवाहसे गीर्भिः प्रापणीयाय मेधि-
राय । मेधो यज्ञः । यज्ञार्हाय मेधाविने वा इन्द्राय सुवृक्ति सुष्ठु
आवर्जकं विश्वमिन्वम् विश्वैः सर्वैः प्राप्तव्यं विश्वैः सर्वैर्यजमानैः
प्रापणीयं वा सोमादिलक्षणं हविः गिरधस्तुत्यर्थानि वचांसि च ।
संहिनोमीत्यनुपङ्गः । यद्वा सुवृक्ति विश्वमिन्वम् इति पदद्वयं फल-
परतया व्याख्येयम् । सुष्ठु आवर्जनीयं विश्वैर्वन्ध्वादिभिः प्राप्त-
व्यम् उपभोक्तव्यम् अन्नम् । लब्धुम् इत्यध्याहारः ॥

मैं इन ही सोमादिरूप अन्न वाले इन्द्रदेवके लिये शिन्पीके
रयको चनानेकी समान अन्नको चनाता हूँ—मेरित करता हूँ ।
यह इन्द्रदेव स्तुतियोंसे प्रापणीय है, यज्ञार्ह है, सब यजमानोंसे
प्राप्तव्य है, ऐसे इन्द्रदेवके लिये मैं हवि और स्तुतिके वचनोंको मेरित
करता हूँ ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

अस्मा इदु सक्तिमिव श्रवस्येन्द्रायाकं जुहावे समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्देयं पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥

अस्मै । इत् । ऊं इति । सक्तिम्श्रव । श्रवस्या । इन्द्राय । अर्कम् ।
जुहा । सम् । अञ्जे ।

वीरम् । दानौकसम् । वन्देयम् । पुराम् । गूर्तश्रवसम् । दर्मा-
णम् ॥ ५ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय श्रवस्यां श्रवस्यया । श्रव इत्यं-
ननाम । अन्नेच्छया । अन्नलाभायेत्यर्थः । ॐ श्रवःशब्दात्

“सुप आत्मनः कथञ्” । तदन्ताद्धातोर्भावे “अ प्रत्ययात्” इत्य-
कारप्रत्ययः । ततश्चाप् । सुपां सुलुक्०” इति तृतीयाया ङादेशः ।
उदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्योदात्तत्वम् ॐ । अर्कम् अर्चनीयम् अन्नं
हविलक्षणम् अन्नं जुहा आज्यपूर्णया समञ्जे समक्तं करोमि ।
ॐ व्यस्येनात्मनेपदम् ॐ । यद्वा अर्कं स्तुतिसाधनं मन्त्रम् । ॐ
अर्को मन्त्रो भवति यद्नेनार्चन्तीति यास्कः [नि० ५. ४] ॐ । जुहा
जुहवद् अञ्जनमापनया जिहया समग्रे संयोजयामि । तत्र दृष्टान्तः ।
सप्तिमिव अश्वमिव । ॐ जातावेकवचनम् ॐ । अश्वान् यथा
श्रवस्यया रथे समक्तान् संगतान् करोति तद्वत् । किं च वीरम्
शत्रूणां विविधम् ईरयितारं दानौकसम् दानानाम् ओकः सद्य-
स्थानीयं पुराम् अमुरनगराणां दर्माणम् दारकं गूर्तश्वसम् । अथ
इत्यन्ननाम । मशस्यान्नं मशस्यकीर्तिं वा उक्तलक्षणम् इन्द्रं वन्दध्वै
वन्दितुम् । आहयामीति शेषः ॥

मैं इन इन्द्रदेवके लिये अन्नकी इच्छासे पूजनीय हविरूप अन्नको
घृतपूर्ण स्रवेसे संयुक्त करता हूँ । अथवा जुहूकी समान अञ्जन-
साधन मन्त्रसे संयुक्त करता हूँ । जैसे घोड़ोंको रथमें संयुक्त करते
हैं तिस प्रकार संयुक्त करता हूँ । और शत्रुओंको अनेक प्रकार
से खदेड़ने वाले, दानोंके भवनरूप, अमुरोंके नगरोंको विदीर्ण
करने वाले और उक्तलक्षण कीर्ति वाले इन्द्रदेवकी बन्दना करनेके
किये मैं उनका आवाहन करता हूँ ॥ ५ ॥

पष्टी ॥

अस्मा इदु त्वष्टां तच्छुद् वज्रं स्वपंस्तमं स्वयं१ रणांय
वृत्रस्यं चिद् विददयेन ममं तुजन्नीशानस्तुजता
किंयेधाः ॥ ६ ॥

अस्मै । इत् । ऊँ इति । स्वष्टा । तक्षत् । वज्रम् । स्वपःऽतमम् ।

स्वर्गम् । रणाय ।

वृषस्य । चित् । विदत् । येन । मर्म । तुजन् । ईशानः । तुजता ।

क्रियेषाः ॥ ६ ॥

अस्मा इह अस्मा एवेन्द्राय स्वष्टा सकलजगन्निर्माता विश्व-
कर्मा वज्रम् एतन्नामकम् आयुधं तक्षत् अतक्षत् निर्मितवान् ।
कीदृशम् । स्वपस्तमम् अतिशयेन शोभनकर्माणं स्वर्गम् स्वायत्त-
वीर्यं स्तुत्यं वा । क्रियम् । रणाय युद्धाय । तुजता हिंसता येन
वज्रेण क्रियेषाः । किं परिमाणं यस्य शत्रुबलस्य तादृग् बलं धार-
यतीति क्रियेषाः । यद्वा क्रममाणान् शत्रून् धारयतीति निगृह्णा-
तीति क्रियेषाः । परैरपरिच्छेद्यबल इत्यर्थः । ॐ क्रियेषाः क्रियद्वा
इति वा क्रममाणधा इति वेति यास्कः [नि० ६, २०] । पृषो-
दरादित्वाद् पूर्वपदस्य क्रियेभावः । दधातेर्विष् मत्पयः ॐ ।
ईशानः सर्वस्य स्वामी भवन् इन्द्रः वृषस्य चित् सर्वावरकस्य मव-
लस्य वृषस्याप्यमुरस्य मर्म । यस्मिन् स्थाने विदः सद्यो त्रिपतं
तद् मर्म । तत् तुजन् हिंसन् व्यमयन् विदत् अविदत् लब्धवान् ।
लब्ध्वा प्राहार्पीदु इत्यर्थः । ॐ विदत् लाभे । लुकि लुदिश्वात्
प्लेः अह् आदेशः । “बहुलं छन्दस्यमाकुर्योमेपि” इत्यदभावः ।
यदुत्तमो गाद् अग्निधातः ॐ ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही सकल जगत्का निर्माण करने वाले
विश्वकर्माने स्वष्टा नामक आयुधको बनाया है । वह आयुध
शोभन कर्म करने वाला है, स्तुत्य है, वह रणके लिये बनाया
गया है और वह क्रममाण शत्रुओंका निग्रह करने वाला है ।
सबके स्वामी इन्द्रदेवने सर्वावरक मवल वृषामुरके मर्मको भी
खोज कर उस पर प्रहार किया था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्योः महः पितुं पपिवां चार्वन्ना
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो
अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । मातुः । सवनेषु । सद्यः । महः । पितुम् ।
पपिवान् । चारु । अन्ना ।

मुषायत् । विष्णुः । पचतम् । सहीयान् । विध्यत् । वराहम् ।
तिरः । अद्रिम् । अस्ता ॥ ७ ॥

अस्येदु अस्यैवेन्द्रस्य मातुः सर्वस्य निर्मातुः महः महतः मा-
हारम्यवतः एवंभूतस्य इन्द्रस्य । असाधारणं कर्म उच्यते इति
शेषः । यद्वा उक्तलक्षणस्य यज्ञस्येति व्याख्येयम् । किं तत् कर्मेति
उच्यते । अयम् इन्द्रः सवनेषु सोमयागसंबन्धिषु मातरादिपुत्रिषु
सवनेषु सद्यः तदानीमेव होमसमय एव पितुम् । अन्ननामैतत् ।
पातव्यं सोमं पपिवान् पीतवान् । किं च चारु चारुणि । ❀
“मुषां सुलुक्” इति विभक्त्यलुक् ❀ । अन्ना अन्नानि सव-
नीपपुरोडाशधानाकरन्मादीनि । भक्षितवान् इति शेषः । किं च
विष्णुः सवनत्रयव्यापी इन्द्रः सहीयान् अतिशयेन शत्रूणाम् अभि-
भविता । सोमपानादिजनितेन वतेनेति भावः । पचतम् परिपक्वम्
अपहारयोग्यभूतं शत्रूणां धनं मुषायत् अपाहरत् । ❀ क्यजन्ता-
ल्लङि “बहुलं छन्दस्यमादयोगेपि” इत्यदभावः ❀ । तथा अद्रिम्
अस्ता अद्रेर्वज्रस्य शेषकः प्रयोक्ता स इन्द्रः वराहम् । ❀ वराहो
मेयो भवति वराहार इति निरुक्तम् [५. ४] ❀ । वराहास्म

उत्कृष्टस्योदकस्य आहवतारं धारकं मेघं तिरःप्राप्ता सन् । ॐ तिरः
सत इति मासस्येति यास्कः [नि० ३, २०] ॐ । विध्यत् अवि-
ध्यत् वृष्टिलाभार्थं कण्ठदारयन् ॥

इन सबका निर्माण करने वाले, माहात्म्यसम्पन्न इन्द्रका
असाधारण कर्म कहा जाता है, कि-यह इन्द्रदेव सोमयागसंबंधी
प्रातरादि तीनों सवनोमें होमके समय ही सोमरूपी अन्नको
पीगए और सवनीय पुरोडाश घाना करंम आदि चार अन्नो
को खागए, और यह सवनप्रयव्यापी इन्द्र सोमपानजनित बल
के कारण शत्रुओंको बड़े दबानेवाले हैं और यह अपहारके योग्य
शत्रुओंके धनको छीन लेते हैं और वज्रका प्रयोग करने वाले
इन इन्द्रने, श्रेष्ठ जलका आहरण करने वाले मेघको वृष्टिके लिये
विदीर्ण कर डाला था ॥ ७॥

अष्टमी ॥

अस्मा इदु आश्विद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।

परि घावां पृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परिष्टः

अस्मै ॥ इत् ॥ ऊं इति । घाः । षित् । देवपत्नीः । इन्द्राय ।

अर्कम् । अहिहत्ये । ऊवुरित्युवुः ।

परि । घावां पृथिवी इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति ।

महिमानम् । परि । इत् इति स्तः ॥ ८ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव इन्द्राय अहिहत्ये । अहिर्हवः । तस्य
इनने निमित्तभूते सति देवपत्नीः देवानों पालयिष्यो गायत्र्याद्याः
गनाश्चित् गमनस्वभावा अपि अर्कम् अर्चनसाधनं स्तोत्रम् ऊवुः
अतन्वत । मद्रा अस्मा इन्द्राय गनाश्चित् । ॐ मेना गना इति स्त्री-

णाम् इति निरुक्तम् [३. २१] । ग्रा गच्छन्त्येना इति तत्रत्यं
निर्वचनम् ॐ । स्वस्वपतिभिरभिगन्तव्याः स्त्रियः । ता विशि-
नष्टि । देवपत्नीरिति । देवा इन्द्राद्याः पतयो यासां ता देवपत्न्यः ।
ताथ “उत ग्रा व्यन्तु देवपत्नीः” इति [ऋ० ५. ४६, =]
मन्त्रोक्ता इन्द्राण्यग्रायश्विन्याद्याः । ता देवपत्न्यः अकेम् अर्चन-
साधनं हविः ऊयुः स्वात्मनि अतन्वत । ॐ वेष् तन्तुसंताने ।
लिटि “वेवो वयिः” । लिटः कित्वाद् यजादित्वेन संप्रसारणे
यकारस्य “लिटि वयो या” इति प्रतिषेधाद् वकारस्य संप्रसार-
णम् । परपूर्वत्वे द्विर्वचनादि । “वशास्यान्यतरस्या किति” इति
यकारस्य वकारादेशः ॐ । स चेन्द्रः उर्वी विस्तृते द्यावापृथिवी
द्यावापृथिव्या परि जभ्रे स्वतेजसा परिजहार । अतिचक्रामेत्यर्थः ।
अस्य इन्द्रस्य महिमानम् महत्त्वं ते द्यावापृथिव्यौ न परि पृः न
पराभवतः । महत्त्वसंकोचं कर्तुं शक्ते नाभूताम् इत्यर्थः ॥

। इन इन्द्रदेवके लिये ही वृत्रहननका अवसर आने पर देवताओं
का पालन करने वाली (देवपत्नियें) गायत्री आदिने गमन
स्वभाव वाली होने पर भी अर्चनसाधन स्तोत्रको विस्तृत किया
था । अथवा—देवताओंकी पत्नी इन्द्राणी आदिने अर्चनसाधन
हविषो अपनेमें विस्तृत किया था । और इन इन्द्रदेवने विस्तृत
द्यावापृथिवीको अपने तेजसे अतिक्रमण किया था । इन इन्द्रके
महत्त्वका द्यावापृथिवी पराभव नहीं कर सकी थी अर्थात् इनके
महत्त्वका संकोच नहीं कर सकी थी ॥ ८ ॥

नवमी ॥

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्
स्वरालिन्द्रो दम आ विश्वगूर्नः स्वरिमन्त्रो ववच्चे
रणांय ॥ ६ ॥

अस्य । इत् । एवं । म । रिरिचे । महिऽत्वम् । दिवः । पृथिव्याः ।

परि । अन्तरिक्षात् ।

स्वराट् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वऽगूर्तः । सुऽअरिः । अमत्र ।

ववसे । रणाय ॥ ६ ॥

अस्येदेव अस्यैवेन्द्रस्य महित्वम् महत्त्वं माहात्म्यं दिवः द्युलो-
कात् परि उपरि म रिरिचे । ॐ अत्र मेष्युपसर्गो धात्वर्थे पाठ्यते ।
मस्मरणं मस्थानम् इति यत् ॐ । अधिकं भवतीत्यर्थः । तथा
पृथिव्याः परि भूलोकादप्युपरि म रिरिचे । एवम् अन्तरिक्षात्
द्यावापृथिव्योरन्तरालवर्तिनो यक्षगन्धर्वाप्सरःप्रभृतीनाम् आश्रय-
भूताद् अन्तरिक्षलोकादपि म रिरिचे । ॐ रिचिर् विरेचने ।
“वन्दसि लुङ्लङ्लिटः” इति वर्तमाने लिट् ॐ । किं च अयम्
इन्द्रो दमे दमयितव्ये शत्रुजने स्वराट् स्वेनैव तेजसा राजमानः ।
विश्वगूर्तः विश्वस्मिन् सर्वस्मिन्नपि कार्ये उद्गूर्णयन्तः । स्वरिः
सृष्टु अभिगन्ता । यद्वा स्वरिः शोभनः इन्द्रव्यतिरिक्तेनान्येन
पराभविष्यत् अशक्यः शत्रुः सुशब्देन उच्यते । तादृशेन अरिणा
उपेतः । अमत्र युद्धार्थं गमनकुशलः । ॐ अय गत्यादिषु ।
अमिनक्षिपयजिष्वि० [उ० ३. १०५] इत्यादिना अत्रन् प्रत्ययः ॐ ।
एवं महानुभाव इन्द्रो रणाय रमणीयाय संग्रामाय आ ववसे आ-
वहति वृष्ट्यर्थं मेघान् पापयति । ॐ वहेल्लेटि “सिञ्चद्भूलं लेटि”
इति सिप् । “वहुलं वन्दसि” इति शपः रलुः । कृत्वकृत्वपत्वानि ।
“लोपस्त आत्मनेपदेषु” इति तलोपः ॐ ॥

इन ही इन्द्रदेवका माहात्म्य द्युलोकके भी ऊपर फैला हुआ
है अर्थात् द्युलोकसे भी अधिक है । पृथ्वीलोकके ऊपर भी फैला
हुआ है और द्यावापृथिवीके मध्यके लोक-गन्धर्व अप्सरा आदि

के आश्रय-अन्तरिक्षके ऊपर भी फैला हुआ है । और यह इन्द्रदेव दमन करने योग्य शत्रुओं पर अपने ही तेजसे दमकते रहते हैं । सब कायोंमें इनका बल प्रचण्ड रहता है । यह भली प्रकार अभिगमन करने वाले हैं, युद्धके लिये गमन करनेमें कुशल हैं ऐसे महानुभाव इन्द्र रणके लिये वृष्ट्यर्थ भेषोंको लाते हैं ६

दशमी ॥

अस्येदेव शवसा शुपन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः
गा न ब्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः

अस्य । इत् । एव । शवसा । शुपन्तम् । वि । वृश्चत् । वज्रेण ।

वृत्रम् । इन्द्रः ।

गा । न । ब्राणाः । अवनीः । अमुञ्चत् । अभि । श्रवः । दावने ।

सचेताः ॥ १० ॥

अस्येदेव अस्यैव इन्द्रस्य शवसा बलेन तेजसा शुपन्तम् शुप-
न्तम् । ॐ शुप शोषणे । श्यनि प्राप्ते व्यत्ययेन शः । ऋदुपदे-
शात्तलसार्वधातुकानुदात्तत्वे विकरणस्वर एव शिष्यते ॐ । उक्त-
रूपं वृत्रम् इन्द्रो देवः वज्रेण आयुधेन वि वृश्चत् व्यन्धिन्नत् । तथा
गा न पणिभिरपहृता गा यथा अमुञ्चत् मोचितवान् एवं ब्राणाः
वृत्रेण आवृता अपः । ॐ वृञ् वरणे । कर्मणि लिट् । शानचि
“बहुलं धन्दसि” इति यको लुक् । शानचो ङित्वाद् गुणामावे
यण् आदेशः ॐ । कीदृशीरपः । अवनीः अवित्रीः सकलमाणि-
रक्षणहेतुभूता अमुञ्चत् मेयं भित्त्वा अवर्षात् । तथा कृत्वा दावने
हविर्दात्रे यजमानाय श्रवः सर्वैः श्रयमाणं विहृषातम् अन्नं
सचेताः यजमानेन समानचित्तः सन् अभि । ॐ उपसर्गश्रुतयो-

अक्रियाध्याहारः ॐ । अम्यगमयत् । अय वा आभिमुख्येन ।
 प्रायच्छद् इति शेषः ॥

इन ही इन्द्रदेवके तेजसे शुष्क होने हुए वृत्रासुरको इन्द्रदेवने
 अपने आयुधसे काट डाला था, और पाणियोंकी हरा हुई गोभों
 को जिस प्रकार छुड़ाया था इसी प्रकार वृत्रासुरसे घेरे हुए,
 सकल पाणियोंको रक्षाके हेतु जलोंकी मेथोंको विदीर्ण करके
 बरसा दिया । इस प्रकार करके हविर्दाता यजमानके लिये सधर्म
 प्रसिद्ध अन्नको समान वित्त होकर दिया ॥ १० ॥

एकादशी ॥

अस्येदु त्वेपसां रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीम्-
 यच्छत् ।

ईशानकृद् दाशुपे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः
 अस्य । इत् । ऊं इति । त्वेपसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यद् ।
 वज्रेण । सीम् । अयच्छत् ।

ईशानकृद् । दाशुपे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गाधम् । तुर्वणिः ।
 करितिः कः ॥ ११ ॥

अस्येदु अस्येवन्द्रस्य त्वेपसा दीप्तेन बलान् सिन्धवः स्यन्दन-
 शीला नद्यो रन्त अरन्त स्वस्त्रे स्थाने रमन्ते । यद् यस्मात् कार-
 णाद् अयम् इन्द्रो वज्रेण सीम् सर्वतः घनान् सिन्धून् वज्रेण पर्य-
 यच्छत् परितो नियमितवान् । तस्माद् रमन्त इति पूर्वत्र संबन्धः ।
 किं च ईशानकृद् शत्रून् इन्द्रो आस्थानं स्वामिनं कुर्वन् अय वा
 दुरिद्रस्य ईशानकर्ता दाशुपे हविर्दत्तवर्गं यजमानाय दशस्यन्तव-

भिमतं मयच्छन् इन्द्रः तुर्वीतये एतत्संज्ञकाय अगाधे जले निमग्नाय
तुर्वणिः तूर्णवनिः शीघ्रं संमक्ता सन्नं गाधम् प्रतिष्ठा कः अकः
अकार्षीत् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०” इत्यादिना च्लेर्लुक् ।
गुणः । “हल्दधा०” इत्यादिना तलोपः ॐ ॥

इन ही इन्द्रके दीप्त बलसे स्यन्दनशील नदिये अपने २
स्वानमें रमण करती हैं, क्योंकि—इन इन्द्रदेवने वज्रके द्वारा इन
नदियोंको चारों ओरसे नियमित कर दिया है, अत एव यह
नदियें रमण करती हैं । और यह इन्द्रदेव यजमानको ईश बनाने
वाले हैं और इविर्दाता यजमानको अभिलषित फल देने वाले
हैं और अगाध जलमें निमग्न तुर्वीतिके लिये शीघ्र ही प्रतिष्ठाको
देने वाले हैं ॥ ११ ॥

द्वादशी ॥

अस्मा इदु प्र भंरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः
क्रियेधाः ।

गोर्न पर्व वि रंदा तिरश्चेप्यन्नर्णस्यपां चरर्धे १२

अस्मै । इत् । ऊं इति । म । भ्रर । तूतुजानः । वृत्राय । वज्रम् ।
ईशानः । क्रियेधाः ।

गोः । न । पर्व । वि । रंदा । तिरश्चा । इप्यन् । अर्णसि । अपाम् ।
चरर्धे ॥ १२ ॥

अस्मा इदु अस्मा एव वृत्राय अस्य वृत्रस्य वधार्थं तूतुजानः
अत्यर्थं त्वरमाणः अत्यर्थं चक्षायमानो वा ईशानः सर्वस्य स्वामी
क्रियेधाः कियद् इदं शत्रुबलम् इति तुच्छीकृत्य तस्य बलस्य धारकः ।

अथ वा क्रममाणः सन् शत्रु धारकः वज्रं म भर महर मयोजय ।
न केवलं महस्मात्रं किं तु सकलीकुर्वित्याह । गोर्न पर्व यथा मां
सार्थिनो गोर्वाभादेः पशोः पर्व-पर्वणि प्रतिपर्वं द्विन्दन्ति तद्वत् ।
अर्णोसि उदकावि इष्यन् इच्छन् अपां चरर्ध्वं चरणाय भूमौ प्रवा-
हाय तिरथा तिर्यगञ्जनैः वज्रेण वि रद विशेषेण वृत्रं विलेख्य ।
विविधं द्विन्दीत्यर्थः ॥ ॐ अत्र निरुक्तम् । अस्मै महर तूर्णं तत्
माणो वृत्राय वज्रम् ईशानः । कियेषाः । कियद्वा इति वा क्रम-
माणया इति वा । गोरिव पर्वणि वि रद मेघस्येव्यन्नर्णस्यपां
चरणायेति [नि० ६. २०] ॥

हे इन्द्रदेव ! इस वृत्रके वधके लिये अत्यन्त त्वरा करते हुए
सबके स्वामी आप आगे बढ़ शत्रु को दावते हुए वज्रका महार
करिये । (केवल महार ही न करिये, किंतु खण्ड २ कर डालिये)
जैसे मांसार्थी पुरुष पशुके खण्ड २ करते हैं, इसी प्रकार आप
जल चाह कर जलको भूमि पर बहानेके लिये तिरछे वज्रसे वृत्र
(मेघ) को विदीर्ण करिये ॥ १२ ॥

अथोदशी ॥

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उच्यैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृधायमाणो निरिणाति
शत्रून् ॥ १३ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । प्र । ब्रूहि । पूर्याणि । तुरस्ये । कर्माणि ।
नव्यः । उच्यैः ।

युधे । यत् । इष्णानः । आयुधानि । अरुधायमाणः । निरिणाति ।
शत्रून् ॥ १३ ॥

उक्त्यैः । उक्तं स्तुतिम् अर्हन्तीति चरध्याति शस्त्राणि । तैः
नव्यः स्तुत्यो य इन्द्रः अस्मेदु अस्यैव तुरस्य युद्धार्थं त्वरमाण-
स्वेन्द्रस्य पूर्वाणि पुराणानि कर्माणि एतत्कृतानि बलकर्माणि
हे स्तोतः न ब्रूहि प्रशंस । यत् यदा युधे योधनाय आपुधानि
वज्रादीनि इष्टानः आभीक्ष्ण्येन प्रेरयन् । ॐ इष आभीक्ष्ण्ये ।
क्रैपादिकः । व्यत्ययेन आत्मनेपदम् । शानचश्चिच्चाद् अन्तोदा-
त्तत्वम् ॐ । शत्रून् ऋधायमाणः हिसंश्च इन्द्रः निरिणाति अभि-
मुखं गच्छति । तदानीं न ब्रूहीति पूर्वेण संबन्धः । ॐ निरि-
णाति । री गतिरेषणयोः । “क्रधादिभ्यः आ” । “वादीनां ह्रस्वः”
इति ह्रस्वत्वम् । तिपः पिच्चाद् अनुदात्तत्वे विकरणस्वरः शिष्यते
“तिङि चोदात्तवति” इति गतेर्निघातः । यद्वृत्तयोगात् “तिङ्ङ-
तिङः” इति निघाताभावः ॐ ॥

शस्त्रोंके द्वारा स्तुति करने योग्य जो इन्द्र है उन ही युद्धके
लिये त्वरा करनेवाले इन्द्रके प्राचीन बलमय कर्मोंको हे स्तोतः !
आप गाइये, जब युद्ध करनेके लिये वज्र आदिको चारोंवार
प्रेरित करते हुए और शत्रुओंका संहार करते हुए इन्द्र अभि-
मुख होकर चढ़ाई करें, उस समय गाइये ॥ १३ ॥

चतुर्दशी ॥

अस्येदुं भिया गिरयश्च दृहा द्यावां च भूमां जनुपस्तुजेते
उपो वेनस्य जोगुवान ओणि सद्यो भुवद् वीर्याय
नोधाः ॥ १४ ॥

अस्य । इत् । ऊं इति । भिया । गिरयः । च । दृहाः । द्यावा ।
भूमा । जनुषः । तुजेते इति ।

उपो इति । वेनस्य । जोगुवानः । ओणिम् । सधः । भुवत् ।
वीर्याय । नोधाः ॥ १४ ॥

अस्यैव इन्द्रस्य जनुषः जन्मतः मादुर्भूत एव । यद्वा जनुषः
उत्कृष्टजन्मवतोऽस्येति व्याख्येयम् । भिया पक्ष्मच्छेदनभयेन गिर-
यश्च पर्वता अपि दृढा दृढानि अप्रच्यवितानि अभूवन् । पर्वत-
द्रव्यसामान्यापेक्षया नपुंसकलिङ्गता । किं च अस्य भिया घावा
च भूमा च घावापृथिव्यावपि तुजेते । ॐ तुजिर्हिसार्धोपि अत्र
कम्पने वर्तते ॐ । कम्पेते इत्यर्थः । ॐ अत्र मध्ये चशब्दस्य
पाठश्चान्दसः । “दिवो घावा” इति दिग्शब्दस्य घावादेशः ।
“सुपां सुलुक्” इति ङादेशः । “देवताद्वन्द्वे च” इत्युभयपद-
मकृतिस्वरत्वम् । पदद्वयमसिद्धिरपि साम्प्रदायिकी ॐ । किं च
वेनस्य क्रान्तस्य ओणिम् दुःखस्यापेनोदकं रक्षणम् । ॐ ओणु
अपनयने इत्यस्माद् ओणादिक इत्ययः ॐ । जोगुवानः अनेकैः
सूक्तैः शब्दयन् नोधाः नवनस्य स्तवस्य धारयिता एतन्नामा
महर्षिः वीर्याय सामर्थ्याय सधः तदानीमेव उपो उपैव समीप
एव भुवत् भवेत् अभवत् । वीर्यवान् अभवद् इत्यर्थः ॥

इन इन्द्रके मादुर्भूत होते ही पंख काटे जानेके डरसे पर्वत हड़
बन गए थे और इनके भयसे घावापृथिवी भी काँपते हैं । और
इन कमनीय दुःख दूर करने वालेकी अनेक सूक्तोंसे प्रशंसा
करते हुए नोधा महर्षि शीघ्र ही वीर्यवान् होगए थे ॥ १४ ॥

पञ्चदशी ॥

अस्मा इदु त्यदनुं दाध्येषामेको यद् वञ्जे भूरेरीशानः ।
प्रेतंशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५

अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यत् । अनु । दायि । एषाम् । एकः ।
यत् । वन्ने । भूरेः । ईशानः ।

म । एतशम् । सूर्ये । पस्पृधानम् । सौवर्ण्ये । सुप्तिम् । आवत् ।
इन्द्रः ॥ १५ ॥

अस्मा इत् अस्मा एवेन्द्राय त्यत् तत् मसिद्धं स्तोत्रं सोम-
लक्षणम् अन्नं वा अनु आनुलोभ्येन दायि अदायि दीयते ।
अस्मा एवेत्युक्तं तत्र कारणम् आह । यत् यस्मात् कारणाद्
भूरेः प्रभूतस्य धनस्य हविषः स्तोत्रस्य वा ईशानः स्वामी इन्द्रः
एकः स्तोत्रादिविषये केवलः असाधारणः सन् वन्ने । असाधा-
रण्यं याचितवान् इत्यर्थः । किं च अयम् इन्द्रः सौवर्ण्ये स्वरव-
स्यापत्ये एतन्नामके राजनि रक्षणीयत्वेन निमित्तभूते सति सूर्ये
देवे पस्पृधानम् सौवर्ण्यसहायत्वेन पुनःपुनः स्पर्धमानम् । ॐ स्पर्ध
संवर्षे । अस्माल्लिङः कानच् । द्विर्वचने “शर्षर्वाः स्वयः” इति
एकारः शिष्यते । धात्वकारस्य लोपो रेफस्य संप्रसारणं च
पृषोदरादित्वात् । चित्वाद् अन्तोदात्तत्वम् ॐ । एतशम् एतन्ना-
मानं महर्षिं सुप्तिम् सुष्ठु इन्द्रार्थं सोमाभिषवं कुर्वाणं आवत् मक-
र्षेण रक्षितवान् । यद्वा सौवर्ण्ये स्वरवस्यापत्ये सूर्ये इति व्या-
ख्येयम् । सूर्यः स्वरवस्य तपसा तुष्टः सन् तस्य पुत्रो भूद् इत्ययम्
अर्थः आख्यायिकासुखेनावगन्तव्यः । शिष्टं पूर्ववत् ॥

इन इन्द्रदेवके लिये ही स्तोत्र वा सोमरूपी अन्न अनुलोभ-
रीतिसँ दिया जाता है, क्योंकि—प्रभूत धन हवि वा स्तोत्रके
स्वामी इन्द्रने स्तोत्र आदिके विषयमें असाधारणकी याचना की
थी । और इन इन्द्रदेवने सौवर्ण्य नामक राजाकी रक्षाके अव-
सर पर सूर्यदेवसे बारम्बार स्पर्धा करते हुए एतश नामक
महर्षिकी सोमाभिषवके कारण रक्षा की थी ॥ १५ ॥

षोडशी ॥

एवा ते हारियोजना सुवृत्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो
अक्रन् ।

एषु विरवपेशसं धियं धाः प्रातर्भक्ष धियावसुर्ज-
गम्यात् ॥ १६ ॥

एव । ते । हारिऽयोजन । सुवृत्ति । इन्द्र । ब्रह्माणि । गोत-
मासः । अक्रन् ।

आ । एषु । विरवपेशसम् । धियम् । धाः । प्रातः । मक्षु ।
धियावसुः । जगम्यात् ॥ १६ ॥

हयोर्विषयोर्गोत्रजनम् अस्मिन् रये ता तथोक्तः । तस्य स्वाभि-
त्वेन संवन्धी हारियोजनः । हे हारियोजन इन्द्र गोत्रमासः गोत्र-
मगोत्रोत्पन्ना महर्षयः सुवृत्ति सुवृद्ध आर्वावर्जकानि अभिवृत्ती-
करणकृतानि ब्रह्माणि स्तुतिरूपाणि मन्त्रजातानि ते सर्वे एव
एवंप्रकारेण अक्रन् अकृतवन् । ॐ करोतेर्लुङि “मन्त्रे घस०”
इत्यादिना ऋतेर्लुक् । अन्तादेशः । तस्य स्थित्वात् गुणमावे-
यणदेशः । “इतश्च” इति इकारलोपे संयोगान्तलोपे च अडा-
गमः ॐ । एषु स्तोत्रेषु विरवपेशसम् बहुविवरूपयुक्तं धियम् ।
धिया लभ्यत्वाद् धीर्धनम् उच्यते । यद्वा धीशब्दः कर्मवचनः ।
परवादिबहुविवरूपं धनं अपिष्टोमादि बहुविवरूपं कर्म वा आ-
धाः आधेहि स्यादप्य । प्रातः इदानीमिव परेश्वरपि प्रातःकाले
धियावसुः बुद्ध्या कर्मणा वा मासधन इन्द्रो मक्षु शीघ्रं जगम्यात्
अस्मत्प्रज्ञापयम् आगच्छन्तु ॥

इति चतुर्थेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ोंको अपने रथमें जोतने वाले इन्द्र ! गौतम गोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि अभिमुख करनेमें कुशल मन्त्रात्मक स्तोत्रोंको आपक लिये ही करते हैं, इन स्तोत्राश्रमोंमें आप अनेक प्रकारके रुशोंमें युक्त पशु आदि धन वा अग्निष्टोम आदि अनेक प्रकारका कर्प स्थापित करिये । इस समयकी समान दूसरे दिन भी प्रातःकाल बुद्धिसे धनको प्राप्त करने वाले इन्द्रदेव हमारे रक्षाके लिये शीघ्र आवें ॥ १६ ॥

चतुर्थं अनुवाचमं द्वितीयं सूक्तं समाप्तं (६५१)

आभिसविके युग्माहनि मास्यंदिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रे “य एक इद्धव्यः” इति सूक्तं संपातसंज्ञया विनियुक्तम् । सूत्रितं हि । “युग्मेत्विन्द्रः पूर्भिदातिरदासमर्कैः [२०. ११] य एक इद्धव्यश्चर्पणीनाम् [२०. ३६] यस्तिग्ममृगो वृषभो न भीमः [२०. ३७] इति संपातानाम् एकैकम् अहरहरावपते पृष्ठये दन्दोमेपु दशमे च” इति [वै० ६. १] ॥

आभिसविक युग्माहन् मास्यंदिनसवनके ब्राह्मणाच्छंसिशस्त्रम् “य एक इद्धव्यः” सूक्तं सम्पातं नामसै विनियुक्तं हुआ है । इस विषयमें सूत्रका प्रमाण भी है, कि—“युग्मेत्विन्द्रः पूर्भिदातिरदासमर्कैः (२० । ११) य एक इद्धव्यश्चर्पणीनाम् (२० । ३६) यस्तिग्ममृगो वृषभो न भीमः (२० । ३७) इति संपातानां एकैकं अहरहरावपते पृष्ठये दन्दोमेपु दशमे च” (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तय प्रथमा ॥

य एक इद्धव्यश्चर्पणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्चि आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्मृत्युः सत्वां पुरुमायः
सहैस्वान् ॥ १ ॥

यः । एकः । इत् । हव्यः । चर्पणीनाम् । इन्द्रम् । तम् ।
गीऽभिः । अभि । अर्चे । आभिः ।

यः । पत्यते । वृषभः । वृष्यस्वान् । सत्यः । सत्वा । पुरुऽमायः ।
सहस्वान् ॥ १ ॥

चर्पणीनाम् । मनुष्यनामैतत् । मनुष्याणां यजमानानां यः
इन्द्रः एक इत् एक एव हव्यः भाषान्येन यज्ञे दातव्यः । यद्वा
जयकामानां राजादीनां स्वसहायत्वेन एक एव हव्यः । तं दात-
व्यम् इन्द्रम् आभिः क्रियमाणप्रकाराभिगीर्भिः स्तुतिवाग्भिः
अभि अर्चे । अर्चतिः स्तुतिकर्मा । अभिष्टौमि । किं च यो वक्ष्य-
माणगुणविशिष्ट इन्द्रः पत्यते सर्वस्येश्वरो भवति । इन्द्रं विशि-
नष्टि । वृषभः कामानां वर्पिता वृष्यस्वान् वृष्यं वर्षणयोग्यं
बलम् तद् अस्यास्तीति वृष्यस्वान् । ❀ “मादुपधायाः” इति
मत्तुपो वक्ष्यम् । “अन्येषामपि दृश्यते” इति दीर्घः । मत्तुप-
पित्रवाद् अनुदात्तत्वे “यतोऽनावः” इत्याद्युदात्तत्वम् ❀ । सत्याः
सत्यफलाः सत्वा बलस्य सादयिता पुरुमायः बहुकर्मा सहस्वान्
बलवान् एवम् उक्तगुणोपेतो य इन्द्रः पत्यते । तं गीर्गिरभ्यर्चे
इति संबन्धः ॥

जो इन्द्रदेव यजमान मनुष्योंके एक ही आवाहन करने योग्य
हैं उन आवाहन करने योग्य इन्द्रका मैं इन स्तुतिवाणियोंसे पूजन
करता हूँ । यह इन्द्रदेव सबके ईश्वर होते हैं, कामनाओंकी वर्षा
करने वाले हैं, वर्षण योग्य बलसे सम्पन्न हैं, सत्यफल हैं, बल
को प्राप्त कराने वाले हैं, बहुतसे कर्मोंको करने वाले हैं, ऐसे
इन्द्रकी मैं स्तुतियोंसे पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

तमुं नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासोऽग्निभि
वाजयन्तः ।

नक्षत्राभं तत्पुंरि पर्वतेऽष्टमद्रोषवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥

तम् । ऊं इति । नः । पूर्वे । पितरः । नवज्जवाः । सप्त । विप्रासः ।

अग्नि । वाजयन्तः ।

नक्षत्राभम् । तत्पुंरिम् । पर्वतेऽस्याम् । अद्रोषवाचम् । मति-
भिः । शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमुं तमेवेदं नः अस्माकं संबन्धिनः पूर्वे पुरातनाः पितरः
कर्मणा पितृलोकं प्राप्ताः पालयितारो नवग्वाः नवभिर्मसैर्लब्ध-
फलाः सन्तः सन्नाह ये वन्धिनास्ते नवग्वाः नवभिर्मसैराप्तगो-
फला वा । सप्त सप्तमं लयाका विनामः मेराचिनः वाजयन्तः
वाजम् अन्नं इति लक्षणेन इन्द्राय उच्यन्तः वाजिनं बलिनं कुर्वन्तो
वा मतिभिः स्तुतिभिः इन्द्रम् अग्निम् । ॐ उपसर्गश्चतुर्गोत्रा-
ध्यासः । ॐ । अभितुष्टुपुरित्पथः । कीदृशम् इन्द्रम् । नक्षत्राभम् ।
नक्षत्रिर्गतिर्मा । अभिगच्छतां शत्रूणां हिमितारं तत्पुंरिम्
दुर्गमात् तारकं पर्वतेऽष्टम् पर्वते मेवे अवस्थितम् अद्रोषवाचम्
अद्रोषवन्दा अनतिक्रमणीया वाचो यस्य सः अद्रोषवाक् तम्
अद्रोषवाचं शविष्ठम् अनिशपेन बलवन्म् ॥

नव माममे मिद्धि एने बाले, इतिव्य अन्नको इन्द्रके तिये
चारते हुए, विद्वान् कर्ममे पितृलोकको प्राप्त हुए हमारे सात
पूर्व पुरुषोंने इन्द्रकी स्तुति की थी । यह इन्द्रदेव शत्रुओंकी

हिंसा करने वाले हैं, दुर्गमसे तारने वाले हैं, पर्वतमें स्थित रहते हैं, इनकी बाणियोंका अतिक्रम नहीं होता है और परमवली हैं २
तृतीया ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुषीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुस्जरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो माद-
यधैः ॥ ३ ॥

तम् । ईमहे । इन्द्रम् । अस्य । रायः । पुरुषीरस्य । नृवतः ।
पुरुक्षोः ।

यः । अस्कृधोयुः । अजरः । स्वःऽवान् । तम् । आ । भर ।
हरिऽवः । मादयधैः ॥ ३ ॥

तं प्रसिद्धम् इन्द्रम् ईमहे याचामहे । याचनाविषयं दर्शयति ।
अस्य रायः । रयिरिति धननाम । एतद् धनम् । वीदृशं तत् ।
पुरुषीरस्य वीराः पुत्रादयः बहुभिर्वीरैरुपभोक्तव्यम् । नृवतः नरो
मर्त्याः सेवकाः तैः सहितम् । पुरुक्षोः क्षुरित्यन्ननाम । वदन्नम् ।
उक्तविशेषणविशिष्टं धनम् ईमहे इति संबन्धः । किं च यो रयिः
अस्कृधोयुः अचिद्धन्नः अजरः जरारहितः स्वर्वान् स्वः स्वर्गः
सुखं वा तदान् तम् उक्तगुणविशिष्टं रयिम् हे हरिवः हंयाख्या-
स्ववन्निद्र मादयधै अस्मान् मादयितुम् आ भर आहर ।
⊗ मदि स्तुत्यादा । “हेतुमति च” इति णिच् । तुमर्धे अध्य-
त्ययः । प्रत्ययस्वरेण तृतीयस्य उदात्तत्वम् ⊗ ॥

हम इन इन्द्रसे पुत्र आदि बहुतसे वीरोंसे युक्त, सेवकोंसे
सम्पन्न विशाल अन्नपरिमाण वाले धनकी याचना करते हैं ।

जो धन अच्छिन्न है, जरारहित है, सुखमद है, हे हरि नामक
घोड़ोंसे सम्पन्न इन्द्र ! ऐसे धनको आप हमें प्रदान करिये ३
चतुर्थी ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिञ्जस्तितारं आनशु
सुम्नमिन्द्र ।

कस्तं भागः किं वयो दुधं त्विदः पुरुहूत पुरुवसो-
सुरग्नः ॥ ४ ॥

तत् । नः । वि । वोचः । यदि । ते । पुरा । चित् । अस्तितारः ।
आनशुः । सुम्नम् । इन्द्र ।

कः । ते । भागः । किम् । वयः । दुध । त्विदः । पुरुहूत ।
पुरुवसो इति पुरुवसो । असुरग्नः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र पुरा चित् पूर्वमपि ते तव जरितारः स्तोतारः सुम्नम्
सुखं यदि आनशुः स्वतः सकाशात् प्राप्ताः तर्हि तत् सुम्नम्
सुखं नः स्तोत्राणाम् अस्माकमपि वि वोचः प्रब्रूहि । मयच्छेति
भावः । तस्य सुम्नस्य उत्कोचभूतः असुरग्नः शत्रूणां हन्तुस्ते तव
भागो यज्ञे निर्दिष्टः कः । किं वयः किं हविर्लक्षणम् अन्नं तव
दातव्यम् । तं स्तोत्रादिरूपं भागं सोमादिहविर्लक्षणम् अन्नं च हे
दुधं दुग्धं हे त्विदः शत्रूणां खेदयितः हे पुरुहूत बहुभिराहूत हे
पुरुवसो बहुधन एवमुक्तैर्गुरुरूपेण इन्द्र नः अस्माकं ब्रूहि प्रब्रूहि ।
❀ त्विद इति । त्विद दैन्ये इत्यस्मात् एयन्तात् लिटः ववसुरा-
देशः । “वस्वेकाजाइवसाम्” इति नियमाद् इदं भावः । द्विर्वचन-
प्रकारमे “द्वन्द्वसि वा” इति त्रिकेपाद् अनभ्यासः । “मनुवसो
रः संवुर्दा द्वन्द्वसि” इति रुक्म् । आमन्त्रितनिघातः ❀ ॥

हे इन्द्र ! आपके प्राचीन स्तोता यदि आपसे मुखको पाचुके हैं, तो उस मुखको हम स्तोताओंको भी प्रदान करिये । उस मुखकी रिरवतरूप असुरोंको संहार करने वाला आपका जो भाग यज्ञमें निर्दिष्ट है वह कौनसा है और आपको हविरूप कौनसा अन्न देना चाहिये । उस स्तोत्र आदि रूप भागको और सोम आदि हविरूप अन्नको भी हे दुर्धर ! हे शत्रुओंको खेदमें डालने वाले ! हे पुरुहूत ! हे बहुधन ! आप हमसे कहिये ४ पञ्चमी ॥

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्टामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य
नू गीः ।

तुविग्राभं तुविकृमिं रभोदां गातुमिपे नक्षते तुम्रमच्छं
तम् । पृच्छन्ती । वज्रहस्तम् । रथेऽस्थाम् । इन्द्रम् । वेपी ।

वक्वरी । यस्य । नु । गीः ।

तुविग्राभम् । तुविकृमिम् । रभःस्थाम् । गातुम् । इपे ।

नक्षते । तुम्रम् । अच्छ ॥ ५ ॥

यस्य स्तोतुर्यजमानस्य वेपी । वेप इति कर्मनाम । यागादि-
लक्षणकर्मवती वक्वरी गुणानां प्रवचनशीला गीः वाग् वज्र-
हस्तम् वज्रं हस्ते धारयन्तं रथेष्टाम् रथे अवस्थितं तं प्रसिद्धम्
इन्द्रं पृच्छन्ती मश्नं कुर्वती । अभिगच्छति स्तौति वेति शेषः ।
तुविग्राभम् वह्नां ग्राहकं तुविकृमिम् बहुकर्माणं रभोदाम् रभसो
पलस्य दातारम् उक्तलक्षणम् इन्द्रं स यजमानो गातुम् मुखम्
इपे इच्छति । नु इति पूरणः । किं चतुम्रम् अभिगन्तारं त्वरयितारं
वा शत्रुम् अच्छ आभिमुख्येन नक्षते गच्छति ॥

जिस स्तोता यजमानकी याग आदि रूप कर्म वाली, गुणों का प्रवचन करने वाली वाणी वज्रधारी रथमें स्थित इन्द्रसे प्रश्न करती हुई इन्द्रको प्राप्त होती है। बहुतोंका ग्रहण करने वाले, बहुतसे कर्मों वाले, बलप्रद इन्द्रसे यजमान सुखकी इच्छा करता है। और स्वरा करने वाले शत्रुकी अभिमुख होकर प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

अ॒या ह॒ त्वं मा॒ययां॑ वा॒वृ॒धानं॑ म॒नोजु॒वां स्वतवः॑
पर्व॑तेन ।

अ॒च्यु॒ता चिद् बी॒लि॒ता स्वो॑जो रु॒जो वि दृ॒हा धृ॑प॒ता
वि॒र॒प्शिन् ॥ ६ ॥

अ॒या । ह॒ । त्वम् । मा॒ययां । वा॒वृ॒धानम् । म॒नः॒ऽजु॒वा । स्व॒ऽतवः॒ ।
पर्व॑तेन ।

अ॒च्यु॒ता । चि॒त् । बी॒लि॒ता । मु॒ऽओ॒जः । रु॒जः । वि । दृ॒हा ।
धृ॑प॒ता । वि॒र॒प्शिन् ॥ ६ ॥

हे स्वतवः स्वापचक्षु इन्द्र त्वं मनोजुवा मनोवत् शीघ्रं गच्छता पर्वतेन पर्वतना वज्रेण अया अनया प्रसिद्धया मायया शक्त्या ववृधानम् भृशं वर्धमानं त्वम् तं प्रसिद्धं वृत्रं वि रुजः व्यरुजः विशेषेण अभाङ्क्षीः । तथा हे स्वोजः शोभनबल हे विरप्शिन् । विरप्शोति महन्नाम । हे महन् इन्द्र त्वम् अच्युता चिद् अच्युतानि अन्यैरच्यावयिनन्यान्यपि बीलिता बीलिनानि दृढानि अशिथिलीकृतानि दृढा दृढानि शत्रुनगराणि धृपता धर्षकेण वज्रेण वि रुजः विदारितवान् असि ॥

हे स्वायत्तबल इन्द्र ! आप मनकी समान शीघ्र चलने वाले पर्व चाले वज्रसे मायाके द्वारा बढ़ते हुए प्रसिद्ध वृषासुरको विशेषरूपसे नष्ट कर चुके हैं । तथा हे शोभन बलसे सम्पन्न महत्त्वमय इन्द्र ! आपने दूसरोंसे च्युत करनेके अयोग्य दृढ, शत्रु-नगरोंको भी धर्षक वज्रसे विदारण कर डाला था ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रलं प्रत्नवत् परितंसयधै
स नो वक्षदनिमानः सुवह्नेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि
तम् । वः । धिया । नव्यस्या । शविष्ठम् । प्रत्नम् । प्रत्नवत् ।
परितंसयधै ।

सः । नः । वक्षत् । अनिमानः । सुवह्ना । इन्द्रः । विश्वानि ।
अति । दुर्गहानि ॥ ७ ॥

हे यजमानाः वः युष्मदर्थं शविष्ठम् । शवइति बलनाम । अति शपितबलं मन्त्रम् पुरातनं तं प्रसिद्धम् इन्द्रं नव्यस्या नवतरया धिया स्तुत्या मन्त्रवत् पुराणा महर्षयो यथा एवं परितंसयधै अलं-कर्तुम् । प्रवृत्तोस्मीति शेषः । तसि अलंकारे । इदित्त्वान्नुम् । तुमर्पे अर्घ्यप्रत्ययः । प्रत्ययस्वरेण उपान्त्योदात्तः । अनिमानः निमानरहितः इष्यताश्न्यः । महान् इत्यर्थः । सुवह्ना शोभनं वक्ष वहनं यस्य ॥ सुवह्ना शोभनवहनः स उक्तलक्षण इन्द्रः नः अस्मान् विश्वानि सर्वाणि दुर्गहाणि दुर्गपनानि भानियानि दुस्तराणि सर्वाण्यपि अग्नि वक्षत् अतिवहत् ॥

हे यजमानों ! आपके लिये परमबली प्राचीन इन्द्रको नवीन स्तुतिसे प्राचीन महर्षियोंकी समान मैं अलंकृत करनेके लिये

प्रवृत्त होगया हूँ । परिमाणशून्य और शोभन वाहनो वाले इंद्र
हमें सब दुस्तर विषयोंके पार पहुँचावें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

आजनायद्रुहणे पार्थिवानि दिव्यानि दीप्योन्तरिक्षा
तपः वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विपं शोचय
क्षामपश्च ॥ ८ ॥

आ । जनाय । रुहणे । पार्थिवानि । दिव्यानि । दीपयः । अन्तरिक्षा ।
तपः । वृषन् । विश्वतः । शोचिषा । तान् । ब्रह्मद्विपे । शोचय ।
क्षाम् । अपः । च ॥ ८ ॥

हे इन्द्र त्वं रुहणे साधुजनानां द्वेष्टुः जनाय जनस्य राक्षसादेः
पार्थिवानि पृथिव्यां भवानि दिव्यानि दिवि भवानि अन्तरिक्षा
अन्तरिक्षाणि अन्तरिक्षे भवानि च स्थानानि आ दीपयः आ सम-
न्तात् तापय । हे वृषन् कामानां वर्पितः इन्द्र त्वं विश्वतः सर्वतो
विद्यमानान् तान् राक्षसादीन् शोचिषा त्वदीयया दीप्या तप दह ।
किं च ब्रह्मद्विपे ब्राह्मणद्वेष्टे राक्षसादये । ब्रह्मद्विपं दुग्धम् इत्यर्थः ।
क्षाम् पृथिवीम् अपश्च अन्तरिक्षं शोचय दीपय । ॐ क्षाम् इति ।
क्षि निवासगत्योः । तौदादिकः । “अन्येष्वपि दृश्यते” इति
सोपसर्जनो विधीयमानो ढप्रत्ययः “अपिशब्दः सर्वोपाधि-
व्यभिचारार्थः” इत्युक्तेर्निरूपपदेभ्योपि भवति । क्षियन्ति निव-
सन्त्यस्यां प्राणिन इति क्षा वसुंधरा । प्रत्ययस्वरः ॐ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सज्जनोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिके
पृथिवीलोकके, द्युलोकके और अन्तरिक्ष लोकके स्थानोंको चारों
ओरसे सन्तप्त करिये । हे कामनाओंकी वर्षा करने वाले इन्द्र !

आपचारों और विद्यमान राक्षस आदिको अपनी दीप्तिसे भस्म कर डालिये । और ब्राह्मणोंसे द्वेष करने वाले राक्षस आदिको भस्म करनेके लिये पृथिवीको और द्युलोकको भी दीप्त करिये—
नवमी ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेपसंहक्
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्प दयसे
वि मायाः ॥ ६ ॥

भुवः । जनस्य । दिव्यस्य । राजा । पार्थिवस्य । जगतः । स्त्वेप-
संहक् ।

धिष्व । वज्रम् । दक्षिणे । इन्द्र । हस्ते । विश्वाः । अजुर्प ।
दयसे । वि । मायाः ॥ ६ ॥

हे स्वेपसंहक् दीप्तसंदर्शन इन्द्र दिव्यस्य दिवि भवस्य जनस्य राजा ईश्वरः भुवः भवसि । जगतः जङ्गमस्य पार्थिवस्य च राजा भवसि । दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व निधेहि । तेन निहितेन वज्रेण विश्वाः सर्वा माया आसुरीः वि दयसे विधाघसे । ॐ दय दान-रक्षणगतिर्हिसादानेप्सिति धातुः ॐ । हे अजुर्प जरयितुम् अशक्त्य इन्द्र त्वम् इति ॥

हे दीप्तसंदर्शन इन्द्र ! आप द्युलोकमें रहने वाले जनोंके राजा हैं, दक्षिण हाथमें वज्रको धारण करिये और उस वज्रसे सब आसुरी मायाओंको बाधित करिये । हे जीर्ण करनेके अयोग्य इन्द्र ! आप आसुरी मायाओंको बाधित करिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

आ संयतमिन्द्र एः स्वस्ति शंभुतूर्याय बृहतीममृधाम् ।

यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्सुतुका नाहु-
पाणि ॥ १० ॥

आ । सम्पद्यतम् । इन्द्र । नः । स्वस्तिम् । शत्रुऽतूर्याय । बृह-
तीम् । अमृधाम् ।

यया । दासानि । आर्याणि । वृत्रा । करः । वज्रिन् । सुतुका ।
नाहुपाणि ॥ १० ॥

शत्रुतूर्याय शत्रूणां तारणाय बृहतीम् महतीम् अमृधाम् अहि-
सितां संपतम् संयतीं संगच्छमानां स्वस्तिम् क्षेमलक्षणां संपदम्
हे इन्द्र त्वं नः अस्मभ्यम् आ हर । हे इन्द्र वज्रिन् वज्रवन् यया
स्वस्त्या दासानि कर्मणा आत्मानम् उपक्षपयितुं हीनानि वृत्रा
वृत्राणि शत्रुभूतानि नाहुपाणि नहुपा मनुष्याः तत्संबन्धीनि
मनुष्यजातानि आर्याणि अरणीयानि श्रेष्ठानि तथा सुतुका सुतु-
कानि शोभनापत्यभूतानि पुत्रस्थानीयानि करः अकरोः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र । जिस क्षेम करने वाली सम्पत्तिसे आप
दासोंको और शत्रुभूत मनुष्योंको श्रेष्ठ और पुत्रस्थानीय बना
देते हैं, शत्रुओंको तरनेके लिये उस महती अहिंसिता, प्राप्त
होती हुई सम्पत्तिको आप हमारे लिये लाइये ॥ १० ॥

एकादशी ॥

स नो न्युज्जिः पुष्टूत वेधो विश्ववाराभिरा गंहि
प्रयज्यो ।

न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्रय-
द्रिक् ॥ ११ ॥

सः । नः । नियुत्ऽभिः । पुरुऽहूत । वेधः । विश्वऽवाराभिः । आ ।
गहि । मयज्यो इति मऽयज्यो ।

न । याः । अदेवः । वरते । न । देवः । आ । आभिः । याहि ।
तूयम् । आ । मदद्यद्रिक् ॥ ११ ॥

हे पुरुहूत बहुभिर्यजमानैराहूत हे वेधः सर्वस्य विधातः हे मय-
ज्यो मकर्षेण ईदृश मकृष्टगमन वा स तादृशस्त्वं विश्ववाराभिः
व्याप्तवालाभिर्विश्वेषां वारयित्रीभिर्वरणीयाभिर्वा नियुज्भिः अश्वैः
नः अस्मान् आ गहि आगच्छ । या नियुतस्तवागमनसाधनाः
अदेवः देवविलक्षणः असुरो न वरते न वारयति तथा देवोपि न
वरते । आभिः कैरपि अनिवार्याभिर्नियुज्भिः मदद्यद्रिक् मदभि-
मुखदष्टिः अस्मदभिमुखः सन् तूयम् तूर्णम् आ याहि आगच्छ ॥

इति तृतीयं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे यजमानोंसे आहूत ! हे सबके विधातः ! हे अधिकता
से पूज्य आप अयालों वाले अश्वोंके द्वारा हमारे पास आइये ।
आपके आगमनके साधन जिन अश्वोंको असुर नहीं रोकते और
न देवता रोक सकते हैं, उन अश्वोंके द्वारा आप शीघ्रतापूर्वक
मेरे अभिमुख होते हुए आइये ॥ ११ ॥

तृतीय सूक्त समाप्त (६५२)

आभिसविके तृतीयेदनि पष्ठे च “यस्तिग्मभृङ्गः” इति संपात-
संज्ञकं सूक्तं माध्यन्दिनसवने ब्राह्मणाच्छंसिशस्ये विनियुक्तम् ।
सर्वं तु पूर्वसूक्तेन सह उदाहृतम् ॥

आभिसविक तीसरे दिनमें और छठे दिनमें भी “यस्तिग्म-
भृङ्गः” यह संपातसंज्ञक सूक्त माध्यन्दिन सवनके ब्राह्मणाच्छंसि-
स्ये विनियुक्त होता है ॥ इसका सूत्र पहिले सूक्तके साथ कह
दिया है ।

तत्र मयमा ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यवयति
प्र विश्वाः ।

यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्ट्वितराय
वेदः ॥ १ ॥

यः । तिग्मशृङ्गः । वृषभः । न । भीमः । एकः । कृष्टीः । च्य-
वयति । प्र । विश्वाः ।

यः । शश्वतः । अदाशुषः । गयस्य । प्रयन्ता । असि । सुष्ट्वि-
तराय । वेदः ॥ १ ॥

हे इन्द्र पस्त्वं तिग्मशृङ्गः तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्याम् वपेतो वृषभो
न भीमः वृषभ इव भयजनकः । तथा त्वम् एकः असहायस्त्वं विश्वाः
सर्वाः कृष्टीः । मनुष्यनामैतत् । सर्वान् अस्माकं शत्रुजनान् ॥
च्यवयसि मर्कपेण अपगमयसि । यश्च त्वं शश्वतः । बहुनामै-
तद् । वशोः अदाशुषः हविरदच्चतः अयजमानस्य गयस्य ।
गयम् इति गृहनाम । गृहसदृशस्य यथा कोशगृहं धनपूर्णं वर्तते
एवम् अमदानेन धनपूर्णगृहसदृशस्य लुण्ठकस्य वेदः धनं सुष्ट्वि-
तराय । सुष्टु सोमाभिपववान् सुष्ट्वी । अतिशयेन सुष्ट्वी सुष्ट्वि-
तरः । तादृशायजमानाय प्रयन्तासि मर्कपेण निधमयिता मदाता
भवसि ॥

हे इन्द्र ! जो आप तीखे सींगों वाले वृषभकी समान भयजनक
हैं, तथा वह आप एक ही हमारे सब शत्रुओंको दूर भगा देते
हैं और आप अपनेको प्रायः इन्नि नदेने वाले अयजमानके धन-

पूर्ण घरके धनको, सोमका अधिकतासे अभिषव करने वाले यजमानको अधिकतासे देते हैं ॥ १ ॥

द्वितीया ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय
शिञ्जन् ॥ २ ॥

त्वम् । ह । त्यत् । इन्द्र । कुत्सम् । आवः । शुश्रूषमाणः । तन्वा ।
समये ।

दासम् । यत् । शुष्णम् । कुयवम् । नि । अस्मै । अरन्धयः ।
आर्जुनेयाय । शिञ्जन् ॥ २ ॥

हे इन्द्र त्वं ह त्वं खलु त्यत् तत् तदा कुत्सम् एतन्नामानं
समये मयैर्मर्त्यैर्योद्धृष्टभिः सहितः संग्रामः समर्थ तस्मिन् । अथ
वा मयैर्ऋत्विग्भिः सहिते यज्ञ तन्वा शरीरेण शुश्रूषमाणः उप-
चरन् आवः अरत्तः । यत् यदा अस्मै आर्जुनेयाय अर्जुन्याः पुत्राय
कुत्साय दासम् एतत्संग्रहम् असुरं शुष्णम् असुरं कुयवं च असुरं
शिञ्जन् तेषां धनं कुत्साय प्रयच्छन् नि अरन्धयः नितरां वशम्
अनैषीः ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने अर्जुनीके पुत्र कुत्सके लिये शुष्ण
नामक असुरको और कुयव नामक असुरको दण्ड देकर उनका
धन देकर उनको बड़े वशमें कर लिया था, उस समय यज्ञमें
कुत्सकी शरीरसे उपचार करके रक्षा की थी ॥ २ ॥

तृतीया ॥

त्वं धृष्णो धृपता वीतहन्व्यं प्रावो विश्वाभिरुतिभिः
सुदासम् ।

प्र पौरुकुत्सिं व्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पुरुम्
त्वम् । धृष्णो इति । धृपता । वीतहन्व्यम् । प्र । आवः । विश्वाभिः ।
ऊतिभिः । सुदासम् ।

प्र । पौरुकुत्सिम् । व्रसदस्युम् । आवः । क्षेत्रसाता । वृत्रहत्येषु ।
पुरुम् ॥ ३ ॥

हे धृष्णो शत्रुणां धर्षक इन्द्र त्वं धृपता शत्रुधर्षकेण वज्रेण
वीतहन्व्यम् दत्तहविष्कं सुदासम् शोभनदानम् एतन्नामकं राजा-
नम् अथ वा वीतहन्व्यं सुदासं च विश्वाभिः सर्वाभिः ऊतिभिः
रक्षणाभिः प्रावः मारुतः । किं च वृत्रहत्येषु संग्रामेषु क्षेत्रसाता
क्षेत्रसातौ भूमिदाने निमित्तभूते सति पौरुकुत्सिम् पुरुकुत्सपुत्रं
व्रसदस्युं राजानं पुरुं च आवः ॥

हे शत्रुघ्नो को दवाने वाले इन्द्र ! आपने शत्रुघ्नो को दवाने वाले
वज्रके द्वारा, वीतहन्व्य और सुदास नामक राजाकी सकल रक्षक
शक्तियोंके द्वारा बड़ी रक्षा की थी । और आप संग्रामोंके अव-
सर पर और भूमिदानके अवसर पर पुरुकुत्सके पुत्र राजा व्रस-
दस्युकी और पुरुकी रक्षा कर चुके हैं ॥ ३ ॥

चतुर्थी ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूराणि वृत्रा हर्यश्व हंसि
त्वं नि दस्युं चुमुर्नि धुनि चास्वापयो दभीतये सुहन्तुं

त्वम् । नृऽभिः । नृऽमनः । देवऽवीर्ता । भूरीणि । वृत्रा । हरिऽअरव ।
हंसि ।

त्वम् । नि । दस्युम् । चुम्भुरिम् । धुनिम् । च । अस्वापयः ।
दभीतये । सुहन्तु ॥ ४ ॥

हे नृमणः नृभिर्नेतृभिः स्तोतृभिर्मननीय नृषु यजमानेषु अनु-
ग्रहमनोयुक्तं वा हे हर्यश्व हरिनामकारवोपेत इन्द्र त्वं देववीर्ता ।
देवा विद्यन्ति आगच्छन्ति मत्तयन्त्यत्रेति वा देववीतिर्यज्ञः । अथ
वा देवा युद्धार्थं गच्छन्त्यत्रेति देववीतिर्देवसंग्रामः । तस्मिन्नि-
मित्तभूते सति नृभिः नेतृभिर्योद्धृभिर्मरुद्भिः सहितः सन् भूरीणि
वह्नि वृत्रा वृत्राणि आवरकाणि रक्षांसि पापानि च हंसि इननं
करोषि । किं च हे इन्द्र त्वं दभीतये दभीतिनामकाय राजर्षये
तदर्थं सुहन्तु । अविमक्तिकोयं निर्देशः । सुहन्तुः शोभनहनन-
साधनवज्रोपेतः सन् दस्युं चुम्भुरिं धुनिं च नि अस्वापयः स्वनाशय ॥

हे मनुष्य यजमानों पर मनमें अनुग्रह करने वाले नृमणः ।
और हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप यज्ञ वा संग्रामके
अवसर पर योधा मरुतोंके साथ बहुतसे आवरक राक्षस और
पापोंका संहार कर डालते हैं । और हे इन्द्र ! आपने दभीति
नामक राजर्षिके लिये, इननके शोभन साधन वज्रको लेकर
दस्यु चुम्भुरि और धुनिको भी नष्ट कर डाला था ॥ ४ ॥

पञ्चमी ॥

तव ज्यौलानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरां नवतिं
च सद्यः ।

निवेशने शततमाविवेपीरहं च वृत्रे नमुंचिमुताहन् ५

तव । व्योम्नानि । वज्रहस्त । तानि । नव । यत् । पुरः । नव-
तिम् । च । सद्यः ।

निवेशने । शततमा । अविवेपीः । अहन् । च । वृत्रम् । नमु-
चिम् । उत । अहन् ॥ ५ ॥

हे वज्रहस्त इन्द्र तव तानि प्रसिद्धानि बलानि व्योम्नानि
अतिदृढानि परैरनभिभाव्यानि यत् यस्मात् कारणात् व्योम्नै-
स्तैर्बलैः सहितः सन् नव नवतिं च पुरः एकोनशतसंख्याकानि
पुराणि असुरसंघन्धीनि सद्यस्तदानीमेव घाटीमुखेनैव । व्यना-
शय इति शेषः । निवेशने निवेशनाय शततमा शततमो पुरीं च
अविवेपीः व्यामोः । ॐ विप्लु व्याप्ता । यद्वलुगन्ताद् अस्मात्
लुह् । अभ्यासगुणाभावरब्धान्दसः ॐ । वृत्रं च अहन् नमुचिं
नामासुरं च अहन् हतवान् असि ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपके प्रसिद्ध बल अनिदृढ़ हैं, क्योंकि-
उन बलोंसे सम्पन्न रह कर आपने असुरोंके निन्यानवे पुरोंको
नष्ट कर डाला था और निवेशनके लिये सौर्वी पुरीमें व्याप्त
होगए थे और आपने वृत्र तथा नमुचि नामक असुरको भी मार
डाला था ॥ ५ ॥

पृष्ठी ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुपे सुदासे
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुषाक
वाजम् ॥ ६ ॥

सना । ता । ते । इन्द्र । भोजनानि । रातहव्याय । दाशुपे ।
सुदासे ।

वृष्णे । ते । हरी इति । वृषणां । युनजिम । व्यन्तु । ब्रह्माणि ।

पुरुऽशाक । वाजम् ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ते तव रातहव्याय दत्तहव्याय दाशुपे यजमानाय मुदासे ता तानि त्वया दत्तानि भोजनानि भोग्यानि धनानि सना सनानि सनासनानि । यभूवुरिति शेषः । हे पुरुशाक बहु-
कर्मन् इन्द्र वृष्णे कामानां वर्षिषे ते तुभ्यम् । त्वाम् आनेतुम्
इत्यर्थः । वृषणा वृषणां हरी अरशो युनजिम रथे योजयामि । ब्रह्माणि
अस्मदीयानि स्तोत्राणि वाजम् बलिनं त्वां व्यन्तु गच्छन्तु ॥

हे इन्द्र । आपको हवि देने वाले यजमान मुदासके लिये आप
के दिये हुए भोग्य धन सनासन होगए थे । हे बहुकर्मन् इन्द्र !
कामनाओंकी वर्षा करने वाले आपको लानेके लिये वृषण हरि
नामक अश्वोंको मैं रथमें नियुक्त करता हूँ । हमारे स्तोत्र बली
बने हुए आपको प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

सप्तमी ॥

मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघायं भूम हरिवः परादै
त्रायस्व नोवृकेभिर्वरुणैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ७

मा । ते । अस्याम् । सहसावन् । परिष्टी । अघायं । भूम ।
हरिऽवः । पराऽदै ।

त्रायस्व । नः । अवृकेभिः । वरुणैः । तव । प्रियासः । सूरिषु ।
स्याम ॥ ७ ॥

हे सहसावन् बलवन् इन्द्र । ॐ मध्ये वृत्तीयाविभक्तिरद्वा-
ॐ । अथ वा सह एव सहसं तदन् । ॐ मतुपि "अन्ये-

धामपि दृश्यते" इति दीर्घः ॐ । हे हरिवः हरितवर्णोपेताश्व इन्द्र
ते तव अस्यां क्रियमाणायां परिष्टौ पर्येषणायां परादै परादानाय
परित्यागाय एवंलक्षणाय अघाय पापाय वयं मा भूम । किं च
हे इन्द्र नः अस्मान् अट्टकैभिः अट्टकैरहिंसितव्यै वरूयैः । वार-
यन्त्युपद्रवान् इति वरूयानि रक्षणानि । तैर्नः अस्मान् प्रायस्व
पाहि । वयं च सूरिषु स्तोतृषु विद्वत्सु मन्ये तव प्रियासः प्रियाः
स्याम भवेम ॥

हे धलवान् इन्द्र ! हे हरित वर्ण वाले अश्वोंसे सम्पन्न इन्द्र !
इस आपकी की जाती हुई परिष्टिमें हम त्यागने योग्य पापके
लिये न होवें । और हे इन्द्रदेव ! हमको आप अहिंसितव्य रक्षा-
साधनोंसे पालिये और हम भी स्तोता तथा विद्वानोंमें आपके
प्रिय होवें ॥ ७ ॥

अष्टमी ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः
नि तुर्वशं नि यादं शिशीहतिथिग्वाय शंस्यं करि-
ष्यन् ॥ ८ ॥

प्रियासः । इत् । ते । मघवन् । अभिष्टौ । नरः । मदेम । शरणे ।
सखायः ।

नि । तुर्वशम् । नि । यादम् । शिशीहि । अतिथिग्वाय । शंस्यम् ।
करिष्यन् ॥ ८ ॥

हे मघवन् धनवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येषणायाम् अधि-
गमनेच्छायां नरः हविषा नेतारो यजमाना वयं सखायस्तव सखि-

भूताः समानख्यानाः अत एव मियास इत् मिया एव सन्तः
शरणे । गृहनामैतत् । मदीय एव गृहे मदेम हृष्टा भवेम । किं च
अतिथिग्राय अतिथ्यर्था गावो यस्य सः । अतिथिग्वः । अथवा
सत्कारार्थम् अतिथीन् गच्छतीत्यतिथिग्वः । तस्मै राज्ञे शंस्यम्
शंसनीयं मरुयापनीयं सुखं करिष्यन् कुर्वस्त्वं तुर्वशम् एतन्नामकं
राजानं नि शिशीहि निशितं कुरु । तथा यादृम् यदुकुलोत्पन्नं
राजानं च नि शिशीहि ॥

हे धनवान् इन्द्र ! आपकी अभिगमनकी इच्छामें हविके नेता
मित्ररूप हुए हम यजमान मिय होते हुए ही अपने घरमें मसन्न
रहें । आप अतिथिगु राजाके लिये मशंसनीय सुख देते हुए तुर्वश
नामक राजाको भी तीक्ष्ण करिये । और यदुकुलोत्पन्न राजाको
भी तीक्ष्ण करिये ॥ ८ ॥

नवमी ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशासं
उक्था ।

ये ते हवेभिर्वि पणीरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय
तस्मै ॥ ९ ॥

सद्यः । चित् । जु । ते । मघवन् । अभिष्टौ । नरः । शंसन्ति ।
उक्थशासः । उक्था ।

ये । ते । हवेभिः । वि । पणीन् । अदाशन् । अस्मान् । वृणीष्व ।
युज्याय । तस्मै ॥ ९ ॥

हे मघवन्निन्द्र ते तव अभिष्टौ अभ्येपणायाम् अभिगत्या सत्यां

तव अभिगमने सनि नरः स्तुतिनेतार ऋत्विजः उक्थशासः उक्थानां
 शस्त्राणां शंसितारः सद्यश्चिन्नु तवाभिगमनसमय एव उक्था
 उक्थानि शस्त्राणि शंसन्ति कुर्वन्ति । ते इत्युक्तं के त इति तान्
 विशिनष्टि । ये नरः नेतार ऋत्विजः ते तव हवेभिः हवैः आहानैः
 पणीन वणिग्भूतान् लुब्धकान् अयजतो नरान् व्यदाशन् । दाश-
 निर्वधकर्मा । विशेषेण हिंसितवन्तः । ते शंसन्तीति पूर्वत्र संबन्धः ।
 यस्माद् एवं तस्माद् उक्थानां शंसितान् अस्मान् तस्मै मसिद्धाय
 युज्याय योजयितव्याय फलाय यागाय वा वृणीष्व वरणं कुरु
 स्वीकुरु ॥

हे मयश्चन्द्र ! आपका अभिगमन होने पर स्तुति करने वाले
 और शस्त्रोंको कहने वाले ऋत्विज आपके अभिगमनके समय
 ही शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं । जो नेता ऋत्विज आपके आहानों
 से वणिग्भूत लोभी यजन न करने वाले मनुष्योंको मारते हैं वे
 ऋत्विज आपके अभिगमनके समय शस्त्रोंका उच्चारण करते हैं ।
 इस कारण हम उक्थोंका शंसन करने वालोंको योजयितव्य फल
 पागके लिये वरण कीजिये ॥ ६ ॥

दशमी ॥

एते स्तोमा नरां नृत्यं तुभ्यं मस्मद्रघ्नो ददंतो मघानि
 तेषां मिन्द्रं वृत्रहर्त्यं शिवो भूः सखा च शूरा विता च
 नृणाम् ॥ १० ॥

एते । स्तोमाः । नरां । नृत्यं । तुभ्यं । मस्मद्रघ्नः । ददंतः ।
 मघानि ।

तेषाम् । इन्द्र । वृत्रहृत्ये । शिवः । भूः । सखा । च । शूरः ।
अविना । च । नृणाम् ॥ १० ॥

नराम् नेतृणां मध्ये हे नृत्तम अतिशयेन नेतः इन्द्र अस्मद्वयञ्चः
अस्मान् अञ्चन्तः अस्मदभिमुखाः मघानि मंहनीयानि धनानि
हविल्लक्षणानि ददतः प्रयच्छन्तः सन्तः एते इदानीं कृत्तपकारा
स्तोमाः स्तवाः तुभ्यं स्वदर्यम् । कृता इति शेषः । यद्वा मघानि ददतः
प्रयच्छतः । ॐ चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ॐ । प्रयच्छते तुभ्यम् इति व्याख्येयम् ।
यम् । हे इन्द्र तेषाम् एतेषाम् अस्माभिः कृतानां स्तोमानाम् ।
यद्वा तेषां स्तोमसंपादकानाम् अस्माकम् इति व्याख्येयम् । वृत्र-
हृत्ये वृत्रस्य आवरकस्य पापस्य वा हृत्ये हनने निमित्तभूते सति
शिवः सुखयिता भूः भव । किं च नृणाम् हविषां स्तुतीनां वा
नेतृणाम् अस्माकं शूरस्त्वं सखा च भूः सखिबन्मिश्रभृतो भव
अविता च रक्षिता च भूः भव ॥

हे नेताओंमें भी परम नेता इन्द्र ! हमारे अभिमुख होकर श्रेष्ठ
धनोंको मदान करने वाले आपके लिये ये स्तोत्र हैं । हे इन्द्र !
इन हम स्तोत्र करने वालोंके पापनिवारणके अवसर पर आप
सुख देने वाले हों और हवि पहुँचाने वाले हमारे लिये आप
मित्रकी समान होजावें और हमारे रक्षक भी बनें ॥ १० ॥

एकादशी ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूनस्तन्वा वावृधस्व
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् शूयं पांत स्वस्तिभिः
सदा नः ॥ ११ ॥

नू । इन्द्र । शूर । स्तवमानः । ऊती । ब्रह्मजूनः । तन्वा । वावृधस्व ।

उप । नः । वाजान् । मिमीहि । उप । स्तीन् । यूयम् । पात ।

स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥ ११ ॥

हे शूर शौर्योपेत इन्द्र उक्त्वा रक्षणया निमित्तभृतया स्तव-
मानः । ॐ कर्मणि कर्तृभृत्ययः ॐ । अस्माभिः स्तूयमानः तथा
ब्रह्मजूनः ब्रह्मणा इविषा जूनः प्रापितश्च सन् तन्वा स्वकीयेन शरी-
रेण बह्व्यस्व अत्यर्थं प्रवृद्धो भव । ततो नः अस्मभ्यं वाजान्
अन्नानि उप मिमीहि । उप प्रयच्छेत्यर्थः । तथा स्तीन् स्त्यायन्ति
समर्पयन्ति कुलम् इति स्तयः पुत्राद्याः । तानपि उप मिमीहि ।
हे अन्ये अग्न्यादयो देवाः यूयमपि स्वस्तिभिः । सु अस्तीति स्वस्ति
क्षेमः । तैः सदा नः अस्मान् पात रक्षत ॥

इति चतुर्योनुवाकः ॥

हे शूरनासम्पन्न इन्द्र । रक्षाके कारण हमसे स्तुति पाते हुए
तथा मन्त्रके द्वारा इवि पाते हुए आप अपने शरीरसे बढ़िये ।
फिर हमारे लिये धन प्रदान करिये और पुत्र आदिको प्रदान
करिये । और हे अन्य अग्नि आदि देवताओं ! आप भी क्षेम
करके हमारी रक्षा करते रहिये ॥ ११ ॥

श्रीसर्व काण्डक चतुर्थ अनुवाकम् चतुर्थं सूक्तं समाप्त (६५३)

चतुर्थं अनुवाकं समाप्त

अभिसवे षडहे “आ याहि सुपुमा हि ते” इत्यादयो यथाक्रमे
षट् आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद्वत् उक्तं वैताने । “अभिसव आ
याहि सुपुमा हि न इति षट् आज्यस्तोत्रिया आरम्भणीयापर्या-
सवर्जम्” इति [वै० ६. १] ॥ पाठक्रमात् “इन्द्रं वो विश्वत-
सरि [२०. ३६. १] “न्यन्तरिक्षमनिरत्” [२०. ३६. २]
इत्येतायोः प्रयोगे प्राप्ते प्रणिपेधार्यम् आरम्भणीयापर्यासवर्जमित्यु-
क्तम् । तेन “आ याहि सुपुमा हि ते” [२०. ३८. १-३]

“इन्द्रमिह गायिनी बृहद्” [२०. ३८. ४-६] “इन्द्रेण सं हि हत्तसे” [२०. ४०. १-३] “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” [२०. ४१. १-३] “वाचमष्टापदीमहम्” [२०. ४२. १-३] “मिन्धि विरवा अप द्विपः” [२०. ४३. १-३] इति षट् स्तोत्रियाः ॥

तथा गवामयनस्य चतुर्विंशे “इन्द्रमिह गायिनी बृहद्” [२०. ३८. ४-६] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । “चतुर्विंश इन्द्रमिह गायिनी बृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः” [वै० ६. १] इति सूत्रितत्वात् ॥

तथा स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु यथाक्रमम् “आ याहि” इत्यादयः आज्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “स्वरसामस्वा याहि सुपुमा हि त इन्द्रमिह गायिनी बृहद् इन्द्रेण सं हि हत्तसे इति” इति [वै० ६. ३] ॥

अभिप्लव षडहर्मे “आ याहि सुपुमा हि ते” आदिक यथाक्रम छः आज्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभिप्लव आ याहि सुपुमा हि त इति षट् आज्यस्तोत्रिया आरंभणीयापर्यासवर्जम्” (वैतानसूत्र ६। १) । पाठक्रम के अनुसार “इन्द्रं वो विरवतस्परि” (२०। ३६। १) “व्यन्तरिक्षमतिरत्” (२०। ३६। २) इनके प्रयोगकी माप्ति होने पर इनके प्रतिषेधके लिये आरंभणीयापर्यासवर्जम् कहा है ॥ इस कारण “आ याहि सुपुमा हि ते” (२०। ३८। १-३) “इन्द्रमिह गायिनी बृहद्” (२०। ३८। ४-६) “इन्द्रेण सं हि हत्तसे” (२०। ४०। १-३) “इन्द्रो दधीचो अस्थभिः” (२०। ४१। १-३) “वाचमष्टापदीमहम्” (२०। ४२। १-३) “मिन्धि विरवा अप द्विपः” (२०। ४३। १-३) ये छः स्तोत्रिय हैं ।

तथा गवामयनके चतुर्विंशमें “इन्द्रमिह गायिनी बृहद्” (२०। ३८। ४-६) यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी घात

को वैतानमूत्र ६ । १ में कहा है, कि—“चतुर्विंश इन्द्रमिद् गाथिनो
वृहद् इत्याज्यस्तोत्रियः” ॥

तथा स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें यथाक्रम “आ याहि”
इत्यादिक आज्यस्तोत्रिय होते हैं। इसी घातको वैतानमूत्र ६ । ३
में कहा है, कि—“स्वरसामस्वा याहि सुपुमा हि त इन्द्रमिद् गा-
थिनो वृहद् इन्द्रेण सं हि दक्षसे” ॥

आ याहि सुपुमा हि त इन्द्र सोमं पिवा इमम् ।
एदं वहिः सदो मम ॥ १ ॥

आ । याहि । सुपुमा । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिवा । इमम् ॥

आ । इन्द्रम् । वहिः । सदः । मम ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषेक कर
लिया है । इस अभिषेक सोमका आप पान करिये । इन पिछी
हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ १ ॥

आ त्वां ब्रह्मयुजा हरी वहन्तामिन्द्र केशिना । उप
ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहन्ताम् । इन्द्र । केशिना ॥

उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले, अभीष्ट स्थान
को ले जाने वाले, बड़े बड़े अयालों वाले हरी नामक घोड़े आप
को (हमारे यज्ञमें) लावें, आप आकर हमारे आवाहन सुनिये २
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुता-
वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमऽपाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥

सुतऽवन्तः । हवामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषेक किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपको हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रभिद् गाथिनां बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणी-
रनूपत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अर्केभिः । अर्किणः ॥

इन्द्रम् । वाणीः । अनूपत ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही मशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं, और वाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इन्द्रयोः सचा समिंश्च आ वचोयुजां । इन्द्रां
वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । इयोः । सचा । समिंश्च । आ । वचोऽयुजां ॥

इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रममें संपुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं, इन्द्रदेव ही दिन रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रां दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि
गोभिरदिमैस्यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयत् । दिवि ॥ वि ।

गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रने दीर्घ दर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण किया है ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमे प्रथम सूक्त समाप्त (६५४)

गवामयनादौ संवत्सरे मातःसवने अनुरूपाद् अनन्तरम् “इन्द्रं वो विश्वतस्परि” [२०. ३६. १] इति श्रुत्वा आरम्भणीया । तत्रैव “व्यन्तरिक्षम् अतिरत्” [२०. ३६. २] इति पर्याप्तो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रं वो विश्वतस्परित्यारम्भणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्याप्तः” इति [वै० ६. ५] ॥ आरभ्यते उच्यमुत्तमम् इत्यारम्भणीया । पर्यस्यते परिसमाप्यते अनेन शस्त्रमिति पर्याप्तः ॥

तथा गोसवविषयवैश्यस्तोमेषु त्रिषु एकादेषु “इन्द्रं वो विश्वतस्परि” [२०. ३६] “आ नो विश्वासु हव्यः” [२०. १०४. २] एतौ आज्यपदृष्टमनोविषया भवतः । तद् उक्तं वैताने । “गोसवविषयवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्वतस्पर्याणो विश्वासु हव्य इति” इति [वै० ८. १] ॥

गवामयन आदिमें सम्बत्सरके मातःसवनमें अनुरूपके अनन्तर “इन्द्रं वो विश्वतस्परि” (२० । ३६ । १) की श्रुत्वा आरम्भणीया है, तहाँ ही “व्यन्तरिक्षम् अतिरत्” (२० । ३६ । २) यह पर्याप्त होना है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि— “इन्द्रं वो विश्वतस्परित्यारम्भणीया । व्यन्तरिक्षमतिरदिति पर्याप्तः” ॥

तथा गोसव विषय वैश्यस्तोमोंके तीन एकादोंमें “इन्द्रं वो

विश्वतस्परि" (२० । ३६) "आ नो विश्वासु हव्यः" (२० । १०४ । ३) यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतान-मूत्रमें कहा है, कि—“गोसवविषयवैश्यस्तोमेष्विन्द्रं वो विश्व-तस्पर्माणो विश्वासु हव्य इति” (वैतानमूत्र ८ । १) ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु
केवलः ॥ १ ॥

इन्द्रम् । वा । विश्वतः । परि । हवामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् ।
अस्तु । केवलः ॥ १ ॥

हम चारों ओरके प्राणियोंकी ओरसे (हटा कर) इन्द्रका
आह्वान करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १ ॥

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यद-
भिनद् वलम् ॥ २ ॥

वि । अन्तरिक्षम् । अतिरत् । मदे । सोमस्य । रोचना ॥ इन्द्रः ।
यत् । अभिनत् । वलम् ॥ २ ॥

इन्द्रदेवने दमकते हुए अन्तरिक्षको दृष्टिके जलसे बढ़ाया था
(किसकी सहायतासे बढ़ाया था इसके उत्तरमें कहते हैं, कि—)
सोमरसके पानसे पद होजाने पर बढ़ाया था (कच) जब इन्द्र
ने चलाचुर वा मेघको विदीर्ण किया था ॥ २ ॥

उद् गा आजदङ्गिरीभ्य आविष्कृतवन् गुहां सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥

उत् । गाः । आजत् । अद्विरऽभ्यः । आविः । कृण्वन् । गुहा ।
सतीः ॥ अर्वाश्वम् । नुनुदे । बलम् ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने अंगिरा गोत्र वालोंके लिये, गुहामें पड़ी हुई अत
एव अमकाशित गौओंको प्रकाशित कर दिया था और फिर उन
को बाहर ले आए थे और उन्होंने गौओंका अपहरण करनेवाले
बल नामक असुरको भी अंधे मुख करके गिरा दिया था ॥३॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृहानि दंहितानि च । स्थि-
राणि न पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रेण । रोचना । दिवः । दृहानि । दंहितानि । च ॥ स्थि-
राणि । न । पराणुदे ॥ ४ ॥

इन्द्रदेवने आकाशमें दमकते हुए ग्रह नक्षत्र आदिको स्थूल
किया है और दृढ़ किया है अत एव स्थिर होनेके कारण उनको
कोई व्युत नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोमं इन्द्राजिरायते । विते मदा
अराजिपुः ॥ ५ ॥

अपाम् । ऊर्मिः । मदन्श्च । स्तोमः । इन्द्र । अजिरायते ॥ वि ।
ते । मदाः । अराजिपुः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव । आपका स्तोत्र समुद्र आदिको वृष्टिजलसे हर्षमा
देना हुआ रसकी समान शीघ्रतासे आपके मुखसे निकलता है
आपके सोमराजनिव मदं विशेषरूपसे दमकते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुव क्रमं द्वितीय सूक्तं समाप्त (६५५)

“इन्द्रेण सं हि दत्तसे” इत्यस्य “आ याहि सुपुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठयस्य तृतीयेदनि “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” [२०. ४०] “वयं य त्वा सुतावन्तः” [२०. ५२] “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] इत्येते आज्यपृष्ठोक्तस्तोत्रिणा भवन्ति । तद्वचनं चैताने । “तृतीय इन्द्रेण सं हि दत्तसे वयं य त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै०. ८. ४] ॥

“इन्द्रेण सं हि दत्तसे” इसका “आ याहि सुपुमा हि ते” (२० । ३८) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठयके तृतीय दिनमें “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” (२०।४०) “वयं य त्वा सुतावन्तः” (२० । ५२) “त्वं न इन्द्रा भर” (२०.। १०८) ये आज्यपृष्ठके उपयस्तोत्रिण होते हैं । इसी बात को चैतानसूत्र ८ । ४ में कहा है, कि—“तृतीय इन्द्रेण सं हि दत्तसे वयं य त्वा सुतावन्तस्त्वं न इन्द्रा भरेति” ॥

इन्द्रेण सं हि दत्तसे संजग्मानो अविंभ्युपा । मन्दु
समानवर्चसा ॥ १ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दत्तसे । सम्जग्मानः । अविंभ्युपा ॥ मन्दु
इति । समानवर्चसा ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए
नित्य ही देखे जाते हैं मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल
कर नित्य प्रसुदित रहते हैं और आप दोनों की दीप्ति समान है ।
अनवधैरभिर्भुभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य
कार्भ्यैः ॥ २ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति ॥ गणैः ।

इन्द्रस्य । काम्यैः ॥ २ ॥

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यह बलपूर्वक शोभा पाता है ॥ २ ॥

आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥

आत् । अहं । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भस्त्वम् । आऽईरिरे ॥

दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर यह स्वधा देने पर गर्भत्वको प्राप्त होनाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६५६)

“इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” इत्यस्य “आ याहि सुपुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यत्र विनियोग उक्तः ॥

तथा पृष्ठयपदहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेऽग्नि एकाईकीभूते “इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” इत्यादयः आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिणा भवन्ति । तद् उक्तं वेदाने । “पृष्ठयस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिः [२०. ४१] विरवाः पृतना अभिभूतरं नरम् [२०. ५४] एवा हसि वीरयुः [२०. ६०] इति” इति [वै० ८. २] ॥

“इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” सूक्तका “आ याहि सुपुमा हि ते” (२० । ३८) में विनियोग कह दिया है ।

तथा पृष्ठयपदहके एकविंश स्तोमक चतुर्थ दिनके एकाईकी-भूतमें “इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” इत्यादिक आज्यपृष्ठोक्थस्तो-

त्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयस्यै-
कविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिः (२० । ४१) विरवाः पृतना
अभिभूतरं नरम् (२० । ४४) एवा ह्यसि वीरयुः (२० । ६०)”
(वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्रायप्रतिष्कृतः । जघान
नवतीर्नव ॥ १ ॥

इन्द्रः । दधीचः । अस्यभिः । वृत्राणि । अप्रतिष्कृतः ॥
जघान । नवतीः । नव ॥ १ ॥

संग्रामोंमें मुख न मोड़ने वाले इन्द्रदेवने वृत्रासुरके निन्यानवे
पुत्तोंको नष्ट कर दिया है ॥ १ ॥

इच्छन्नश्वस्य यच्छिरःपर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विद-
च्छर्यणावति ॥ २ ॥

इच्छन् । अश्वस्य । यत् । शिरः । पर्वतेषु । अपश्रितम् ॥ तद् ।
विदत् । शर्यणावति ॥ २ ॥

पर्वतोंमें अपश्रित अश्वके शिरकी इच्छा करते २ इन्होंने
उसको शर्यणावत्में पाया था ॥ २ ॥

अत्राह गोसमन्वत नाम त्वष्टुरपीक्ष्यम् । इत्या चन्द्र-
मसो गृहे ॥ ३ ॥

अत्र । अह । गोः । समन्वत । नाम । त्वष्टुः । अपीक्ष्यम् ॥
इत्या । चन्द्रमसः । गृहे ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

इस चन्द्रमण्डलरूपी धरमें सूर्याग्नि-क-इन्द्रदेवकी ही एक किरण गई हुई है, इस बातको दूसरी सूर्य किरणें जानती हैं ॥ ३॥

पञ्चम अनुवाकम् चतुर्थं सूक्तं समाप्तं (६५७)

“वाचमष्टापदीमहम्” इत्यस्य विनियोगः “आ याहि सुषुमा हि ते” [२०. ३८] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अश्वमेधस्य ज्यहस्य द्वितीयेऽहनि “वाचमष्टापदीमहम्” [२०. ४२] “स्वादोरित्था विपूवतः” [२०. १०६] इत्येतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः। तद् उक्तं वैताने। “अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहं स्वादोरित्था विपूवत इति” इति [वै० ८. ३] ॥

“वाचमष्टापदीमहम्” का विनियोग “आ याहि सुषुमा हि ते” (२०। ३८) के साथ कह दिया है।

तथा अश्वमेध ज्यहके दूसरे दिन “वाचमष्टापदीमहम्” (२०। ४२) “स्वादोरित्था विपूवतः” (२०। १०६) ये दोनों आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “अश्वमेधस्य वाचमष्टापदीमहम् स्वादोरित्था विपूवतः” (वैतानसूत्र ८। ३) ॥

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि
तन्वममे ॥ १ ॥

वाचम् । अष्टापदीम् । महम् । नवस्रक्तिम् । मृतस्पृशम् ॥
इन्द्रात् । परि । तन्वम् । ममे ॥ १ ॥

मैं इन्द्रदेवसे अष्टापदी, नवस्रक्ति, सत्यका स्पर्श करने वाली बाणीको अपने शरीरमें स्थापित कर चुका हूँ ॥ १ ॥

अनु त्वा रोदसी उभे कक्षमाणमकूपेताम् । इन्द्र यद्
दस्युहाभवः ॥ २ ॥

(२७८) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-भाषानुवादसहित

अनु । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । क्रक्षमाणम् । अकृपेताम् ॥

इन्द्र । यत् । दस्युऽहा । अमेवः ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आप दस्युओंका संहार कर रहे थे, तब दुर्वत पड़ते हुए आप पर धावा पृथिवीने कृपांकी धी-शक्ति मदान की थीर उत्तिष्ठन्नोजंसा सह पीत्वी शिमे अवेपयः । सोमं मिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥

उत्तिष्ठन् । ओजंसा । सह । पीत्वी । शिमे इति । अवेपयः ॥

सोमम् । इन्द्र । चमू इति । सुतम् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप उठ कर अभिषेचनके फलकोंसे निचोड़े हुए सोमका पान करके बलपूर्वक उठ कर अपनी ठोड़ियोंको संचालित करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६५८)

“भिन्धि विश्वा अप द्विषः” इत्यस्य विनियोगः “आ याहि” [२० ३८] इत्यत्र उक्तः ॥

तथा अतोर्ध्यामिण क्रतौ उपरिष्ठान्माध्यंदिनवचनात् प्रातःसवने “भिन्धि विश्वा अप द्विषः” [२०. ४३] इत्यनुरूपम् अभितः “आ नो याहि” [२०. ४४] इत्यनुरूपो भवति । तद् उक्तं वेदाने । “भिन्धि विश्वा अप द्विष इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति” इति [वै० ४. ३] ॥

“भिन्धि विश्वा अप द्विषः” इसका विनियोग (२० । ३८) में कहा दिया है ।

तथा अतोर्ध्यामके क्रतुमें मध्यन्दिनके अनन्तर प्रातःसवनमें

“भिन्धि विश्वा अप द्विषा” (२० । ४३) इस अनुरूपके अनंतर चारों ओर “आ नो याहि” (२० । ४) यह अनुरूप होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“भिन्धि विश्वा अप द्विष इत्यनुरूपमभित आ नो याहीति” (वैतानसूत्र ४ । ३)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥

भिन्धि । विश्वाः । अप । द्विषः । परि । बाधः । जहि । मृधः ॥
वसु । स्पार्हम् । तत् । आ । भर ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! हमारे शत्रुओंको आप भेदिये, युद्धकी सब बाधाओंको नष्ट कर दीजिये, तदनन्तर स्पृहणीय धनको हममें पुष्ट करिये यद् वीलाविन्द्र यत् स्थिर यत् पर्शानि पराभृतम् ।

वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥

यत् । वीला । इन्द्र । यत् । स्थिर । यत् । पर्शानि । पराभृतम् ॥

जो धन दृढ़ पुरुषमें रहता है, जो स्थिर पुरुषमें रहता है और जो धन पारवोंमें भरा जाता है, उस स्पृहणीय धनको हे इन्द्र ! हमें प्रदान करिये ॥ २ ॥

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेदत्तस्य वेदति । वसुं स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥

यस्य । ते । विश्वमानुषः । भूरेः । दत्तस्य । वेदति ॥ वसु । स्पार्हम् । तत् । आ । भर ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

(२८०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

जिस आपके दिये हुए विशाल धनको सब मनुष्य पाते हैं,
उस स्पृहणीय धनको हमें प्रदान करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (६५६)

प्र सम्राजं चर्पणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं
नृसाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

प्र । सम् । राजम् । चर्पणीनाम् । इन्द्रम् । स्तोता । नव्यम् । गीः । भिः ॥
नरम् । नृसाहम् । मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

मैं पूजनीय, सदा नवीन ही रहने वाले, नेता, नृसाह और
मनुष्योंके राजा इन्द्रकी स्तुतियोंसे स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

यस्मिन्नुक्तानि शयन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो नः समुद्रे ॥ २ ॥

यस्मिन् । उक्तानि । शयन्ति । विश्वानि । च । श्रवस्या ॥
अपाम् । अवः । नः । समुद्रे ॥ २ ॥

जैसे निम्नस्थलमेंको जाने वाला जलोंका समूह समुद्रमेंको
जाता है, इसी प्रकार जिसमें समस्त उक्थ (स्तोत्र) और अग्न
की इच्छासे किये जाने वाले यज्ञ रमण करते हैं ॥ २ ॥

तं सुष्टया विवासे ज्येष्ठराजं भेरं कृत्नुम् । महो वाजिनं
सनिभ्यः ॥ ३ ॥

तम् । सु । सुष्टया । आ । विवासे । ज्येष्ठराजम् । भेरं । कृत्नुम् ॥
महः । वाजिनम् । सनिभ्यः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तमः सूक्तम् ॥

उनको मैं सुन्दर स्तुतिके द्वारा प्रकाशित करता हूँ, उन शत्रुओं का वर्णन करनेके स्वभाव वाले, बड़े दमकने वाले और स्तोताओंको यश तथा अन्न प्रदान करने वालेको मैं (हविसे) पुष्ट करता हूँ ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाक्ये सप्तम सूक्तसमाप्त (६६०)

तीव्रमुदुपशदोपहव्यारूपेषु त्रिषु एकादेषु “अयमु ते समतसि” [२०.४५] “इमा उ त्वा पुरुवसो” [२०.१०४] एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः ॥

तथा व्युष्टिग्रहे एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥

तद् उक्तं वैताने । “तीव्रमुदुपशदोपहव्यारूपेषु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति । व्युष्टिग्रहे च” इति [वै० ८. १] ॥

तथा संसर्पचतुर्वीरयोश्चतुरहयोः सर्वेष्वहःसु एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “संसर्पचतुर्वीरयोरप्यमु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति” इति [वै० ८. ३] ॥

तीव्र मुदुप शदोपहव्य नामक तीन एकादशोंमें “अयमु ते समतसि” (२० । ४५) “इमा उ त्वा पुरुवसो” (२० । १०४) ये क्रमशः आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी वानको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रमुदुपशदोपहव्यारूपेषु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति । व्युष्टिग्रहे च” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा चार दिनमें होने वाले संसर्प और चतुर्वीरके सब दिनों में ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं ।

इसी वानको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“संसर्पचतुर्वीरयोरप्यमु ते समनसीमा उ त्वा पुरुवसो इति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

अयमु ते सर्गतसि कपोतं इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ २ ॥

अयम् । ऊं इति । ते । सम् । अतसि । कपोतः ऽइव । गर्भः ऽधिम् ॥

वचः । तत् । चित् । नः । ओहसे ॥ १ ॥

जिस हमारे वचनकी आप तर्कना करते हैं, उस हमारे वचन को कपोत जैसे गर्भधारण करने वाली गर्भधि (कपोती) को प्राप्त होता है तिस प्रकार आप प्राप्त होवें अर्थात् हमारे वचनका सेवन करें ॥ १ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूति-
रस्तु सूनृता ॥ २ ॥

स्तोत्रम् । राधानाम् । पते । गिर्वाहः । वीर । यस्य । ते ॥ वि-
भूतिः । अस्तु । सूनृता ॥ २ ॥

हे धनोंके स्वामी ! स्तुतियें आपको प्राप्तकराने वाली हैं,
हे वीर ! ऐसे आपकी विभूति सूनृता हो ॥ २ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु
ब्रवावहे ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वः । तिष्ठ । नः । ऊतये । अस्मिन् । वाजे । शतक्रतो इति
शतःक्रतो ॥ सम् । अन्येषु । ब्रवावहे ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! इस युद्धमें वा यज्ञमें आप हमारी रक्षाके
लिये ऊँचे खड़े हजिये । हम अन्य पुरुषोंकी स्पर्धा करते हुए
अपने लिये भली प्रकार मार्गना कर रहे हैं ॥ ३ ॥

स्वरसामाख्येषु त्रिष्वहःसु अभिसवे च “सं चोदय चित्रम-
र्वाक्” [२०. ७१. ११] “मणेतारं वस्यो अच्छा” [२०. ४६]
एतां आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ पर्यायेण भवतः । तद् उक्तं वैताने ।
“स्वरसामसु संचोदय चित्रमर्वाक् मणेतारं वस्यो अच्छेति पर्या-
येण । अभिसवे च” इति [वै० द. ४] ॥

स्वरसाम नामक तीन दिनोंमें और अभिसवमें भी “संचोदय
चित्रमर्वाक्” (२० । ७१ । ११) “मणेतारं वस्यो अच्छा”
(२० । ४६) ये पर्यायसे आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी
बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“स्वरसामसु संचोदय चित्र-
मर्वाक् मणेतारं वस्यो अच्छेति पर्यायेण । अभिसवे च” (वैतान-
सूत्र = १ । ४) ॥

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासहसं युधामित्रान् ॥ १ ॥

प्रणेतारम् । वस्यः । अच्छ । कर्तारम् । ज्योतिः । समत्सु ॥
सासहसम् । युधा । मित्रान् ॥ १ ॥

भली प्रकार प्रसन्न करने वाले यागोंमें उन्कृष्ट ज्योतिको
करने वाले, नेता, और युद्ध करके शत्रुओंको दवाने वाले (इंद्र
का मैं आदान करता हूँ) ॥ १ ॥

स नः प्रीतिं पारयाति स्वस्ति नावा पुंरुहूतः । इन्द्रो
विश्वा अति द्विपः ॥ २ ॥

सः । नः । प्रीतिः । पारयाति । स्वस्ति । नावा । पुंरुहूतः ॥
इन्द्रः । विश्वाः । अति । द्विपः ॥ २ ॥

वह पुरुहुतं पालकं इन्द्रदेव हयको स्वेस्तिमयी गीकासे पार
लंगावे, वह इन्द्रदेव सब शत्रुमोसे हमें अधिक रखे ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्रं वाजेभिर्दशस्या च गांतुयां च । अन्धो
च नः सुम्नं नेपि ॥ ३ ॥

सं । त्वम् । नः । इन्द्र । वाजेभिः । दशस्य । च । गांतुयां ।
च ॥ अन्ध । च । नः । सुम्नम् । नेपि ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

दे इन्द्रदेव ! वह आप हयको अन्नसे; और गमन करने वाली
दश अंगुलियोंसे हमारे अभिमुख मुखको खाते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाक नवम सूक्त समाप्त (६६२)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्तयेषु “तमिन्द्रं वाजयामसि” [२. ४७]
“महो इन्द्रो य ओजसा” [२०. १३८] इत्येतौ स्तोत्रियां नृणां
भवतः । तद् उक्तं वैताने । “तमिन्द्रं वाजयामसि महो इन्द्रो य
ओजसेति स्तोत्रियान् नृणां” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा छन्दोमालयेषु त्रिष्वङ्गसु श्रौतोऽसवने “इन्द्रो याहि चित्र-
भानो” [२०. ८४] “तमिन्द्रं वाजयामसि” [२०. ४७]
“महो इन्द्रो य ओजसा” [२०. १३८] इत्येते यथाक्रमम् आज्य-
स्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “छन्दोमेत्विन्द्रा याहि
चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महो इन्द्रो य ओजसेत्याज्यस्तो-
त्रियाः” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां उपहोमेषु द्वितीयेष्वहोमेषु यथासंभवम्
“तमिन्द्रं वाजयामसि” [२०. ४७] “अस्नावि मन्म पूर्व्यम्”
[२०. ११६] “तं ते मद्रं गृणीमसि” [२०. ६१] एते आज्य-
पुष्टोक्त्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेषु तमिन्द्रं

वाजयामस्यस्तावि मन्म पूर्ण्यं तं ते मदं गृणीमसीति" इति।
[वै० ८. ३] ॥

तथा साकमेधव्यहस्य तृतीयेऽहनि "तमिन्द्रं वाजयामसि"
[२०. ४७] "आयन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] इत्येतां
आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । "साकमेधस्य
तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यमिति" इति [वै० ८. ३] ॥
अतिरात्रके अतिरिक्तोऽर्थोऽयं "तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो
य ओजसेति स्तोत्रियानुरूपौ" (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंके मातः सवनमें "इन्द्रा याहि
चित्रभानो" (२० । ८४) "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७)
"महौ इन्द्रो य ओजसा" (२० । १३८) ये यथाक्रम आज्य-
स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—
"छन्दोमेधेन्द्रा याहि चित्रभानो तमिन्द्रं वाजयामसि महौ इन्द्रो
य ओजसेत्याज्यस्तोत्रियाः" (वैतानसूत्र ६ । ३)

तथा वैश्वदेव आदि व्यहोके द्वितीय दिनोंमें यथासंभव
"तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) "अस्तावि मन्म पूर्ण्यम्"
(२० । ११६) "तं ते मदं गृणीमसि" (२० । ६१) ये आज्य-
पृष्ठ उपस्यस्तोत्रिय होते हैं । "द्वितीयेषु तमिन्द्रं वाजयामस्यस्तावि
मन्म पूर्ण्यं तं ते मदं गृणीमसि" (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा साकमेध व्यहोके तृतीय दिनमें "तमिन्द्रं वाजयामसि"
(२० । ४७) "आयन्त इव सूर्यम्" (२० । ५८) ये दोनों
आज्य पृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि—"साकमेधस्य तमिन्द्रं वाजयामसि आयन्त इव सूर्यम्"
(वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषां वृषभो
भुवत् ॥ १ ॥

तम् । इन्द्रम् । वाजयामसि । महे । वृत्राय । हन्तवे ॥ सः । वृषा ।
वृषभः । ध्रुवत् ॥ १ ॥

हम विशाल वृत्रासुर (वा मेघ) का संहार करनेके लिये
उन इन्द्रको पुष्ट करते हैं, कामनाओंकी पूर्ति करने वाले वह
इन्द्र सबमें श्रेष्ठ होवे ॥ १ ॥

इन्द्रः स दामने कुत ओजिष्ठः स मदे हितः । धुम्नी
श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥

इन्द्रः । सः । दामने । कुतः । ओजिष्ठः । सः । मदे । हितः ।
धुम्नी । श्लोकी । सः । सोम्यः ॥ २ ॥

वह बली इन्द्र (पापियोंका निग्रह करनेके लिये) रज्जुके
रूपमें किये गए हैं, वह प्रसन्नता करने वाले यज्ञमें भागित
होते हैं । वह इन्द्रदेव दमकने वाले हैं, प्रशंसनीय हैं और
सौम्य हैं ॥ २ ॥

गिरा वज्रो न संभृतः सवलो अनपच्युतः । ववक्ष
ऋषो अस्तुतः ॥ ३ ॥

गिरा । वज्रः । न । सम्भृतः । सवलः । अनपच्युतः ॥
ववक्षे । ऋषयः । अस्तुतः ॥ ३ ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्रकी समान
बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोंको
धनमानों पर) पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं
वाणीरनूपत ॥ ४ ॥

इन्द्रम् । इत् । गा॒यि॒नः । बृ॒हत् । इन्द्रम् । अ॒र्के॒भिः । अ॒र्कि॒णः ॥

इन्द्रम् । बा॒णीः । अ॒नू॒प॒त ॥ ४ ॥

गाथागान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा इन्द्रका ही विशाल पूजन करते हैं और बाणी भी इन्द्रकी ही स्तुति करती है ॥ ४ ॥

इन्द्र इ॒न्द्र्योः स॒चा स॑मि॒श्र आ व॑चो॒युजा॑ । इन्द्रो
व॒ज्री हि॒र॒ण्य॑यः ॥ ५ ॥

इन्द्रः । इत् । इ॒न्द्र्योः । स॒चा । स॑मि॒श्रः । आ । व॒चः । यु॒जा ॥

इन्द्रः । व॒ज्री । हि॒र॒ण्य॑यः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथमें संयुक्त होने वाले घोड़ासे भली प्रकार मात्त हाते हैं, इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो दी॒र्घाय॑ च॒क्ष॒स आ सूर्य॑ रो॒हय॑द् दि॒वि । वि
गो॒भि॒र॒द्रि॒मैर॑यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । दी॒र्घाय॑ । च॒क्ष॒से । आ । सूर्य॑म् । रो॒हय॑त् । दि॒वि ॥ वि ।

गो॒भिः । अ॒द्रि॒म् । ऐ॒र॑यत् ॥ ६ ॥

इन्द्रने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ा दिया है और सूर्यात्मक इन्द्र किरणोंसे मेघोंको विदीर्ण करते हैं ॥ ६ ॥

आ या॒हि सु॒पु॒मा हि त॒ इन्द्र॑ सोमं पि॒त्रां इ॒मम् । ए॒दं
व॒हिः स॒दो म॑मं ॥ ७ ॥

(२८८) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-भाषानुवादसहित

आ । याहि । सुसुम् । हि । ते । इन्द्र । सोमम् । पिव । इमम् ॥

आ । इदम् । बहिः । सदः । मम ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यहाँ आइये, हमने सोमका अभिषेक कर लिया है, इस अभिषुक्त सोमका आप पान करिये, इन बिड़ी हुई कुशाओं पर आप बैठिये ॥ ७ ॥

आः त्वां ब्रह्मयुजाः हरी वहतामिन्द्र केशिनाः । उप
ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥

आ । त्वा । ब्रह्मयुजा । हरी इति । वहताम् । इन्द्र । केशिनाः ॥
उप । ब्रह्माणि । नः । शृणु ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! मन्त्रोंके द्वारा रथमें संयुक्त होने वाले अभीष्ट स्थान को लैजाने वाले, बड़े २ अयालों वाले हरी नामक घोड़े आपको (हमारे यज्ञमें) लावे, आप आकर हमारे आह्वानको सुनिमो = ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुता-
वन्तो हवामहे ॥ ९ ॥

ब्रह्माणः । त्वा । वयम् । युजा । सोमपाम् । इन्द्र । सोमिनः ॥
सुतवन्तः । हवामहे । ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! हम पूजा करने वाले सोमयाग कर चुके हैं और अभिषेक किया हुआ सोम हमारे पास है, ऐसे हम सोमपान करने वाले आपकी हृदयस्पर्शी स्तोत्रोंसे युक्ताते हैं ॥ ९ ॥

युञ्जन्ति अन्नमरुपं चरन्तं परिं तस्युपः । रोत्रन्ते
रोचना दिवि ॥ १० ॥

युञ्जन्ति । अन्नम् । अरुपम् । चरन्तम् । परि । तस्थुषः ॥ रोचन्ते ।
रोचना । दिवि ॥ १० ॥

महान् दमकते हुए और स्थावर तथा जंगमोंके ऊपर विचरण करते हुए, इन्द्रके रथमें हरिनामक अश्व जुतते हैं और वह दमकते हुए अश्व धुलोकमें दमकते हैं ॥ १० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपञ्चसा रथे । शोणा धृष्ण
नृवाहसा ॥ ११ ॥

युञ्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विपञ्चसा । रथे ॥
शोणा । धृष्ण इति । नृवाहसा ॥ ११ ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरिनामक अश्वोंको जोतते हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों करबटोंमें रहते हैं रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्योंको सवारी देने वाले हैं ॥ ११ ॥

केतुं कृणवन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुपद्भि-
रजायथाः ॥ १२ ॥

केतुम् । कृणवन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ॥ सम् ।
उपद्भिः । अजायथाः ॥ १२ ॥

हे मरणधर्मी मनुष्यों ! मज्ञानरहित पुरुषको ज्ञान देने वाले और अंधकारसे आवृत होनेके कारण रूपरहित पदार्थको रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, यह अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ १२ ॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय
सूर्यम् ॥ १३ ॥

उत् । ऊं इति । त्यम् । जातवेदसम् । देवम् । वहन्ति । केतवः ॥
दृशे । विश्वाय । सूर्यम् ॥ १३ ॥

किरणों वा अश्व, सब उत्पन्न होने वालोंको जानने वाले
सूर्यात्मक इन्द्रदेवको सबको दिखानेके लिये ऊपरकी लाती हैं ॥ १३ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय
विश्ववक्षसे ॥ १४ ॥

अप । त्ये । तायवः । यथा । नक्षत्रा । यन्ति । अक्तुभिः ।
सूराय । विश्ववक्षसे ॥ १४ ॥

जैसे चोर रातके साथ ही साथ भाग जाते हैं ऐसे ही सबके
द्रष्टा सूर्यके कारण नक्षत्र रातके साथ भाग जाते हैं ॥ १४ ॥
अदृशन्नस्य केनवो विश्मयो जनां अनु । आजन्तो
अग्नयो यथा ॥ १५ ॥

अदृशन् । अस्य । केतवः । वि । रश्मयः । जनान् । अनु ॥
आजन्तः । अग्नयः । यथा ॥ १५ ॥

अग्निकी समान दमकती हुई इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवकी ज्ञानदाता
किरणों मृत्येक पुरुषोंके पीछे दीखती हैं ॥ १५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा
भांसि रोचन ॥ १६ ॥

तरणिः । विश्वऽदर्शतः । ज्योतिःऽकृत् । असि । सूर्य । विश्वम् ।

आ । भासि । रोचन ॥ १५ ॥

हे सूर्यात्मक कमनीय इन्द्रदेव ! आप (संसारसागरवी)
नौकारूप हैं आप सबको देखने वाले और ज्योति देने वाले हैं
आप सबको प्रकाशित करते हैं ॥ १५ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशां प्रत्यङ्मुदेऽपि मानुषीः । प्रत्यङ्
विश्वं स्वर्दृशे ॥ १७ ॥

प्रत्यङ् । देवानाम् । विशां । प्रत्यङ् । उत् । एषि । मानुषीः ॥

प्रत्यङ् । विश्वम् । स्वर्ः । दृशे ॥ १७ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! आप प्रत्येक मानुषी और दैवी प्रजाको
सामने रख कर उनके सामने उदित होते हैं, प्रत्येक पुरुषको
देखनेके लिये उसको सामने लाकर उदित होते हैं ॥ १७ ॥

येनां पावक चक्षसा भुरग्यन्तं जनां अनु । त्वं
वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥

येन । पावक । चक्षसा । भुरग्यन्तम् । जनान् । अनु ॥ त्वम् ।

वरुण । पश्यसि ॥ १८ ॥

हे पवित्र करने वाले पापनिवारक इन्द्र ! पूर्वाके पुण्यात्मा
पुरुषोंसे आचरित मार्गमें शीघ्रतासे जाते हुए पुण्यात्मा पुरुषको
आप जिस अनुग्रहदृष्टिसे देखते हैं (उस दृष्टिकी हम स्तुति करते हैं)

वि धामेऽपि रजस्पृध्वहर्मिमानो अक्षुभिः । पश्यं
जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥

वि । याम् । ए॒ति । रजः । पृ॒थु । अ॒हः । मि॒मानः । अ॒क्तुऽभिः॥

पर॒यन् । जन्मा॒नि । सूर्य॑ ॥ १६ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप उत्पन्न हुए सब प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये उनको देखते हुए, तथा रात्रियों सहित दिनका निर्माण करते हुए युक्तोक्त भूलोक और विशाल अन्तरिक्षलोकमें अनेक प्रकारसे विचरण करते हैं ॥ १६ ॥

स॒प्त त्वां ह॒रितो॒ रथे॒ वह॑न्ति दे॒व सूर्य॑ । शोचि॒ष्केशं॑
विच॒क्षणम् ॥ २० ॥

स॒प्त । त्वा । ह॒रितः । रथे॑ । वह॑न्ति । दे॒व । सूर्य॑ । शोचिः॑ । ऽकेशम् ।
वि॒च॒क्षणम् ॥ २० ॥

हे देव ! दमकगी हुई किरणों वाले सूर्यमद्रष्टा आपको रथमें साम घोड़े सवारी देते हैं ॥ २० ॥

अ॒यु॒क्त स॒प्त शु॒न्ध्यु॒वः सूर॑ो रथ॑स्य न॒प्त्यः । ताभि॑र्याति
स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥

अ॒यु॒क्त । स॒प्त । शु॒न्ध्यु॒वः । सूरः॑ । रथ॑स्य । न॒प्त्यः ॥ ताभिः॑ ।

याति॑ । स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥

इति पञ्चमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

सूर्यात्मक इन्द्रदेवने सात पवित्र रत्नक घोड़ोंको अपने रथमें जोड़ लिया है और वह उनसे अपनी युक्तियोंके द्वारा चल रहे हैं २१

पञ्चम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (६६३)

विष्णुवति सौर्यपृष्ठे-“अभि त्वा वर्चसा गिरः” इति चतुर्थः
स्तोत्रियः ॥

विपुत्र् सौर्गपृष्ठे "अभि त्वा वर्चसा गिरः" यह चतुर्थ स्तोत्रिय है ॥

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरयवः । अभि
वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥

ता अर्पन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं
जात्रीर्यथां हृदा ॥ २ ॥

वज्राणवसाध्यः कीर्तिम्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं
पयः ॥ ३ ॥

आयं गौः पृश्निंरकमीदसंदन्मातरं पुरः । पितरं च
प्रयन्स्वः ॥ ४ ॥

आ । अपम् । गौः । पृश्निः । अकृषीत् । असदत् । मातरम् ।
पुरः ॥ पितरम् । च । प्रयत् । स्वः ॥ ४ ॥

जैसे विवरण करने वाली गौएँ बछड़ेके अभिमुख जाती हैं,
इसी प्रकार बाणियों वर्चसे आपका सिञ्चन करती हुई आपके
अभिमुख जाती हैं ॥ १ ॥

जैसे उत्पन्न हुएकी रक्षा करने वाली उत्पन्न हुए शिशुको
हृदयसे लगाती है, इसी प्रकार शुभ्र स्तुतियों वर्चसे इन्द्रको संयुक्त
करती हैं ॥ २ ॥

यह वज्राणवसाधी हैं, यह युक्त त्रियमाणको कीर्ति आयु
घृत और पयः प्राप्त करावें ॥ ३ ॥

यह तेजसे व्याप्त गगनशील सूर्यात्मक इन्द्र उदयाचल पर आगए हैं और इन्होंने उदयाचल पर चढ़ पूर्वदिशामें दीखकर सब माणियोंकी जननी भूमिको अपनी किरणोंसे ढक दिया है, तदनन्तर इन्होंने चल कर वृष्टिरूप वीर्यको सींचनेसे सब जगत्के उत्पादक पिता स्वर्लोक और अन्तरिक्षलोकको व्याप्त कर लिया है । यही वृष्टिजलरूप अमृतका दोहन करनेसे गी कहलाते हैं ॥ ४ ॥

अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५ ॥

अन्तः । चरति । रोचना । अस्य । प्राणात् । अपानतः ॥ वि । व्यख्यत् । महिषः । स्वः ॥ ५ ॥

प्राणन व्यापारके अनन्तर अपानन व्यापारको करने वाले इन माणियोंके शरीरके मध्यमें मुख्य प्राणरूपसे दमकती हुई सूर्यकी मभा विचरती रहती है । अधिभूतरूपसे वर्तमान महान् सूर्यदेव स्वर्ग आदि ऊपरके समस्त लोकोंको प्रकाशित करते हैं ॥

त्रिंशद् धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्नियत् ।
प्रति वस्तोरहर्दुभिः ॥ ६ ॥

त्रिंशत् । धाम । वि । राजति । वाक् । पतङ्गः । अशिश्नियत् ॥
प्रति । वस्तोः । अहः । दुर्दुभिः ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

दिन और रात्रिके अवयवभूत तीस मुहूर्तरूप अंश इन सूर्यदेवकी किरणोंसे ही प्रतिक्षण विशेषरूपसे दमकते रहते हैं तथा

वेदत्रयीरूप वाणी पक्षीकी समान शीघ्रगामी सूर्यका आश्रय
लेकर रहती है ॥ ६ ॥

पञ्चमम अनुवाक में पञ्चादश सूक्त समाप्त (६६१)

विपुवति सौर्यपृष्ठे “यच्छक्रा वाचमारुहन्” इति पष्ठः स्तोत्रियः ॥

विपुवन् सौर्यपृष्ठमें “यच्छक्रा वाचमारुहन्” यह छठा स्तोत्रिय है ।

यच्छक्रा वाचमारुन्न्न्तरिंक्षं सिपासथः । सं देवा
अमदन् वृषां ॥ १ ॥

शक्रो वाचमधृष्टापोरुवाचो अधृष्टणुहि । मंहिष्ठ आ
मदं दिवि ॥ २ ॥

शक्रो वाचमधृष्टणुहि धामधर्मन् विराजति । विमदन्
वहिरासरन् ॥ ३ ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वरसं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्निवामहे ४

तम् । नः । दस्मम् । अतिऽसहम् । वसोः । मन्दानम् । अन्धसः ।

अभि । वरसम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । इन्द्रम् । गीर्भिः ।

निवामहे ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जब अन्तरिक्ष की देवी चाहते हुए स्तोत्र वाणी पर
आरुढ़ होते हैं, तब देवता हर्षको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

शक्र अष्टपुरुष पर अपनी वाणी की और विशाल वाणी की
घर्षणा न करें, — उसमें यथोक्त वचन न कहें शत्रुग्रह भरो वचन
कहें । हे मंहिष्ठ ! आप धूलोक्तामै मदमें भरिये ॥ २ ॥

हे शक्र ! आप वाणीका कठोरभावसे उच्चारण न करें, विशेष-
रूपसे मदमें भरते हुए और कुशाओं पर आते हुए धामधर्म
विराज रहे हैं ॥ ३ ॥

हे यजमानों ! हम तुम्हारे यागकी पूर्णताके लिये वा तुम्हारे
अभिमत फलके लिये इन्द्रदेवकी स्तुतिप्रकाशिका वाणियोंसे स्तुति
करते हैं । यह इन्द्रदेव दर्शनीय हैं अर्थात् फलाभिलाषियोंको इन
का दर्शन अवश्य करना चाहिये । यह आर्तिका नाश करने वाले
हैं और यह वासक सोमरूपी अन्नके पानसे आनन्दमें भरे रहते
हैं । जैसे सूर्य जिन दिनोंको करता है, उन दिनोंके आने जाने
के समय धेनुएँ हंभा २ करती हुई बछड़ोंकी ओरको दूध पिलाने
लिये दौड़ती हैं, इसी प्रकार हम भी (सोम पिलानेके लिये)
इन्द्रकी ओर स्तुतिवाणियोंसे दौड़ते हैं ॥ ४ ॥

हु॒त्तं सु॒दानुं॑ तवि॒षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पु॑रु॒भोज॑सम् ।
क्षु॒मन्तं॑ वाजं॑ श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒धू गो॑मन्तमी॒महे ५
यु॒क्तम् । सु॒दानु॑म् । तवि॒षीभिः॑ । आ॒वृ॒तम् । गि॒रिम् । न ।
पु॒रु॒भोज॑सम् ।

क्षु॒मन्तम् । वाज॑म् । श॒तिनम् । सह॒स्रिणम् । म॒धू । गो॑मन्तम् ।
ई॒महे ॥ ५ ॥

दीप्तिमय, सुन्दरतासे दान करने योग्य बलवद्, स्तुतिके पात्र,
सैकड़ों और सहस्रों मजाओंका पोषण करने वाले और बहुतसी
गाँवोंसे युक्त धनकी हम इस प्रकार प्रार्थना करते हैं, जिस प्रकार
दुर्भिक्षमें मजाएँ जीवनके लिये बहुतसे कन्द मूल आदि अन्तों
से सम्पन्न पर्वतकी प्रार्थना करते हैं ॥ ५ ॥

तत् त्वां यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविंथ

तद् । त्वा । यामि । सुवीर्यम् । तद् । ब्रह्म । पूर्वचित्तये ।

येन । यतिभ्यः । भृगवे । धने । हिते । येन । प्रस्कण्वम् ।

आविष ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे सुन्दर वीर्य सम्पन्न हृद् अन्नकी याचना करता हूँ, उस अन्नकी पूर्वमज्ञानके लिये याचना करता हूँ । जिस धनके देने पर नियम वालोंको और भृगु ऋषिको शांति प्राप्त हुई थी और जिस धनसे आपने कण्व नामक ऋषिके पुत्र प्रस्कण्व ऋषिकी रक्षा की थी । उस धनकी इस याचना करते हैं ६

येनां समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णिं ते शवः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न संनशेयं क्षोणीरनुचक्रदे

येन । समुद्रम् । असृजः । महीः । अपः । तद् । इन्द्र । वृष्णि ।

ते । शवः ।

सद्यः । सः । अस्य । महिमा । न । समुद्रनशे । यम् । क्षोणीः ।

अनुचक्रदे ॥ ७ ॥

इति पञ्चमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस बलसे आपने समुद्रके निमित्त सृष्टिकी आदि में समुद्रको पूर्णरूपसे भरनेवाले जलोंकी सृष्टि की है । वह बल सबको अभिलषित फल प्रदान करता है । जलोंसे समुद्रपृथि आदि

इनकी महिमाको बहुतसे शत्रु नहीं पा सकते । इनकी महिमाका पृथ्वीवासी वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥

गङ्गाय अमुवाकमे द्वादश सूक्तं ब्रह्मण (६६५)

वाजपेय क्रतुः “कन्नव्यो अतसीनाम्” इति सामप्रगाथो भवति । नह उक्तं वैताने । “कन्नव्यो अतसीनामिति सामप्रगाथः” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा गवामपनादी संवत्सरं माष्यन्दिने सवने “कन्नव्यो अतसीनाम्” इति कद्दान् सामप्रगाथो भवति । तद् उक्तं वैताने । माष्यन्दिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्दान् सामप्रगाथः” इति [वै० ६. ५] ॥

वाजपेय क्रतुः “कन्नव्यो अतसीनाम्” यह सामप्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—कन्नव्यो अतसीनामिति सामप्रगाथः” (वैतानमूत्र ४ । ३) ॥

तथा गवामपनादि संवत्सरमें और माष्यन्दिन सवनमें “कन्नव्यो अतसीनाम्” यह कद्दान् सामप्रगाथ होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“माष्यन्दिने कन्नव्यो अतसीनामिति कद्दान् सामप्रगाथः” (वैतानमूत्र-६ । ५) ॥

कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नही न्वस्य महिमानामिन्द्रियं स्वगृणन्त आनशुः ।

कन् । नव्यः । अतसीनाम् । तुरः । गृणीत । मर्त्यः ।

नरि । नु । न्वस्य । महिमानम् । इन्द्रियम् । स्वः । गृणन्तः । आनशुः ।

जो जीण न होने वाले दिन रातोंमें नहीं हो रहते हैं, बल्कि वह किसी कारणसे मर्त्यके आकारको धारण कर लेते हैं, उनको हे स्तोत्राओं ! तुम स्तुति करो, इनकी ऐश्वर्यसम्पन्न महिमा

का पूर्णरूपसे गान न कर सकने पर भी योड़ासा भी गान करते हुए पुरुष स्वर्गको प्राप्त होजाते हैं ॥ १ ॥

कदु स्तुवन्तं ऋतयन्त देवता ऋषिः को विप्र ओहते ।

कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः

कत् । ऊं इति । स्तुवन्तः । ऋतयन्त । देवता । ऋषि । कः ।

विपः । ओहते ।

कदा । हवम् । मघवन् । इन्द्र । सुन्वतः । कत् । ऊं इति । स्तु-
वतः । आ । गमः ॥ २ ॥

इति पञ्चमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे घनवान् इन्द्र ! किस कारणसे सत्यकी इच्छा करते हुए देवता आपकी स्तुति करते हैं, कौनसा विप्र ऋषि आपके विषय में गर्वना करता है । और किस कारणसे कब आप अभिषव करने वाले स्तोताके आह्वान पर आते हैं ॥ २ ॥

वज्रस्र अनुशास्त्रे त्रयोदश सूक्त समाप्त (६६३)

- चतुर्विंशो माध्यन्दिने सवने "अभि म वः सुरापसम्" [२०. ५१]
"म सु भ्रुतं सुरापसम्" [२०. ५१, २] इति पृष्ठस्तोत्रियानु-
रूपी बार्हती मगार्या भवनः । तद् उक्तं वैताने । "अभि म वः सुरा-
पसं म सु भ्रुतं सुरापसमिति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपी बार्हती मगार्या"
इति [वै० ६. १] ॥

तथा अभिसवे युग्मेष्वहःसु द्वितीः चतुर्थपष्ठेषु "अभि म वः
सुरापसम्" "म सु भ्रुतं सुरापसम्" इति बार्हती मगार्या पृष्ठस्तो-
त्रियानुरूपी भवनः । तद् उक्तं वैताने । "अभि म वः सुरापस-
मिति युग्मेषु" इति [वै० ६. १] ॥

तथा विपुवति अनुरूपादनन्तरम् “तं वो दस्ममृतीपहम्” [२०. ४६. ४] “अभि म वः सुरापसम्” [२०. ५१] इति नौषसश्येतयोनी इच्छया शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीपहम् अभि म वः सुरापसम् इति नौषसश्येतयोनी कामम्” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा उपहाणां तृतीयेष्वहःसु यथासंभवम् “महो इन्द्रो य भोजसा” [२०. १३८] “अभि म वः सुरापसम्” [२०. ५१] ‘एवा ह्यसि वीरयुः’ [२०. ६०] इति आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिषा भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । तृतीयेषु महो इन्द्रो य भोजसाभि म वः सुरापसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” इति [वै० ८. ३]

चतुर्विंशके माध्यन्दिन सवनमें “अभि म वः सुरापसम्” (२०. ५१) “म सु भूतं सुरापसम्” (२०. ५१. ३) ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप घात मगाय होते हैं । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“अभि म वः सुरापसमिति युग्मेषु” (वैतानसूत्र ६. १) ॥

तथा विपुवत्तमें अनुरूपके, अनन्तर “तं वो दस्ममृतीपहम्” २०. ४६. ४) अभि म वः सुरापसम् (२०. ५१) इनको नौषसश्येतयोनी इच्छासे कहता है । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“अनुरूपात् तं वो दस्ममृतीपहम् अभि म वः सुरापसम् इति नौषसश्येतयोनीकामम्” (वैतानसूत्र ३. ३) ॥

तथा उपहोके तृतीय दिनमें यथासंभव ‘महो इन्द्रो य भोजसा’ (२०. १३८) “अभि म वः सुरापसम्” (२०. ५१) “एवा ह्यसि वीरयुः” (२०. ६०) ये आज्यपृष्ठोक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“तृतीयेषु महो इन्द्रो य भोजसाभि म वः सुरापसम् एवा ह्यसि वीरयुरिति” (वैतानसूत्र ८. ३) ॥

अभि प्र वः सुराधंसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुषसुः सहस्रेणैव शिञ्जति ?

अभि । प्र । वः । सुराधंसम् । इन्द्रम् । अर्च । यथा । विदे ।

यः । जरितृभ्यः । मघवा । पुरुषसुः । सहस्रेणैव । शिञ्जति

हे स्तोताओं ! जो विशाल धन वाले मघवा इन्द्र स्तुति करने वालोंको सहस्र संख्यासे दान देते हैं, उन सुन्दरतासे अन्न प्रदान करने वाले इन्द्रको मैं जिस प्रकार मातृ कर सकूँ, तिस प्रकार तुम उसका पूजन करो ॥ १ ॥

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे

गिरेरिव प्र रसां अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः

शतानीकाऽव । प्र । जिगाति । धृष्णुया । हन्ति । वृत्राणि । दाशुषे

गिरेः । प्र । रसाः । अस्य । पिन्विरे । दत्राणि । पुरुभोजसः

जो इन्द्रदेव हवि देने वाले यजमानके लिये सैकड़ों सेनाओं की समान अपने धर्पक बलसे आवरक शत्रुओंको जीत लेते हैं और मार डालते हैं, इन बहुत उपभोग्यके योग्य इन्द्रदेवके सुवर्ण पर्वतसे गलोंके निकलनेकी समान हविर्दान करने वाले यजमानके लिये सिञ्चन होते हैं ॥ २ ॥

प्र सु श्रुतं सुराधंसमर्चा शक्रमभिष्टये ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसुं सहस्रेणैव मंहते ॥ ३ ॥

प्र । सु । श्रुतम् । सुराधंसम् । अर्च । शक्रम् । अभिष्टये ।

यः । सुन्वते । स्तुवते । काम्यम् । वसु । सहस्रेणश्व । गंहते ३

जो इन्द्रदेव सोमाभिषव करने वाले और स्तुति करने वाले यज्ञमानको अभिलषित घन सहस्रों करके देते हैं, उन सुन्दर हविरूप अन्नके पात्र, याचकोंकी प्रार्थनाकी भली प्रकार सुनने वाले इन्द्रदेवकी तुम पूजा करो ॥ ३ ॥

शतानीका हेतयोः अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिपो महीः

गिरिर्न भुज्मा मधवत्सु पिन्वते यदा सुता अमन्दिपुः

शतशनीकाः । हेतयः । अस्य । दुष्टराः । इन्द्रस्य । समुद्रपः ।

महीः ।

गिरिः । न । भुज्मा । मधवत्सु । पिन्वते । यत् । ईम् । सुताः ।

अमन्दिपुः ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवके आयुध सैकड़ों सेनाओंकी समान पल रखते हैं, असत् पुरुष उनको तर नहीं सकने, यदि अभिषव किये हुए सोम इनकी हर्षमें भर देते हैं तो भोगमद पर्वत जैसे घनवानोंकी अपने पदार्थोंसे सींचता है, तिस प्रकार, इन इन्द्रके विशाल अन्न यज्ञमानका सेचन करते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (६६७)

“वयं य त्वा सुतावन्तः” इत्यस्य विनियोगः “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” [२०. ४०] इत्यश्रोक्तः ॥

नथा पृष्ठस्य तृतीयचतुर्थपञ्चमपष्ठानां चतुर्णापहाम् “वयं य त्वा सुतावन्तः” इत्यादीनामपठानां वृत्तानां द्वौ द्वौ यथाक्रमं स्तोत्रियानुरूपी भवतः । तत्र “वयं य त्वा” [२०. ५२] “क ई

वेद" [२०. ५३] इति तृतीयेऽह्नि स्तोत्रियानुरूपौ भवतः ।
 "विरवाः पृतनाः" [२०. ५४] "तमिन्द्रम्" [२०. ५५] इति
 चतुर्थे । "इन्द्रो मदाय" [२०. ५६] "मदे मदे हि" [२०. ५६.
 ४] इति पञ्चमे । "सुखाकृन्तुम्" [२०. ५७] "शुष्मिन्तमं नः"
 [२०. ५७. ४] इति षष्ठे । तद्व उक्तं वैताने । "तृतीया-
 दीनां वयं यत्वा सुतावन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" इति [वै० ६. २]
 तथा छन्दोमाख्येषु त्रिष्वहःसु "वयं यत्वा सुतावन्तः" "क
 ई वेद सुते सचा" इति प्रथमेऽहनि मास्यंदिने स्तोत्रियानुरूपौ
 भवतः । "क ई वेद सुते सचा" "वयं यत्वा सुतावन्तः" इति
 द्वितीये । "श्रायन्त इव सूर्यम्" [२०. ५८] "वणमहाँ असि सूर्य"
 [२०. ५८. ३] इति तृतीये । तद्व उक्तं वैताने । "वयं यत्वा
 सुतावन्तः इत्यादि वणमहाँ असि सूर्येत्यन्ताः पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः"
 इति [वै० ६. ३] ॥

"वयं यत्वा सुतावन्तः" इसका विनियोग "इन्द्रेण सं हि
 दत्तसे" (२० । ४०) में कह दिया है ।

तथा पृष्ठयुक्ते तृतीय चतुर्थ पञ्चम और षष्ठ इन चार दिनोंमें
 "वयं यत्वा सुतावन्तः" इन आठ वृत्तोंसे दो दो यथाक्रम स्तो-
 त्रियानुरूप होते हैं । इनमेंसे "वयं यत्वा" (२० । ५२) "क
 ई वेद" (२० । ५३) ये तृतीय दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं ।
 "विरवाः पृतनाः" (२० । ५४) "तमिन्द्रम्" (२० । ५५)
 ये चतुर्थदिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं । "इन्द्रो मदाय" (२० । ५६)
 "मदे मदे हि" (२० । ५६ । ४) ये पञ्चम दिनमें स्तोत्रियानु-
 रूप होते हैं । "सुखाकृन्तुम्" (२० । ५७) "शुष्मिन्तमं नः"
 (२० । ५७ । ४) ये छठे दिनमें स्तोत्रियानुरूप होते हैं । इसी
 बातको वैतानमंत्रमें कहा है, कि— "तृतीयादीनां वयं यत्वा सुता
 वन्त इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपाः" (वैतानमंत्र ६ । २)

तथा छन्दोम नामक तीन दिनोंमें “वयं घ त्वा सुतावन्तः” “क ई वेद सुते सचा” ये प्रथम-दिनके माध्यन्दिनमें स्तोत्रिया-
नुरूप होते हैं । “क ई वेद सुते सचा” “वयं घ त्वा सुतावन्तः”
ये द्वितीय दिनमें, “आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८) “वयमर्हा
असि सूर्य” (२० । ५८ । ३) यह तृतीय दिनमें स्तोत्रियानु-
रूप होते हैं । इसी बातको बैतानमूत्रमें कहा है, कि-“वयं घ त्वा
सुतावन्त इत्यादि वयमर्हा असि सूर्येत्यन्ताः पृष्ठस्तोत्रियाणुरूपाः”
(बैतानमूत्र ६ । ३) ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतारं आसते ।
वयम् । घ । त्वा । सुतावन्तः । आपः । न । वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रस्रवणेषु । वृत्रहन् । परि । स्तोतारः । आसते ।

हे इन्द्र ! जलकी समान अभिषव करके पनले किये हुए
अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम अतिवज्र, पवित्रसे प्रस्रवणके समय
आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुते तृपाण श्लोक आ गम इन्द्र स्वव्दीव वंसगः २
स्वरन्ति । त्वा । सुते । नरो । वसो इति । निरेकः । उक्थिनः ।
कदा । सुतम् । तृपाणः । श्लोकः । आ । गमः । इन्द्र । स्वव्दी-
व । वंसगः ॥ २ ॥

हे वासपिनः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर बहुत उच्य-

गान करने वाले मनुष्य अतिव्रत आपका स्वरोसे आवाहन कर रहे हैं, कि—कब आप वननीयगति स्वर्दी वृषभकी समान वृषभ पर कर यागश्रद्धा में अभिषुत सोमका पान करनेके लिये आवेंगे २ कसेवंभिर्घृष्ण्वा घृषद् वाजं दर्पिं सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्पणे मृच्छू गोमन्तमीमहे ३
कएवेभिः । घृष्णो इति । आ । घृषत् । वाजम् । दर्पि । सह-
स्रिणम् ।

पिशङ्गरूपम् । मघवन् । विचर्पणे । मृच्छू । गोमन्तम् । ईमहे ३
इति पञ्चमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे घर्षक इन्द्रदेव ! आप धनको दवा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों से सम्पन्न व्यक्तिको भी विदीर्ण कर डालते हैं । हे विद्वान् इन्द्र ! हम गौओंसे सम्पन्न पिशंग रूप वाले धनकी आपसे शीघ्रतापूर्वक याचना करते हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमे पञ्चदश सूक्त समाप्त (६६८)

त्रिककुंदाशाहस्याहीनस्य नवस्वहःसु “शग्यु शु शचीपते”
[२०. ११=] “अभि म गोपति गिरा” [२०. ६२] “तं वो
दस्ममृनीषहम्” [२०. ४६. ४] “वयमेनमिदा हः” [२०. ६७]
“इन्द्रमिदं गापिनो बृहन्” [२०. ३२. ४] “आयन्त इव
सूर्यम्” [२०. ५२] “क ई वेद सुते सचा” [२०. ५३]
“विदवाः पृनता अभिपृतरं नरम्” [२०. ५४] “यदिन्द्र प्राग-
पाणदक्” [२०. १२०] इत्येते नवः श्रुष्टस्तोत्रिया यथाक्रमं
भवन्ति । तद् उक्तं चैतानि । “त्रिककुंदाशाहस्य नवसु शग्यु शु
शचीपतेऽभि मगोपति गिरा तं वो दस्ममृनीषहं वयमेनमिदा ह

इन्द्रमिहायिनो बृहच्छ्रायन्त इव सूर्य क ई वेद सुते सचा विरवाः
पृतना अभिभूतरं नरं यदिन्द्र मागपागुदगिति" इति [बै० ८. ४]

त्रिककुट्टदशाह अहीनके नौ दिनोंमें "शग्ध्यु प्यु शचीपते"
(२० । ११८) "अभि म गोपति गिरा" (२० । ६२) "तं वो
दस्ममृतीपहम्" (२० । ४६ । ४) "वयमेनमिदा ह्यः" (२० ।
६७) "इन्द्रमिह गायिनो बृहद्" (२० । ३८ । ४) "श्रायन्त
इव सूर्यम्" (२० । ५८) "क ई वेद सुते सचा" (२० । ५३)
"विरवाः पृतना अभिभूतरं नरम्" (२० । ५४) "यदिन्द्र माग-
पागुदक्" (२० । १२०) ये नौ यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ।
इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिककुट्टदशाहस्य नवमं
शग्ध्यु प्यु शचीपतेऽभि मगोपति गिरा तं वो दस्ममृतीपहं वयमे-
नमिदा ॥ इन्द्रमिहगायिनो बृहद् श्रायन्त इव सूर्यम् क ई वेद
सुते सचा विरवाः पृतना अभिभूतरं नरम् यदिन्द्र मागपागुद-
गिति" (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

क ई वेद सुते सचा पिबन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्पोजंसा मन्दानः शिप्रयन्धसः १

कः । ईम् । वेद । सुते । सचा । पिबन्तम् । कद् । वयोः । दधे ।

अयम् । यः । पुरः । विभिनत्ति । ओजंसा । मन्दानः । शिमी ।

अन्धसः ॥ १ ॥

इस वातको कौन जानता है, कि—सोपका अभिपव होने
पर साथ २ कौनसे अन्नको ये धारण करते हैं । यह सुन्दर
ठोड़ी वाले हविरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके
शत्रुपुरोको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ १ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिंष्ट्रा नि यमदा सुते गमो महान् चरस्योजसा २

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुत्रा । चरथम् । दधे ।

नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।

ओजसा ॥ २ ॥

मदमत्त मृगकी समान वारण करने वाले आप रथमें बैठ कर अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा कोई नहीं है जो आपको रोक सके । आप बलसे महान् बनते हुए विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये २

य उग्रः सन्ननिष्ठः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवां शृण्वद्धवं नेन्द्रो योपत्या गमत् ३

यः । उग्रः । सन् । अनिःस्तुतः । स्थिरः । रणाय । संस्कृतः ।

यदि । स्तोतुः । मघवा । शृण्वत् । हवम् । न । इन्द्रः ।

योपति । आ । गमत् ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो उग्र पढ़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके लिए तयार होने पर स्थिर रहते हैं यदि वह मघवा इन्द्र स्तुति करने वालेके आह्वानको सुने तो स्त्रीके पास जानेकी समान आवेंगे ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त (६६९)

षष्ठ्यपटहस्य एकविंशस्तोमके चतुर्थेऽहनि एकाहैकीभूते

“इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” [२०. ४१] “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” [२०. ५४] “एवा हसि वीरयुः” [२०. ६०] इति आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिया भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिर्विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा हसि वीरयुरिति” इति [वै० ८. २] ॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथग्रहानां द्वितीयेष्वहसु “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरमिति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा त्रिककुद्दशाहस्याहीनस्य अष्टमेऽहनि एष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । सूत्रं पूर्वसूक्ते उक्तम् ॥

पृष्ठपदद्वये एकविंशस्तोमक चतुर्थदिनके एकाहैकीभूतमे “इन्द्रो दधीचो अस्यभिः” (२०।४१) “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” (२०।५४) “एवाहसि वीरयुः” (२० । ६०) ये आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठस्यैकविंश इन्द्रो दधीचो अस्यभिः विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम् एवा हसि वीरयुरिति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्व्यहोके द्वितीय दिनोंमें “विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” यह स्तोत्रिय होता है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वितीयेषु विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरम्” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुद्दशाह अहीनके अष्टम दिनमें यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । सूत्र पहिले सूक्तमें कह दिया है ॥

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजुस्तंतल्लुरिन्द्रं जजु-
नुश्च राजसे ।

कृत्वा वरिष्ठं वरं आमुस्मृतोऽग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्वि-
नम् ॥ १ ॥

विरवाः । पृतनाः । अभिऽमृतम् । नरम् । सऽज्जुः । ततऽज्जुः ।
इन्द्रम् । जज्जुः । च । राजसे ।

कृत्वा । वरिष्ठम् । वरे । आऽमुस्मि । उत । उग्रम् । ओजिष्ठम् ।
तवसम् । तरस्विनम् ॥ १ ॥

सकल सेनाओंने अभिभव करने वाले नेता शत्रुओंको पूर्ण-
रूपसे मूर्द्धित करने वाले, उग्र बलवान् तरस्वी इन्द्रको वरणीय
संग्राममें प्रेमपूर्वक वरण किया और प्रकट किया है ॥ १ ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदा वृधे धृनव्रतो होजसा समृतिभिः २
सम् । ईम् । रेभासः । अस्वरन् । इन्द्रम् । सोमस्य । पीतये ।
स्वऽपतिम् । यत् । ईम् । वृधे । धृनऽव्रतः । हि । ओजसा । सम् ।
कृतिऽभिः ॥ २ ॥

ये स्तोता सोमपान करनेके लिये इन इन्द्रकी भली प्रकार
स्तुति कर रहे हैं, और धृनव्रत सोम भी इन स्वर्गपतिकी ओर
अपनी रक्षक शक्तियों सहित बढ़ता है ॥ २ ॥

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेपं विप्रां अभिस्वरां ।
सुदीतयां वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृकभिः ३

नेमिष् । नपन्ति । चक्षसा । मेपम् । विमाः । अभिऽस्वरा ।

सुऽदीतयः । वः । अद्दुहः । अपि । करो । तरस्विनः । सम् ।

ऋक्वऽभिः ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

स्तुति करते हुए विम इनके मेपकी समान भक्षक वज्रको दृष्टि पड़ने पर मणाम करते हैं । हे स्तोताओं ! ऋक्व नामक पितरों के साथ इस वज्रकी सुन्दर दमकें भी तुम्हारे कानमें द्रोह न पहुँचावे अर्थात् तुम्हारे कानोंको कष्ट न दें ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें सप्तदश सूक्त समाप्त (६७०)

“तमिन्द्रं जोहवीमि” इत्यस्य विनियोगः “वयं य त्वा सुतावन्तः” [२०. ५२] इति सूक्ते उक्तः ॥

“तमिन्द्रं जोहवीमि” सूक्तका मूत्र “वयं य त्वा सुतावन्तः” इस (२० । ५२) सूक्तके साथ कह दिया है ॥

तमिन्द्रं जोहवीमि मयज्वानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कृतं शवांसि ।

मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथां कृणोतु वज्री ॥ १ ॥

तम् । इन्द्रम् । जोहवीमि । मयज्वानम् । उग्रम् । सत्रा । दधानम् । अप्रतिष्कृतम् । शवांसि ।

मंहिष्ठः । गीऽभिः । आ । च । यज्ञियः । ववर्तद् । राये । नः । विश्वा । सुऽपथां कृणोतु । वज्री ॥ १ ॥

मैं उन इन्द्रका आह्वान करता हूँ, कि—जो धनवान् हैं उग्र हैं, संग्राममें सुख नहीं मोड़ते हैं और बलोंको धारण करने वाले हैं, स्तुतियोंसे पूजनीय स्तोत्र चल रहा है, वज्रधारी इन्द्र धनके लिये हमारे समस्त मार्गोंको सुन्दर करें ॥ १ ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मधवन्नस्य वर्धये च त्वे वृक्तवर्हिपः २

याः । इन्द्र । भुजः । आ । अभरः । स्वर्वाऽवान् । असुरेभ्यः ।

स्तोतारम् । इत् । मयऽवन् । अस्य । वर्धये । ये । च । त्वे इति ।

वृक्तवर्हिपः ॥ २ ॥

हे स्वर्गके स्वामी इन्द्र ! आप असुरोंके लिये जिन भुजाओं को धारण करते हैं, उन भुजाओंसे इस यजमानके स्तुति करने वालेको बढ़ाइये और जो ऋत्विज आपमें परायण रहते हैं, उनको भी बढ़ाइये ॥ २ ॥

यमिन्द्र दधिपे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।

यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणो ॥ ३ ॥

यम् । इन्द्र । दधिपे । त्वम् । अश्वम् । गाम् । भागम् । अव्ययम् ।

यजमाने । सुन्वति । दक्षिणाऽवति । तस्मिन् । तम् । धेहि । मा ।

पणो ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप जिस घोड़े गौ और अन्यय रहने वाले भाग को पुष्ट करते हैं, उसको अभिषेक करने वाले और दक्षिणा देने वाले यजमानमें स्थापित करिये, पण नामक अक्षरमें स्थापित न करिये ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टादश सूक्त समाप्त (६७१)

पृष्ठयपञ्चाहस्य पञ्चमेऽहनि “उत्तिष्ठन्मोजसा सह” [२०. ४२. ३] “इन्द्रो मदाय वावृधे” [२०. ५६] “इन्द्राय साम गायत” [२०. ६२. ५-७] इत्येते आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिया भवन्ति तद् उक्तं वैताने । “पञ्चम उत्तिष्ठन्मोजसा सहेन्द्रो मदाय वावृधे इन्द्राय साम गायतेति” इति [वै० ट. ३] ॥

पृष्ठयपञ्चाहके पञ्चम दिनमें “उत्तिष्ठन्मोजसा सह” (२० । ४२ । ३) “इन्द्रो मदाय वावृधे” (२० । ५६) “इन्द्राय साम गायत” (२० । ६२ । ५-७) ये आज्यपृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“पञ्चम उत्तिष्ठन्मोजसा सहेन्द्रो मदाय वावृधे इन्द्राय साम गायतेति” (वैतानमूत्र ८ । ३) ॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिपूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नो विपत्

इन्द्रः । मदाय । वावृधे । शवसे । वृत्रहा । नृभिः ।

तम् । इत् । महत्स्वम् । आजिपु । उत । ईम् । अर्भे । हवामहे ।

सः । वाजेषु । प्र । नः । विपत् ॥ १-॥

वृत्राक्षरका संहार करने वाले इन्द्रदेवको मनुष्य मद और बलके लिये बढ़ाते हैं । हम उनको विशाल संग्रामोंमें और इस छोटेसे यज्ञमें आदान करते हैं, वह युद्धोंमें हममें व्याप्त होजावे ?

सेन्योसि भूरिं पराददिः ।

चेद् वृधो यजमानाय शिञ्जसि सुन्वते

॥ २ ॥

। सेन्यः । असि । भूरिं । पराऽददिः ।

चेत् । वृधः । यजमानाय । शिञ्जसि । सुन्वते ।

॥ २ ॥

सेनाके योग्य हैं, शत्रुओंका भयंकर खण्डन
: तुच्छ पुरुषको आप यजमानके कारण दण्ड
। आपके लिये अभिषव करता है, आपका
: लिये ही है ॥ २ ॥

। यो घृण्येवं धीयते घना ।

॥ हरी कं हनः कं वसौ दधोस्माँ इन्द्र

। ३ ॥

भाजयः । घृण्येवं । धीयते । घना ।

। हरी इति । कम् । हनः । कम् । वसौ । दधः ।

। वसौ । दधः ॥ ३ ॥

। लगता है और धर्मक पुरुषमें घन स्थापित
आप मरमच हरी नामक घोड़ोंको जोड़, कर
र क्रिममें घन स्थापित करेंगे ? हे इन्द्र ! उस
न स्थापित करिये ॥ ३ ॥

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।

सं गृभाय पुरु शतोभयाहस्त्या वसुं शिशिहि राय
आ भर ॥ ४ ॥

मदेऽमदे । हि । नः । ददिः । यूथा । गवाम् । अजुऽक्रतुः ।

सम् । गृभाय । पुरु । शता । उभयाहस्त्या । वसु । शिशिहि ।
राय । आ । भर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आपका यह सरल है, आप मत्स्येक बार हर्म भरने
पर हमें गौधोंके झुण्ड देते हैं । आप सैंकड़ों बार दोनों हाथोंसे
बहुतसे धनको ग्रहण करके तीक्ष्ण करिये और हमें मदान करिये ४
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।

विद्वा हि त्वां पुरुवसुमुप कामान्तससृजमहेथा नोविता
भव ॥ ५ ॥

मादयस्व । सुते । सचा । शवसे । शूर । राधसे ।

विद्य । हि । त्वा । पुरुऽवसुम् । उप । कामान् । ससृजमहे । अय ।
ना । अविता । भव ॥ ५ ॥

हे शूर इन्द्र ! आप सहायक बन कर सोमका अभिषेक होने
पर मदमें भरिये और बलको साधिये, हम आपको विशाल धन
वाला जानते हैं, हम आपसे अपनी कामनाओंसे संयुक्त रहें
आप हमारे रक्षक हजिये ॥ ५ ॥

एते ते इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि रव्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुपां तेषां नो
वेद आभर ॥ ६ ॥

एते । ते । इन्द्र । जन्तवः । विश्वम् । पुष्यन्ति । वार्यम् ।
अन्तः । हि । रव्यः । जनानाम् । अर्यः । वेदः । अदाशुपाम् ।
तेषाम् । नः । वेदः । आ । भर ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! ये जन्तु आपके समग्र वीर्यको पुष्ट करते हैं, आप स्वामी हैं आपकी निन्दा करने वालोंके भीतर जो धन स्थित है उन हवि मदान न करने वालोंके धनको आप हमें मदान करिये ६ पञ्चम अनुवाकमें उन्मीलनी सूक्त समाप्त (६७३)

अस्योर्वाग्निं क्रनो तृतीयसवने "सुरूपकृन्नुमृतये" [२०, ५७]
"शुष्मिन्तमं न ऊनये" [२०, ५७, ४] इति स्तोत्रिषानुरूपो
भवतः । तत्र "सुरूपकृन्नुमृतये" इति स्तोत्रिषमभितः माकृतः
स्तोत्रियो भवति । "शुष्मिन्तमं न ऊनये" इत्यनुरूपमभितः मा-
कृतोऽनुरूपो भवति । तद् उक्तं वैताने । "तृतीयसवने सुरूपकृन्नु-
मृतये शुष्मिन्तमं न ऊनये इति स्तोत्रिषानुरूपावभितः स्तोत्रि-
षानुरूपो" इति [वै० ४, ३] ॥

तथा महाघ्नते मातः सवने "सुरूपकृन्नुमृतये" इत्याज्यस्तोत्रियो
भवति । तद् उक्तं वैताने । "महाघ्नते सुरूपकृन्नुमृतये इत्याज्य-
स्तोत्रियः" इति [वै० ६, ४] ॥

तथा श्येनसंदंशानिरवज्ञेषु एकादेषु "सुरूपकृन्नुमृतये" [२०,
५७] "वृक्षा मन्दन्तु स्तोमाः" [२०, ६३] एता आत्यस्तो-

(३१६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

त्रियो विकल्पितो भवतः । त्वामिद्धि हवामहे” इति [२०. ६८]
पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “रयेनसंदंशाजिरवज्रेषु
सुरूपकृत्नुमृतय उक्त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति”
इति [वै० ८. १] ॥

असौर्याम क्रतुके तृतीयसवनमें “सुरूपकृत्नुमृतये” (२०।५७)
“शुष्मिन्तमं न ऊतये” (२० । ५७ । ४) ये स्तोत्रियानुरूप
होते हैं । यहाँ “सुरूपकृत्नुमृतये” यह स्तोत्रियके अभितः प्राकृत
स्तोत्रिय होता है । “शुष्मिन्तमं न ऊतये” यह अनुरूपके अभितः
प्राकृत अनुरूप होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि-“तृतीयमवने सुरूपकृत्नुमृतये शुष्मिन्तमं न ऊतय इति स्तो-
त्रियानुरूपावभितः स्तोत्रियानुरूपो” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा महाव्रतके मातः सवनमें “सुरूपकृत्नुमृतये” (२० ।
५७) ये आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि-“महाव्रते सुरूपकृत्नुमृतये इत्याज्यस्तोत्रियः” (वैतान-
सूत्र ६ । ४) ॥

तथा रयेनसंदंशाजिरवज्रोंके एकाहोंमें “सुरूपकृत्नुमृतये”
(२० । ५७) “उक्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” (२० । ६३) ये
विकल्पसे आज्यस्तोत्रिय होते हैं । “त्वामिद्धि हवामहे” (२० ।
६८) ये पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि-“रयेनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमृतय उक्त्वा मन्दन्तु
स्तोमास्त्वामिद्धि हवामहे इति” (वैतानसूत्र ८ । ४) ।

सुरूपकृत्नुमृतये सुदुयामिव गोदुहे । जुहमसि द्यवि-
द्यवि ॥ १ ॥

सुरूपकृत्नुम् । ऊतये । सुदुयाम् । गोदुहे ॥ जुहमसि ।

द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

जैसे दूध दुहने वाले के लिये सरलनासे दुहाने वाली गौ को बुलाया जाता है, इसी प्रकार हम रक्षा के लिये मत्स्यक अथवा पर इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उपं नः सवना गंहि सोमस्य सोमपाःपिव । गोदा
इव सेवतो मदः ॥ २ ॥

उप । नः । सवना । आ । गंहि । सोमस्य । सोमपाः । पिव ॥

गोदाः । इव । सेवतः । मदः ॥ २ ॥

इन्द्रदेव गौ को देने वाले हैं, हर्षमें भरे रहते हैं, पनसम्पन्न हैं, ऐसे इन्द्रदेव हम रे सोमसवनों के समीप आइये और सोम का पान करिये ॥ २ ॥

अथा ते अन्तमानां विद्यामं सुमतीनाम् । मा नो
अति ख्य आ गंहि ॥ ३ ॥

अथ । ते । अन्तमानाम् । विद्यामं । सुमतीनाम् ॥ मा । नो ।

अति । ख्यः । आ । गंहि ॥ ३ ॥

है इन्द्र ! हम आपके समीप रहने वाली सुन्दर बुद्धियों को जानते हैं आप हमारी अधिक निन्दा न कराइये और हमारे पास आइये ॥ ३ ॥

शुष्मिन्तमं न ऊतये धुम्निनं पाहि जागृचिम् । इन्द्र
सोमं शतक्रतो ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तम् । नः । ऊतये । धुम्निनम् । पाहि । जागृचिम् ॥

इन्द्र । सोमम् । शतक्रतो इति शतऽक्रतो ॥ ४ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आप हमारी रक्षा करनेके लिये इस बल-
मद ज्योतिःसम्पन्न-जागरूक रखनेवाले सोमका पान करिये ४
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त
आ वृणे ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणि । शतक्रतो इति शतः शतक्रतो । या । ते । जनेषु । पञ्चसु ॥

इन्द्र- । तानि । ते । आ । वृणे ॥ ५ ॥

हे बहुकर्मन् इन्द्र ! आपकी जो इन्द्रियें देवता पितर आदि पञ्च
जनोंमें हैं । हे इन्द्र ! मैं उन इन्द्रियोंका वरण करता हूँ ॥ ५ ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्वदुष्टरम् । उत् ते
शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥

अगन् । इन्द्र । श्रवः । बृहत् । द्युम्नम् । दधिष्व- । दुष्टरम् ॥

उत् । ते । शुष्मम् । तिरामसि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका विशाल अन्न हमको प्राप्त होवे, और
आप शत्रुओंसे तरनेके अयोग्य दमकने हुए घनोंको हममें स्था-
पित करिये और हम आपके घलको सोम और स्तोत्रसे बढ़ाते हैं ६
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः ।

उ लोको यस्ते अदिव इन्द्रेह तन आ गहि ॥ ७ ॥

अर्वावतः । नः । आ । गहि । अयो इति । शक्रः । परावतः ।

ऊः इति । लोकाः । या । तेने अद्रिः । इन्द्रः । इहः । ततः ।

आ । गहि ॥ ७ ॥

हे चलवान् इन्द्र ! आप समीपके स्थलमें हों तो समीपके स्थलसे और दूरके स्थलमें हों तो दूरके स्थानसे हमारे पास आइये, हे वज्रधारिन् इन्द्र ! आपका जो उत्तम लोक है, उस स्थानसे भी आप सोमपान करनेके लिये इस पूजाके स्थानमें आइये ॥ ७ ॥

इन्द्रो अङ्गमहद्भयमभीपदपंचुव्यवत् । स हि स्थिरो
विचर्षणिः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । अङ्ग । महत् । भयम् । अभि । पदम् । च । उव्यवत् ॥
सः । हि । स्थिरः । विचर्षणिः ॥ ८ ॥

हे आत्मा वा अस्तिवज्र ! इन्द्रदेव हमारे ऊपर पड़े हुए, दूसरों से न हटाने योग्य बड़े भारी भयका तिरस्कार कर डालते हैं, और भयको हमसे अलग करके दूर भगा देते हैं, वह इन्द्रदेव स्थिर रहने वाले हैं अर्थात् कोई उनको च्युत नहीं कर सकता । और वह सबको देखने वाले हैं अर्थात् छिपे हुए भय देने वालों को और प्रकाशित हम रक्षणीयोंको भी जानते हैं ॥ ८ ॥

न्द्रश्च मृलयाति नो न नः पश्चाद्धं नशत् । भद्रं
भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥

न्द्रः । च । मृलयाति । नः । न । नः । पश्चात् । अयम् ।
नशत् । भद्रम् । भवाति । नः । पुरः ॥ ९ ॥

यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो वह हमको सुख दें, यदि इन्द्रदेव हमारे रक्षक हों तो पीछे हमारा दुःख नष्ट होजावे और सामने हमारा भद्रल होवे ॥ ९ ॥

(३२०) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

इन्द्र आशांभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं कर्तु । जेता
शत्रून् विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रः । आशांभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयम् । कर्तु ॥ जेता ।

शत्रून् । विचर्षणिः ॥ १० ॥

इन्द्रदेव सब दिशा विदिशाओंसे हम पर पड़ सकने वाले
भयोंको दूर करें । यह इन्द्रदेव सब दिशाओंमें जो हमारे शत्रु हैं
उनको देखने वाले हैं ॥ १० ॥

क ई वेद सुते सचा पियन्तं कद् वयो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्पोजसा मन्दानः शिप्रघन्धसः

फः । ईप् । वेद । सुते । सचा । पियन्तम् । कद् । वयो । दधे ।

अयम् । यः । पुरः । विभिनत्ति । ओजसा । मन्दानः । शिप्री ।

अन्धसः ॥ ११ ॥

इस बातको कौन जानता है, कि-सोमका अभिषेक होने पर
साथ २ यह कौनसे अन्नको धारण करते हैं, यह सुन्दर ठोड़ी
वाले हवीरूप अन्नसे हर्षमें भरे हुए इन्द्र अपने सामनेके शत्रु-
पुरोंको बलपूर्वक नष्ट कर डालते हैं ॥ ११ ॥

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिंश्रु नि यमदा सुते गमो महान्श्चरस्योजसा १२

दाना । मृगः । न । वारणः । पुरुत्रा । चरथम् । दधे ।

नकिः । त्वा । नि । यमत् । आ । सुते । गमः । महान् । चरसि ।

ओजसा ॥ १२ ॥

मदमय मृगकी समान चारण करने वाले आप रथमें बैठ कर
अनेक स्थानोंमें गमन करते हैं, सोमका अभिषव होने पर ऐसा
कोई नहीं है जो आपको रोक सके, आप बलसे महान् बनते हुए
विचरण करते हैं, अतः सोमका अभिषव होने पर आइये १२
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणांय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवां मृणवद्धवं नेन्द्रो योपत्या गमत्
यः । उग्रः । सन् । अनिष्टृतः । स्थिरः । रणांय । संस्कृतः ।
यदि । स्तोतुः । मघवां । मृणवत् । इवम् । न । इन्द्रः ।
योपति । आ । गमत् ॥ १३ ॥

जो उग्र पड़ने पर शत्रुओंसे अहिंसित रहते हैं, जो रणके
लिये तयार होने पर अहिंसित रहते हैं, यदि यह मघवा इन्द्र
स्तुति करने वालेके आह्वानको सुनें तो स्त्रीके पास जानेंकी समान
आवेंगे ॥ १३ ॥

वयं घं त्वा सुतावंन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परिस्तोतारं आसते १४
वयम् । घ् । त्वा । सुतवन्तः । आपः । न । वृक्तवर्हिषः ।
पवित्रस्य । प्रस्रवणेषु । वृत्रहन् । परि । स्तोतारः । आसते १४

हे इन्द्र ! अभिषव करके जलकी समान पतले किये गए
अभिषुत सोमसे सम्पन्न हम अश्विज, पवित्रसे प्रस्रवणके समय
आपकी स्तुति करते हुए बैठे हैं ॥ १४ ॥

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

(३२२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

कदा सुतं तृपाण ओक्त्वा गम इन्द्र स्वव्दीवः वंसंगः
स्वरन्ति । स्वा । सुते । नरः । वसो इति । निरेके । उवियनः ।
कदा । सुतम् । तृपाणः । ओक्त्वा । गमः । इन्द्र । स्वव्दी-
व । वंसंगः ॥ १५ ॥

हे वासयितः इन्द्र ! सोमका अभिषव होजाने पर अधिकतासे
सवयगान करने वाले पुरुष श्रुतिवज आपका स्वरोसे आहान
कर रहे हैं, कि-कब आप वननीय गति स्वव्दी वृषभकी समान
तृपामें भर कर यागगृहमें अभिषुन सोमका पान करनेके लिये
आवेगे ॥ १५ ॥

कण्वेभिर्घृष्णवा घृपद् वाजं दर्पि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मधवन् विचर्पणे मच्चू गोमन्तमीमहे १६
कण्वेभिः । घृष्णो इति । आ । घृपत् । वाजम् । दर्पि । सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपम् । मधवन् । विचर्पणे । मच्चू । गोमन्तम् । ईमहे ।
इति पञ्चमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे धर्षक इन्द्रदेव ! आप धनकी दवा लेते हैं, सहस्रों शक्तियों
से भी सम्पन्न व्यक्तिको विदीर्ण कर डालते हैं, हे विद्वन् इन्द्र !
हम गोम्रोसे सम्पन्न पिशङ्ग रूप वाले धनकी आपसे याचना
करते हैं ॥ १६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें बीसवाँ सूक्त समाप्त (६७३)

विपुवति सौर्यगृहे “वयमर्हो अस्मि सूर्य” [२०. ५८, ३]
“आयन्त इव सूर्यम्” [२०. ५८. १] इति विकल्पितौ पृष्ठस्रो-

त्रिपानुरूपो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “वयमहो असि सूर्यं आ-
यन्त इव सूर्यमिति वा” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तीव्रमुच्चतुःपर्याययोः सहस्रान्त्योर्दशपेये विभ्रंशयज्ञे
“आयन्त इव सूर्यम्” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति ॥

तथा सायःक्राभिधानेषु एकादेषु रयेनयागवर्जितेषु “अहमिद्धि
पितृष्परी” [२०. ११५] इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । चकारात्
“आयन्त इव सूर्यम्” इत्याज्यस्तोत्रियो भवति ॥

तद् उक्तं वैताने । “तीव्रमुच्चतुःपर्याययोः सहस्रान्त्ययोर्दश-
पेये विभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति । सायःक्रेषु रयेनवर्जम्
अहमिद्धि पितृष्परीति च” इति [वै० ८. २] ॥

तथा साक्रमेयस्य तृतीयेऽहनि अस्य मूक्तस्य विनियोग उक्तः ।
स च “तमिन्द्रं वाजयामसि” इति सूक्ते [२०. ४७] द्रष्टव्यः ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु “आयन्त इव सूर्यम्” [२०.
५८] “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] एतां पृष्ठोक्त्यस्तोत्रियो
भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यं त्वं न
इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा”
इति सूक्ते [२०. ५३] उक्तः ॥

विषुवत् सौर्यपृष्ठमे “वयमहो असि सूर्यम्” (२० । ५८ । ३)
“आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८ । १) ये विकल्पसे पृष्ठस्तो-
त्रिय अनुरूप होते हैं । इसी पातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि—“वयमहो असि सूर्यं आयन्त इव सूर्यमिति वा” (वैतान-
सूत्र ६ । ३) ॥

तथा सहस्रान्त्य तीव्र मुच्चतुः पर्यायोक्ते दशपेयं विभ्रंश यज्ञमें
“आयन्त इव सूर्यम्” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है ।

तथा रयेनयागवर्जित सायःक्र नामक एकाहोमें “अहमिद्धि

पितृप्परी" (२० । ११५) ये आज्यस्तोत्रिय होता है । चकार से "आयन्त इव सूर्यम्" यह आज्यस्तोत्रिय होता है ।

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रमुच्चतुः पर्याययोः सहस्रान्त्यपोर्दशपेये निभ्रंशयज्ञे आयन्त इव सूर्यमिति । सायःक्रेषु श्येनवर्जम् अहमिद्धि पितृप्परीति च” (वैतानसूत्र ८ । २)

तथा साकपेयके तृतीय दिनमें इस सूक्तका विनियोग करा है । उसको “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२० । ४७) सूक्तमें देखना चाहिये ।

तथा चतुरहोके तीसरे दिनोंमें “आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८) “त्वं न इन्द्राभर” (२० । १०८) ये पृष्ठोक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुरहाणां आयन्त इव सूर्यम् त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिकुडदशाहमें इसका विनियोग “कई” वेदसूते सचा” (२० । ५३) सूक्तमें देखना चाहिये ।

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम् ।

आयन्तः इव । सूर्यम् । विरवा । इव । इन्द्रस्य । भक्षत ।

वसूनि । जाते । जनमाने । ओजसा । प्रति । भागम् । न ।

दीधिम् ॥ १ ॥

जिस प्रकार किरणें प्रतिदिन सूर्यका उपस्थान करती हैं—सूर्यके समीप रहती हैं, इसी प्रकार मध्यस्थानक उदकेरवर इन्द्र के समीप रहती हैं, उन इन्द्रके जलरूप सब धनोंको अपने लिये या सब जनोंके लिये हम बाँटना चाहते हैं । और जैसे इन्द्र भूत

भविष्यत् वर्तमानके घनोंको अपने ऐश्वर्यबलसे बाँटना चाहते हैं और उस भागसे प्राणी उपजीवन करते हैं । इसी प्रकार हम भी उस भागका ध्यान करते हैं ॥ १ ॥

अनंशरार्तिं वसुदामुपं स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोपति मनो दानाय
चोदयन् ॥ २ ॥

अनंशरार्तिम् । वसुदाम् । उपं । स्तुहि । भद्राः । इन्द्रस्य । रातयः ।
सः । अस्य । कामम् । विधतः । न । रोपति । मनः । दानाय ।
चोदयन् ॥ २ ॥

हे स्तोतः ! अश्लीलता रहित दान वाले धनदाता इन्द्रकी मन से शरण लेकर तुम स्तुति करो । इन इन्द्रके दान कल्याणमय हैं । वह इन्द्रदेव इस अपने भक्तके धारण किये हुए मनोरथोंको नष्ट नहीं करते हैं और जो इस प्रकार स्तुति करके याचना करता है वह इन्द्रके मनको दानके लिये प्रेरित करता है ॥ २ ॥

वयमहौं असि सूर्य वडादित्य महौं असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महौं असि २
वट् । महान् । असि । सूर्य । वट् । आदित्य । महान् । असि ।
महः । ते । सतः । महिमा । पनस्यते । अद्धा । देव । महान् ।
असि ॥ २ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप महान् हैं, यह सत्य है, हे अदिति-पुत्र ! आप महान् हैं यह सत्य है । आप सत्स्वरूपपूज्यकी महिमा भी प्रशंसा पाती है, हे देव ! आप महान् हैं, यह सत्य है । ३।

वद् सूर्यं श्रवसा महौ असि सत्रा देव महौ असि ।
महादेवानामसूर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ४
वद् । सूर्य । श्रवसा । महान् । असि । सत्रा । देव । महान् । असि ।
महा । देवानाम् । असूर्यः । पुरोहितः । विभु । ज्योतिः ।
अदाभ्यम् ॥ ४ ॥

इति पञ्चमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे सूर्य ! आप हविरूप अन्नसे महान् हैं, यह सत्य है और
हे देव ! साथ ही आप स्वयं भी महान् हैं । आप अपनी महिमा
से अक्षरोंसे भिड़ने वाले देवश्रेष्ठ हैं, आगे २ दित काते हैं और
आप अहिंस्य व्यापक ज्योति हैं ॥ ४ ॥

पञ्चम अनुवाकम् इत्येकविंशं सूक्तं समाप्त (६७५)

दशरात्रस्य दशमेहनि माध्यन्दिने सवनं “उदु त्वे मधुमत्तमा”
[२०. ५६. १] “उदिन्वस्य रिच्यते” [२०. ५६. ३] इति
पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो भवतः । उद् उक्तं वैताने । “उदु त्वे मधुम-
त्तमा उदिन्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो” इति [वै० ६. ३] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें माध्यन्दिन सवनके अवसर पर “उदु
त्वे मधुमत्तमा” (२० । ५६ । ३) ये पृष्ठस्तोत्रिय अनुरूप होते
हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“उदु त्वे मधुमत्तमा
उदिन्वस्य रिच्यत इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपो” (वैतानसूत्र ६।३) ॥

उदु त्वे मधुमत्तमा गिर स्तोमांस ईरते ।

सत्राजितो धनसा अर्चितो तयो वाजयन्तो रथा इव ?

उद् । ऊं इति । त्वे । मधुमत्तमाः । गिरः । स्तोमांसः । ईरते ।

सत्राऽजिताः । धनऽसाः । अक्षितऽऊतयः । वाजऽयन्तः ।

रयाऽइव ॥ १ ॥

ये आगे कहे जाने जाने वाले मगीतमन्त्रसाध्य त्रिटु आदि स्तोत्र और अपगीत मन्त्रसाध्य शस्त्र आदि की मधुर वाणियों प्रादुर्भूत हो रही हैं ये धन प्रदान करनेवाली हैं और एक बार ही शत्रुओंको जीत लेती हैं, ये सदा रक्षक हैं और यह अन्न प्रदान करने वाली हैं और रय जैसे रयमें बैठने वाले के मयोजनके लिये दौड़ता है, तैसे ही यह इन्द्रके सन्तोषके लिये मकट होती है । १।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिच्छीतमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् २

कण्वाऽइव । भृगवः । सूर्याऽइव । विश्वम् । इव । धीतम् ।

आनशुः ।

इन्द्रम् । स्तोमेभिः । महयन्तः । आयवः । प्रियमेधासः ।

अस्वरन् ॥ २ ॥

कण्वगोत्रमें उत्पन्न हुए महर्षि जिस प्रकार, तीनों लोकोंके स्वामी, फलाभिलाषियोंके द्वारा ध्याये हुए इन्द्रको ही स्तोत्र शस्त्र आदि स्तुतियोंसे प्राप्त होते हैं, जैसे धाता अर्यमा आदि सूर्य अपने नियन्त्रा इन्द्रको प्राप्त होते हैं, अर्थात् इन्द्रकी स्तुति करते हैं और भृगुवंशी महर्षि जिस प्रकार इन्द्रकी शरणमें जाते हैं, इसी प्रकार प्रियमेधा नामक मनुष्य पूजा करते समय स्तोत्रों से इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

उदिन्वस्य रिच्येतेशो धनं न जिग्युषः ।

य इन्द्रो हरिर्वान्न दंभन्ति तं रिपो दत्तं दधाति
सोमिनि ॥ ३ ॥

यत् । इन्द्रो । हरिर्वान् । न । दंभन्ति । तम् । रिपोः । दत्तम् ।
दधाति । सोमिनि ॥ ३ ॥

विजेताके धनकी समान इन इन्द्रदेवका यज्ञभाग होता है, जो इन्द्रदेव हरि नामक घोड़ोंसे सम्पन्न हैं, उनको पाप बाँध नहीं सकते और यह इन्द्रदेव सोमप्रदाता यजमानमें बलको स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशंसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवंत् ४
मन्त्रम् । अखर्वम् । सुधितम् । सुपेशंसम् । दधात । यज्ञियेषु । आ ।
पूर्वीः । चन । प्रसितयः । तरन्ति । तम् । यः । इन्द्रे । कर्मणा ।

॥ ४ ॥

इति पञ्चमेऽनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

हे स्तोताओं ! यज्ञिय स्तोत्रोंमें महामभावसम्पन्न सुन्दर दीप्ति
... वाले मन्त्रोंका प्रयोग करो, जो कर्मसे इन्द्रकी सेवामें
परायण रहता है वह पूर्व बन्धनों (पापों) से छूट जाता है ४
पञ्चम अनुवाकमें द्वाविंशवाँ सूक्त समाप्त (६३५)

अमिसवमप्ययेष्वाहःसु द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमेषु । “एवा
दसि पीरयुः” इत्यादयोऽष्टौ दृचास्तृतीयसवने सव्यस्तोत्रियातु-

रूपा यथाक्रमं भवन्ति । एवं च “एवा हसि वीरयुः” [२०. ६०]
 “एवा हस्य सूनृता” [२०. ६०. ४-६] इति स्तोत्रियानुरूपौ
 द्वितीये । “तं ते मदं मृणीमसि” [२०. ६१] “तम्बभि म
 गायत” [२०. ६१. ४-६] इति तृतीये । “वयमु त्वामपूर्य”
 [२०. ६२, १] “यो न इदमिदं पुरा” [२०. ६२, ३]
 इति चतुर्थे । “इन्द्राय साम गायत” [२०. ६२. ५-७] “तम्बभि
 म गायत” [२०. ६१. ४-६] इति पञ्चमे । तद् उक्तं वैताने ।
 “मध्यमेऽप्येवा हसि वीरयुरित्युक्त्वस्तोत्रियानुरूपा” इति [वै० ६. १] ॥

तथा वैकुण्ठस्य पृष्ठयज्यहस्य द्वितीयेऽहनि “एवा हसि वीरयुः”
 इति उक्त्वस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयज्यहस्य
 एवा हसि वीरयुरित्युक्त्वे” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा तस्यैव तृतीयेऽहनि अस्य विनियोगः “अभि म वः सुरा-
 धसम्” इति सूक्ते [२०. ५१] उक्तः ॥

तथा पृष्ठयज्यहस्य द्वितीयेऽहनि “एवा हसि वीरयुः” इति
 पृष्ठोक्त्वस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयज्यहस्यैवा
 हसि वीरयुरिति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा पृष्ठयज्यहस्य द्वितीयेऽहनि एव उक्त्वस्तोत्रियो भवति ।
 तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठयस्य द्वितीय एवा हसि वीरयुरिति”
 इति [वै० ८. ४] ॥

अभिसवके मध्यमदिनमें दूसरे तीसरे चौथे पाँचवेंमें “एवा
 हसि वीरयुः” इत्यादि आठ ठेच तृतीयसवनमें यथाक्रम स्तोत्रिय
 और अनुरूप होती है । इसी प्रकार “एवा हसि वीरयुः” (२० ।
 ६०) “एवा हस्य सूनृता (२० । ६० । ४-६) ये स्तोत्रिय और
 अनुरूप दूसरे दिनमें होते हैं । “तं ते मदं मृणीमसि” (२० । ६१)
 “तम्बभि म गायत” (२० । ६१ । ४-६) ये तृतीय दिनमें
 होते हैं । “वयमु त्वामपूर्य” (२० । ६२, १) “यो न इदमिदं

(३३०) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसरित

पुरा" (२० । ६२, ३) ये चौथे दिनमें होने हैं । "इन्द्राय साम गायत" (२० । ६२ । ५-७) "तम्बभि मगायत" (२० । ६१ । ४-६) ये पञ्चम दिनमें होते हैं ॥ इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मध्यमेज्वेवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थस्तोत्रियानुरूपाः” इति (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा वैकृत पृष्ठयज्यहके द्वितीय दिनमें “एवा ह्यसि वीरयुः” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयज्यहस्य एवा ह्यसि वीरयुरित्युक्थे” (वैतानसूत्र ८ । ३)

तथा इसीके तृतीयदिनमें इसका जो विनियोग “अभि म वः सुराघसम्” (२० । ५१) सूक्तमें कहा है, उसको देखना चाहिये ।

तथा पृष्ठयज्यहके द्वितीय दिनमें “एवा ह्यसि वीरयुः” यह पृष्ठोक्थस्तोत्रिय होता है । इसी घातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयज्यहस्यैवा ह्यसि वीरयुरिति” (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥

एव । हि । असि । वीरयुः । एव । शूरः । उत । स्थिरः ॥

एव । ते । राध्यम् । मनः ॥ १ ॥

आप वीरोंको हटाने वाले हैं, शूर हैं और स्थिर हैं, आपका मन राध्य ॥ १ ॥

एवा रातिस्तुंवीमघ विश्वेभिर्घायि घातृभिः । अथां चिदिन्द्र मे सचां ॥ २ ॥

एव । रातिः । तुविष्मघ । विश्वेभिः । घायि । घातृभिः । अथां ।

चित् । इन्द्र । मे । सचां ॥ २ ॥

हे बहुतसे धनसे सम्पन्न इन्द्रदेव ! अपनी पुष्ट करने वाली
समस्त शक्तियोंके साथ हममें दानशक्तिको स्थापित करिये, हे
इन्द्र ! फिर आप मेरे सहायक बनिये ॥ २ ॥

मो पु ब्रह्मेवं तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वां
सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥

मो इति । सु । ब्रह्माऽइव । तन्द्रयुः । भुवः । वाजानाम् । पते ॥
मत्स्व । सुतस्य । गोऽमतः ॥ ३ ॥

हे अन्नोंके स्वामी आप ब्रह्माजीकी समान तन्द्रयु न बनिये
और बुद्धि प्रदान करने वाले अभिषुत सोमसे आनन्दमें भरिये
एवा ह्यस्य सूनृतां विरप्शी गोमंती मही । पक्वा
शाखा न दाशुपे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृतां । विरप्शी । गोऽमंती । मही ॥
पक्वा । शाखा । न । दाशुपे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर, गोप्रदात्री विशाल भूमि इवि प्रदान करनेवाले
यजमानको पक्व शाखाकी समान (फलप्रदान करने वाली है)
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र भावन्ते । सद्यश्चित्त
सन्ति दाशुपे ॥ ५ ॥

एव । हि । ते । विभूतयः । ऊतयः । इन्द्र ! भावन्ते ॥ सद्यः ।
चित् । सन्ति । दाशुपे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र ! आपकी रक्षक विभूतियों, हवि देने वाले यजमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होजाती हैं ॥ ५ ॥

एवा ह्यस्य काम्या स्तोमं उक्थं च शंस्या । इन्द्राय
सोमंपीतये ॥ ६ ॥

एव । हि । अस्य । काम्या । स्तोमः । उक्थम् । च । शंस्या ॥
इन्द्राय । सोमंपीतये ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रको सोम पिलाते समय स्नोम उक्थ और शंस्या (नामक स्तुतियों) इन्द्रदेवकी कमनीय हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाकमें तेहससयाँ सूक्त समाप्त (६७६)

अभिसवने “तं ते मदं गृणीमसि” इत्यस्य विनियोगः पूर्वण
[२०. ६०] सह उक्तः ॥

तथा व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां प्रथमेऽहनि “तं ते
मदं गृणीमसि” इति उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने ।
“व्युष्ट्याङ्गिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां तं ते मदं गृणीमसीति”
इति [वै० ८, ३] ॥

तथा वैश्वदेवादीनां त्र्यहाणां द्वितीयेऽवहःसु अस्य विनियोगः
“तमिन्द्रं वाजयामसि” इति सूक्ते [२०. ४७] उक्तः ॥

अभिसवने “तं ते मदं गृणीमसि” इसका विनियोग पूर्वसूक्त
(२०।६०) के साथ कह दिया है ।

तथा व्युष्ट्य आंगिरस कापिवन चैत्ररथ द्वयहोके मयम दिनमें
“तं ते मदं गृणीमसि” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“व्युष्ट्यांगिरसकापिवनचैत्ररथद्वयहानां
तं ते मदं गृणीमसीति” (वैतानसूत्र ८।३) ॥

तथा वैश्वदेव आदि ऽग्नियोंके द्वितीय दिनोंमें इसका विनि-
योग "तमिन्द्रं वाजयामसि" (२० । ४७) सूक्तमें कहा है ॥

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सुसांसहिम् । उलोक-
कृत्नुमद्रिवो हरिश्चियम् ॥ १ ॥

तम् । ते । मदम् । गृणीमसि । वृषणम् । पृत्सु । सांसहिम् ।

ऊं इति । लोककृत्नुम् । अद्रिऽवः । हरिश्चियम् ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! हम फलोंकी वर्षा करने वाले, सेनाओं
में शत्रुओंका अभिभव करने वाले और हरी नामक घोड़ोंकी
श्रीसे सम्पन्न आपके लोककृत्नु मदकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

येन ज्योतीष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।

मन्दानो अस्य वह्निषो वि राजसि ॥ २ ॥

येन । ज्योतीषि । आयवे । मनवे । च । विवेदिथ ।

मन्दानः । अस्य । वह्निषः । वि । राजसि ॥ २ ॥

आपने जिम सोमके प्रभावसे आयु और मनुके लिये ज्यो-
तिर्मय उपायोंको प्राप्त कराया था, उस सोमसे हर्षमें भरे हुए
आप इस यजमानके कुशासन पर विराज रहे हैं ॥ २ ॥

तदद्या चित्त उक्थिनोनुं स्तुवन्ति पूर्वयां ।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥

तत् । अद्य । चित् । ते । उक्थिनः । अनु । स्तुवन्ति । पूर्वयां ।

वृषपत्नीः । अपः । जय । दिवेदिवे ॥ ३ ॥

ये उक्थगान करनेवाले आपके पूर्व कर्मोंकी स्तुति कर रहे हैं,
आप मरयेक विजिगीषाके अवसर पर धर्मकृत्य करके विजयपाश
तन्वभि म गांयत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥

तम् । ऊं इति । अभि । म । गांयत । पुरुहूतम् । पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रम् । गीःभिः । तविषम् । आ । विवासत ॥ ४ ॥

बहुतोंसे आहूत और बहुतोंसे स्तुत उन इन्द्रदेवका ही तुम
उशोगान करो, महान् इन्द्रदेवको ही तुम स्तुतिरूपा वाणिषोंसे
आवासित करो ॥ ४ ॥

यस्य द्विर्वहसो बृहत् सहो दाधार रोदसी ।

गिरीरज्रा अपः स्वर्गपत्न्या ॥ ५ ॥

यस्य । द्विर्वहसः । बृहत् । सह । दाधार । रोदसी इति ।

गिरीन् । अजान् । अपः । स्वः । पत्न्या ॥ ५ ॥

जिस द्विर्वहस् इन्द्रके धर्मभावके कारण थावा पृथिवी उनके
महान् बल पर्वत वज्र भल और स्वर्गको धारण करते हैं (हेस्तो-
ताओं) तुम उन इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ५ ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको बृत्राणि जिघ्रसे ।

इन्द्र जैत्रां श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥

सः । राजसि । पुरुष्टुतः । एकः । बृत्राणि । जिघ्रसे ।

इन्द्र । जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे पुतन्दुन इन्द्र ! आप विजयशील यशसो पानेके लिये दमकने
हैं और अकेले ही आवरक शत्रुओंको मार डालने हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुवाक्यं लीनोन्वां रुद्र समाप्त (६५५)

“वयमु त्वामपूर्व्य” इत्याद्यवृत्तस्य विनियोगः [२०. १४]
इत्यत्र उक्तः ॥

तथा “इन्द्राय साम गायत” [२०. ६२. ५] इत्यस्य विनि-
योगः “इन्द्रो मदाय वाट्ये” [२०. ५६] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“वयमुः त्वामपूर्व्य” मूक्तका विनियोग (२०. १४) में कह
दिया है ।

तथा “इन्द्राय साम गायत” (२०. ६५. ५) इसका विनि-
योग “इन्द्रो मदाय वाट्ये” (२०. ५६) के साथ कह दिया है ।

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद् भरन्तो वस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

वयम् । ऊं इति । त्वाम् । अपूर्व्य । स्थूरम् । न । कच् । चिद् ।

भरन्तः । अवस्यवः । वाजे । चित्रम् । हवामहे ॥ १ ॥

हे बारम्बार गमन करने पर भी नवीन ही रहनेवाले अपूर्व्य !
(अर्थात् आपका अनादर कभी नहीं होना) इन्द्र ! आप
पूजनीयका अन्नप्राप्ति वा संग्राममें हवि आदिसे पोषण करने
वाले हम रक्षाकाम ही, आवाहन करते हैं, आप हमारी ओर
ही विजय दिलानेके लिये आइये हमारे प्रतिपक्षियोंकी ओर न
जाइये, क्योंकि—हम ही आपका आवाहन कर रहे हैं । जैसे मनुष्य
हिम्मी परमगुणी राजाको अभिमान फल देकर पुष्ट करते हैं, उस
को ही अपनी विजयके लिये बुलाने हैं, इसी प्रकार हम आपका
आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

उप त्वा कर्मन्नुतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृपत् ।
त्वामिच्छयंवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानुसिम् ॥ २ ॥

उप । त्वा । कर्मन् । ऊतये । सः । नः । युवा । उग्रः । चक्राम ।
यः । धृपत् ।

त्वाम् । इत् । हि । अ-वि-तारम् । व-वृ-महे । सखायः । इन्द्रः ।
सानुसिम् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध आदि कर्मके आने पर रक्षाकेलिये हम आप
की शरणमें जाते हैं । जो इन्द्रदेव शत्रुओंको दया देते हैं, नित्य
सखण रहते हैं, प्रचण्ड बली हैं, वह इन्द्रदेव हमको सहायकरूप
से प्राप्त हों । हे इन्द्रदेव ! मित्ररूप हम प्रीति करने वाले और
रक्षा करने वाले आपका ही वरण करते हैं ॥ २ ॥

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुपे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥

यः । नः । इदम् । इदम् । पुरा । प्र । वस्यः । आ-नि-नाय । तम् ।
ऊँ इति । वः । स्तुपे । सखायः । इन्द्रम् । ऊतये ॥ ३ ॥

हे समान स्थाति वाले मित्र हुए यजमानों ! मैं तुम्हारी रक्षा
के लिये उन इन्द्रदेवकी स्तुति करता हूँ, कि-जो इन्द्रदेव पहिले
हमारे लिये यह गाँ है आदिक रीतिसे धन दे चुके हैं । उन ही
अभिमत फल देने वाले इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥
हव्यंश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ण्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वेयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवां
शतम् ॥ ४ ॥

हरिऽअश्वम् । सत्स्वपतिम् । चर्षणिऽसहम् । सः । हि । स्म । यः ।
अमन्दत ।

आ । तु । नः । सः । वेयति । गव्यम् । अश्व्यम् । स्तोतृभ्यः ।
मघवा । शतम् ॥ ४ ॥

जिन इन्द्रदेवके हरिनामक घोड़े हैं, जो श्रेष्ठ यर्म करने वाले मनुष्योंके पालक हैं, और मनुष्योंको नियममें रखने वाले हैं, उन इन्द्रदेवकी मैं स्तुति करता हूँ । जो इन्द्रदेव स्तुतिसे प्रसन्न होते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ । वह घनवान् इन्द्र हम स्तुति करने वालोंको सो गौओंका और सो घोड़ोंका भुण्ड प्रदान करें ४

इन्द्राय सामं गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते
विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥

इन्द्राय । सामं । गायत । विप्राय । बृहते । बृहत् ॥ धर्मऽकृते ।
विपऽचिते । पनस्यवे ॥ ५ ॥

हे स्तोताओं । तुम धर्मकर्ता विद्वान्, स्तुत्य निष्ठात् इन्द्रदेवके लिये बृहत्सामका गायन करो ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्व-
देवो महो अंसि ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिऽभू । अ॒सि । त्वम् । सूर्यम् । अ॒रोच॒य । ॥

वि॒श्वऽक॒र्मा । वि॒श्वऽदे॒वः । म॒हान् । अ॒सि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले हैं, आपने सूर्यको आकाशमें दीप्त किया है, आप विश्वकर्मा विश्वदेव और महान् हैं ॥ ६ ॥

वि॒भ्राजं॑ ज्योति॒षा स्व॑ऽर॒गञ्छो॑ रोच॒नं दि॒वः ।

दे॒वास्तं॑ इन्द्र स॒ख्याय॑ ये॒मिरे ॥ ७ ॥

वि॒भ्राजन् । ज्योति॒षा । स्वः । अ॒गञ्छः । रोच॒नम् । दि॒वः ।

दे॒वाः । ते । इन्द्र । स॒ख्याय॑ । ये॒मिरे ॥ ७ ॥

आप अपनी ज्योतिसे स्वर्गको दमकाने वाले सूर्यको दमकाते हुए, स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं, हे इन्द्र ! देवता आपके सखित्वमें प्राप्त हुए हैं ॥ ७ ॥

त॒न्वभि॑ प्र गा॒यत॑ पुरु॒हूतं॑ पुरु॒ष्टुतम् । इन्द्रं॑ गी॒र्भिस्तं॑
वि॒पमा॑ वि॒वास॑त ॥ ८ ॥

तम् । ऊँ इति । अ॒भि । प्र । गा॒यत॑ । पुरु॒ष्टुतम् । पुरु॒ष्टुतम् ॥

इन्द्रम् । गीऽभिः । त॒विपम् । आ । वि॒वास॑त ॥ ८ ॥

हे स्तोताओं ! तुम अनेक यजमानोंसे बुलाये हुए और अनेक स्तोताओंसे स्तुत इन इन्द्रकी ही स्तुति करो, उन बलवान् इन्द्र को ही स्तुतिवाणियोंसे आच्छादित करो ॥ ८ ॥

यस्य॑ दि॒वर्हंसो॑ बृ॒हत् स॒हो दा॒धाररो॑द॒सी । गि॒रीरं॑ज्रा

अ॒पः स्व॑र्वा॒पत्न॑ना ॥ ९ ॥

यस्य । द्विर्वहसः । घृत् । सहः । दाधार । रोदसी इति ॥

गिरीन् । अजान् । अपः । स्वः । वृषस्त्वना ॥ ६ ॥

जिस द्विर्वहस् इन्द्रके धर्मभावके कारण यावापृषिणी उनके महान् बल पर्वत यज्ञ जल और स्वर्गको धारण करते हैं । हे स्तोताओं ! तुम इन्द्रदेवकी स्तुति करो ॥ ६ ॥

स राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्रसे । इन्द्रजैत्रा
श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥

सः । राजसि । पुरुःस्तुत । एकः । वृत्राणि । जिघ्रसे ॥ इन्द्र ।
जैत्रा । श्रवस्या । च । यन्तवे ॥ १० ॥

इति पञ्चमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे पुरुष्टुत इन्द्र ! आप विजयशील यशको पानके लिये दम-
कते हैं और अकेलेही आवरक शत्रुओंको मार डालते हैं ॥ १० ॥

पञ्चम अनुवाकमें पञ्चोसर्वा सूक्त समाप्त (६७८)

पृष्ठयस्य पृष्ठेहनि “इमा नु कं भुवना सीपधाम” [२०. ६३. १]
“इत्वाय देवा अमुरान् यदापन्” [२०. ६३. २] इति द्वैपदौ
पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठ इमा नु कं भुवना सीप-
धाम इत्वाय देवा अमुरान् यदायन्निति द्वैपदौ पच्छः” इति [वै०
६. २] ॥

वाजपेये तृतीयसवने प्राकृतयोः स्तोत्रियानुरूपयोः मत्याम्नाय-
कौ “य एक इद् विदयते” [२०. ६३. ४] “य इन्द्र सोम-
पातमः” [२०. ६३. ७] एतौ उक्तस्तोत्रियानुरूपौ भवनः ।
तद् उक्तं वैताने । “तृतीयसवने य एक इद् विदयते य इन्द्र सोम-
पातम इत्युक्तस्तोत्रियानुरूपौ” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा अभिजिति विपुवति विश्वजिति महाव्रते च तृतीयसर्वने एता उक्थस्तोत्रियानुरूपी भवतः । तद् उक्तं वैताने . “अभिजिति विपुवति विश्वजिति महाव्रते च ये एक इह विदयते य इन्द्रसोमपातम इत्थुक्थस्तोत्रियानुरूपी” इति [वै० ६. १] ॥

तथा विश्वजिति एकाहीभूते “य एक यद् विदयते” इत्येव उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “विश्वजिति य एक इह विदयत इति” इति [वै० ८. २] ॥

तथा चतुरहाणां चतुर्थेऽवहःसु “महो इन्द्रो य ओजसा” [२०. १३८] “य एक इह विदयते” [२०. ६३. ४] एता आज्यो-क्थस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थेषु महो इन्द्रो य ओजसा य एक इह विदयत इति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा अभिसवपश्चादस्य “य एक इह विदयते” इति उक्थ-स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “अभिसवपश्चादस्य य एक इह विदयत इति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा अभिप्लवस्य षष्ठमहः उक्थ्यसंस्थं भवति तदा “य एक इह विदयते” [२०. ६३. ४] “यत् सोममिन्द्र विष्णुषि” [२०. १११] एता उक्थस्तोत्रियो विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इह विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णुषीति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा द्वादशाहस्य छन्दोमन्त्रहस्य प्रथमान्त्ययोरहोः “स्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] “य एक इह विदयते” एता उक्थ-स्तोत्रियो ययाक्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “द्वादशाहस्य छन्दोमप्रथमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्रा भर य एक इह विदयत इति” इति [वै० ८. ४] ॥

षष्ठ्यके षष्ठे दिन “इमा नु कम् भुवना सीपधाम” (२०।६३।१) “इत्वाय देवा असुरा यदायन्” (२०।६३।२) इति द्वैपदौ

को पद २ करके कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—
 “इमा नु कं शु।ना सीपचाम इत्वाय देवा असुरान् यदापन्निति
 द्वैपदी पञ्चः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

वाजपेयके तृतीय सवनमें प्राकृत स्तोत्रियानुरूपोंके मत्स्याम्ना-
 यक “य एक इन्द्र विदयते” (२० । ६३ । ४) “य इन्द्र सोम-
 पातमः” (२० । ६३ । ७) ये उक्त्य स्तोत्रियानुरूप होते हैं ।
 इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयसवने य एक इन्द्र
 विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्युक्त्यस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानसूत्र ४।३)

तथा अभिजित् विपुनत् विश्वजित् महाव्रतके भी तृतीयसवन
 में ये उक्त्यस्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें
 कहा है, कि—“अभिजिति विपुनति विश्वजिति महाव्रते च य एक
 इन्द्र विदयते य इन्द्र सोमपातम इत्युक्त्यस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतान-
 सूत्र ६ । १) ॥

तथा एकहीभूत विश्वजित्में “य एक इन्द्र विदयते” यह उक्त्य-
 स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विश्व-
 जिति य एक इन्द्र विदयते” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा चतुरहोके चौथे दिनोंमें “महो इन्द्रो य ओजसा य एक
 इन्द्र विदयते” इति ये आद्योक्त्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको
 वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्थेषु महो इन्द्रो य ओजसा य एक
 इन्द्र विदयते” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवपञ्चाहका “य एक इन्द्र विदयते” यह उक्त्य-
 स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानमें कहा है, कि—“अभि-
 सवपञ्चाहस्य य एक इन्द्र विदयते” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवका छठा दिन उक्त्यसंस्थ होता है तब “य एक
 इन्द्र विदयते” (२० । ६३ । ४) “यत् सोममिन्द्र विष्णवि”
 (२० । १११) ये विकल्पित उक्त्य स्तोत्रिय होते हैं । इसी बात

(३४२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठमुक्थ्यं चेद् य एक इद् विद-
यते यत् सोममिन्द्रविष्णवीति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा द्वादशाह छन्दोमन्त्रहके पहिले तीसरे दिनमें “त्वं न
इन्द्रा भर” (२० । १०८) “य एक इद् विदयते” ये यथाक्रम
उक्थ और स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है,
कि—“द्वादशाहस्य छन्दोमयमान्त्ययोस्त्वं न इन्द्राभर य एक
विदयते” (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥

इमा नु कं भुवना सीपधामेन्द्रश्च विश्वं च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्यं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकृत्
पाति ॥ १ ॥

इमा । नु । कम् । भुवना । सीपधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः ।
यज्ञम् । च । नः । तन्यम् । च । प्रजाम् । च । आदित्यैः ।

इन्द्रः । सह । चीकृत्पाति ॥ १ ॥

ये सम्पूर्ण विरवेदेवता, इन्द्र तथा भुवन सुखको पानेकी चेष्टा
करते हैं, आदित्यों सहित इन्द्रदेव हमारे यज्ञको शरीरको और
प्रजाको समर्प करें ॥ १ ॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुच्चिरस्माकं भूत्वविता तनू-
नाम् ।

हत्वायं देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्ष-
माणाः ॥ २ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सगणः । मरुत्सभिः । अस्माकम् । भूत्वा ।

अविता । तनूनाम् ।

इत्वाय । देवाः । असुरान् । यत् । आपन् । देवाः । देवत्वम् ।

अभिऽरत्तमाणाः ॥ २ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ २ ॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयं छचीभिरादित्स्वधामिपिरां पर्येषयन्

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ३

प्रत्यञ्चम् । अर्कम् । अनयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वधाम् ।

इपिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । वाजम् । देवहितम् । सनेम । मदेम । शतहिमाः । सुवीराः ३

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यकी प्रत्येकके सन्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अक्षसे सम्पन्न देखा है । इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावे और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रह कर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३ य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुपे । ईशानो

अप्रतिष्कृत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥

यः । एकः । इत् । विदयते । वसु । मर्ताय । दाशुपे ॥ ईशानः ।

अप्रतिऽस्कृतः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ४ ॥

जो अप्रतिमट स्वामी इन्द्र हवि देने वाले यजमानको धन देनेमें अद्वितीय हैं ॥ ४ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा जुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः
शुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥

कदा । मर्तम् । अराधसम् । पदा । जुम्पम् इव स्फुरत् ॥ कदा ।

नः । शुश्रवत् । गिरः । इन्द्रः । अङ्ग ॥ ५ ॥

इति वां स्तुतिसे अपनी आराधना न करने वाले मनुष्यको
इन्द्रदेव कब पैरसे ताड़ित करेगे और कब हम स्तोताओंकी
वाणियोंको छुनेगे ॥ ५ ॥

यश्चिद्धि त्वां बहुभ्य आ सुतावाँ आविवांसति ।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥

यः । चित् । हि । त्वा । बहुभ्यः । आ । सुतावान् । आवि-
वांसति ॥ उग्रम् । तत् । पत्यते । शवः । इन्द्रः । अङ्गः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र । जो अभिपुत्र सोम बाला पुरुष आपकी बहुतसी
स्तुतियोंसे मार्यना करता है, वह मचण्ड बलसे ऐश्वर्यमें भा-
जाता है ॥ ६ ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठचेतति । येना हंसि ।
न्येऽत्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥

यः । इन्द्र । सोमपातमः । मदः । शविष्ठ । चेतति ॥ येन । हंसि ।

नि । अत्रिणम् । तम् । ईमहे ॥ ७ ॥

जो इन्द्रदेव सोमके बड़े पियकड़ हैं और बलमय मद जिनमें
उदित होता है, और हे इन्द्र । जिनके द्वारा मत्तणशील राक्षसों

तो आप मारते हैं, उस बलकी हम याचना करते हैं ॥ ७ ॥
येना दशंग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्र-
माविंथा तमीमहे ॥ ८ ॥

येन । दशऽङ्गम् । अध्रिऽगुम् । वेपयन्तम् । स्वर्णऽरम् ॥ येन ।
समुद्रम् । आविंथ । तम् । ईमहे ॥ ८ ॥

जिस प्रभावके द्वारा आपने दशगु अध्रिगु वर्षते हुए स्वर्णर
की रक्षा की थी और समुद्रकी रक्षा की थी उस प्रभावकी हम
याचना करते हैं ॥ ८ ॥

येन सिन्धुं महीरपो रथां इव प्रचोदयः । पन्थांमृतस्य
यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥

येन । सिन्धुम् । महीः । अपः । रथान्ऽइव । प्रचोदयः ॥ पन्थाम् ।
मृतस्य । यातवे । तम् । ईमहे ॥ ९ ॥

इति पञ्चमेनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

जिस प्रभावसे आपने विशाल जलोंको सिन्धुकी ओर रथकी
समान चला रक्खा है, अमृतके मार्गमें जानेके लिये हम उस
प्रभावकी याचना करते हैं ॥ ९ ॥

पञ्चम अनुवाकमें छःसौसवाँ सूक्त समाप्त (६३९)

अभिसवस्य पञ्चमेदनि “एन्द्र नो गधि मियः” इति उवय-
स्तोत्रियो भवति । तद् वक्तुं चैताने । “पञ्चम एन्द्र नो गधि मिय
इति” इति [वै० ८. ३] ॥

अभिसवके पञ्चम दिनमें, “एन्द्र नो गधि मियः” ये उवय-

स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, “
एन्द्र नो गधि प्रियः” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

एन्द्रं नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्व-
तस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥

आ । इन्द्र । नः । गधि । प्रियः । सत्राजित् । अगोह्यः ॥ गिरि ।

न । विश्वतः । पृथुः । पतिः । दिवः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप हमारे प्रिय हैं, हमको प्रियरूपमें ग्रहण करिये,
आप सत्पसे विजय पाने वाले हैं, कोई आपको छिपानहीं सकता,
आप पर्वतकी समान विशाल हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ॥ १ ॥

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्र ।

सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥

अभि । हि । सत्य । सोमपाः । उभे इति । बभूथ । रोदसी इति ।

इन्द्र । असि । सुन्वतः । वृधः । पतिः । दिवः ॥ २ ॥

हे सत्य इन्द्र ! आप अभिमुख होकर सोमका पान
हैं घुलोक और पृथिवीलोक दोनोंमें आप मकट होजाते हैं,
इन्द्र ! आप अभिषव करने वालेको बढ़ाने वाले और
... हैं ॥ २ ॥

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्रं दर्ता पुरामसि । हन्ता

दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥

त्वंम् । हि । शश्वतीनाम् । इन्द्र । दर्ता । पुराम् । असि ॥ हन्ताः

दस्योः । मनोः । वृधः । पतिः । दिवः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शारवत पुरोको तोड़ने वाले हैं, दस्युओं का
 नष्ट करने वाले हैं, मनुको बढ़ाने वाले हैं और स्वर्गके स्वामी हैं ३
 शूद्र मन्त्रों मदिन्तरं मिञ्च वांध्यर्थो अन्धसः । एवा
 हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥

मा । इव । ऊं इति । मध्वः । मदिन्तरम् । मिञ्च । वा ।
 अन्धसः इति । अन्धसः । एव । हि । वीरः । स्तवते । सदावृधः ४
 हे अन्धसः ! मधुमे भी अधिक मद करने वाले अन्नके भागसे
 इन इन्द्रदेवको वृद्ध करो, यज्ञमानकी सदा बढ़ातरी करने वाले
 वह इन्द्र स्तुति पाते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रं स्थातहरीणां नकिंष्टे पूर्णस्तुतिम् । उदानंश
 शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥

इन्द्र । स्थातः । हरीणाम् । नकिंष्टे । ते । पूर्णस्तुतिम् ॥ उद ।
 आनंश । शवसा । न । भन्दना ॥ ५ ॥

हे हरि नामक घोड़ों पर स्थित होने वाले इन्द्र ! आपके पूर्व
 कर्मोंके कारण की जाने वाली स्तुतिको और कन्याओंको कोई
 बलसे नहीं पासका है ॥ ५ ॥

तं वां वाजानां पतिमहमहि श्रवस्यवः । अमायुभि-
 र्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥

तम् । वः । वाजानाम् । पतिम् । अहमहि । श्रवस्यवः । अमा-
 युभिः । यज्ञेभिः । वृधेन्यम् ॥ ६ ॥

इति पञ्चमेनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

(३४८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

अन्नको चाहने वाले हम, इविरूप अन्नके स्वाधी इन्द्रको
आदान करते हैं । यह इन्द्रदेव सावधानतापूर्वक किये हुए यशों
से वास्त्वार चढ़ते हैं ॥ ६ ॥

पञ्चम अनुपाकमे सप्तादसर्षा मुक्त समाम् (६८०)

दशाहस्य नवमेदनि “एतो न्विन्द्रं स्तवाम” इति उच्यंस्तो-
त्रियो भवति । तद् युक्तं वैताने । “नवम एतो न्विन्द्रं स्तवामेति”
इति [वै० ८. ४] ॥

दशाहके नवमं दिनमें “एतो न्विन्द्रं स्तवाम” यह उच्यंस्तो-
त्रिय होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“नवम
एतो न्विन्द्रं स्तवामेति” (वैतानमूत्र ८ । ४.) ॥

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् । कृष्टीयां
विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥

एतो इति । तु । इन्द्रम् । स्तवाम । सखायः । स्तोम्यम् । नरम् ॥

कृष्टीः । यः । विश्वाः । अभि । अस्ति । एकः । इत् ॥१॥

मित्ररूप हम इस ओर आनेके लिये इन्द्रकी स्तुति करते हैं,
यह इन्द्र स्तुतिके पात्र हैं, नेना हैं, यह इन्द्र सकल कर्मफलोंको
असाधारणरूपसे प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

अगोरुधाय गविषे शुक्लाय दस्म्यं वचः । घृतात्
स्वादीयो मधुनश्च वोचत् ॥ २ ॥

अगोरुधाय । गोऽश्वे । शुक्लाय । दस्म्यम् । वचः ॥ घृतात् ।

स्वादीयः । मधुनः । च । वोचत् ॥ २ ॥

गौओंका न रोकने वाले, बाणीरूप अन्न वाले, दमकने वाले,

दर्शनीय इन्द्रके लिये हे स्तोताओं ! तुम घृत और शहदसे भी
मधुर वचनका उच्चारण करो ॥ २ ॥

यस्यामितानि वीर्या॑ न राघः पर्येतवे । ज्योतिर्न
विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥

यस्य । अमितानि । वीर्या । न । राघः । पर्येतवे ॥ ज्योतिः ।
न । विश्वम् । अभि । अस्ति । दक्षिणा ॥ ३ ॥

इति पञ्चमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

इन इन्द्रदेवमें कार्यको साधनेके लिये अमित वीर्य हैं और
दमरुती हुई दक्षिणा हैं ॥ ३ ॥

पञ्चम अनुवाकमें अष्टाविंशो सूक्त समाप्त (६८१)

स्तुहीन्द्रं व्यश्वदन्मि वाजिनं यमम् । अर्यो गयं
मंहमानं वि दाशुपे ॥ १ ॥

स्तुहि । इन्द्रम् । व्यश्वदन्म् । अन्मिम् । वाजिनम् । यमम् ॥
अर्यः । गयम् । मंहमानम् । वि । दाशुपे ॥ १ ॥

हे अश्विज ! घोड़ोंको छोड़कर यज्ञमें निश्चल भावसे विराज-
मान घनी और मशंसाके पात्र इन्द्रकी आप हविर्दाता यजमान
के कन्याणके लिये स्तुति करिये ॥ १ ॥

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्वदशमं नवम् । सुविद्भासं
चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥

एव । नूनम् । उप । स्तुहि । वैयश्व । दशमम् । नवम् ॥ सु-
विद्भासम् । चर्कृत्यम् । चरणीनाम् ॥ २ ॥

हे वैश्य ! आप सदा नवीन, दशम, परमविद्वान्, चरुणि-
का वारम्बार कर्तन करने वाले इन्द्रदेवकी स्तुति करिये ॥ २॥
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रं हस्त परिवृजम् । अहं हः
शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥

वेत्थ । हि । निःऽऋतीनाम् । वज्रं हस्त । परिऽवृजम् । अहःऽअहः ।
शुन्ध्युः । परिपदाम् इव ॥ ३ ॥

पञ्चमेऽनुवाके एकीनविंशं सूक्तम् ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! जैसे शोधक आदित्य प्रतिदिन परिपरी-
को (चारों ओर पतन करने वाली किरणें आदिको) जानते
हैं, इसी प्रकार आप पीड़ा देनेवाली शक्तियों के समूहको जानते हैं ।
पञ्चम अनुवाकमें उन्तीसवाँ सूक्त समाप्त (६८२)

पञ्चम अनुवाक समाप्त

पृष्ठयपटहस्य पष्ठेऽहनि मातःसवनमाध्यन्दिनयोर्द्वयोः सवनयोः
माकृतीनां प्रस्थितयाज्यानां पुरस्तात् “वनोति हि” इत्याद्याः
पारुच्छेप्याख्या श्रवः संवध्नाति । तद् उक्तं वैताने । “पृष्ठय-
पष्ठे वनोति हि सुन्वनं क्षयं परीणमः [२०. ६७] विश्वेषु हि
त्वा सवनेषु तुल्यते [२०. ७२] इति पारुच्छेपीरुपदधातिद्वयोः
सवनयोः पुरस्तात् प्रस्थितयाज्यानाम्” इति [वै० ६. १] ॥

पृष्ठयपटहके छठे दिन मातः सवन और माध्यन्दिन दोनों
सवनोमें माकृती प्रस्थितयाज्याओंसे पहिले “वनोति हि” आदिक
पारुच्छेप्या नामक श्रवाएँ पढ़ीं जाती हैं । इसी बातको वैतान-
सूत्रमें कहा है, कि—“पृष्ठयपष्ठे वनोति हि सुन्वनं क्षयं परीणमः
(२० । ६७) विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुल्यते (२० । ७२)

इति पारुच्छेपीरुपदधाति द्वयोः सवनयोः पुरस्तात् मस्थितयाज्या-
नाम्” (वैतानसूत्र ६ । १)

वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा
यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।

सुन्वान इत् सिंसासति सहस्रां वाज्यवृंतः ।

सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥

वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयम् । परीणसः । सुन्वानः । हि । स्म ।

यजति । अव । द्विषः । देवानाम् । अव । द्विषः ।

सुन्वानः । इत् । सिंसासति । सहस्रां । वाजी । अवृंतः ।

सुन्वानाय । इन्द्रः । ददाति । आऽभुवम् । रयिम् । ददाति । आऽ-

भुवम् ॥ १ ॥

सोमका अभिषव करने वाला पुरुष बहुतसे घरींको भास करता है, सोमका अभिषव करता हुआ अपने शत्रुओंका अवयजन करता है, और देवशत्रुओंका अवयजन करता है । सोमका अभिषव करने वाला सहस्रों वस्तुओंका दान करना चाहता है, अन्नसे सम्पन्न रहता है, और शत्रुओंसे घिरा हुआ नहीं रहता है । अभिषव करने वालेके लिये इन्द्रदेव पृथ्वीमरका घन देते हैं १

मो घु वो अस्मदभि तानि पौस्या सनां भूवन् हु-

म्नानि मोत जांरिपुरस्मत् पुरोत जांरिपुः ।

यद् वंश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।

(३५२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसरित

अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टं दिष्टता यच्च दुष्टम्
मो इति । ॥ वः । अस्मत् । अभि । तानि । पैंस्यां । सना ।

भुवन । घुम्नानि । मा । उत । जारिपुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिपुः
यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।

अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिष्टत । यत् ।

च । दुस्तरम् ॥ २ ॥

(हे मरुदणों !) आपके जो दमकते हुए पुरुषार्थमय तापक
तेज हैं, वे हमारे अभिमुख न हों, वे हमें जीर्ण न करें, वे हमें
जीर्ण न करें आपका जो घोषके कारण अमर्त्य नव्य चायनीष
बल है, उसको हममें स्थापित करो, उस शत्रुओंसे दुस्तर बल
को हममें स्थापित करो ॥ २ ॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातः
वेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।

य ऊर्ध्वयां स्वध्वरो देवो देवाव्यां कृपा ।

धृतस्य विभ्राष्टिमनुं वष्टि शोचिपाजुह्वानस्य सर्पिषः
अग्निम् । होतारम् । मन्ये । दास्वन्तम् । वसुम् । सूनुम् । सहसः ।

जातवेदसम् । विप्रम् । न । जातवेदसम् ।

यः । ऊर्ध्वयां । सुऽअध्वरोः । देवः । देवाव्यां । कृपा ।

घृतस्य । विष्म्राष्टिम् । अनु । वष्टि । शोचिषा । आऽजुहानस्य ।

सर्पिः ॥ ३ ॥

अग्निदेवको मैं देवताओंका होता, धनका प्रदान करनेवाला, बलका अनुम, उत्पन्न होने वालोंको जाननेवाले त्रिषकी समान जातवेदा मानता हूँ । यह अग्निदेव अपनी देवताओंको पहुँचने वाली समर्प ऊँची लपटसे यज्ञको सुन्दर बनाते हैं और होमेहुए घृतकी दमकको और घृतकी बिन्दुओंकी कामना करते हैं ॥३॥

यज्ञैः सम्मिश्राः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामं जुभ्रासो अजिपु
प्रिया उत ।

आसद्यां वह्निर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता
दिवो नरः ॥ ४ ॥

यज्ञैः । सम्मिश्राः । पृषतीभिः । ऋष्टिभिः । यामन । जुभ्रासः ।
अजिपु । प्रियाः । उत ।

आऽसद्य । वह्निः । भरतस्य । सूनवः । पोत्रात् । आ । सोमम् ।
पिबत । दिवः । नरः ॥ ४ ॥

हे भरण करने वाले इन्द्रके छोटे भाई मरुद्गणों ! तुम स्वर्गके नेता हो, तुम फलप्रदानके अवसर पर अपनी हीसती हुई पृषती नामक घोड़ियोंके द्वारा यज्ञोंमें आते हो, तुम पिय हो और जुभ्र हो, ऐसे आप कुशाओं पर बैठ कर पोत्रसे सोमका पान करो ४
आ वंचि देवाँ इह विप्र यक्षि त्रिशन् होतर्नि पंदा
योनिषु त्रिषु ।

(३५४) अथर्ववेदसंहिता समाप्य-भाषानुवादसहित

प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिवाग्नीध्रात् त्वं
भागस्य तृणुहि ॥ ५ ॥

आ । वृत्ति । देवान् । इह । विप्र । यत्ति । च । उशन् । होतः ।
नि । सद । योनिषु । त्रिषु ।

प्रति । वीहि । प्रस्थितम् । सोम्यम् । मधु । पिव । आग्नीध्रात् ।
त्वं । भागस्य । तृणुहि ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! आप इस यज्ञमें देवताओंको लाइये, और उनका
पूजन करिये, हे कामयमान होतः ! आप तीनों स्थानोंमें विराज-
मान हजिये, प्रस्थित भागको पहुँचानेके अनन्तरस्वयं भी भक्षण
करिये, और आग्नीध्रसे सोम्य मधुका पान करिये, इस प्रकार
अपने भागसे दत्त हजिये ॥ ५ ॥

एष स्य ते तन्वो नृमणवर्धनः सह योजः प्रदिवि
वाहोर्हितः ।

तुभ्यं सुतो मधवन् तुभ्यमाभृतस्त्वमेस्य ब्राह्मणादा
तृपत् पिव ॥ ६ ॥

एषः । स्यः । ते । तन्वः । नृमणवर्धनः । सहः । योजः । प्रदिवि ।
वाहोः । रितः ।

तुभ्यम् । सुतः । मधवन् । तुभ्यम् । आभृतः । त्वम् । अस्य ।
ब्राह्मणात् । आ । तृपत् । पिव ॥ ६ ॥

हे मघवन् ! यह सोम आपके शरीरके बलको बढ़ाने वाला है, विजिगीषाके लिये आपकी भुजाओंमें दूसरोंको दवानेकी शक्ति और भोज भरा हुआ है, हे इन्द्र ! यह सोम आपके लिये अभिपुन हुआ है, आपके लिये ही पात्रमें भरा गया है आप ब्राह्मणके द्वारा वृत्ति पर्यन्त इसका पान करिये ॥ ६ ॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददियो नाम् पत्यते ।

अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधुं पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिवं ऋतुभिः ॥ ७ ॥

यम् । ऊं इति । पूर्वम् । अहुवे । तम् । इदम् । हुवे । सः । इत् ।

ऊं इति । हव्यः । ददिः । यः । नाम् । पत्यते ।

अध्वर्युभिः । प्रस्थितम् । सोम्यम् । मधुं । पोत्रात् । सोमम् । द्रविणोदः । पिवं । ऋतुभिः ॥ ७ ॥

इति पष्ठेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

मैं जिन इन्द्रदेवका पहिले आवाहन किया करता था, अब भी उनका ही आवाहन करता हूँ, यह वही हव्य दिया जा रहा है, जो ऐश्वर्यसम्पन्न करता है, हे धनमद इन्द्र ! अध्वर्युओंके दिये हुए इस सोम्य मधुका समयानुसार पान करिये ॥ ७ ॥

छठे अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (६८३)

छन्दोमानां प्रथमेहनि प्रातःसवने “सुरूपकृत्नुमृतये” इति द्वादश ऋच आवापस्थाने आवापते । तद् उक्तं वैताने । “सुरूपकृत्नुमृतय इति द्वादशर्चः” इति [वै० ६. ३] ॥

(३५८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

हमारे शत्रु भी हमारे सौभाग्यका बखान करें, हम इन्द्रके ७५
मदान करने पर दर्शनीय खेतियों वाले होंगे ॥ ६ ॥

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्
यत्सखम् ॥ ७ ॥

आ । ईम् । आशुम् । आशवे । भर । यज्ञऽश्रियम् । नृमादनम् ॥

पतयत् । मन्दुपत्सखम् ॥ ७ ॥

हे स्तोतः । इन यज्ञकी शोभारूप, मनुष्योंको दणित करने
वाले, मित्रोंको प्रसन्न करने वाले आशुकारी इन्द्रको शरक
ऊपर भरण कर ॥ ७ ॥

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो
वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

अस्य । पीत्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । घनः । वृत्राणाम् ।

अभवः ॥ ८ ॥ प्रावः । वाजेषु । वाजिनम् ॥ ८ ॥

हे इन्द्र । आप इसके (सोमको) पीकर आवरक प्राप्त होने
वाले घन हूजिये । और युद्धोंमें हमारे घोड़ोंकी रक्षा करिये ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाज्यामः शतक्रतो । घना

नामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

तम् । त्वा । वाजेषु । वाजिनम् । वाज्यामः । शतक्रतो इति

शतऽक्रतो ॥ घनानाम् । इन्द्र । सातये ॥ ९ ॥

हे शनक्रतो इन्द्र ! हम आप यज्ञान्नसे सम्पन्नको यज्ञ वा संग्राममें आवाहन करते हैं । हे इन्द्र ! हम धनप्राप्तिके लिये संग्राम में वा यज्ञमें आपका आवाहन करते हैं ॥ ९ ॥

यो रायोऽवनिर्महान्सुंगारः सुन्वतः सखा । तस्मा
इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

यः । रायः । अवनिः । महान् । सुङ्गारः । सुन्वतः । सखा ॥
तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ १० ॥

जो इन्द्र धनके बड़े भारी रक्षक हैं, सुन्दरनाम पालन करने वाले हैं और सोमका अभिषेक करने वालेके मित्र हैं, उन इन्द्र के लिये हे स्तोताओं ! तुम स्तुतिका गान करो ॥ १० ॥

आ त्वेतां नि पीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय
स्तोमंवाहसः ॥ ११ ॥

आ । तु । आ । इत् । नि । पीदत । इन्द्रम् । अभि । प्र ।
गायत ॥ सखायः । स्तोमंवाहसः ॥ ११ ॥

हे स्तोमका बहन करने वाले मित्ररूप स्तोताओं ! तुम आओ और इधर बैठो तथा इन्द्रका गान करो ॥ ११ ॥

पुरुतमं पुरुषामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे
सचां सुते ॥ १२ ॥

पुरुतमम् । पुरुषाम् । ईशानाम् । वार्याणाम् । इन्द्रम् । सोमे ।
सचा । सुते ॥ १२ ॥

इति षष्ठेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

परमविशाल, और बड़े २ बरछीयोंके स्वामी इन्द्रदेवके
का अभिषेक होनेके साथ ही (आदान करो) ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६८४)

छन्दोपानां द्वितीयेहनि “स घा नो योग आ भुवत्” इति
द्वात्रिंशत् अथ आचपते । तद् उक्तं वैताने । “स घा नो योग
आ भुवदिति द्वात्रिंशत्” इति [वै० ६. ३] ॥

छन्दोपोंके द्वितीय दिनमें “स घा नो योग आभुवत्” इस
द्वात्रिंशत्की आचार्यें पढ़ी जाती हैं । इसी बातकी वैतानसूत्रमें
कहा है, कि—“स घा नो योग आभुवदिति द्वात्रिंशत्” (वैतान-
सूत्र ६. ३) ॥

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम् ।

गमद् वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥

सः । यः । नः । योगे । आ । भुवत् । सः । राये । सः । पुरं-
ध्याम् ॥ गमत् । वाजेभिः । आ । सः । नः ॥ १ ॥

पुरोंकी चिन्ताके अवसर पर वह इन्द्रदेव हमारे सामने प्रकट
होते हैं, वह अन्नोंके साथ हमारे पास आवें ॥ १ ॥

यस्य संस्थे न वृण्वते हरीं समत्सु शत्रवः । तस्मा
इन्द्राय गायत ॥ २ ॥

यस्य । सम्यस्ये । न । वृण्वते । हरी इति । समत्सु । शत्रवः ॥
तस्मै । इन्द्राय । गायत ॥ २ ॥

जिन इन्द्रदेवके स्थित होने पर संग्रामोंमें शत्रु इन्द्रके हरी

नामक घोड़ोंको नहीं घेरते हैं, उन इन्द्रदेवके लिये हे स्तोताओं !
तुम स्तुतिका गान करो ॥ २ ॥

सुत॒पान्ने सु॒ता इ॒मे शुच॑यो यन्ति वी॒तये॑ । सोमा॑ंसो
द॒ध्यांशि॑रः ॥ ३ ॥

सु॒त॒पान्ने । सु॒ताः । इ॒मे । शुच॑यः । यन्ति॒ । वी॒तये॑ । सोमा॑ंसः ।

दधि॑ऽमाशिरः ॥ ३ ॥

यह दधि पड़े, अभिषुत पवित्र सोम, अभिषुत सोमका पान
करने वाले इन्द्रदेवके भक्षणके लिये जा रहे हैं ॥ ३ ॥

त्वं सु॒तस्य॑ पी॒तये॑ स॒द्यो वृ॒द्धो अ॒जाय॑थाः । इन्द्र॑
ज्यैष्ठ्या॑य सु॒क्रतो॑ ॥ ४ ॥

स्वम् । सु॒तस्य॑ । पी॒तये॑ । स॒द्यः । वृ॒द्धः । अ॒जाय॑थाः ॥ इन्द्र॑ ।

ज्यैष्ठ्याय॑ । सु॒क्रतो॑ इति सु॒क्रतो॑ ॥ ४ ॥

हे सुक्रतो इन्द्र ! आप अभिषुत सोमका बड़ा पान करनेके
लिये शीघ्र ही बड़े होजाते हैं ॥ ४ ॥

आ त्वा वि॒शन्त्वा॒शवः॑ सोमा॑ंस इन्द्र गि॒र्वणः॑ । शं
ते सन्तु प्र॒चेत॑से ॥ ५ ॥

आ । त्वा । वि॒शन्तु॒ । आ॒शवः॑ । सोमा॑ंसः । इन्द्र॑ । गि॒र्वणः॑ ॥

शम् । ते । सन्तु॒ । प्र॒चेत॑से ॥ ५ ॥

हे स्तुतिपाँसे समझनीय इन्द्र ! कुर्ती देने वाले सोम आपमें
अभिमुख होकर प्रवेश करें । और आपके चित्तको शांति देने
वाले हों ॥ ५ ॥

त्वां स्तोमां अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां
वर्धन्तु नो-गिरः ॥ ६ ॥

त्वाम् । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वाम् । उक्था । शतक्रतो इति

शतक्रतो । त्वाम् । वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ६ ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! स्तोम आपको बढ़ाते हैं, उक्थ्य आपको
बढ़ाते हैं और हमारी वाणियों आपको बढ़ावें ॥ ६ ॥

अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्
विश्वानि पौस्या ॥ ७ ॥

अक्षितः सनेत् । इमम् । वाजम् । इन्द्रः । सहस्रिणम् ॥

यस्मिन् । विश्वानि । पौस्या ॥ ७ ॥

जिसमें सैंकड़ों प्रकारके सहस्रों पुरुषार्थ भरे हुए हैं उस यज्ञ
का अक्षुण्ण रक्षा वाले इन्द्रदेव सेवन करें ॥ ७ ॥

मा नो मर्ता अभि दृहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः ।
ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥

मा । नः । मर्ताः । अभि । दृहन् । तनूनाम् । इन्द्र । गिर्वणः ॥

ईशानः । यवय । वधम् ॥ ८ ॥

हे स्तुतिगोत्रे संयजनीय इन्द्र ! मनुष्य हमारे शरीरोंसे द्रोह
न करें आप हमारे ईश्वर हैं, अतः हमारे वधनिमित्तको दूर
करिये ॥ ८ ॥

युज्जन्तिं ब्रध्नमरूपं चरन्तं परिं तस्थुषः । रोचन्ते
रोचना दिवि ॥ ६ ॥

युज्जन्ति । ब्रध्नम् । अरूपम् । चरन्तम् । परिं । तस्थुषः ॥ रोचन्ते ।
रोचना । दिवि ॥ ६ ॥

महान्, दमकते हुए और स्यावर तथा जंगमोंके ऊपर विच-
रण करते हुए इन्द्रके रथमें हरि नामक अश्व जुतते हैं और वह
दमकते हुए अश्व धूलोकमें दमकते हैं ॥ ६ ॥

युज्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा घृष्ण
नृवाहसा ॥ १० ॥

युज्जन्ति । अस्य । काम्या । हरी इति । विपक्षसा । रथे ॥
शोणा । घृष्ण इति । नृवाहसा ॥ १० ॥

इन इन्द्रदेवके रथमें सारथी हरी नाम वाले अश्वोंको जोतते
हैं । ये अश्व कामना करने योग्य हैं, रथकी दोनों फरबटोंमें
रहते हैं, रक्त वर्ण वाले हैं, दबाने वाले हैं, सारथी आदि मनुष्यों
को सवारी देने वाले हैं ॥ १० ॥

केतुं कृणवन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुपद्भि-
रजायथा ॥ ११ ॥

केतुम् । कृणवन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे ॥ सम् ।

उपद्भिः । अजायथाः ॥ ११ ॥

हे मरणधर्मसहित मनुष्यों ! मग्नानरहित पुरुषको शान देने

बाले और भ्रंशकारसे आवृत्त होनेके कारण रूपरहित पदार्थको
रूप प्रदान करने वाले इन सूर्यात्मक इन्द्रदेवको तुम देखो, या
अपनी किरणोंके साथ प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥

आदहं स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमसि । दधाना नाम
यज्ञियम् ॥ १२ ॥

आह् । अहः । स्वधाम् । अनु । पुनः । गर्भत्वम् । आर्हसिरे ॥
दधानाः । नाम । यज्ञियम् ॥ १२ ॥

इति पठेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर ये मरुद्गण स्वधा देने वाले गर्भत्वको प्राप्त
होनाते हैं और यज्ञिय नामको धारण करते हैं ॥ १२ ॥

छठे अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (१८५)

छन्दोमानां तृतीयेहनि “वीलु चिदारुजत्नुभिः” इति पट्विंश-
तम् अक्षरः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “वीलु चिदा-
रुजत्नुभिरिति पट्विंशतम् आवपते” इति [वै० ६, ३] ॥

छन्दोमके तृतीय दिनमें “वीलु चिदारुजत्नुभिः” इस पट्विं-
शत्को अक्षरोंके आवापस्थानमें पड़े । इसी बातको वैतान-
सूत्रमें कहा है, कि—

वीलु चिदारुजत्नुभिर्गुहां चिदिन्द्रवह्निभिः । अविन्द
उसिया अनु ॥ १ ॥

वीलु । चिद् । आरुजत्नुभिः । गुहा । चिद् । इन्द्र । वह्निभिः ॥

अविन्दः । उसियाः । अनु ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आपने अपनी प्रकाशक भेदन करने वाली शक्तियों से, उत्सर्पणशील उषाके अनन्तर ही गुफामें स्थित धनको प्राप्त किया है ॥ १ ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छां विदद् वंसुं गिरः । महा-
मनूपत श्रुतम् ॥ २ ॥

देवयन्तः । यथा । मतिम् । अच्छ । विदत्स्वम् । गिरः ।
महाम् । अनूपत । श्रुतम् ॥ २ ॥

हे स्तुतिवाणियों ! जिस प्रकार हम देवताओंकी कामना करने वाले अपनी मतिको उनके अभिमुख कर सकें, उन प्रसिद्ध और महान् इन्द्रकी तुम स्तुति करो ॥ २ ॥

इन्द्रेण सं हि दत्तसे संजग्मानो अविभ्युषा । मन्द-
समानवर्चसा ॥ ३ ॥

इन्द्रेण । सम् । हि । दत्तसे । सम्जग्मानः । अविभ्युषा ॥ मन्द-
इति । समानवर्चसा ॥ ३ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! आप अभयवान् मरुद्गणसे मिलते हुए सदा ही देखे जाते हैं, मरुद्गण और आप दोनों एकत्र मिल कर नित्य प्रसुदिन होते हैं और आप दोनोंकी दीप्ति समान है ॥ ३ ॥

अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहंष्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य
कार्म्यैः ॥ ४ ॥

अनवद्यैः । अभिद्युभिः । मखः । सहंस्वत् । अर्चति ॥ गणैः ।
इन्द्रस्य । कार्म्यैः ॥ ४ ॥

(३६६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

निष्पाप और दमकते हुए इन्द्रके काम्यगणोंसे यत्न
शोभा पाता है ॥ ४ ॥

अतः परिज्मन्ना गंहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृजते गिरः ॥ ५ ॥

अतः । परिज्मन् । आ । गंहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि ॥
सम् । अस्मिन् । नृजते । गिरः ॥ ५ ॥

हे व्यापनशील इन्द्र ! आप इस भूलोकसे वा रोचनशील
धुलोकसे आइये, इन इन्द्रदेवमें वाणियों संयुक्त होती हैं ॥ ५ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रो
महो वा रजसः ॥ ६ ॥

इतः । वा । सातिम् । ईमहे । दिवः । वा । पार्थिवात् । अधि ।
इन्द्रम् । महः । वा । रजसः ॥ ६ ॥

हम इन्द्रदेवकी मासिको वह इस पार्थिव लोकमें हों तो हम
लोकसे, स्वर्गमें हों तो स्वर्गसे, महर्लोकमें हों तो महर्लोकमें
चाहते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमकंभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीं
रनूपत ॥ ७ ॥

इन्द्रम् । इत् । गाथिनः । बृहत् । इन्द्रम् । अकंभिः । अर्किणः ॥

इन्द्रम् । वाणीः । अनूपत ॥ ७ ॥

गायान करने वाले पुरुष इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं, पूजा करने वाले मन्त्रोंके द्वारा विशाल इन्द्रका ही पूजन करते हैं और वाणियों भी इन्द्रकी ही स्तुति करती हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र इन्द्रियोंः सचा समिश्च आ वंचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रः । इन्द्र । इन्द्रियोंः । सचा । समिश्चः । आ । वंचोऽयुजा ॥

इन्द्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव ही हरि नामक घोड़ोंके साथ रहते हैं, यह मन्त्रसे रथ में संयुक्त होने वाले घोड़ोंसे भली प्रकार प्राप्त होते हैं इन्द्रदेव ही हित रमणीय हैं और वज्रधारी हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ सूर्य रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमेरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रो । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यम् । रोहयद् । दिवि ॥

वि । गोभिः । अद्रिम् । ऐरयत् ॥ ९ ॥

इन्द्रदेवने दीर्घदर्शनके लिये सूर्यको आकाशमें चढ़ाया है और सूर्यात्मक इन्द्रने किरणोंसे मेघोंको बिदीर्ण किया है ॥ ९ ॥

इन्द्र वाजेषु नोव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिः कृतिभिः ॥ १० ॥

इन्द्र । वाजेषु । नः । अव । सहस्रप्रधनेषु । च । उग्रः । उग्राभिः ।

कृतिभिः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव । संहस्तों उत्कृष्ट धन वाले संग्राममें आप
रक्षा करिये, आप उग्र हैं अतः अपनी प्रचण्ड
हमारी रक्षा करिये ॥ १० ॥

इन्द्रं वयं महाधनं इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु
वज्रिणम् ॥ ११ ॥

इन्द्रम् । वयम् । महाधने । इन्द्रम् । अर्भे । हवामहे । युजम् ।
वृत्रेषु । वज्रिणम् ॥ ११ ॥

हम महाधनमाप्तिके अवसर पर वा स्वल्पमाप्तिके समय इन
का आवाहन करते हैं, यह आवरक शत्रुओं पर वज्रको संयुक्त
करने वाले हैं ॥ ११ ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपां वृधि । अस्मभ्य-
मम्रतिष्कृतः ॥ १२ ॥

सः । नः । वृषन्नम् । अम्रम् । चरुम् । सत्रादावन्नम् । अपः । वृधिः ॥
अस्मभ्यम् । अम्रतिष्कृतः ॥ १२ ॥

हे फलोंकी वर्षा करने वाले, और सत्य दान देने वाले इन्द्र ।
आप इस चरुका सेवन करिये और किसीसे न हटने वाले आप
हमको बढ़ाइये ॥ १२ ॥

तुजेतुजे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्दे
अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

तुज्जेतुज्जे । ये । उत्तरे । स्तोमाः । इन्द्रस्य । वज्रिणः ॥ न ।
विन्दे । अस्य । सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दानके अवसर पर, उनतोत्तर दानमें परिचुष्ट हुआ
[वज्रवारी इन्द्रके भिन २ स्तोत्रों का विचार करता है, उनमें
समाप्ति की ही मैं नहीं पाता ॥ १३ ॥

वृषां यूयेव वंसंगः कृष्टीरियुत्यो जंसा । ईशानो अमं-
तिष्कृतः ॥ १४ ॥

वृषा । यूयाश्च । वंसंगः । कृष्टीः । इयति । भोजसा ॥ ईशानः ।

अमतिष्कृतः ॥ १४ ॥

आप पुराणि वननीयगति वृषभके खेतिगोंको प्रेरित करने
की समान वज्रसे फलोंको प्रेरित करते हैं, आप ईशान हैं, और
अमतिष्कृत हैं ॥ १४ ॥

य एकं श्रवणीनां वसूनामिज्यति । इन्द्रः पथं क्षिती-
नाम् ॥ १५ ॥

यः । एकः । श्रवणीनाम् । वसूनाम् । इज्यति ॥ इन्द्रः । पथं ।

क्षितीनाम् ॥ १५ ॥

जो इन्द्रदेव अदितीय रूपमें मनुष्यों और पत्तोंके साथी हैं
और यह इन्द्रदेव पञ्च क्षितिगोंके साथी हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रं वो विश्वतस्परिह्वामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु
केवलः ॥ १६ ॥

इन्द्रम् । वो । विश्वतः । परि । ह्वामहे । जनेभ्यः ॥ अस्माकम् ।

अस्तु । केवलः ॥ १६ ॥

हम चारों ओरके माणियोंकी ओरसे (हटा कर)
आहान करते हैं, वह केवल हमारे ही हों ॥ १६ ॥

एन्द्रे सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमृतये
भर ॥ १७ ॥

आ । इन्द्र । सानसिम् । रयिम् । सजित्वानम् । सदासहम् ।
वर्षिष्ठम् । कृतये । भर ॥ १७ ॥

हे इन्द्रदेव । आप भीति देने वाले, धनरूप, सजित्वा, सदा-
सह और फलोंकी वर्षा करने वाले अपने बलकी हमारी रक्षा
करनेके लिये धारण करिये ॥ १७ ॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहे । त्वोतांसो
न्यर्वता ॥ १८ ॥

नि । येन । मुष्टिहत्यया । नि । वृत्रा । रुणधामहे । त्वाऽकृतांसः ।
नि । अर्चता ॥ १८ ॥

आपकी रक्षा वाले हमघोड़े वाले होकर आवरक एक शत्रुओं
को मुक्तीकी मारसे मार डालें ॥ १८ ॥

इन्द्र त्वोतांस आ वयं वज्रं घृणा दंदीमहि । जयंम
सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥

इन्द्र । त्वाऽकृतांसः । आ । वयम् । वज्रम् । घृणा । दंदीमहि ।
जयेम । सम् । युधि । स्पृधः ॥ १९ ॥

हे इन्द्र । आपकी रक्षा वाले हम वज्रकी मचण्डलासे प्रार्थ

करे और स्पर्श करने वालोंको युद्धमें जीत लें ॥ १६ ॥
वयं शूरेभिरस्तुभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्यामं
पृतन्यतः ॥ २० ॥

वयम् । शूरेभिः । अस्तुभिः । इन्द्र । त्वया । युजा । वयम् ॥
सासह्यामं । पृतन्यतः ॥ २० ॥

इति पण्डितानां चतुर्थं सूक्तम् ॥

। हे इन्द्रदेव । हम आपसे और अहिंसित शूरोसे, सम्पन्न हो-
कर, सेना लेकर अपने ऊपर चढ़ने वाले शत्रुओंको दबावें २०
उडे अनुशास्त्रमनुष्य सुक समाप्त (१८६)

“सं चोदय विप्रमर्षाक” [२०. ७१. ११] इत्यस्य विनि-
योगः “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” [२०. ४६] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“सं चोदय विप्रमर्षाक” (२० । ७१ । ११, इसका विनि-
योग “प्रणेतारं वस्यो अच्छा” (२० । ४६) के साथ कह दिया है
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न
प्रथिना शवः ॥ १ ॥

महान् । इन्द्रः । परः । च । नु । महित्वम् । अस्तु । वज्रिणे ॥
द्यौः । न । प्रथिना । शवः ॥ १ ॥

इन्द्रदेव महान् है और वस्तुष्ट है उन इन्द्रदेवके लिये महत्त्व
है उनका बल बलोककी समान विस्तृत होवे ॥ १ ॥

समोहे वा य आशंत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रांसो
वा धियायवः ॥ २ ॥

समुद्रोदे । वा । ये । आशत । नरः । तोक्ष्य । सनिती ।

विपातः । वा । विपाज्यवः ॥ २ ॥

जो बुद्धि चाहने वाले मेषावी पुरुष है, वे नेता मेषाप्रपुद में पुत्रके साथ भी युद्धमें व्याप्त होजाते हैं ॥ २ ॥

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिब्वते । उर्वीराशे
न काकुदः ॥ ३ ॥

यः । कुक्षिः । सोमपातमः । समुद्रः इव । पिब्वते ॥ उर्वीराशे ।

आपः । न । काकुदः ॥ ३ ॥

जो सोमका पान करने वाले इन्द्रदेवकी कुक्षि है वह कबूत वाले वृषभकी समान और विशाल जल वाले समुद्रकी समान बढ़ती है ॥ ३ ॥

एवा ह्यस्य सूनृतां विरूष्णी गोमती मही । पक्षा
शाखा न दाशुपे ॥ ४ ॥

एव । हि । अस्य । सूनृतां । विरूष्णी । गोमती । मही ॥ पक्षा

शाखा । न । दाशुपे ॥ ४ ॥

इनकी मधुर गोमदाप्री विशाल भूमि हवि मदान करने वाले पञ्चमानको पक्ष शाखाकी समान (फलमदान करनेवाली है ॥

एवा हि ते विभूतय ऊतये इन्द्र मावेते । सद्यश्चित्
सन्ति दाशुपे ॥ ५ ॥

तं रं । हि । ते । विष्मृतपः । ऊनयः । इन्द्र । याज्वते ॥ सधः ।

विद् । सन्ति । दाशुषे ॥ ५ ॥

हे पृथ्वीपति इन्द्र । आपकी रक्तक विभूतियों, हवि देने वाले पत्रमानके लिये शीघ्र ही उपस्थित होना ही है ॥ ५ ॥

एवा हांस्य काम्या स्तोमं उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमं पीतये ॥ ६ ॥

एव । हि । अस्य । काम्या । स्तोम । उक्थम् । च । शंस्या ॥

इन्द्राय । सोमं पीतये ॥ ६ ॥

इन्द्रको सोमका पान कराते समय स्तोम उक्थ और शंस्या (नामक स्तुतियों) इन्द्रदेवको कम्पनीय होती है ॥ ६ ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्मसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । मह्यं अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥

इन्द्र । आ । इहि । मत्सि । अन्यसः । विश्वेभिः । सोमपर्वभिः ॥

महान् । अभिष्टिः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आइये और संकल सोमपर्वोंसे तथा सोमरूपी अन्नसे आनन्दमें भरिये, आपकी अभिष्टि ओजसे बड़ी है ॥ ७ ॥

एमेन सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रि विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥

आ । ईम् । एनम् । सृजत । सुते । मन्दिम् । इन्द्राय । मन्दिने ॥

चक्रिम् । विश्वानि । चक्रये ॥ ८ ॥

हे अश्वघृष्यो ! दिपे हुए चययाश्रोसे और आप मोमकी रचना करो, यह सोम अभिषुत होने पर प्रसन्नता मय इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है संस्कृत क्रमोंसे सम्पन्न करते हुए इन्द्रको प्रसन्न करने वाला है ॥ ८ ॥

मत्स्वा सुशिप्रमन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्पणे । सचे
सवनेष्व ॥ ९ ॥

मत्स्व । सुशिप्र । मन्दिभिः । स्तोमेभिः । विश्वचर्पणे
सचा । पृथु । सवनेषु । आ ॥ ९ ॥

हे सचके साक्षी सुन्दर ठोड़ी वाली इन्द्र ! आप सवनोंमें सदा ही साथ इन आनन्दमय स्तोमोंसे भी हर्षमें भरिये ॥ ९ ॥

असृप्रमिन्द्र ते गिरः प्रतित्वामुदहासत । अजोषा
वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

असृप्रम् । इन्द्र । ते । गिरः । पति । त्वाम् । वृष । अहासत ॥
अजोषाः । वृषभम् । पतिम् ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! भीति न करने वाली स्त्रियों जैसे वृषभ पतिता त्याग देती हैं, क्या इसी प्रकार स्तुतिमें आपको त्यागती हैं ! नहीं ॥ १० ॥

सं चोदय चित्रमर्वाग् राघं इन्द्र वरेण्यम् । असदित
ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥

म् । घो॒र्य॒ । चि॒त्रम् । अ॒र्वाक् । रा॒घः । इ॒न्द्र । वरे॑ण्यम् ॥

अ॒सत् । इ॒त् । ते । वि॒ष्णुः । प्र॒भु ॥ ११ ॥

हे इन्द्रदेव ! कमनीय धनको हमारी ओर प्रेरित करिये, जो
मापका प्रभु वा विष्णु धन हो उसको प्रेरित करिये ॥ ११ ॥

अ॒स्मान्त्सु तत्र॑ चोद॒येन्द्र॑ रा॒घे रभ॑स्वतः । तुवि॑न्द्यु॒म्न
यश॑स्वतः ॥ १२ ॥

अ॒स्मान् । सु । तत्र॑ । घो॒र्य॒ । इ॒न्द्र । रा॒घे । रभ॑स्वतः ॥ तुवि॑-
न्द्यु॒म्न । यश॑स्वतः ॥ १२ ॥

हे परम दमकने वाले इन्द्र ! आप हमको यशस्वी महान्
पुरुषके धनके लिये प्रेरित करिये ॥ १२ ॥

सं गोम॑दिन्द्र॒ वाज॑न्व॒दस्मे पृ॒थु श्र॑वां बृ॒हत् । वि॒रवा॒-
यु॒र्धेऽक्षि॑न्तम् ॥ १३ ॥

सम् । गोम॑द् । इ॒न्द्र । वाज॑न्वद् । अ॒स्मे इति॑ । पृ॒थु । अ॒श्रवाः ।
बृ॒हत् ॥ वि॒रवा॑ऽभायुः । अ॒क्षि॑न्तम् ॥ १३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमको गोमोमे, यज्ञान्नसे सम्यन्त्र विशाल यश
प्रदान करिये और हमको क्षीणतारहित विशाल आयु प्रदान
करिये ॥ १३ ॥

अ॒स्मे धेहि॑ श्र॒वां बृ॒हद् द्यु॒म्नं स॑हस्र॒सात॑ंगम् । इ॒न्द्र
ता रा॒थिनी॑रिपः ॥ १४ ॥

अस्मे इति । घेहि । अन्नः । बृहत् । धुम्नम् । सहस्रऽसानम् ।
इन्द्र । ताः । रथिनीः । इषा ॥ १४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हममें सहस्रोंसे सेवनीय विशाल दमकते
को प्रदान करिये और रथिनी इषाओंको प्रदान करिये ॥
वसोरिन्द्र वसुपति गीर्भिर्गुणन्तं ऋग्मियम् । होम
गन्तारमूनये ॥ १५ ॥

वसोः । इन्द्रम् । वसुऽपतिम् । गीऽभिः । गुणन्तः । ऋग्मियम् ।
होम । गन्तारम् । ऊतये ॥ १५ ॥

स्तुतिमयी वाणियोंसे स्तुति करते हुए इस धनके स्वाधी,
वसुपति, ऋग्मिय और होमको प्राप्त होने वाले इन्द्रकी रक्षा
रक्षाकी पूजा करते हैं ॥ १५ ॥

सुनेसुते न्योक्से बृहद् बृहत एदरिः । इन्द्राय शूष
मर्चति ॥ १६ ॥

सुनेऽसुते । निऽभोक्से । बृहत् । बृहते । आ । इत् । अरिः ॥
इन्द्राय । शूषम् । अर्चति ॥ १६ ॥

पष्ठेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

इति पष्ठेनुवाकः ॥

न्योक्स्मै बृहत् इन्द्रके लिये प्रत्येक चार सोमका अभिषा
होने पर अरि इन्द्रके बलकी मशंसा करते हैं ॥ १६ ॥

छठे अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६८०) ,

छठा अनुवाक समाप्त

पृष्ठयपदहस्य पष्ठेहनि "विरवेषु हि त्वा सवनेषु तुज्जते" इत्य-
य विनियोगः "वनोति हि सुन्वन क्षयं परीणसः" [२०. ६७]
इत्यनेन सह उक्तः ॥

पृष्ठयपदहके छंदे दिन "विरवेषु हि त्वा सवनेषु तुज्जते" इस
का विनियोग "वनोति हि सुन्वन क्षयं परीणसः" (२० । ६७)
के साथ कह दिया है ।

विरवेषु हि त्वा सवनेषु तुज्जते समानमेकं वृषमण्यवः

पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् ।

तं त्वा नावं न पर्पणिं शूयस्य धुरिं धीमहि ।

इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिर्इन्द्रमायवः १

विरवेषु । हि । त्वा । सवनेषु । तुज्जते । समानम् । एकम् । वृष-
मण्यवः । पृथक् । स्वः । सनिष्यवः । पृथक् ।

तम् । त्वा । नावम् । न । पर्पणिम् । शूयस्य । धुरि । धीमहि ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । चितयन्त । आयवः । स्तोमेभिः । इन्द्रम् ।

आयवः ॥ १ ॥

आयवः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव । पृथक् २ स्वर्गकी चाहने वाले फलवर्षाके लिये
दीनता करने वाले, सब सवनोंमें केवल एक आपसे ही दान
भोगते हैं । हम जीकारूप, अन्नके पूले वाले आपको बलके बोझ
में नियुक्त करते हैं । यज्ञोंसे इन्द्रको मनोहित करते हुए हम लोक-
वासी स्तोत्रोंसे (इन्द्रकी स्तुति करते हैं) ॥ १ ॥

वि त्वां ततस्ते मिथुना अंवस्यवो व्रजस्य साता गव्य
स्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।

यद् गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्तां समूहसि ।

आविष्करिक्नु वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र स

वि । त्वा । ततस्ते । मिथुनाः । अंवस्यवः । व्रजस्य । साता
गव्यस्य । निःसृजः । सक्षन्तः । इन्द्र । निःसृजः ।

यद् । गव्यन्ता । द्वा । जना । स्वर्ः । यन्ता । समूहसि ।

आविः । करिक्नु । वृषणम् । सचाऽभुवम् । वज्रम् । इन्द्र । सचाऽभुवम्

अस चाहने वाले मिथुन, गव्य व्रजके दानके अवसर पर
आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते
हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो, जनोंको भली प्रज्ञा
पहिचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्षक सहायक
रूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ २ ॥

उतो नो अस्या उपसो जुपेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो

हवीमभिः स्वर्पाता हवीमभिः ।

यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषां वज्रि चिकेतसि ।

आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म शुधि नवीयसः

उतो इति । नः । अस्याः । उपसः । जुपेत । हि । अर्कस्य । बोधि ।

हविषः । हवीमभिः । स्वर्ऽसाता । हवीमभिः ।

इन्द्र । इन्द्र । हन्तवे । मृगः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि ।

॥ मे । अस्य । वेवसः । नवीयसः । मम । अधि । नवीयसः

इति सप्तमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

सूर्यकी झापिका इस उपाकी इतिकी हम स्वर्गका उपभोग करनेके लिये हवन करते हैं, हे वर्षक इन्द्र ! आप संग्राम करने शलोंको नष्ट करनेके लिये अपने वज्रको उठाते हैं, आप इस नवीन स्रष्टा (मेरे) मननीय स्तोत्रको सुनिये ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमे प्रथम सूक्त समाप्त (६८६)

पृष्ठयस्य चतुर्थेऽहनि “तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा” इति पुरस्तात्संपातसूक्तात् पट्टच आवपते । तासां प्रथमास्ति स्रष्टुः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थे तुभ्यदिमा सवना शूर विश्वेति पट् पुरस्तात्संपाताः । निसोर्धर्चशः” इति [वै० ६. २]

पृष्ठयके चौथे दिन “तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा” इसकी स्रष्टुः श्रुवाओंको सम्पातसूक्तसे पहिले पढ़े । इनमें पहिली तीन श्रुवाओंको अर्धर्चशः पढ़े । इसी वातको वैतानसूत्र ६ । २ में कहा है, कि—“चतुर्थे तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वेति पट् पुरस्तात् सम्पाताः” ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि । त्वं नृभिर्हव्यो विश्वघांसि ॥ १ ॥

तुभ्यं । इव । उमा । सवना । शूर । विश्वा । तुभ्यम् । ब्रह्माणि ।

वर्धना । कृणोमि । ताम् । नृभिः । हव्यः । विश्वा । असि १

हे शूर ! यह सब मवन आपके ही लिये है । मैं आपके लिये

ही इन मनुष्योंको वर्धक करता हूँ । आप मनुष्योंसे आहुति पाने के पात्र हैं और आप सबको पुष्ट करने वाले हैं ॥ १ ॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दुस्मोदंश्चुवन्ति महिमानमुग्र।
न वीर्यमिन्द्र ते न राघः ॥ २ ॥

नू । चित् । नू । ते । मन्यमानस्य । दुस्म । उक् । अश्नुवन्ति ।

महिमानम् । उग्र । न । वीर्यम् । इन्द्र । ते । न । राघः ॥ २ ॥

हे अभिमान रखने वाले उग्र इन्द्र ! आपकी महिमा छुहरयत्न वीर्य और धनको अन्य नहीं पासकते ॥ २ ॥

प्र वो महे महिष्ठये भरध्वं प्रचेतसे प्रसुमति कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्पणिषाः ॥ ३ ॥

प्र । वो । महे । महिष्ठये । भरध्वम् । प्रचेतसे । प्र । सुमतिम् ।

कृणुध्वम् । विशः । पूर्वीः । प्र । चर । चर्पणिषाः ॥ ३ ॥

हे याजकों ! तुम महत्त्व पानेके लिये महिष्ठ्य प्रचेतस इन्द्रका हविमे भरण करो, सुमति करो, हे मनुष्योंको अभिमत फलसे पूर्ण करने वाले ! आप प्रकृष्टरूपसे हनिका भक्षण करिये ॥ ३ ॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदया स्थं हरी यमस्य वहंतो त्रि
मूरिभिः ।

आ तिष्ठति मधवा सनश्नुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवं
ससतिः ॥ ४ ॥

यश । वज्रम् । हिरण्यम् । इत् । अथ । रथम् । हरी इति । यम् ।

अस्य । वहतः । नि । । मुरिऽभिः ।

आ । तिष्ठति । मयञ्चा । सनऽश्रुतः । इन्द्रः । वाजरथ । दीर्घ-

ऽश्रवसः । पतिः ॥ ४ ॥

जब सबको वशमें रखने वाले इन्द्रके हरी नामक अरव सुवर्णमय वज्रको और रथको लगायोंसे खेंचने लगते हैं, तब तपसे प्रसिद्ध महान्न और विनाल कीनिके स्वामी मयचा इन्द्र रथ पर अभि-
ष्टित होने हैं ॥ ४ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्पास्वा सचा इन्द्रः शमश्रूणि
हरिताभिः प्रुणुते ।

अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा
वनम् ॥ ५ ॥

सो इति । चिन् । नु । वृष्टिः । यूथ्पा । स्वा । सचा । इन्द्रः ।
शमश्रूणि । हरिता । अभि । प्रुणुते ।

अव । वेति । सुक्षयम् । सुते । मधु । उत । इत् । धूनोति ।
वातः । यथा । वनम् ॥ ५ ॥

बड़ी भारी वृष्टि इन्द्रकी अपनी ही है, और वह सहायक इन्द्र सोमलताओंसे अपनी मूँटोंको स्नान करा देते हैं, जैसे वायु वनको कँपाता है, इसी प्रकार वह सोमका अभिपव होने पर घर घर आते हैं और मधुको कँपित करते हैं ॥ ५ ॥

(३८२) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

यो वाचा विवांचो मृध्रवाचः पुरु सहस्राशिवा जघान
तत्तदिदं स्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे
शवः ॥ ६ ॥

यः । वाचा । विवाचः । मृध्रवाचः । पुरु । सहस्रा । अशिवा ।
जघान ।

तत्तत्तत् । इत् । अस्य । पौंस्यम् । गृणीमसि । पिता इव । यः ।
तविषीम् । वावृधे । शवः ॥ ६ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

जो इन्द्रदेव विकृत घोलने वालोंको अपनी बाणियोंसे कोमल
घाणी वाले कर देते हैं, सहस्रों अशुभकारियोंको मार डालते हैं,
इन्द्रदेवके उन २ पुरुषाथोंकी हम स्तुति करते हैं, जो पिताकी
समान महान् बलको बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (६८९)

पृष्ठयस्य पञ्चमेऽहनि पुरस्तात् संघातात् पङ्क्तिञ्छन्दस्कम् “यच्चिद्धि
सत्य सोमपाः” इति सूक्तम् आचक्षते । तस्य शंसनधर्ममपि सूत्र-
कार आह । तद् उक्तं वैताने । “पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा
इति पाङ्क्तं सप्तर्चम् । द्वा द्वौ वाचसाय पञ्चमं सन्तनोति । त्रयं वाच-
साय द्वयम्” इति [वै० ६. २] ॥ अस्य अर्थः पाङ्क्तस्य
एकैकस्य द्वा द्वौ पादौ संहता अनसाय अर्धर्चस्य त्रयं पञ्चमं
पादं मणवेनोपसंतनोति संवध्नाति । पादत्रयं संहतं वा अनसाय
अन्त्यपादद्वयं संहतं मणवेनोपसंतनोति इति ॥

पृष्ठयके पञ्चम दिनमें सम्पातसे पहिले पंक्ति छन्द वाले

“यच्चिद्धि सत्य सोमपाः” इस सूक्तको पढ़ें । इसके शंसनघम को भी सूत्रकारने कहा है, कि—“पञ्चमे यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति पातं सप्तर्चम् । द्वाँ द्वाववसाय पञ्चमं सन्तनोति । त्रयं वावसाय द्वयम्” (वैतानसूत्र ६ । २) इसका अर्थ यह है, कि—पातयके एक २ मन्त्रके दो दो मिले हुए पादोंका अवसान करके अर्घ्यर्चशस्त्रकी समान मणवसे उपसन्तान करना हुआ संयंपन करे । वा तीनों संहत पादोंका अवसान करके अन्तिम मिले हुए दो पादोंको मणवसे उपसन्तान करे ।

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू नं इन्द्र शंसय गोप्वरवेपु शुभ्रिपुं सहस्रपु

तुवीमघ ॥ १ ॥

यत् । चिद् । हि । सत्य । सोमपाः । अनाशस्ताः इव । स्मसि ।

आ । तू । नः । इन्द्र । शंसय । गोपु । अरवेपु । शुभ्रिपुं । सह-

स्रपु । तुविमघ ॥ १ ॥

हे सोमका पान करने वाले सन्त इन्द्र ! आप अनाशस्ता ही हैं, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारी सहस्रों गौधोंमें घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें अनाशस्तृत्वको कहिये ॥ १ ॥

शिप्रिन् वाजानां पते शचीं वस्तवं दंसनां । आ तू ० २

शिप्रिन् । वाजानाम् । पते । शचीं । वः । त्वं । दंसनां । ० २

हे सुन्दर ठोड़ी वाले घनोंके स्वामी शक्तिपति इन्द्र ! शत्रुधों को डंसनेकी शक्ति आपकी है, हे बहुधन इन्द्र उसको आप हमारे सहस्रों गौ घोड़ोंमें और शुभ्रियोंमें कहिये ॥ २ ॥

निष्वापया मिथुहृशां सस्ताम्वुध्यमाने । आ तू० ।

नि । स्वापय । मिथुहृशा । सस्ताम् । अ्वुध्यमाने । इति । ० २

दोनों नेत्रोंसे आप सुलाइये, अ्वुध्यमान होकर दोनों नेत्र सोवें, हे बहुधन इन्द्र ! हमारी गौओंमें घोड़ोंमें और पवित्र सहस्रों प्राणियोंमें निद्राको प्रदान करिये ॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः । आ तू० ४

ससन्तु । त्या । अरातयः । बोधन्तु । शूर । रातयः । ॥ ४ ॥

ये शत्रु निद्राके आधीन होजावें, हे शूर ! धन जागृत होजावें, हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे सहस्रों घोड़े गौ और पवित्र प्राणियोंमें धनको कहिये ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया । आ तू० ५

सम् । इन्द्र । गर्दभम् । मृण । नुवन्तम् । पापया । अमुया । ० ५

हे इन्द्र ! इस पापवृत्तिसे खदेड़ते हुए गधेका आप संहार करिये और हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारे घोड़े आदिमें संहारक शक्ति दीजिये ॥ ५ ॥

पतांति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि आ तू० ६

पताति । कुण्डृणाच्या । दूरम् । वातः । वनात् । अधि । ० ६

कुण्डृणाचीके द्वारा वायु वनसे दूर जाता है हे बहुधन इन्द्र ! आप हमारी गौ घोड़े और सहस्रों पवित्र प्राणियोंमें कुण्डृणाची कहिये ॥ ६ ॥

सर्वं परिक्रोशं जंहि जम्भया कृकदाश्वम् ।

आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु
तुवीमघ ॥ ७ ॥

सर्वम् । परिऽक्रोशम् । जहि । जम्पय । कृकदारवम् ।

आ । तू । नः । इन्द्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु ।
सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ७ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप सब परिक्रोशको दूर करिये, और कृकदारव
का नाश करिये, और हे बहुयन इन्द्र ! हमारी गौ घोड़े और
पवित्र प्राणियोंमेंसे परिक्रोशको हटाइये ॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (६९०)

पृष्ठयस्य पष्ठेऽहि पुरस्तात् संपातात् “वि त्वा ततस्ते मिथुना
अवस्यवः” इति तिस्रः सप्तपदा आवपते सूत्रोक्तप्रकारेण प्रणवे-
नोपसंतनोति च । तद् उक्तं वैताने । “पष्ठे वि त्वा ततस्ते मिथुना
अवस्यव इति । सप्तपदानामेकप्रवसाय द्वयं सन्तनोति । द्वयम-
वसाय द्वयम्” इति [वै० ६. २] ॥ अस्य अर्थः । सप्तपदानां
तिस्रणामृचाम् एकैकस्यामृचि एकैकं पदम् अवसाय पदत्रयं प्रण-
वेनोपसंतनोति । तथा परं पादद्वयमवसाय अपर पादद्वयं प्रणवे-
नोपसंतनोति ॥

पृष्ठयके छठे दिन सम्पातसे पहिले “वि त्वा ततस्ते मिथुना
अवस्यवः” इन तीन सप्तपदोंका आवपन करे और सूत्रोक्तरीति
से प्रणवसे उपसन्तान भी करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है । “पष्ठे वि त्वा ततस्ते मिथुना अवस्यव इति । सप्तपदानामेक-
प्रवसाय द्वयं सन्तनोति । द्वयमवसाय द्वयम्” (वैतानसूत्र ६ । २)

इसका अर्थ यह है, कि—सप्तपदोंकी तीन अक्षरोंमेंसे एक एक अक्षरमें एक २ पदका अवसान करके तीन पादोंका मणवसे उपसंतान करे।

वि त्वां ततस्ते मिथुना अंवस्यवो ब्रजस्य साता
गव्यस्य निःसृजः सत्तन्त इन्द्र निःसृजं ।

यद् गव्यन्तां द्वा जना स्वर्यन्तां समूहसि ।

आविष्करिक्त्वा वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवं

वि । त्वा । ततस्ते । मिथुनाः । अंवस्यवः । ब्रजस्य । साता ।

गव्यस्य । निःसृजः । सत्तन्तः । इन्द्र । निःसृजः ।

यद् । गव्यन्तां । द्वा । जनां । स्वः । यन्तां । समूहसि ।

आविः । करिक्त्वा । वृषणम् । सचाभुवम् । वज्रम् । इन्द्र ।

सचाभुवम् ॥ १ ॥

अन्न चाहने वाले मिथुन, गव्य ब्रजके दानके अवसर पर आपमें ध्यान लगाते हुए आपको फलप्रदानके लिये प्रेरित करते हैं आप स्वर्गको जाने वाले गव्यन्त दो जनोंको भली प्रकार पहचानते हैं, हे इन्द्र ! उस समय आप अपने वर्णक सहायक-रूप वज्रको प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥

विदुष्टं अस्य वीर्यस्य पूग्वः पुरो यदिन्द्रं शारदीर-
वातिरः सासहानो अवातिरः ।

शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयंज्युं शवसस्पते ।

म॒हीमंमु॒ष्णाः पृथि॒वीमि॒मा अ॒पो म॑न्द॒सान॒ इ॒मा अ॒पः

वि॒दुः । ते । अ॒स्य । वी॒र्य॑स्य । पु॒रवः । पु॒रः । यत् । इन्द्र ।

शा॒रदीः । अ॒व॒ऽअति॑रः । स॒स॒हानः । अ॒व॒ऽअति॑रः ।

शा॒सः । तम् । इन्द्र । म॒र्त्यम् । अ॒य॒ऽयु॑म् । श॒वमः । प॒ते ।

म॒हीम् । अ॒मु॒ष्णाः । पृथि॒वीम् । इ॒माः । अ॒पः । म॒न्द॒सानः ।

इ॒माः । अ॒पः ॥ २ ॥

मनुष्य इन इन्द्रके वीर्योंको जानते हैं, कि-जो यह शरद्वृक्ष का वस्तुओंमें अवनीर्ण होते हैं यह शत्रुओंको बारम्बार टबाते हुए अवनीर्ण होते हैं, हे बलके अधिष्ठात्रीदेवता इन्द्र ! जो मरण-धर्मी पुरुष आपका यजन नहीं करता है, उसका आप शासन करिये, और इस विशालपृथिवीको और अमुष्ण जलोंको हर्षित करिये ॥ २ ॥

आदि॒त् ते॒ अ॒स्य वी॒र्य॑स्य च॒र्कि॑र॒मन्दे॑षु वृ॒षन्नु॒शिजो॑

यदा॒वि॒ंथ स॒खीय॑तो यदा॒वि॒ंथ ।

च॒क॒र्य॑ क॒ारमे॑भ्यः पृ॒त॒नासु॑ प्र॒व॒न्त॒वे ।

ते अ॒न्याम॑न्यां न॒द्यः स॒निष्ण॑त श्र॒व॒स्यन्नः॑ स॒निष्ण॑त

आ॒त् । इ॒त् । ते । अ॒स्य । वी॒र्य॑स्य । च॒र्कि॑न् । म॒देषु॑ । वृ॒षन् ।

वृ॒षिजः॑ । यत् । आ॒वि॒ंथ । स॒स्ति॒ऽयनः॑ । यत् । आ॒वि॒ंथ ।

च॒क॒र्य॑ । क॒ारम् । ए॒भ्यः । पृ॒त॒नासु॑ । प्र॒व॒न्त॒वे ।

ते । अन्याम् अन्याम् । नद्यम् । सनिष्णुत । श्रवस्पन्तः ।
सनिष्णुत ॥ ३ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

हे वृषन् ! अब हम आपके वीर्यको (कहते हैं, कि-) हे कांति-
मय जलों ! तुम इन्द्रदेवको मद होने पर रक्षा करते हो, सखि-
भाव रखने वालोंकी रक्षा करते हो, और पृतनाओंमें सेवन करने
के लिये कृत्योंको करते हो, तुम दूसरी २ नदियोंका आश्रय
लो, अन्न देते हुए स्नान कराओ ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमें चतुर्थ सूक्त समाप्त (६९१)

पृष्ठयस्य पृष्ठेह्न्येव पूर्वोक्तसप्तपदाभ्योनन्तरं पुरस्तात् संपाताद्
“वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इत्यष्टर्चम् आचपते । तद् उक्तं
वैताने । “वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च” इति
[वै० ६. २] ॥

तथा छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरहोः माध्यंदिने सवने उप-
रिष्ठात् संपाताद् अष्टर्चम् [२०. ७६] “आ सत्यो यातु मघवाँ
अजीषी” [२०. ७७] इति सूक्तं आचपते । तद् उक्तं वैताने ।
“उत्तरयोरष्टर्चम् आ सत्यो यातु मघवाँ अजीषीति आचपते”
इति [वै० ६. ३] ॥ “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इत्यस्य
अष्टर्चम् इति संज्ञा ॥

पृष्ठयके छठे दिन ही पूर्वोक्त सप्तपदाओंके अनन्तर
संपातसे पहिले “वने न वा यो न्यधायि चाकन्” इस आठ
अन्वा वाले सूक्तको पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-
“वने न वा यो न्यधायि चाकन्नित्यष्टर्चं च” (वैतानसूत्र ६।२)

तथा छन्दोमोके द्वितीय तृतीय दिनोंमें माध्यंदिन सवनमें
संपातसे पहिले आठ अन्वा वाले (२० । ७६) को और “आ

सत्यो यातु मयर्वा ऋजीषी" इस ! (२० । ७७) मूक्तको भी पढ़े । इसी बातको वैतानमूक्तमें कहा है, कि—“उत्तरपौरुषाचेम् आ सत्यो यातु मयर्वा ऋजीषीनि चावपते” (वैतानमूत्र ६।३) “वने न वा यो न्यवायि चाकन्” इसकी अष्टव संज्ञा है ।
वने न वा यो न्यवायि चाकं छुर्विवा स्तोमो भुर-

णावजीगः ।

यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होतां नृणां नयो नृतमः क्षपा-
वान् ॥ १ ॥

वने । न । वा । यः । नि । अथापि । चाकन् । शुचिः । वाम् ।
स्तोमः । भुरणा । अजीगरिति ।

यस्य । इत् । इन्द्रः । पुरुदिनेषु । होतां । नृणाम् । नयो ।
नृतमः । क्षपावान् ॥ १ ॥

हे देवताओंका भरण करने वाले भुगएय अश्विनोङ्कमारों ! जो यह स्तोम हममें निहित है, यह दोषरहित है और पक्षिपुत्रके वृत्त मेंसे देवनेकी समान इन्द्रकी कामना करता है (यह वह स्तोम है, कि—) जिसके इन्द्र बहुत दिनोंसे आहाता थे, कि—इसमें कोई मेरी स्तुति करे । वह इन्द्रदेव मनुष्योंमें भी मनुष्यनम है अर्थात् शूरोमें भी शूर हैं, और सोमका भाग पाने वाले हैं, यह स्तोम उन ही की ओर जाता है ॥ १ ॥

प्र ते अस्या उपसः प्रापंस्य नृतौ स्याम नृतमस्य
नृणाम् ।

अनुं त्रिशोकः शतमावहन्नृन् कुत्सेन्न रथो यो असत्
ससवान् ॥ २ ॥

म । ते । अस्याः । उपसः । म । अपरस्याः । नृती । स्याम ।
नृत्तमस्य । नृणाम् ।

अनु । त्रिशोकः । शतम् । आ । अवहत् । नृन् । कुत्सेन ।
रथः । यः । असत् । ससवान् ॥ २ ॥

हम इस दूसरी उपाके पारको प्राप्त होवें, और शरोंमें शूर
इन्द्रकी नृतिमें रहें, त्रिशोक नामक अपि मनुष्योंको सँकड़ों उपाओं
को प्राप्त करा चुके हैं, जो संसाररूपी रथ है वह कुत्स अपि
के द्वारा अन्न वाला हुआ है ॥ २ ॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि
धाव ।

कद् बाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्या
मुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥

कः । ते । मदः । इन्द्रः । रन्त्यः । भूत् । दुरः । गिरः । अभि ।
उग्रः । वि । धाव ।

कत् । बाहः । अर्वाक् । उप । मा । मनीषा । आ । त्वा ।
शक्याम् । उपमम् । राधः । अन्नैः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! कौनसा हर्षमद स्तोम, आपको मसन्न करता हुआ
 हमारे लिये दाता होसकता है, हे उग्र ! आप स्तोत्ररूप बाणियों
 की ओर दाँड़िये, कौनसा अरव बुद्धिसे आपको मेरे पास लावेगा
 आप उपमाके योग्यको मैं अन्नोसे (हवियोंसे) साथ सकूँगा
 कद्रुं शुम्भमिन्द्रत्वावन्तो नृन् कयां धिया करसे कन्न
 आगन् ।

मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यद-
 सन्मनीषाः ॥ ४ ॥

कद्रु । ऊँ इति । शुभ्रम् । इन्द्र । त्वाऽवन्तः । नृन् । कयां । धिया ।
 करसे । कद्रु । नः । आ । अगन् ।

मित्रः । न । सत्यः । उरुगाय । भृत्यै । अन्ने । समस्य । यत् ।
 असन् । मनीषाः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! आप अपनी शरणमें रहने वाले मनुष्योंको किस
 बुद्धिसे दमकते हुए करते हैं, हे विशालकीर्ति ! आप सच्चे मित्रकी
 समान भृतिके लिये अन्नमें जो इसकी बुद्धिमें हो, (उनको करिये)
 प्रेरय सूर्ये अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव
 गमन् ।

गिरंश्च ये ते तुविजात पूर्वोर्नरं इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ५
 प्र । ईरय । सूरः । अर्थम् । न । पारम् । ये । अस्य । कामम् ।
 जनिधाः इव । गमन् ।

गिरः । च । ये । ते । तुविज्जात । पूर्वीः । नरः । इन्द्र । मनिः-

शिक्षन्ति । अन्नैः ॥ ५ ॥

हे सूर्यात्मक इन्द्रदेव ! आप हमको अर्थकी समान पार पहुँचाइये, जो इसकी अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये माताकी समान प्राप्त होती है, और हे तुविजात ! जो आपकी प्राचीन स्तुतियाँ हैं (उनको आप इस यजमानके हितके लिये प्रेरित करिये) हे इन्द्र ! नेता पवन इसको अन्न प्रदान करें ॥ ५ ॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी
काव्येन ।

वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाधन् भवन्तु पीतये
मधूनि ॥ ६ ॥

मात्रे इति । नु । ते । सुमिते इति सुमिते । इन्द्र । पूर्वी इति ।
द्यौः । मज्मना । पृथिवी । काव्येन ।

वराय । ते । घृतवन्तः । सुतासः । स्वाधन् । भवन्तु । पीतये ।
मधूनि ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! निर्माता सुमित् आपके लिये पूर्वी पृथिवी और द्यौ अपने वंधक काव्यके साथ (हितकारी हों) ये घृत वाले निचोड़े हुए सोम आपके पीनेके लिये स्वाद वाले हों ॥ ६ ॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमन्त्रमिन्द्राय पूर्णं स हि
सत्यराधाः ।

स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि कृत्वा नर्यः
पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

आ । मन्वः । अस्यै । असिचन । अमन्त्रम् । इन्द्राय । पूर्णम् ।
सः । हि । सत्यपराधाः ।

सः । ववृधे । वरिमन् । आ । पृथिव्याः । अभि । कृत्वा । नर्यः ।
पौंस्यैः । च ॥ ७ ॥

इस पात्रको इन्द्रदेवके लिये पूर्णरूपसे मधुसे भर दिया गया है, वह इन्द्रदेव ही सत्यसे साधे जाते हैं, वह मनुष्योंके हितकारी बनने-पुरुषार्थो करके पृथ्वीसे बढ़ते हैं ॥ ७ ॥

व्यान्लिन्द्रः पृतना स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय
पूर्वीः ।

आस्मा रथं न पृतनासु तिष्ठयं भद्रया सुमत्या चोदयासे

वि । आनन् । इन्द्रः । पृतनाः । सुऽओजाः । आ । अस्मै । यतन्ते ।
सख्याय । पूर्वीः ।

आ । स्म । रथम् । न । पृतनासु । तिष्ठ । यम् । भद्रया । सुऽ-
मत्या । चोदयासे ॥ ८ ॥

॥ इति सप्तमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

सुन्दर बल वाले इन्द्र इन सेनाओंमें व्याप्त होगए हैं, इनकी मित्रता करनेके लिये बहुतसी सेनाएँ चेष्टाएँ करती हैं, आप

जिसे अपनी सुमतिसे मेरणा करते हैं, उस सुमतिसे आप रथ की समान हमारी सेनामें स्थित हजिये ॥ ८ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (६९२)

छन्दोमानां द्वितीयतृतीययोरहोः “आ सत्यो यातु भवर्षा ऋजीपी” इत्यस्य त्रिनियोगः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

छन्दोमके द्वितीय तृतीय दिनोंमें “आसत्यो यातु भवर्षा ऋजीपी” इसका त्रिनियोग पूर्वसूक्तमें कहा है ।

आ सत्यो यातु भवर्षा ऋजीपी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः
तस्मा इदन्धः सुपुमा सुदत्तमिहाभिपित्वं करते गृणानः

आ । सत्यः । यातु । भवर्षान् । ऋजीपी । द्रवन्तु । अस्य ।

हरयः । उप । नः ।

तस्मै । इत् । अन्धः । सुपुम । सुदत्तम् । इह । अभिपित्वम् ।

करते । गृणानः ॥ १ ॥

सत्य, घनवान्, सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव आँवें, इनके घोड़े हमारे पासको दीँड़ें, हम उनके लिये ही सोमरूपी अन्नका अभिषेक कर रहे हैं, इसी कारण जो स्तुति करने वाला है, वह यहाँ ही स्नान आदि कर रहा है ॥ १ ॥

अवस्य शूराध्वनो नान्तेस्मिन् नो शय्य सवने मन्दर्ष्यं
शंसात्सुक्थमुशनेव वेधाश्चिंकितुषं असुर्याय मन्म

अव । स्य । शूर । अध्वनः । न । अन्ते । अस्मिन् । नः । अय ।

सवने । मन्दर्ष्यं ।

शंसाति । उक्थम् । उशनाऽश्व । वेधाः । चित्रितुषं । अमुर्याय । मन्म

हे शूर ! हमारे पासमें आप मार्गको बाँधसा दीजिये और आज इस हमारे यज्ञमें मदमें भरिये, यह वेधा ज्ञानवान् इन्द्रके लिये शुक्राचार्यकी समान मननीय उक्थका उच्चारण कर रहे हैं २ कविर्न निरयं विदधांनि साधन् वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।

दिव इत्या जीजनत् सप्त कारूनह्नां विचक्रुर्वयुनां गृणन्तः ॥ ३ ॥

कविः । न । निरयम् । विदधांनि । साधन् । वृषा । यत् । सेकम् । विपिपानः । अर्चात् ।

दिवः । इत्या । जीजनत् । सप्त । कारून । अहं । चित्र । चक्रुः । वयुना । गृणन्तः ॥ ३ ॥

फलोंकी वर्षा करने वाले इन्द्र वर्षा करके पृथ्वीको पूर्ण करते हुए आवें इस लिये चतुर धृतिव्रज निश्चितसा यज्ञोंको साथ रहा है, विजिगीषासे इस प्रकार सात स्तोत्रोंको मकट किया है और वह सुन्दर स्तोत्रोंका उच्चारण कर रहे हैं ॥३॥ स्वं यद् वेदिं सुदृशीकमर्कर्महि ज्योतीं रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।

अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यंश्चकार नृतमो अभिष्टां ॥ ४ ॥

(३६६) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

स्यः । यत् । वेदि । सृष्टशोकम् । अर्कैः । महि । ज्योतिः । रुरुः ।

यत् । ह । वस्तोः ।

अन्धा । तमोसि । दुधिना । विश्वसे । नृभ्यः । चकार । नृनमः ।

अभिष्टौ ॥ ४ ॥

जिन मन्त्रोंके द्वारा गली मकार देखने योग्य स्वर्ग जाना जाता है और जो मन्त्र दिनकी परम ज्योति-सूर्य-को दमकाते हैं और जो सूर्यात्मक इन्द्र दूर होने पर भी घोर अन्धकारको दूर करके प्रकाश करते हैं और जो परम शूर अभिष्टि स्थापित कर देते हैं, (उनके लिये मणाम है) ॥ ४ ॥

ववत् इन्द्रो अमितमृजीप्युं१ भे आ पंप्री रोदसी महित्वा
अतंश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना
वभूव ॥ ५ ॥

ववत् । इन्द्रः । अमितम् । अजीपी । उभे इति । आ । पंप्री ।

रोदसी इति । महित्वा ।

अतः । चिद् । अस्य । महिमा । वि । रेचि । अभि । यः । विश्वा ।

भुवना । वभूव ॥ ५ ॥

यह सोमका पान करने वाले इन्द्रदेव अमित धनको (यजमानोंके पास) पहुँचाते हैं और अपनी महिमा अलोक और भूलोक दोनोंको भर देते हैं, जो यह सब भूतनोंमें व्याप्त होगए हैं, इस लिये इनकी महिमा अधिक है ॥ ५ ॥

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरैच सखिभि-
निक्रामैः ।

अश्मानं चिद् ये विभिदुर्वचाभिर्ब्रजं गोमन्तमुशिजो
वि वव्रुः ॥ ६ ॥

विश्वानि । शक्रः । नर्याणि । विद्वान् । अपः । रिरैच । सखिऽ-
भिः । निऽक्रामैः ।

अश्मानम् । चिद् । ये । विभिदुः । वचःऽभिः । ब्रजम् । गोऽ-
मन्तम् । उशिजः । वि । वव्रुरिति वयुः ॥ ६ ॥

विद्वान् इन्द्रदेवने मनुष्योंका हित करने वाले जलोको, इन्द्रा-
नुसार चलने वाले मित्र (—रूप मेघों) से बढ़ाया है, वे जल
अपनी बाणीसे (गड़गड़ाहटमे) पत्थरोंको भी विदीर्ण कर
डालते हैं—अलग अलग कर देते हैं और कामना करते हैं तो
गोमो वाले ब्रजको घेर लेते हैं ॥ ६ ॥

अपो वृत्रं वन्निवांसं पराहन् प्रावन्त् ते वज्रं पृथिवी
सचेताः ।

प्राणीसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवं छवन्सा शूर धृष्णो
अपः । वृत्रम् । वन्निवांसम् । परा । अहन् । म । आवन् । ते ।
वज्रम् । पृथिवी । सऽचेताः ।

म । अणोसि । समुद्रियाणि । ऐनोः । पतिः । भवन् । शवसा ।

शूर । घृणो इति ॥ ७ ॥

जलोंने आवरण करते हुए मैयको विदीर्ण कर डाला है और पृथिवी सावधान होकर (हे इन्द्र) आपके वज्रकी रक्षा करती है और समुद्रके जलोंकी रक्षा करती है, हे धर्मक शूर इन्द्र ! आप बलपूर्वक इसके स्वामी बनते हैं ॥ ७ ॥

अपो यदाद्रिं पुरुहूत ददराविभुवत् सरमा पूर्ण्य ते ।
स नो नेता वाजमा दपि भूरि गोत्रा रुजन्नङ्गिरो-
भिर्गृणानः ॥ ८ ॥

अपः । यद् । अद्रिम् । पुरुहूत । ददः । आभिः । भुवत् । सरमा ।
पूर्ण्यम् । ते ।

सः । नः । नेता । वाजम् । आ । दपि । भूरिम् गोत्रा । रुजन् ।
अङ्गिरःभिः । गृणानः ॥ ८ ॥

इति सप्तमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

हे बहुतसें यजमानोंमे आहूत इन्द्र ! आप जो पर्वतको वा मैय को जल प्रदान करते हैं, वह आपसे पहिले ही प्रकट होकर चलते हैं, ऐसे नेता आप अंगिरागोत्री ऋत्विजोंसे स्तुति पाते हुए मैयोंको विदीर्ण करते हुए हमें बहुतसा अन्न प्रदान करते हैं ॥

सप्तम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (६६३)

वाजपेये “तद् वो गाय” इति स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं यैताने । “तद् वो गायेनि स्तोत्रियः” इति [वै० ४, ३] ॥

तथा बृहस्पतिसवे “तद् वो गाय सुते सचा” [२०, ७८]
 “वयमेनमिदाद्यः” [२०, ६७] एतां आज्यपृष्ठस्तोत्रिणौ यथा-
 क्रमं भवतः । तद् उक्तं वैताने । “बृहस्पतिसवे तद् वो गाय सुते
 सचा वयमेनमिदाद्य इति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा तत्रैव प्रातःसवनमाध्यन्दिनसवनयोः एतावेव उक्त्वमुखीयं
 तृचपर्यासश्च भवतः माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम् । तद् उक्तं
 वैताने । “सवनयोरुक्त्वमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्य-
 तृचवर्जम्” इति [वै० ८. १] ॥

तथा सर्वजित्पृथगे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये च चतुर्ध्वंकाहेषु “तद्
 वो गाय सुते सचा” “वयमेनमिदाद्यः” एतां आज्यपृष्ठस्तोत्रिणौ
 भवतः । तद् उक्तं वैताने । “सर्वजित्पृथगे मरुत्स्तोमे सहस्रान्त्ये
 तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाद्य इति” इति [वै० ८. १] ॥

वाजपेयमें “तद् वो गाय” यह स्तोत्रिय होता है । इसी बात
 को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तद् वो गायेति स्तोत्रिया”
 (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा बृहस्पतिसवमें “तद् वो गाय सुते सचा” (२०।७८)
 “वयमेनमिदाद्यः” (२०।६७) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिण
 होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“बृहस्पतिसवे
 तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाद्यः” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा तहाँ ही प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवनमें ये ही उक्त्व-
 मुखीय और तृचपर्यास होते हैं और माध्यन्दिनमें पर्यासाद्यतृच
 नहीं होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सवन-
 मोरुक्त्वमुखीयतृचपर्यासौ । माध्यन्दिने पर्यासाद्यतृचवर्जम्”
 (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा सर्वजित् ऋषभ मरुत्स्तोम और सहस्रान्त्य इन चारोंके
 एकाहोंमें “तद् वो गाय सुते सचा वयमेनमिदाद्य इति” (वैतान-
 सूत्र ८ । १) ॥

तद् वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्त्वे । शंयद्
गवे न शाकिने ॥ १ ॥

तद् । वो । गाय । सुते । सचा । पुरुहूताय । सत्त्वे ॥ शम् ।

यद् । गवे । न । शाकिने ॥ १ ॥

अपने सोमका अभिषेक होने पर जल वाले पुरुहूत इन्द्रके लिए
स्तोत्रका गान करो, जिससे, कि-वह गौकी समान हम शाक
(सोम) वालोंके लिये कन्याणकारी होंगे ॥ १ ॥

न धा चसुनि यमते दानं वाजस्य गोमंतः । यत्
सीमुप श्रवद् गिरः ॥ २ ॥

न । धा । चसुः । नि । यमते । दानम् । वाजस्य । गोमन्तः ॥

यत् । सीम् । उप । श्रवत् । गिरः ॥ २ ॥

यह इन्द्रदेव यदि स्तुतिरूपा वाणीकी धुन लेते हैं, तो वह वस
धजमानके लिये वसुके और गोसम्पन्न अन्नके दानकी नहीं
रोकते हैं ॥ २ ॥

कुवित्सेस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमेत् । शची-
भिरप नो चरत् ॥ ३ ॥

कुवित्सेस्य । प्र । हि । व्रजम् । गोमन्तम् । दस्युहा । गमेत् ।

शचीभिः । अप । नः । चरत् ॥ ३ ॥

इति सप्तमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे बहुतसे धान्यसे सम्पन्न ! वृत्रहारी दस्युका संहार करने वाले इन्द्र ! आप गौ (बाणी) वाले व्रज (यज्ञ) की ओर आवें और शक्तियोंसे हमको भरें ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकमे सप्तम सूक्त समाप्त (६९३)

वाजपेये माध्यन्दिने सवने “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [२०. ७३] “इन्द्र ज्येष्ठम्” [२०. ८०] “उदु त्ये मधुमत्तमाः” [२०. ५६] इत्येतेषामन्यतमो विकल्पेन स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्र ज्येष्ठम् उदुत्ये मधुमत्तमा इति वा” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विषुवति सौर्यपृष्ठे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” “इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर” इति विकल्पेन स्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरेति वा” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा विरवजिति वैराजपृष्ठे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इति इमां पूर्वाभ्यां तृतीयाम् अर्धर्चशः मग्नयनां शंसति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे “इन्द्र क्रतुं न आ भर” [२०. ७६] “तव त्यदिन्द्रियं बृहत्” [२०. १०६] इत्येतौ पृष्ठोक्त्यस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रस्तोम इन्द्रं क्रतुं न आ भर तव त्यदिन्द्रियम् बृहदिति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा विषुवति एकाहीभूते “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “विषुवतीन्द्र क्रतुं न आ भरेति” इति [वै० ८. २] ॥

वाजपेयके माध्यन्दिन सवनमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” (२०. ७६) “इन्द्र ज्येष्ठम्” (२०. ८०) “उदु त्ये मधुमत्तमाः” (२०. ५६) इनमेंसे कोई एक विकल्पसे स्तोत्रिय होता है ।

(४०२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“माध्यन्दिन इन्द्र क्रतुं न आ भरेति स्तोत्रियः । इन्द्रं ज्येष्ठम् उदु त्ये मधुमत्तमा इति वा” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विपुवत् सूर्यपृष्ठमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” “इन्द्रं ज्येष्ठं न आ भर” ये विकल्पसे स्तोत्रिय अनुरूप होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र क्रतुं न आ भर इन्द्र ज्येष्ठं न आभरेति वा” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा विरवजित् वैराजपृष्ठमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” इसको दो पूर्वाशौसे, तृतीयाको अर्धर्चेशः मग्नयनारूप कहे । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र क्रतुं न आ भरेति तृतीयाम्” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें “इन्द्र क्रतुं न आ भर” (२० । ७६) “तव तदिन्द्रियं बृहत्” (२० । १०६) ये पृष्ठोक्त्य स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्रस्तोम इन्द्र क्रतुं न आ भर तव तदिन्द्रियं बृहदिनि” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा एकाहीभूत विपुवत्में “इन्द्र क्रतुं न आ भर” यह पृष्ठ-स्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विपु-वतीन्द्र क्रतुं न आभरेति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।

शिवां णो अस्मिन् पुंस्त्वं त्वामनि जीवा ज्योतिं-
रशीमहि ॥ १ ॥

इन्द्र । क्रतुम् । नः । आ । भर । पिता । पुत्रेभ्यः । यथा ।

शिञ्ज । नः । अस्मिन् । पुरुङ्गुत् । यामनि । जीवाः । ज्योतिः ।

अशीमहि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे पिता पुत्रोंको अभिमत वस्तु देता है, इसी प्रकार आप हमको सोमयाग आदिरूप अभिमत वस्तु दीजिये, हे बहुतसे यजमानोंसे बुलाये जाने वाले पुरुङ्गुत् इन्द्रदेव ! आप हमको संसारपात्रामें अभिमत वस्तुएँ दीजिये और हम भी आपके मसादसे चिरकालका जीवन पाकर इस लोकके सुखका अनुभव करना रूप ज्योतिषको पावें ॥ १ ॥

मा नो अज्ञाता वृजनां दुराध्यो ३ माशिंवासो अवं क्रमुः ।

त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोतिं शूर तरामसि । २ ।

मा । नः । अज्ञाताः । वृजनाः । दुःआध्यः । मा । अशिंवासः ।

अव । क्रमुः ।

त्वया । वयम् । प्रवतः । शश्वतीः । अपः । अति । शूर । तरामसि

इति सप्तमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे शूर ! अज्ञात पाप हम पर आक्रमण न करें, दुष्ट आधियों हम पर आक्रमण न करें, अकन्याण करने वाली वार्ताये हम पर आक्रमण न करें, आपकी कृपासे हम मनुष्योंसे सम्पर्क रहते हुए मदा कर्मोंके पार पहुँचते रहें ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाक्ये अष्टम सूक्त समाप्त । ६९५)

वाजपेयं वाङ्मन्दिने सरने "इन्द्र उग्रेष्ठम्" इत्यस्य पूर्व मूर्त्तिनि सह उक्तो विनिर्णयः ॥

तथा विपुत्रति सौर्यपृष्ठे अस्य पूर्वमूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥
वाजपेयके माध्यन्दिनसवनमें “इन्द्र ज्येष्ठम्” इसका विनि-
योग पूर्वमूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा विपुत्रत् सौर्यपृष्ठमें इसका पूर्वमूक्तके साथ विनियोग
कहा है ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुंरि श्रवंः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुंशिप्र प्राः १
इन्द्र । ज्येष्ठम् । नः । आ । भर । ओजिष्ठम् । पपुंरि । श्रवंः ।
येन । इमे इति । चित्र । वज्रहस्त । रोदसी इति । आ ।
ओभे इति । सुंशिप्र । प्राः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप अपने ज्येष्ठ ओजिष्ठ और पूर्ण करने वाले
घनको हमें दीजिये, हे वायवीय वज्रहस्त सुन्दर ठोड़ी वाले
इन्द्र ! आपने जिस घनसे दोनों धुलोक और पृथिवीलोकों
व्याप्त कर रखा है, उसे हमें दीजिये ॥ १ ॥

त्वामुग्रमवंसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विधुरा पिन्द्ना वंसो मित्रान् सुपहान्
कृधि ॥ २ ॥

त्वाम् । उग्रम् । अवसे । चर्षणीसहम् । राजन् । देवेषु । हूमहे ।
विश्वा । सु । नः । विधुरा । पिन्द्ना । वंसो इति । मित्रान् ।
सुपहान् । कृधि ॥ २ ॥

इति रासमेजुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे राजन् ! हम देवताओंमेंसे आप चर्पणीसह उग्रका ही रक्षा के लिये आदान करते हैं । हे वासक इन्द्र ! हमारे भयके सब कारणोंको आप नष्ट करिये और शत्रुओंको भली प्रकार दवाने योग्य कर दीजिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें नवम सूक्त समाप्त (६२६)

अप्तोर्यामिण क्रनौ माध्यंदिने सवने “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इति स्तोत्रियम् अभितः प्राकृतः स्तोत्रियो भवति । “यदिन्द्र यावत्स्त्वम्” [२०. ८२] इत्यनुरूपम् अभितः प्राकृतोऽनुरूपः । तद् उक्तं वैताने । “माध्यंदिने यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावत्स्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपानभिस्तोत्रियानुरूपौ” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” “यदिन्द्र यावत्स्त्वम्” इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हता मगायौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतं यदिन्द्र यावत्स्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हता” इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तनूगृष्ठे षडहे “अभि त्वा शूर नोनुमः” [२०. १२१] “त्वामिद्धि हवामहे” [२०. ६८] “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” [२०. ११७] “कया नश्चित्र आ भुवत्” [२०. १२४] “रेवतीर्नः सधमादे” [२०. १२२] इति पृष्ठस्तोत्रिया यथाक्रमं भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “तनूगृष्ठेभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा कया नश्चित्र आ भुवत् रेवतीर्नः सधमाद इति” इति [वै० ८. ४] ॥

अप्तोर्याम क्रनुके माध्यन्दिन सवनमें “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” (२०. ८१) यह स्तोत्रिय चारों ओरसे प्राकृत स्तोत्रिय होता

है । “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” (२० । ८२) यह अनुरूप अभितः प्राकृत अनुरूप है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-
“माध्यन्दिने यद् द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति स्तोत्रियानुरूपावभितस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विश्वजित् वैराजपृष्ठमें “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” ये पृष्ठस्तोत्रियानुरूप बार्हत प्रगाय होते हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“विश्वजिति वैराजपृष्ठे यद् द्याव इन्द्र ते शतम् यदिन्द्र यावतस्त्वम् इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ बार्हतौ” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा तनूपृष्ठ षडहमें “अभि त्वा शूर नोनुवः” (२० । १२१) “त्वामिद्धि हवामहे” (२० । ६८) “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) “पिषा सोमिन्द्र मदन्तु त्वा” (२० । ११७) “कया नधिन्न आश्रुवत् (२० । १२४) “रेवतीर्नः सघमादे” (२० । १२२) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि-“तनूपृष्ठेऽभि त्वा शूर नोनुमस्त्वामिद्धि हवामहे यद् द्याव इन्द्र ते शतं पिषा सोमिन्द्र मदन्तु त्वा कया नधिन्न आश्रुवद् रेवतीर्नः सघमाद इति” (वैतानसूत्र ८ । ४)

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिनसहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥

यद् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत ।
स्युरिति । स्युः ।

न । त्वा । वज्रिनः । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् ।
अष्ट । रोदसी इति ॥ १ ॥

हे भगवन् इन्द्र ! यदि सैकड़ों दुलोक सैकड़ों भूमि और
सहस्रों सूर्य आपके उपमानमें होजावें, तब भी हे वज्रधारिन् इन्द्र !
आपमे नहीं बढ़ सकते ॥ १ ॥

आ पंप्राथ महिना वृष्ण्यां वृषन् विश्वां शविष्ठ शर्वसा ।
अस्माँ अत्र मघवन् गोमतिं व्रजे वज्रिं चित्राभिरु-
तिभिः ॥ २ ॥

आ । पंप्राथ । महिना । वृष्ण्यां । वृषन् । विश्वां । शविष्ठ ।
शर्वसा ।

अस्मान् । अत्र । मघवन् । गोमतिं । व्रजे । वज्रिन् । चित्राभिः ।
ऊतिभिः ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् फलमद इन्द्र ! हमारे गाँओं पाले
ब्रह्ममें अपनी विचित्र रक्षक शक्तियोंसे दूपारी रक्षा करिये और
अपनी महिमासे बलपूर्वक हमको बढ़ाइये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (६६९)

अग्नोर्षामिण क्रती “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” इति सूक्तस्य पूर्व-
सूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा विश्वजिति वैराजपृष्ठे अस्य सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह
उक्तो विनियोगः ॥

अग्नोर्षामिण क्रतुम् “यदिन्द्र यावतस्त्वम्” इस सूक्तका पूर्वसूक्तके
साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा विश्वजित् वैराज्यपृष्ठमें इस सूक्तका पूर्वसूक्तके साथ
विनियोग कह दिया है ।

यदिन्द्र यावत्स्त्वमेतावदहमीशीय ।

स्तोतारमिद् दिधिपेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ।

यत् । इन्द्र । यावत्तः । त्वम् । एतावत् । अहम् । ईशीय ।

स्तोतारम् । इत् । दिधिपेय । रदावसो इति रदऽवसो । न ।

पापऽत्वाय । रासीय ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप जितने हैं, इतना मैं ईश्वर हो जाऊँ, स्तोताओं को धन प्रदान करूँ, मैं पापत्वके लिये विलिखित न होऊँ अर्थात् पाप करके पक्षियोंके द्वारा नोचा न जाऊँ ॥ १ ॥

शिक्षेयमिन्मह्यते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।

नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता

चन ॥ २ ॥

शिक्षेयम् । इत् । मह्यते । दिवेऽदिवे । राय । आ । कुहचिद्विदे ।

ऽविदे ।

नहि । त्वत् । अन्यत् । मघऽवन् । नः । आप्यम् । वस्यः ।

अस्ति । पिता । चन ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जो मुझसे बढ़ना चाहे (उसे संग्राममें मार कर) स्वर्गमें जानेका दण्ड दूँ, चाहे कहींसे धनको प्राप्त करूँ, हे मघवन् ! आपसे अतिरिक्त और कौन हमको पूर्ण करने वाला वासक और पालक है ॥ २ ॥

असौर्यामिण भाकृतसाममगायादनन्तरम् “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” इति साममगायो भवति । तद् उक्तं वैताने । “साममगायाद् इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति साममगायः” इति [वै० ४. ३] ॥

तथा विरवजिति वैराजपृष्ठे “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” इति साममगायो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति साममगायः” इति [वै० ६. ३] ॥

असौर्यामिणमकृतसाममगायके अनन्तर “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” यह साम मगाय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“साममगायाद् इन्द्र त्रिधातु शरणम्” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तथा विरवजित् वैराजपृष्ठमें “इन्द्र त्रिधातु शरणम्” यह साममगाय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्र त्रिधातु शरणम् इति साममगायः” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

इन्द्रं त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

अदिप्यच्छ मघवञ्जयश्च मह्यं च यावयां दिक्षुमेभ्यः ।

इन्द्र । त्रिधातु । शरणम् । त्रिवरूथम् । स्वस्तिमत् ।

अदिः । प्यच्छ । मघवत्सभ्यः । च । मह्यम् । च । यावयम् ।

दिक्षुम् । एभ्यः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! त्रिधातु त्रिवरूथ और स्वस्तिसम्पन्न यहको घनवानोंके लिये और मेरे लिये मदान करिये और इनसे दिक्षुको अलग करिये—खण्डन करने वाले वज्रको अलग करिये ॥१॥

ये गंव्यता मनसा शत्रुमाद्भुरंभिप्रपन्नन्ति धृष्णुया ।

अथ स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो

भव ॥ २ ॥

(४१०) . अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ये । गन्पता । मनसा । शत्रुम् । आङ्मः । अभिःप्रवृत्ति ।
धृष्ट्या ।

अथ । स्म । नः । मघवन् । इन्द्र । मित्रः । तनूः ।
अन्तमः । भव ॥ २ ॥

इति सप्तमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

जो गमनशील मनसे शत्रुओंकी हिंसा करते हैं और अपनी
धर्मिक शक्तियोंसे शत्रुको विकटरूपसे पीटते हैं (वे आपके बल
शत्रुओंको पीटें) इसके अनन्तर हे स्तुतिवाणियोंसे सेवनीय
मघवन् इन्द्र । आप हमारे पास रह कर हमारे शरीरकी रक्षा
करिये ॥ २ ॥

सप्तम अनुवाकमें द्वादश सूक्त समाप्त (६९९)

चतुर्विंशे द्वितीयेहनि प्रातःसवने “इन्द्रा याहि चित्रभानो”
इति विकल्पेन आङ्ग्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “इन्द्रा
याहि चित्रभानो इति वा” इति [वै० ६. १] ॥

तथा छन्दोमाख्येषु भिष्वहःसु प्रातःसवने अस्य “तमिन्द्रं
वाजयामसि” [२०. ४७] इत्यनेन सह विनियोग उक्तः ॥

तथा चतुर्विंशे सांवत्सरिके एकाहीभूते “इन्द्रा याहि चित्र-
भानो” [२०. ८४] “मा चिद्व्यद्वि शंसत” [२०. ८५]
इत्याङ्ग्यपृष्ठस्तोत्रियो भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्विंश
इन्द्रा याहि चित्रभानो मा चिद्व्यद्वि शंसतेति” इति
[वै० ८. २] ॥

चतुर्विंशके द्वितीय दिनके प्रातःसवनमें “इन्द्रा याहि चित्र-
भानो” यह विकल्पसे आङ्ग्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“इन्द्रा याहि चित्रभानो इति वा”
(वैतानसूत्र ६ । १)

तथा छन्दोमोके तीनों दिनोंके प्रातःसवनमें इसका “तमिन्द्रं वाजयाममि” के साथ विनियोग कर दिया है ।

तथा चतुर्विंश साम्बत्सरिक एकाहीभूतमें “इन्द्रा याहि चित्रमानो” (२० । ८४) “मा चिदन्यद् विशंसते” (२० । ८५) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“चतुर्विंश इन्द्रा याहि चित्रमानो मा चिदन्यद् विशंसतेति” (वैतानमूत्र ८ । २) ॥

इन्द्रा याहि चित्रमानो सुता इमे त्वायवः । अयवीभिस्तनां पूतासः ॥ १ ॥

इन्द्र । आ । याहि । चित्रमानो इति चित्रमानो । सुताः । इमे । त्वायवः । अयवीभिः । तनां । पूतासः ॥ १ ॥

हे चित्रमानो इन्द्र ! आइये, यह मूत्रम (वस्त्रों) से निचोड़े हुए घनरूपी सोम आपके ही हैं ॥ १ ॥

इन्द्रा याहि धियेपितो विप्रंजूनः सुतावतः । उपब्रह्माणि वाचनः ॥ २ ॥

० धिया । इवितः । विप्रंजूनः । सुतावतः ॥ उप । ब्रह्माणि । वाचनः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ब्राह्मण आपको अपनेसे उत्कृष्ट समझने हैं । इस लिये बुद्धिसे प्रेरित होकर, इन अभिषुन सोम वाले और मन्त्रों (का उच्चारण करते हुए) अतिजनोंके पास आइये ॥ २ ॥

इन्द्रा याहि तूतुंजान उपब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥

(४१२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

इन्द्र । आ । योद्धि । तूनुनांनः । उप । ब्रह्माणि । हरिष्वः ।
सुने । दधिष्व । नः । चनः ।

इति सप्तमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! आप शीघ्रता करके स्तोत्रों की ओर आइये और हमारे अभिषुत सोमके पास अपने घोड़ों को कुछ उइराइये ॥ ३ ॥

असम अनुषांक्रमे त्रयोदश सूक्त समाप्त (७००)

चतुर्विंशे माध्यन्दिने सवने “मा चिदन्यद् वि शंसत” [२०. ८५. १, २] “यच्चिद्धि त्वा जना इमे” [२०. ८५. ३, ४] इति विकल्पेन पृष्ठस्तोत्रियानुरूपी वार्हती मगार्थी भवतः । तत्र उक्तं वैताने । “मा चिदन्यद् वि शंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा” इति [वै० ६. १] ॥

तथा चतुर्विंशे सामन्तसरिके एकाहीभूते “मा चिदन्यद् वि शंसत” इत्यस्य विनियोगः पूर्वभूक्ते उक्तः ॥

चतुर्विंश माध्यन्दिन सवनमें “मा चिदन्यद् वि शंसत” (२० । ८५ । १, २) “यच्चिद्धि त्वा जना इमे” (२० । ८५ । ३, ४) ये विकल्पसे पृष्ठस्तोत्रियानुरूप वार्हत मगाथ होते हैं । इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मा चिदन्यद् वि शंसत यच्चिद्धि त्वा जना इम इति वा” (वैतानसूत्र ६ । १) ॥

तथा चतुर्विंश सामन्तसरि एकाहीभूतमें “मा चिदन्यद् वि शंसत” इसका विनियोग पूर्वभूक्तके साथ कह दिया है ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखांयो मा रिणयंत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचां सुने मुहुरुक्या च शंसत ?

मा । चि॒त् । अ॒न्यद् । वि॒ । शंस॑त । स॒स्त्रायः॑ । मा । रि॒षय॑प॒त ।
इन्द्र॑म् । इ॒त् । स्तो॑त । वृ॒षण॑म् । स॒र्षा । मु॒ने । मु॒हुः । व॒रु॒षा ।
च । शंस॑त ॥ १ ॥

हे मित्ररूप स्तोताओं ! तुम विविध प्रकारकी स्तुतिपोंसे और किसीकी स्तुति न करो तथा विषसे भी और किसी देवताके पास न जाओ, फलोंकी चर्पा करने वाले इन्द्रकी ही स्तुति करो हे इस अभिपुत्र सोमके पास रहने वाले होनाओं ! तुम बारम्बार वरुषका गान करो ॥ १ ॥

अ॒व॒क्र॒क्षि॑णं वृ॒षभं॑ य॒था॒जु॒रं गां॑ न च॒र्ष॑णी॒सह॑म् ।
वि॒द्वेप॑णं स॒व॒न॒नो॒भय॑क॒रं म॑हि॒ष्ठमु॒भया॑वि॒नम् ॥ २ ॥

अ॒व॒क्र॒क्षि॑णम् । वृ॒ष॒भम् । य॒था । अ॒जु॒रम् । गा॒म् । न । च॒र्ष॑णि॒स॒ह॑म् ।

वि॒द्वेप॑णम् । स॒म्॒ज्व॒न॒ना । उ॒भय॑म्॒क॒रम् । म॑हि॒ष्ठम् । उ॒भया॒॑वि॒नम् ॥ २ ॥

अवक्रक्षी, वृषभ, अजुर, बैलकी समान चर्षणीसह, जत्रओं से द्वेष करने वाले, संवननीय, महिष्ठ और दोनों लोकोंमें रक्षा करने वाले (इन्द्रदेवता में आह्वान करता है) ॥ २ ॥

यच्चि॒द्धि॑ त्वा॒ जना॑ इ॒मे ना॒ना ह॒व॒न्ते॑ ऊ॒तये॑ ।
अ॒स्माकं॑ ब्र॒ह्म॒दमि॑न्द्र भू॒तु ते॒हा वि॒श्वां च॒वर्ध॑नम् ३
यत् । चि॒त् । हि॒ । त्वा॒ । जनाः॑ । इ॒मे । ना॒ना । ह॒व॒न्ते॑ । ऊ॒तये॑ ।

अस्माकम् । ब्रह्म । इदम् । इन्द्र । भूतु । ते । अर्हा । विरता । च ।
वर्धनम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! ये बहुतसे पुरुष रक्षाके लिये अनेक प्रकारकी
स्तुतियोंसे आपका आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! हमारा यह मन्त्र-
मय स्तोत्र सब दिन आपकी बढ़ाने वाला होवे ॥ ३ ॥

वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोर्यो विपो जनानाम्
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमृतये ॥ ४ ॥

वि । तर्तूर्यन्ते । मघऽवन् । विपऽचितः । अर्यः । विपः । जनानाम्
उप । क्रमस्व । पुरुऽरूपम् । आ । भर । वाजम् । नेदिष्ठम् ।

ऊतये ॥ ४ ॥

इति सप्तमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

हे मघवन् ! विद्वान् पुरुष, यज्ञस्वामी और मनुष्योंकी अंगुलियों
स्वरा कर रही हैं आप आइये और विशाल रूपको धारण करिये
और रक्षा करनेके लिये अन्नको निकटतम करके मदान करिये ४

सप्तम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (७०१)

संवत्सरे माध्यंदिने सवने सामपगाथाइ अनन्तरम् “ब्रह्मणा ते
ब्रह्मपुजा युनजिम्” इति आरम्भणीया भवति । तद् उक्तं वैताने ।
“ब्रह्मणा ते ब्रह्मपुजा युनजिमीत्यारम्भणीया” इति [वै० ६. ५] ॥

संवत्सरके माध्यन्दिन सवनमें सामपगाथके अनन्तर “ब्रह्मणा
ते ब्रह्मपुजा युनजिम्” यह आरम्भणीया होती है । इसी बातकी
वैतानमंत्रमें कहा है, कि—“ब्रह्मणा ते ब्रह्मपुजा युनजिमीत्यारंभ-
णीया भवति” (वैतानमंत्र ६. ५) ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजां युनज्मि हरीं सखायां सधमादं
आशू ।

स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि
सोमम् ॥ १ ॥

ब्रह्मणा । ते । ब्रह्मयुजां । युनज्मि । हरी इति । सखाया ।
सधमादे । आशू इति ।

स्थिरम् । रथम् । सुखम् । इन्द्र । अधितिष्ठन् । प्रजानन् ।
विद्वाँ । उप । याहि । सोमम् ॥ १ ॥

इति सप्तमेनुवाके पञ्चदशं सूक्तम् ॥

कर्ममें लगे हुए मन्त्रके द्वारा मैं आपके हरिनामक शीघ्रगामी
घोड़ोंको यज्ञमें आनेके लिये रथमें जोड़ता हूँ, हे इन्द्रदेव ! आप
विद्वाँ हैं अतः रथको स्थिर और सुखपद समझ उस पर चढ़
कर सोमके मयीप आइये ॥ १ ॥

सप्तम अनुवाकमें पञ्चदश सूक्त समाप्त (७०२)

द्वितीये छन्दोमेहनि “अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्” [२०. ८७]
“यस्तस्वम्प्य सहसा वि उषो अन्तान्” [२०. ८८] “अस्तेव
सु मतरं लायमस्यन्” [२०. ८९] इत्येकाहिकानि भवन्ति ।
तद् उक्तं वैताने । “द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्वम्प्य सहसा
वि उषो अन्तान् अस्तेव सु मतरं लायमस्यन् इत्येकाहिकानि”
इति [वै० ६. ३] ॥

तथा तृतीये छन्दोमेहनि “अध्वर्यवोरुणम्” [२०. ८७] “यो
अद्रिभित् प्रथमजा ऋतावा” [२०. ९०] “आ यात्विन्द्रः स्व-

पतिर्मदाय” [२०. ६४] इत्येतानि ऐकाहिकानि भवन्ति । तद् उक्तं वैताने । “तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभिः । मयमजा अतावा यास्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति” इति [वै० ६. ३] ॥

द्वितीय छन्दोमं दिनमें “अध्वर्यवोरुणम् दुग्धमंशुम्” (२० । ८७) “यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान्” अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् (२० । ८६) ये ऐकाहिक होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वितीयेध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुं यस्तस्तम्भ सहसा वि उमो अन्तान् अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् इत्यैकाहिकानि” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा तृतीय छन्दोमं दिनमें “अध्वर्यवोरुणम् (२० । ८७) “यो अद्रिभिः मयमजा अतावा” (२० । ६०) “आ यास्विन्द्रा स्वपतिर्मदाय” (२० । ६४) ये ऐकाहिक होते हैं, इसी बात को वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तृतीयेध्वर्यवोरुणं यो अद्रिभिः मयमजा अतावा यास्विन्द्रः स्वपतिर्मदायेति” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशु जुहोतन वृषभाय चितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवृषानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुत-
सोममिच्छन् ॥ १ ॥

अध्वर्यवः । अरुणम् । दुग्धम् । अंशुम् । जुहोतन । वृषभाय ।
चितीनाम् ।

गौराद् । वेदीयान् । अवृषानम् । इन्द्रः । विश्वाहा । इव । याति ।
सुतसोमम् । इच्छन् ॥ १ ॥

हे अध्वर्युओं । तुम पृथ्वीके धर्यक इन्द्रके लिये सोमके अंश

अरुण दुग्धकी आहुति दो, निरवाहा विद्वान् इन्द्र सुतसोमको
चाहता हुआ गौरसे अवपान पर आता है ॥ १ ॥

यद् दधिपे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य
वक्षि ।

उत्त हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि
सोमान् ॥ २ ॥

यद् । दधिपे । प्रदिवि । चारु । अन्नम् । दिवेदिवे । पीतिम् ।
इत् । अस्य । वक्षि ।

उत्त । हृदा । उत्त । मनसा । जुषाणः । उशन् । इन्द्र । प्रस्थितान् ।
पाहि । सोमान् ॥ २ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जो घृलोकमें चारु अन्नको धारण करते हैं,
और मत्स्यक क्रीड़ाके अवसर पर जो इस सोमकी पीतिको धारण
करते हैं, हे इन्द्र ! हृदय और मनसे इस सोमको चाहते हुए
आप प्रस्थित सोमोंकी रक्षा करिये ॥ २ ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानं-
मुवाच ।

एन्द्र पपाथोर्व १न्तरिचं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकथ ३

जज्ञानः । सोमम् । सहमे । पपाथ । प्र । ते । माता । महिमानम् ।

उवाच ।

आ । इन्द्र । पमाथ । उरु । अन्तरिक्षम् । युधा । देवेभ्यः ।
परिवः । चकर्थ ॥ ३ ॥

आप आनिर्भूत होते ही बलके लिये सोम पर जाते हैं, अन्तरिक्ष आपकी महिमाको प्रकृष्टरूपसे कहता है । हे इन्द्रदेव ! आप विशाल अन्तरिक्षमें जाते हैं और आपने युद्ध करके देवताओंको धन प्रदान किया है ॥ ३ ॥

यद् योधयां महतो मन्यमानान् साक्षां तान् बाहुभिः
शाशदानान् ।

यद्वा नृभिर्वृतं इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजि सौश्रवसं जयेम
यत् । योधयाः । महताः । मन्यमानान् । साक्षां । तान् । बाहुभिः ।
शाशदानान् ।

यत् । वा । नृभिः । वृताः । इन्द्र । अभियुध्याः । तम् । त्वया ।
आजिम् । सौश्रवसम् । जयेम ॥ ४ ॥

आप अपनेको बड़ा मानने हुआसे युद्ध करते हैं, उन भुजाओं से विशरण करते हुआसे हम संगत होवें, अथवा हे इन्द्र ! आप मनुष्योंसे घिर कर युद्ध करिये आपके प्रभाववश हम सुन्दर वश के साथ युद्धको जीतें ॥ ४ ॥

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्रनूतना मघवा या चकार
यदेदेदीरसंहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य
म । इन्द्रस्य । वोचम् । प्रथमा । कृतानि । म । नूतना । मघवा ।
या । चकार ।

यदा । इत् । अदेवीः । असहिष्ट ॥ मायाः । अयं । अमन्तु ।

केवलः । सोमः । अस्थ ॥ ५ ॥

मैं इन्द्रके पहिले किये हुए कृत्योंका वर्णन कर रहा हूँ और धनी इन्द्रदेवने जो नवीन कर्म किये हैं उनका वर्णन करता हूँ, जो इन्होंने आसुरी मायाओंको सहा है, इससे सोम केवल इन के लिये होगया है ॥ ५ ॥

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं १ यत् पश्यासि चक्षसा
सूर्यस्य ।

गवामसि गोपन्तिरेकं इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयंतस्य वस्वः
तव । इदम् । विश्वम् । अभितः । पशव्यम् । यत् । पश्यसि ।

चक्षसा । सूर्यस्य ।

गवाम् । असि । गोपन्ति । एकः । इन्द्र । भक्षीमहि । ते । प्रयंत-
स्य । वस्वः ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सूर्यरूपी नेत्रसे जिसको देखते हैं यह सब पशुधन आपका ही है, हे इन्द्रदेव ! आप गौओंके असाधारण गोशालक है हम, आप प्रयत अपने भक्तफलत्वमें प्रकृष्टरूपसे लगे रहने वालेके घनका उपभोग करें ॥ ६ ॥

वृहस्पते युवमिन्द्रंश्च वस्वां दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य
घृत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः

सदा नः ॥ ७ ॥

बृहस्पते । युवम् । इन्द्रः । च । वस्वः । दिव्यस्य । ईशाये इति ।
उत । पार्थिवस्य ।

पुत्तम् । रगिम् । स्तुवते । कीरये । चित् । यूयम् । पान् । स्तु-
स्तिऽभिः । सदा । नः ॥ ७ ॥

इति सप्तमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

हे बृहस्पते ! आप और इन्द्रदेव तुम दोनों ही ध्रुलोकके और
भूलोकके धनके स्वामी हैं आप स्तुति करनेवाले स्तोताके लिये
धनको दीजिये और अपनी रक्षक शक्तियोंसे सदा हमारी रक्षा
करिये, ॥ ७ ॥

सप्तम अनुवाकमें सोलहवाँ सूक्त समाप्त (५०३)

द्वितीये छन्दोमेहनि “यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्”
इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “यस्तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान्”
इसका विनियोग पूर्व सूक्तके साथ कह दिया है ।

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिपथ-
स्थो रवेण ।

तं प्रत्नास ऋपयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्र-
जिह्वम् ॥ १ ॥

यः । तस्तम्भ । सहसा । वि । ज्मः । अन्तान् । बृहस्पतिः ।
त्रिऽसंघस्यः । रवेण ।

तम् । प्रत्नासः । ऋपयः । दीध्यानाः । पुरः । विप्रा । दधिरे ।
मन्द्रऽजिह्वम् ॥ १ ॥

निन त्रिसधस्य बृहस्पतिने अपने घोषसे पृथ्वीके छोर तक को स्तम्भित कर दिया था, प्राचीन ऋषि, उनका बारम्बार ध्यान करते हैं और ब्राह्मण उन हर्षमद जिह्वा वालेको पहिले रखते हैं ॥ १ ॥

धुनेतयः सुप्रकेनं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततसे
पृपन्तं सुप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् २

धुनऽतयः । सुप्रकेतम् । मदन्तः । बृहस्पते । अभि । ये । नः ।
ततसे ।

पृपन्तम् । सुप्रम् । मदन्वम् । ऊर्ध्वम् । बृहस्पते । रक्षतात् । अस्य ।
योनिम् ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! ध्वनिको प्रेरित करते हुए आनन्दमें भरे हुए जो ऋषिज आपको हमारी ओर प्रेरित करते हैं । हे बृहस्पते ! वस ऋषिर्वक्संयके कारण, गमनशील, सबसे अहिंसित बलवान् घृतविन्दु वाले की आप रक्षा करिये ॥ २ ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ तं ऋतस्पृशो नि
पेदुः ।

तुभ्यं खाता अंवता अद्रिदुग्धा मध्वं श्रोतन्त्यभितो
विरणाम् ॥ ३ ॥

बृहस्पते । या । परमा । परावदत् । अतः । आ । ते । ऋतस्पृशः ।
नि । पेदुः ।

तुभ्यम् । स्वा॒ताः । अ॒न॒ताः । अ॒द्रि॒ऽदु॒ग्धाः । म॒ध्वः । ज्यो॒ति॒न्ति ।

अ॒भि॒तः । वि॒ऽर॒प्शम् ॥ ३ ॥

हे बृहस्पते ! आपकी परम रक्षक शक्ति रक्षा करती है, इसी कारण अमृतस्पृश अस्विज् आपके पास बँडे हैं, आपके लिये तोड़े हुए, रक्षित और पहाड़ परसे लाये हुए मधुके अधिकरण चारों ओरसे विशाल परिमाणमें मधुको बरसाते हैं ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः प्रथ॒मं जाय॑मानो महो ज्योति॑पः पर॒मे
ज्यो॑मन् ।

स॒प्तास्य॑स्तुविजा॒तो रवे॑ण वि स॒प्त॒र॒श्मि॒र॒ध॒म॒त् तमा॑सि ४

बृहस्पतिः । प्रथ॒मम् । जाय॑मानः । महः । ज्योति॑पः । पर॒मे ।

वि॒ऽज्यो॑मन् ।

स॒प्त॒ऽआ॒स्यः । तु॒वि॒ऽजा॒तः । रवे॑ण । वि । स॒प्त॒ऽर॒श्मिः । अ॒ध॒म॒म् ।

तमा॑सि ॥ ४ ॥

बृहस्पति देव ज्योतिपके महिमामय चक्रसे परम ज्योममें प्रकट होते हैं, तब वह तुविजात सप्तास्य सप्तरश्मि वन अपने शब्दसे अन्धकारोंको नष्ट कर डालते हैं ॥ ४ ॥

स सु॒ष्टु॒भा स ऋ॑क॒न्ता ग॒णेन॑ व॒लं रु॑रोज फ॒लि॒गं रवे॑ण ।

बृहस्पतिरु॒सियां ह॒व्य॒सू॒दः क॒नि॒क॒द॒द् वा॒य॒श॒तीरु॑दा॒जत्

सः । सु॒ऽस्तु॒भा । सः । ऋ॒क॒न्ता । ग॒णेन॑ । व॒लम् । रु॒रो॒ज ।

फ॒लि॒गम् । रवे॑ण ।

वृहस्पतिः । उत्तिपाः । हव्यऽमृदः । कनिकदत् । वायशतीः ।

उत । आजत् ॥ ५ ॥

वृहस्पति देव सुन्दरतासे स्तुति करने वाले ऋचामपगणसे और रवसे मेघको विदीर्ण कर डालते हैं—वर्षा करते हैं । हव्यसे मेरित हुए वृहस्पति देव कामना करती हुई गौओंके लिये वारम्बार शब्द करते हैं और मास होजाते हैं ॥ ५ ॥

एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

वृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ६

एव । पित्रे । विश्वदेवाय । वृष्णे । यज्ञैः । विधेम । नमसा ।

हविःभिः ।

वृहस्पते । सुप्रजाः । वीरवन्तः । वयम् । स्याम । पतयः ।

रयीणाम् ॥ ६ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

ऐसे पालक विश्वदेव वर्षक वृहस्पतिके लिये हम यज्ञोंके द्वारा नमस्कारके द्वारा और हविके द्वारा सेवा करते हैं, हे वृहस्पति-देव । हम सुन्दर प्रजा वाले, धीरोंसे सम्पन्न होवें और धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

सप्तम अनुवाकमे सप्तदश सूक्त समाप्त (७०४)

द्वितीये छन्दोमेहनि “अस्तेव सु मतरं लायमस्यन्” इत्यस्य विनियोगः “अश्वर्यवीरुणं दुग्धमंशुम्” [२०. ८७] इत्यनेन सह वक्तुः ॥

द्वितीय छन्दोम दिनमें “अस्तेव सु मतरं लायमस्यन्” इसका

विनियोग "अध्वर्यवोरुणं दुग्धमंशुम्" (२० । ८७) के साथ कह दिया है ।

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूपंन्निव प्र भरा स्तोम-
मस्मै ।

वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम-
इन्द्रम् ॥ १ ॥

अस्ताऽइव । सु । प्रतरम् । लायम् । अस्यन् । भूपन् इव । प्र ।
भर । स्तोमम् । अस्मै ।

वाचा । विप्राः । तरत । वाचम् । अर्यः । नि । रामय । जरित-
रिति । सोमे । इन्द्रम् ॥ १ ॥

जैसे फेंकने वाला पुरुष, ग्रहण करने वाली वस्तुको विभू-
षित होता हुआसा फेंकता है, इसी प्रकार आप इन इन्द्रदेवके
लिये स्तोमका भरण करिये । हे विप्रों ! तुम मन्त्ररूपा वाणीके
वाणीसे पार जाओ हे स्तोतः ! आप स्वाधी हैं अतः सोममें
इन्द्रको रमण कराइये ॥ १ ॥

दोहेन गामुप शिञ्चा सखायं प्र वोधय जरितर्ज-
मिन्द्रम् ।

कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा व्यावय मघदेयाय
शूरम् ॥ २ ॥

दोहेन । गाम् । उप । शिञ्च । सखायम् । प्र । वोधय । जरितः ।
जारम् । इन्द्रम् ।

कोशम् । न । पूर्णम् । वसुना । निःश्रेष्ठम् । आ । च्यवय ।
मघज्जेषाय । शूरम् ॥ २ ॥

आप मित्ररूपा वाणीको दोहनसे शिञ्चित करिये और हे
स्तुति करने वाले ! शत्रुओंको जीर्ण करने वाले इन्द्रको प्रशोधित
करिये । और धनसे पूर्ण कोशकी समान शूरतापद शुद्ध सोम
को धनपद इन्द्रके लिये च्पावित करिये ॥ २ ॥

किमङ्ग त्वां मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मां शिशयं
त्वां शृणोमि ।

अमंस्वती मम धीरंस्तु शक्र वसुमिदं भगंमिन्द्रा
भरा नः ॥ ३ ॥

किम् । अङ्ग । त्वा । मघवन् । भोजम् । आहुः । शिशीहि ।
मा । शिशयम् । त्वा । शृणोमि ।

अमंस्वती । मम । धीः । अस्तु । शक्र । वसुमिदम् । भगम् ।
इन्द्र । आ । भर । नः ॥ ३ ॥

हे मघवन् इन्द्रदेव ! आपको भोगने वाला कहते हैं, आपसुमे
जीण न करिये, मैं आपको शत्रुजीणकर्ता सुनता हूँ । हे शक्र !
मेरी बुद्धि कर्म वाली हो और हे इन्द्रदेव ! आप हमको धन प्राप्त
कराने वाला भाग्य दीजिये ॥ ३ ॥

त्वां जनां ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते
समीके ।

अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वेष्टि
शूरः ॥ ४ ॥

स्वाम् । जनाः । मयस्सत्येषु । इन्द्र । सम्पत्सुस्थानाः । वि ।
द्वयन्ते । सम्पत्सुके ।

अत्र । युजम् । कृणुते । यः । हविष्मान् । न । असुन्वत । सख्यम् ।
वेष्टि । शूरः ॥ ४ ॥

हे इन्द्र । मेरे यज्ञोंमें खड़े हुए और युद्धमें खड़े हुए पुरुष
आपका ही विशेषरूपसे आदान करते हैं, जो हवि वाला आप
के लिये योग करता है वह शूर आपकी मित्रता चाहता है अतः
सोमका अभिषेक करता है ॥ ४ ॥

धनं न स्पन्दं बहुलं यो अस्मे तीव्रान्तसोमो आसु-
नोति प्रयस्वान् ।

तस्मै शत्रून्सुतुकान् प्रातरहो नि स्वष्टान् युवति
हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥

धनम् । न । स्पन्दम् । बहुलम् । यः । अस्मै । तीव्रान् । सोमान् ।
आसुनोति । प्रयस्वान् ।

तस्मै । शत्रून् । सुतुकान् । प्रातः । - । अहोः । नि । सुऽश्वष्टान् ।
युवति । हन्ति । वृत्रम् ॥ ५ ॥

जो हविरूप अन्नसे सम्पन्न पुरुष अपने धनको धीरे धीरे

सरकने वाला रख कर इन इन्द्रदेवके लिये तीव्र सोमोंका अभि-
पव नहीं करता है उसके लिये इन्द्रदेव दिनके मातःकालमें शीघ्र
गमन करने वाले भली प्रकार व्याप्त कर लेने वाली शत्रुओंको
मिलाते हैं और वज्रका प्रहार करते हैं ॥ ५ ॥

यस्मिन् वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्रायं मधवा
काममस्मे ।

आराधित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या
नमन्ताम् ॥ ६ ॥

यस्मिन् । वयम् । दधिमा । शंसम् । इन्द्रे । यः । शिश्रायं ।
मधवा । कामम् । अस्मे इति ।

आरात् । चित् । सन् । भयताम् । अस्य । शत्रुः । नि । अस्मै ।
द्युम्ना । जन्या । नमन्ताम् ॥ ६ ॥

जिस इन्द्रमें हम प्रशंसाको स्थापित कर रहे हैं अर्थात् जिस
इन्द्रकी प्रशंसा कर रहे हैं और जो घनवान् इन्द्र हममें इच्छाको
आश्रित करते हैं—अर्थात् हमारी इच्छाको पूर्ण करते हैं । इन
इन्द्रदेवका शत्रु इनके पासमें आते ही डरने लगे और दमरता
हुआ जनसमूह इनको प्रणाम करे ॥ ६ ॥

आराध्वन्नमपं बाधस्य दूरमुग्रो यः शत्रुः पुनहूत तेन
अस्मे धेहि यवमदु गोमदिन्द्र कृषी धियं जरित्रे
वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम दुष्ट गतिवाली दरिद्रतासे आई हुई दुर्बुद्धि
को पशुओंके द्वारा तरे, यव आदि धान्यके द्वारा घुमुक्ताका निवा-
रण करें, रागाओंमें स्थित श्रेष्ठ धनको हम प्रतिपत्ती जुआरियों
से पराजित न होकर बलकारिणी अक्षशलाकाओंसे जीत लें०
बृहस्पतिर्नः परिं पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः
कृणोतु ॥ ११ ॥

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत्त । उत्तरस्मात् ।

अधरात् । अघःयोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत्त । मध्यतः । नः । सखा । सखिभ्यः ।

वरीयः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति सप्तमेऽनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

जो हमारी हिंसारूप पापको करना चाहता है उस शत्रुसे बृह-
स्पतिदेव पश्चिम उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे हमको
बचावे, इन्द्रदेव पूर्वदिशाकी ओरसे हमको बचावे, हमारे मित्ररूप
बृहस्पति अन्य मित्रोंसे हमको श्रेष्ठ करें ॥ ११ ॥

सप्तम अनुवाकमें अष्टादशों सूक्त समाप्त (७०५)

तृतीये अन्वुमेहनि “यो अद्रिभित्” इत्यस्य चित्तियोगः
“अथर्वबोरुणम्” [२०. ८७] इत्यनेन सह वक्तुः ॥

तथा उभयोर्द्वितीयतृतीययोरहोरैकाहिकानां सूक्तानां मध्यमस्य
आदावन्ते वा “यो अद्रिभित्” [२०. ६०] “इमां धियं सप्त-
शीर्ष्णां पिना नः” [२०. ६१] इत्येतयोर्गयाक्रमम् एकैकं

शंसति । तद् उक्तं चैताने । “यो अद्रिभिद् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं
पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्यादावन्त्ये व” इति [वै० ६.३] ॥

तृतीय छन्दोग दिनमें “यो अद्रिभिद्” का विनियोग “अध्व-
र्यवोऽरुणम्” (२० । ८७) के साथ कह दिया है ।

तथा दोनों द्वितीय तृतीय दिनोंके ऐकाहिक सूक्तोंके मध्यम
का आदि वा अन्तमें “यो अद्रिभिद्” (२० । ६०) “इमां धियं
सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” (२० । ६१) को यथाक्रम एक एक
करके कहे । इसी बातको चैतानसूत्रमें कहा है, कि-“यो अद्रि-
भिद् इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न इत्युभयोरेकैकं मध्यमस्या-
दावन्त्ये वा” (चैतानसूत्र ६ । ३) ॥

यो अद्रिभिद् प्रथमजा श्रुतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हवि-
ष्मान् ।

द्विर्वर्हज्मां प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो
रोरवीति ॥ १ ॥

॥ यो अद्रिभिद् । प्रथमजाः । श्रुतावा । बृहस्पतिः । आङ्गि-
रसः । हविष्मान् ।

द्विर्वर्हज्मा । प्राघर्मसत् । पिता । नः । आ । रोदसी इति ।
वृषभः । रोरवीति ॥ १ ॥

जो मेघोंको विदीर्ण करने वाले हैं, प्रथम प्रादुर्भूत होने वाले
हैं, सत्यसम्पन्न हैं, वह अद्रिरागोत्री बृहस्पति हविके पात्र हैं,
द्विर्वर्हज्मा हैं, प्राघर्मसत् हैं, पालक हैं, वर्षक हैं और ध्रुलोक तथा
पृथ्वीलोकमें बारम्बार शब्द करते हैं ॥ १ ॥

जनाय चिद् य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
 व्रन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयं शत्रून् मित्रान् पृच्छ
 साहन् ॥ २ ॥

जनाय । चिद् । यः । ईवते । ऊं इति । लोकम् । बृहस्पतिः ।
 देवऽहूतौ । चकार ।

व्रन् । वृत्राणि । वि । पुरः । दर्दरीति । जयन् । शत्रून् । मि-
 त्रान् । पृच्छ । साहन् ॥ २ ॥

जो बृहस्पतिदेव मनुष्योंके लिये चलते हैं और देवहूतिमें
 जिन्होंने लोकको किया है, वह आवश्यक मेघोंको विदीर्ण करते
 हुए पुरोंका दारण करते हैं, शत्रुओंको जीतते हैं और सेनाओं
 में शत्रुओंको सहते हैं ॥ २ ॥

बृहस्पतिः समंजयद् वसूनि महो व्रजान् गोमती
 देव एषः ।

अपः सिपासन्तस्वः प्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कः
 बृहस्पतिः । सम् । अजयत् । वसूनि । महः । व्रजान् । गोमतीः ।
 देवः । एषः ।

अपः । सिपासन् । स्वः । अमतिऽहन्तः । बृहस्पतिः । हन्ति ।
 मित्रम् । अर्कः ॥ ३ ॥

सप्तमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

इन बृहस्पति देवने बड़े २ गौआँ वाले गोठोंको और घनोंको जीत लिया है, जलोंका दान करनेके लिये वह अप्रतीतरूपमें स्वर्गमें जाते हैं और मन्त्रोंके द्वारा शत्रुका नाश करते हैं ॥ ३ ॥

सप्तम अनुवाकम् उद्योतर्षा सूक्त समाप्त (७०६)

सप्तम अनुवाक समाप्त

“इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” इति सूक्तस्य पूर्वसूक्तेन सह उक्तो विनियोगः ॥

“इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः” इस सूक्ताका पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नं ऋतप्रजातां बृहती-
मविन्दत् ।

तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्योयास्यं उक्थमिन्द्राय
शंसन् ॥ १ ॥

इमाम् । धियम् । सप्तशीर्ष्णीम् । पिता । नः । ऋतप्रजाताम् ।
बृहतीम् । अविन्दत् ।

तुरीयम् । स्वित् । जनयत् । विश्वजन्यः । अयास्यः । उक्थम् ।
इन्द्राय । शंसन् ॥ १ ॥

हमारे पालक बृहस्पतिदेवने सत्यसे उत्पन्न हुई इस सात शिर वाली विशाल बुद्धिको पाया है, और उन विश्वजन्य अयास्यने इन्द्रसे कह कर तुरीयको प्रकट किया है ॥ १ ॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य
वीराः ।

विप्रं पद्मङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त

ऋतम् । शंसन्तः । ऋजु । दीघ्यानाः । दिवः । पुत्रासः । अमु-
रस्य । वीराः ।

विप्रम् । पद्मम् । अङ्गिरसः । दधानाः । यज्ञस्य । धाम । प्रथमम् ।
मनन्त ॥ २ ॥

सत्य धोलते हुए, सरलताका ध्यान रखते हुए माणवलीके
धीर्यसे मकट हुए दिवस्पुत्र अङ्गिरामोत्री विप्रत्वको धारण करते
हैं और यज्ञके धाममें प्रथम माने जाते हैं ॥ २ ॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदन्निश्मन्मयानि नहन्ता व्यस्यन्
बृहस्पतिरभिकनिक्कदत् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वां
अगायत् ॥ ३ ॥

हंसैःइव । सखिभिः । वावदत्भिः । अश्मन्मयानि । नहन्ता ।
विऽअस्यन् ।

बृहस्पतिः । अभिऽकनिक्कदत् । गाः । उत । प्र । अस्तौत् । उत् ।
च । विद्वान् । अगायत् ॥ ३ ॥

हंसकी समान भाषण करने वाले अपने मित्रोंसे ओले भरे
हुए बंधक (मेघों) को खोलते हुए बृहस्पति बाणियोंका उच्चा-
रण करते समय स्तुतिसी करते हैं और गति हुए विद्वान्से प्रतीत
होते हैं ॥ ३ ॥

शवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहां तिष्ठन्तीरनृतस्य
सेतौ ।

वृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुत्सा आकर्वि हि तिस्र
आवः ॥ ४ ॥

अवः । द्वाभ्याम् । पुरः । एकया । गाः । गुहा । तिष्ठन्तीः ।
अमृतस्य । सेतौ ।

वृहस्पतिः । तमसि । ज्योतिः । इच्छन् । उत् । उत्साः । आ ।
भूः । वि । हि । तिस्रः । आवरित्पावः ॥ ४ ॥

अन्नको दो से फिर एकसे हृदयदेशमें स्थित बाणियोंको
मकट करते हैं, और वृहस्पतिदेव अन्यकारमें प्रकाशको चाहते
हुए तीन प्रकारके प्रकाशोंको करते हैं ॥ ४ ॥

विभिद्या पुरं शयधेमपांचीं निस्त्रीणि साकमुद्धेरं-
कृन्तत् ।

वृहस्पतिरुपसं सूर्यं गामकं विवेद स्तनयान्निव द्यौः

विभिद्यं । पुरम् । शययां । ईम् । अपांचीम् । निः । त्रीणि ।
साकम् । उद्धेः । अकृन्तत् ।

वृहस्पतिः । उपसम् । सूर्यम् । गाम् । अर्कम् । विवेद । स्तनयन्-
इव । द्यौः ॥ ५ ॥

आप पुरको विदीर्ण करके पश्चिममें शयन करते हैं और समुद्र
के चारों भागोंको नहीं काटते हैं—अर्थात् उनमें वर्षा करते हैं ।
वृहस्पति धूलोकको कडकाते हुएसे उपा सूर्य गाँ और मन्त्रको
माप्त होते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रो बलं रक्षितारं दुष्टानां करेणैव विचकर्त्त रवेण ।

स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छामानोरोदयत् पणिमा गा
अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रः । पलम् । रक्षितारम् । दुधानाम् । करेणऽश्न । वि । चर्कते ।
रवेण ।

स्वेदाञ्जिभिः । आऽशिरम् । इच्छमानः । अरोदयत् । पणिम् ।
आ । गाः । अमुष्णात् ॥ ६ ॥

इन्द्रदेव कामदुधा धेनुओंके रक्तक मेघको बलपूर्वक विदीर्ण
कर डालते हैं, इन्होंने स्वेदाञ्जियोंसे दधिकी इच्छा करके पणि
नामके असुरको रुलाया, कि-जिसने गौएँ चुरा ली थीं ॥६॥
स ई सत्येभिः सखिभिः शुचन्निर्गोधायसं वि धन-
सैरददः ।

ब्रह्मणस्पतिर्वृषंभिर्वराहैर्धर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानद ७
सः । ईम् । सत्येभिः । सखिभिः । शुचत्भिः । गोऽधायसम् ।
वि । धनऽसैः । अददरित्यददः ।

ब्रह्मणः । पतिः । वृषंभिः । वराहैः । धर्मस्वेदेभिः । द्रविणम् ।
वि । आनद ॥ ७ ॥

वह इन्द्रदेव मित्ररूप यज्ञात्मक धनप्रद मेघों को तापदायक
यज्ञोंसे पृथ्वीको पुष्ट करने वाले मेघको विदीर्ण करते हैं, और
ब्रह्मणस्पति वर्षक धर्मस्वेद मेघोंके द्वारा धनमें व्याप्त होजाते हैं ७
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानासं इषण्यन्त धीभिः

वृहस्पतिर्मियोऽनवद्यपेभिरुदुस्त्रियां असृजत स्वयुग्भिः

ते । सत्येन । मनसा । गोऽपतिम् । गाः । इयानासः । इपण्यन्त ।
धीभिः ।

वृहस्पतिः । मिथःऽनवद्यपेभिः । वत् । उस्त्रियाः । असृजत ।

स्वयुक्ऽभिः ॥ ८ ॥

वह मेघ सत्य मनसे गोपति—वृषभ और गौओं पर जानेकी इच्छा करते हुए अपनी बुद्धियोंसे उनको प्राप्त होते हैं और वृहस्पति देव उन स्वयुक् अनवद्यप—मशस्त शब्दकी रक्षा करनेवाले मेघोंके द्वारा गौओंमें मिलते हैं ॥ ८ ॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं
सधस्थे ।

वृहस्पतिं वृषणं शूरंसातौ भरेभरे अनुं मदेम जिष्णुम् ६

तम् । वर्धयन्तः । मतिऽभिः । शिवाभिः । सिंहम्ऽइव । नानद-

तम् । सधऽस्थे ।

वृहस्पतिम् । वृषणम् । शूरंसातौ । भरेभरे । अनुं । मदेम ।

जिष्णुम् ॥ ६ ॥

उन यज्ञमें (वा संग्राममें) सिंहकी समान बारम्बार गरजने वाले वर्षक जयशील वृहस्पतिदेवको हम अपनी कन्याणमयी बुद्धियोंसे बढ़ाते हुए प्रत्येक संग्रामके अवसर पर हर्षित करते हैं ६
यदा वाजमसनद् विश्वरूपमाद्यामरुक्षदुत्तराणि सद्मं

बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो विभ्रतो
ज्योतिरासा ॥ १० ॥

यदा । वाजम् । असनत् । विश्वऽरूपम् । आ । घाम् । अरुन्त् ।
उज्जराणि । सद्यः ।

बृहस्पतिम् । वृषणम् । वर्धयन्तः । नाना । सन्तः । विभ्रतः ।
ज्योतिः । आसा ॥ १० ॥

जब यह विश्वरूप-सब प्रकारके रूपों वाले गेहूँ जौ चावल
आदि-अन्नको देना चाहते हैं तब घुलोकरूपी भवन पर आरुढ़
होते हैं, उस समय अनेक होते हुए और ज्योतिको धारण करते
हुए बुद्धिसे वर्षक बृहस्पतिको बढ़ाते हैं ॥ १० ॥

सत्यामाशिपं कृणुता वयोधैः कीरिं चिच्छवेधस्वेभिरेवः
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद् रोदसी शृणुतं
विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥

सत्याम् । आशिपम् । कृणुत । वयोऽधैः । कीरिम् । चिच्छ । दि ।
अवध । स्वेभिः । एवः ।

पश्चा । मृधः । अप । भवन्तु । विश्वाः । तत् । रोदसी इति ।
शृणुतम् । विश्वमिन्वे इति विश्वम्ऽइन्वे ॥ ११ ॥

अन्नको पुष्ट करने वाले कारणोंसे आशीर्वादको सत्य करिये,
और अपने गमनोंसे इस स्तोताकी रक्षा करिये, जितने युद्ध हैं
सब पोढ़े होजावें, इस बातको हे धावापृथिवी ! आप अग्न्यर्चिके
प्रचण्ड होने पर सुनिये ॥ ११ ॥

इन्द्रो म॒ह्ना म॒ह॒तो अ॒र्ण॒वस्य॒ वि॒मूर्धा॒नं॒म॒भि॒न॒द॒र्बु॒दस्य॑ ।
अ॒ह॒न्न॒हि॒म॒रि॒णात् स॒प्त सि॒न्धून् दे॒वैर्धा॒वापृ॒थि॒वी प्रां॒-
व॒तं नः ॥ १२ ॥

इन्द्रः । म॒ह्ना । म॒ह॒तः । अ॒र्ण॒वस्य॑ । वि॒ । मूर्धा॒नम् । अ॒भि॒न॒द॒ ।
अ॒र्बु॒दस्य॑ ।

अ॒ह॒न् । अ॒हिम् । अ॒रि॒णात् । स॒प्त । सि॒न्धून् । दे॒वैः । द्वा॒वापृ॒थि॒वी इति॑ ।
प्र । अ॒व॒तम् । नः ॥ १२ ॥

इति अष्टमेऽनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेव अपनी महती मदिमासे जल वाले मेघके मस्तकको विदीर्ण कर डालते हैं, वह मेघ पर महार करके दमकती हुई जलबिन्दुओंसे सात नदियोंको मग्न कर देते हैं । हे द्वावापृथिवी ! आप हमारी रक्षा करिये ॥ १२ ॥

अष्टम अनुवाकते प्रथम सूक्त समाप्त (७०७)

अतिरात्रे मय्यमे पर्याये “अभि त्वा वृषभा सुते” [२०, २२]
“अभि प्र गोपति गिरा” [२०, ६२] एतौ स्तोत्रियानुरूपौ
उपशंसनधर्मकौ भवतः । तद् उक्तं यैताने । “अभि त्वा वृषभा
सुतेभि प्र गोपति गिरेति स्तोत्रियानुरूपौ” इति [वै० ४, २] ॥

तथा पृष्ठयपट्टस्य पठेदनि प्राताः सवने “अभि प्र गोपति गिरा”
इत्येकविंशतिमृच आचपते । तद् उक्तं यैताने । “पठेभि प्र गोपति
गिरेत्येकविंशतिः” इति [वै० ६, २] ॥

तथा अभिजिति “अभि प्र गोपति गिरा” इत्याज्यस्तोत्रियो
भवति । तद् उक्तं यैताने । अभिजित्यभि प्र गोपति गिरेति च”
इति [वै० ८, २] ॥

तथा त्रिककुक्षशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा”
[२०. ५२] इत्यनेन सह उक्तः ॥

अतिरात्रके मध्यमपर्यायमें “अभि त्वा वृषभा सुते” (२०।२२)
“अभि म गोपतिं गिरा” (२० । ६२) ये उक्थशंसनधर्मक
स्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि-“अभि त्वा वृषभा सुतेभि म गोपतिं गिरेति स्तोत्रिया-
नुरूपौ” (वैतानसूत्र ४ । २) ॥

तथा पृष्ठपदहके छठे दिन मातासवनमें “अभि म गोपतिं गिरा”
इन इक्कीस ऋचाओंको पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि
“पष्ठेभि म गोपतिं गिरेत्येकविंशतिः” इति (वैतानसूत्र ६ । २)

तथा अभिजित्में “अभि म गोपतिं गिरा” यह आज्यस्तो-
त्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है कि-अभिजि-
त्यभि म गोपतिं गिरेति च” इति (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

अभि म गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सृनुं सत्यस्य
सत्पतिम् ॥ १ ॥

अभि । म । गोपतिम् । गिरा । इन्द्रम् । अर्चः । यथा । विदे ॥

सृनुम् । सत्यस्य । सत्पतिम् ॥ १ ॥

हे स्तोतः । गौओंके स्वामी इन्द्रको मैं जिस प्रकार प्राप्त कर
सकूँ अर्थात् वह जिस प्रकार वह हमको अपना समझने लगे
तिस प्रकार तू इन्द्रकी श्रेष्ठतासे पूजा कर । यह इन्द्रदेव सत्य
फल वाले यज्ञके पुत्रस्थानीय हैं, और सत्कर्म करने वाले अपने
सेवकोंका पालन करने वाले हैं ॥ १ ॥

आ हरयः ससृजिरेरुपीरधि वर्हिषि । यत्राभि संन-
वांगहे ॥ २ ॥

आ । हरयः । ससृजिरे । अरुषीः । अधि । बहिपि ॥ यत्र ।
अभि । समुऽनवामहे ॥ २ ॥

रूपवान् हरि नामक घोड़े फैली हुई उन कुशाओं पर इन्द्रके
रथको संयुक्त करें, जिन कुशाओं पर हम इन्द्रकी स्तुति कर रहे हैं २
इन्द्राय गावं आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु । यत् सीं-
मुपहरे विदत् ॥ ३ ॥

इन्द्राय । गावं । आऽशिरम् । दुदुहे । वज्रिणे । मधु ॥ यत् ।
सीम् । उपऽहरे । विदत् ॥ ३ ॥

बअपुक्त इन्द्रके लिये गौएँ मधुर दुग्धको दुहती हैं, उस समय
समीपमें वर्तमान मधुकी समान स्वादिष्ट सोमको इन्द्र सब ओर
से पाते हैं ॥ ३ ॥

उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।

मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥

उद् । यद् । ब्रध्नस्य । विष्टपम् । गृहम् । इन्द्रः । च । गन्वहि ।

मध्वः । पीत्वा । सचेवहि । त्रिः । सप्त । सख्युः । पदे ॥ ४ ॥

जो ब्रध्नका घर स्वर्ग है उसमें हम और इन्द्र जावें, हम इक्कीस
बार मधु पीकर इन्द्रके मित्र बनें ॥ ४ ॥

अर्चन्तु प्रार्चन्तु प्रियमेधासो अर्चन्त ।

अर्चन्तु पुत्रका उत्तं पुरं न धृष्यवर्चत ॥ ५ ॥

अर्चन्त । प्र । अर्चन्त । प्रियमेधासः । अर्चन्त ।

अर्चन्तु । पुत्रकाः । उत्तं । पुरम् । न धृष्यन्तु । अर्चन्त ॥ ५ ॥

हे मिय बुद्धि वालों ! आप इन्द्रका पूजन करिये, पूजन करिये
श्रेष्ठ रीतिसे पूजन करिये, हे पुत्रो ! तुम इन्द्रका पूजन करो
सामने खड़े हुएकी समान उनका अपने शत्रुओंको दधाने वाला
पूजन करो ॥ ५ ॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परिं सनिष्वणत् ।

पिङ्गा परिं चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोर्धतम् ॥ ६ ॥

अव । स्वराति । गर्गरः । गोधा । परिं । सनिस्वनत् ।

पिङ्गा । परिं । चनिष्कदत् । इन्द्राय । ब्रह्म । उर्ध्वतम् ॥ ६ ॥

जब इन्द्रके लिये मन्त्र उच्यत होता है तब गर्गर-कलश-शब्द
करता है, धनुषकी मत्स्यवाकी समान शब्द करता है और
पिशंग वर्ण वाला पदार्थ चलता है ॥ ६ ॥

आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।

अपस्फुरं गृभायत् सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥

आ । यत् । पतन्ति । एन्यः । सुदुघाः । अनपस्फुरः ।

अपस्फुरम् । गृभायत् । सोमम् । इन्द्राय । पातवे ॥ ७ ॥

ये जो र्वेत वर्णकी गाँएँ आरही हैं (इनमें) अनपस्फुर-अवि-
नाशी (नष्ट न होने देने वाला) पदार्थ है उस अविनाशी पदार्थ
को ग्रहण करो सोमको इन्द्रके पानके लिये ग्रहण करो ॥ ७ ॥

अपादिन्द्रो अपादिभिर्विश्वं देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत् तमापो अम्यनूपत वत्सं संशि-
खरीरिव ॥ ८ ॥

अपात् । इन्द्रः । अपात् । अग्निः । विश्वे । देवाः । अमत्सत ।

वरुणः । इत् । इह । क्षवत् । तम् । आपः । अभि । अनूपत् ।

वत्सम् । संशिश्वरीः श्व ॥ ८ ॥

इसको इन्द्रदेवने पीलिया है, अग्निदेवने इसका पान कर लिया है, विश्वेदेवता इमसोमका पान करके मदमें मर गए हैं, हे जलो ! यदि वरुण यहाँ निवास करते हैं तो संशिश्वरीके वत्सकी समान उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥

सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।

अनुत्तरन्ति कांकुदं सूर्यं सुपिरामिव ॥ ९ ॥

सुदेवः । असि । वरुण । यस्य । ते । सप्त । सिन्धवः ।

अनुत्तरन्ति । कांकुदम् । सूर्यम् । सुपिराम् श्व ॥ ९ ॥

हे वरुणदेव ! आप शोभन देवता हैं, क्योंकि—आपके पास अरवा, विनुषा, अभ्रग्री, मेघपत्नी, वर्षयन्ती और पुरस्तात् अरुन्धा नाम वाली सात अन्तरिक्ष नदियें (वा सात समुद्र) हैं । जैसे ऊँचे स्थानका जल नगरके जल निकलनेकी भूमिकी ओर दौड़ता है, इसी प्रकार वे नदियें जल बहाती हैं ॥ ९ ॥

यो व्यतीरफाणयत् सुयुंक्तौ उपं दाशुषं ।

तको नेता तदिद् वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥

यः । व्यतीन् । अफाणयत् । सुयुक्तान् । उपं । दाशुषं ।

तवः । नेता । तत् । इत् । वपुः । उपमा । यः । अमुच्यत १०

जो इन्द्रिदाता यज्ञमानके लिये सुयुक्त व्यक्तियोंको फालित करते हैं, तब हैं, नेता हैं, जो छूट गए हैं उनकी शरीर उपमा है अतीदुं शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।

भिनत् कनीनं ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥११॥

अति । इत् । ऊं । शत । शक्रः । ओहत । इन्द्रः । विश्वाः ।

अति । द्विषः ।

भिनत् । कनीनः । ओदनम् । पच्यमानम् । परः । गिरा ॥११॥

इन्द्रदेव इस बड़े भारी भारको सम्हालते हैं, इन्द्रदेव समस्त शत्रुओंको दबा देते हैं, इन्होंने कनीन होने पर भी मन्त्रसे पकते हुए ओदनको भेद डाला था ॥ ११ ॥

अर्भको न कुमारकोधिं तिष्ठन्नवं रथम् ।

स पत्न्यमहिपं मृगं पित्रे मात्रे विभुः क्रतुम् ॥१२॥

अर्भकः । न । कुमारः । अधि । तिष्ठत् । नवम् । रथम् ।

सः । पत्न्यम् । महिपम् । मृगम् । पित्रे । मात्रे । विभुः क्रतुम् १२

थेष्ट बालककी समान वह नवीन रथ पर सवार होते हैं और माता पिता (धावापृथिवी) के लिये विभुः क्रतु महिप और मृग का पचन करते हैं ॥ १२ ॥

आ तू सुशिश्रु दंपते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।

अथ द्युत्तं संचेवहि स हस्तपादमरुपं स्वस्तिगामनेहसम्

आ । तू । सुशिश्रु । दम्पते । रथम् । तिष्ठ । हिरण्ययम् ।

अथ । सु॒तम् । स॒चे॒व॒हि । स॒ह॒स्र॒ज्वा॒दम् । अ॒रु॒पम् । स्व॒स्ति॒ऽ-
गा॒म् । अ॒ने॒ह॒सम् ॥ १३ ॥

हे सुन्दर ठोड़ी वाले दम्पते इन्द्र ! आप सुवर्णके रथ पर
अधिष्ठित हजिये और हम भी फिर सहस्रों मार्ग वाले, रूपवान्
स्वस्तिमय बाणियोंसे सम्पन्न निष्पाप स्वर्ग पर आरुढ़ होवें १३
तं घे॑मि॒त्था न॑म॒स्वि॒न॒ उप॑ं स्व॒राज॑मासते ।

अथ॑ चि॒दस्य॑ सु॒धितं॑ यदे॒त॒व आ॒व॒र्तय॑न्ति दा॒वने॑ १४
तम् । घ॒ । ई॒म् । इ॒त्या । न॒म॒स्वि॒नः । उप॑ । स्व॒राज॑म् । आ॒स॒ते ।
अ॒र्थम् । चि॒त् । अ॒स्य॑ । सु॒धित॑म् । यत् । ए॒त॒वे । आ॒व॒र्तय॑न्ति ।
दा॒वने॑ ॥ १४ ॥

उनको इस प्रकार जान कर प्रणाम करने वाले पुरुष स्वराज
पर बैठते हैं, और इनके पास जो घन भली प्रकार स्थित है उस
को अतिवज्र इविर्दाता यजमानके लिये लाते हैं ॥ १४ ॥

अ॒नु॒ प्र॒त्न॒स्यौ॒कंसः॑ प्रि॒यमे॑धास ए॒षाम् ।
पू॒र्वाम॑नु प्र॒यति॑ वृ॒क्तव॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आ॒शत॑ १५
अ॒नु । प्र॒त्न॒स्य॑ । ओ॒कंसः॑ । प्रि॒यमे॑धासः । ए॒षाम् ।
पू॒र्वाम् । अ॒नु । प्र॒यति॑म् । वृ॒क्तव॑र्हिषः । हि॒तप्र॑यसः । आ॒शत॑

इनके प्राचीन भवनके मियबुद्धि अतिवज्र हितकारक अन्न
वाले होकर पूर्वा प्रयतिका उपभोग लगाते हैं ॥ १५ ॥

यो राजा चर्पणीनां याता रथेभिरधिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे १६

यः । राजा । चर्पणीनाम् । याता । रथेभिः । अधिगुः ।

विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रहा । गृणे

जो मनुष्योंके राजा इन्द्रदेव रथसे चलते हैं । सम्पूर्ण सेनाओं

को तरने वाले हैं और ज्येष्ठ हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ १६

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नावसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भ । पुरुहन्मन् । अवसे । यस्य । द्विता । वि-

धर्तरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः

है पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके

लिये इन्द्रको अर्पण करिये, उनकी सत्ता मध्यमलोक अन्तरिक्ष

और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये

हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ १७ ॥

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृषम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वंसमष्टं धृष्यवोजसम् १८

नकिः । तम् । कर्मणा । नशत् । यः । चकार । सदावृषम् ।

इन्द्रम् । न । यज्ञैः । विश्वगूर्तम् । ऋभ्वंसम् । अष्टम् । धृष्यव-

जो पुरुष यज्ञोंके द्वारा, सब कार्योंमें प्रचण्ड बली, सदा हृदि करने वाले, अश्वत्स, अघृष्ट और घर्षक तेज वाले इन्द्रकी सेवा करता है, कोई पुरुष उसको अपने कर्मसे नष्ट नहीं कर सकता १८

अषान्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुज्रयः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्धावः क्षामो अनोनवुः

अषान्हम् । उग्रम् । पृतनासु । सासहिम् । यस्मिन् । महीः । रुज्रयः

सम् । धेनवः । जायमाने । अनोनवुः । धावः । क्षामः । अनोनवुः

जो इन्द्रदेव सेनाओंमें असश्र हैं, और प्रचण्ड हैं, जिनमें विशाल शरणा मार्ग हैं, जिनके प्रकट होने पर वाणिष् मत्ती प्रकार स्तुति करती हैं, धुलोक और पृथिवीलोक स्तुति करते हैं (जन् इन्द्रकी तुम स्तुति करो) ॥ १६ ॥

यद् द्यावं इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रौदसी

यद् । द्यावः । इन्द्र । ते । शतम् । शतम् । भूमीः । उत । स्यु-

रिति स्युः ।

न । त्वा । वज्रिन् । सहस्रम् । सूर्याः । अनु । न । जातम् । अष्ट ।

रौदसी इति ॥ २० ॥

हे भगवन् ! इन्द्र ! यदि सैंकड़ों धुलोक और सैंकड़ों भूलोक हों वा सहस्रों सूर्य और द्यावापृथिवी होजावें तथापि आप प्रादुर्भूत हुए मात्रको भी वह नहीं पहुँच सकते ॥ २० ॥

आ पंप्रायमहिना वृषण्यां वृषन् विश्वां शविष्ठ शवसा

अस्माँ अव मघवन् गोमंति व्रजे वज्रिं चित्राभिरु-
तिभिः ॥ २१ ॥

आ । प॒मा॒य । म॒हि॒ना । वृ॒ष्प॒णा । वृ॒ष॒न् । वि॒र॒वा । श॒वि॒ष्ठ॒ ।
श॒व॒सा ।

अ॒स्मा॒न् । अ॒व । म॒घ॒ऽव॒न् । गो॒ऽम॒ति॒ । व्र॒जे । व॒ज्रि॒न् । चि॒त्रा॒भिः ।
ऊ॒ति॒ऽभिः ॥ २१ ॥

इति अष्टमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे वज्रिन् शविष्ठ मघवन् वर्षक इन्द्र । हमारे गौओं वाले व्रज
में अपना विचित्र रक्तक शक्तियोंसे हमारी रक्षा करिये और
अपनी महिमासे हमको बलपूर्वक बढ़ाइये ॥ २१ ॥

अष्टम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७०८)

दशरात्रे दशमेहनि “उत् त्वा मन्दन्तु” इति आज्यस्तोत्रिषो
भवति । तद् उक्तं वैताने । “उत् त्वा मन्दस्वित्याज्यस्तोत्रिषः”
इति [वै० ६. ३] ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकारेषु “सुरूपकृन्नुमृतये” [२०.
५७] “उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” [२०. ६३] “त्वामिद्धि हवामहे” [२०. ६८] इत्याद्यावाज्यस्तोत्रिषां विकल्पितौ भवतः ।
तृतीयः पृष्ठस्तोत्रिषो भवति । तद् उक्तं वैताने । “श्येनसंदंशा-
जिरवज्रेषु सुरूपकृन्नुमृतय उत् त्वा मन्दन्तुस्तोमास्त्वामिद्धि
हवामहे इति” इति [वै० ८. १] ॥

महाव्रते प्रातःसवने “ईद्वयन्तीरपस्युवः” [२०. ६३. ४]
इति पञ्चमं सूक्तम् आवापस्थाने आवापते । तद् उक्तं वैताने ।
“ईद्वयन्तीरपस्युव इत्यावर्गम्” इति [वै० ६. ४] ॥

दशरात्रके दशम दिनमें “उत् त्वा मन्दन्तु” यह आज्यस्तोत्रिय होता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“उत् त्वा मन्दन्तिवत्याज्यस्तोत्रियः” (वैतानसूत्र ६ । ३) ॥

तथा श्येनसंदंशाजिरवज्र एकाहोमें “सुरूपकृत्नुमृतये” (२० । ५७) “उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमाः” (२० । ६३ ।) “त्वामिद्धि हवामहे” (२० । ६८) ये विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं। तृतीय पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु सुरूपकृत्नुमृतये उत् त्वा मन्दन्तु स्तोमास्त्वमिद्धि हवामहे” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

महाव्रतके प्रातःसवनमें “ईद्वयन्तीरपस्युवः” (२० । ६३ । ४) इस पञ्चम्य सूक्तको आवापस्थानमें पढ़ा जाता है। इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“ईद्वयन्तीरपस्युव इत्यावपते” (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

उत् त्वां मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अवं ब्रह्मद्रिषो जहि ॥ १ ॥

उत् । त्वा । मन्दन्तु । स्तोमाः । कृणुष्व । राधः । अद्रिवः ॥

अव । ब्रह्मद्रिषः । जहि ॥ १ ॥

हे वज्रधारिन् इन्द्र ! यह स्तोत्र आपको आनन्द देवें, आप हमें धन प्रदान करिये और ब्रह्मद्रिषोंका संहार करिये ॥१॥

पदा पणिराधसो नि बाधस्व मुहौ अति । नहित्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

पदा । पणीन् । अराधसः । नि । बाधस्व । मुहान् । अति ॥

नहि । त्वा । कः । चन । प्रति ॥ २ ॥

आप पणि नामक असुरोंको निर्धन करके उनका संहार करिये,
क्योंकि—आप महान् हैं, आपसे टक्कर लेने वाला कोई नहीं है २
त्वमींशिपे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा
जनानाम् ॥ ३ ॥

त्वम् । ईंशिपे । सुतानाम् । इन्द्र । त्वम् । असुतानाम् ॥ त्वम् ।

राजा । जनानाम् ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभिषुत और अनभिषुत (निचोड़े और
न निचोड़े हुए) सोमोंके ईश्वर हैं और जनोंके ईश्वर हैं ॥३॥
ईक्ष्वन्तीपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सु-
वीर्यम् ॥ ४ ॥

ईक्ष्वन्तीः । अपस्युवः । इन्द्रम् । जातम् । उप । आसते ॥ भेजा-
नासः । सुवीर्यम् ॥ ४ ॥

सुन्दर शक्तिका सेवन करती हुई जल चाहती हुई सोमात्मक
आपधियें प्रकट होते ही इन्द्रकी उपासना करने लगती हैं ॥४॥
त्वमिन्द्र वलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्
वृषदंसि ॥ ५ ॥

त्वम् । इन्द्र । वलात् । अधि । सहसः । जातः । ओजसः ॥

त्वम् । वृषन् । वृषा । इत् । असि ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! धर्षक ओजके बलसे प्रकट हुए हैं, हे वृषन् !
आप फलोंकी वर्षा करने वाले ही हैं ॥ ५ ॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यं॑न्तरिक्षमतिरः॑ । उद् द्यामेस्तभ्ना
ओजसा ॥ ६ ॥

त्वम् । इन्द्र । असि । वृत्रहा । वि । अन्तरिक्षम् । अतिरः ॥

उद् । द्याम् । अस्तभ्नाः । ओजसा ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्र (असुर वा मेघ) का संहार करने वाले हैं और आप अन्तरिक्षको विशिष्टतासे पार कर जाते हैं और आप अपने ओजसे धूलोकको स्तम्भित कर डालते हैं ॥ ६ ॥

त्वमिन्द्र सजोषंसमर्कं विभर्षि बाहोः । वज्रं शिशानं
ओजसा ॥ ७ ॥

त्वम् । इन्द्र । सजोषंसम् । अर्कम् । विभर्षि । बाहोः ॥ वज्रम् ।

शिशानः । ओजसा ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप भीति उत्पन्न करने वाले मन्त्रको धारण करके अपनी भुजाओंके बलसे वज्रको तीक्ष्ण करके धारण करते हैं ॥ ७ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरांसि विश्वां जातान्योजसा । स विश्वा
भुव आभवः ॥ ८ ॥

त्वम् । इन्द्र । अभिभूः । असि । विश्वा । जातानि । ओजसा ॥

सः । विश्वाः । भुवः । अभवः ॥ ८ ॥

इति अष्टमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! जिनने मकड़ होने वाले पदार्थ हैं उनको आप अपने बलसे दबा सकते हैं, वह आप (हमारे विरुद्ध) मकड़ होने वाली सब शक्तियोंका पराभव करिये ॥ ८ ॥

अष्टम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (७०६)

तृतीये छन्दोमेषनि “आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” इत्यस्य “अथर्वबोक्षणम्” [२०, ८७] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

तृतीय छन्दोम दिनमें “आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय” इसका “अथर्वबोक्षणम्” (२०।८७) के साथ विनियोग कह दिया है
आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तु-
विष्मान् ।

प्र॒त्वि॒क्षा॒णो अ॒ति॒ वि॒श्वा॒ स॒र्हा॒स्य॒पा॒रेण॑ म॒ह॒ता वृ॒ष्य॒येन॑
आ । या॒तु । इन्द्रः । स्व॒प॒तिः । म॒दाय॑ । यः । ध॒र्म॒णा । तू॒तु॒जा॒न॒स्तु॒
तु॒विष्मा॒न् ।

प्र॒त्वि॒क्षा॒णः । अ॒ति॒ । वि॒श्वा॒ । स॒र्हा॒सि॒ । अ॒पा॒रेण॑ । म॒ह॒ता ।
वृ॒ष्य॒येन॑ ॥ १ ॥

बलवान् इन्द्र कि-जो धर्मसे शीघ्रता करते हैं, वह धनपति इन्द्र मदके लिये आवें, और अपने अपार महान् वर्षक बलसे सब दवाने वालोंको क्षीण करें ॥ १ ॥

सु॒श्र॒मा रथः॑ सु॒य॒मा ह॒रां ते॑ मि॒म्य॒क्षु व॒ज्रो॑ नृ॒प॒ते ग॒भं॒स्तौ
शी॒र्भं रा॒जन् सु॒य॒था या॒ह्य॒र्वा॒ङ् व॒र्धाम॑ ते पु॒पु॒शो
वृ॒ष्य॒या॒नि ॥ २ ॥

सुस्थामा । रयः । सुज्यमा । हरी इति । ते । मिम्यत्त । वज्रः ।

नृपते । गर्भस्तौ ।

शीभम् । राजन् । सुज्यमा । आ । याहि । अर्वाङ् । वर्धाम ।

ते । पपुपः । वृथयानि ॥ २ ॥

आपके रथमें बैठनेका स्थान अच्छा है, आपके घोड़े भली प्रकार बशमें रहने वाले हैं । हे नृपते ! आपके हाथमें वज्र प्राप्त होता है हे राजन् ! आप स्वर्गसे नीचेको सुन्दर मार्गसे आइये हम आप पान करनेकी इच्छा वालेके अभिवर्षक बलोंको बढ़ातेहैं २

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रंवाहुमुग्रमुग्रासंस्तविषासं एनम् प्रत्वंक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमंस्मत्रा संधमादो वहन्तु ३

आ । इन्द्रवाहः । नृपतिम् । वज्रंवाहुम् । उग्रम् । उग्रासः ।

तविषासः । एनम् ।

मज्ज्वक्षसम् । वृषभम् । सत्यशुष्मम् । आ । ईम् । अस्मज्जा ।

सधमादः । वहन्तु ॥ ३ ॥

इन्द्रको सवारी देनेवाले उग्र बलवान् घोड़े इन नृपति, धृजाओं में वज्रको धारण करने वाले, उग्र शत्रुओंको क्षीण करने वाले, फलवर्षक, सत्यबली इन्द्रको इस यज्ञमें लावें ॥ ३ ॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचंतसमूर्जं स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।

(४५४) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अय्यसो यथा केनिपानां
मिनो वृधे ॥ ४ ॥

एव । पतिम् । द्रोणऽसाचम् । सञ्चेतसम् । ऊर्जः । स्कम्भम् ।
वृधे । आ । वृषऽयसे ।

ओजः । कृष्व । सम् । गृभाय । त्वे इति । अपि । असः । यथा ।
केऽनिपानाम् । ऊनः । वृधे ॥ ४ ॥

(हे अश्विज !) द्रोण नामक पात्रसे संयुक्त होने वाले, शत-
वान, बली, स्कम्भ इन्द्रको आप जलमें धरसाइये, आप बल प्रदान
करिये, मुक्तको भली प्रकार ग्रहण करिये, मैं केनिपानोंकी वृद्धि
के लिये आपमें होऊँ ॥ ४ ॥

गमन्नस्मे वसून्त्या हि शंसिपं स्वाशिपं भरमा याहि
सोमिनः ।

त्वमीशिपे सोस्मिन्ना संत्ति बर्हिष्यनाष्टृष्या तव
पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥

गमन् । अस्मे इति । वसूनि । आ । हि । शंसिपम् । सुऽआशि-
पम् । भरम् । आ । याहि । सोमिनः ।

त्वम् । ईशिपे । सः । अस्मिन् । आ । संत्ति । बर्हिषि । अनाष्टृष्या ।
तव । पात्राणि । धर्मणा ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस यजमानमें घनको प्राप्त कराइये, इस मन्त्र-
पाठ करने वालेको सुन्दर आर्गावार्द सम्पन्न करिये और इस
सोम वाले यजमानके घरमें आइये, आप ईश्वर हैं अतः इस
कुशासन पर बैठिये, धारण शक्तिके कारण आपके पात्र अष्टपुष्प हैं ५

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोक्तं एव तत्र वस्यन्ति दुष्टराः ।
न ये शैकुर्विज्ञियां नावमारुहं भीर्मव ते न्यविशन्त केपयः
पृथक् । प्र । आपन् । प्रथमाः । देवहूतयः । अष्टपुष्प । वस्यन्ति ।
दुष्टराः ।

न । ये । शैकुः । विज्ञियाम् । नावम् । आरुहम् । भीर्मा । एव ।
ते । नि । अविशन्त । केपयः ॥ ६ ॥

जो विद्या और कर्मके अनुरूप पूषक् २ देवयान वा पितृ-
यानसे भ्रमण करना चाहते हैं और जो सर्व साधारणसे कठि-
नतासे करने योग्य देवहूति यशोंको करते हैं किन्तु आपकी
कृपादृष्टि न होने पर वे यज्ञरूपी नौका पर नहीं चढ़ सकते और
यज्ञरूपी नौका पर न चढ़नेके कारण वे कपूय कर्मको ही करते
हैं अतः कर्मानुसार इसी लोककी किसी योनिमें पड़े रहते हैं ६
एवैवापागपरे सन्तु दुद्वयोश्वा येषां दुर्युजं आयुयुञ्जे ।
इत्या ये प्रागुपरं सन्ति दावनें पुरुषि यत्र वयुनानि
भोजना ॥ ७ ॥

एव । एव । अपाक् । अपरे । सन्तु । दुःऽप्युः । अश्वाः । येषाम् ।
दुःऽप्युजः । आयुयुञ्जे ।

इत्या । ये । माक् । उपरे । सन्ति । दावने । पुरुणि । यत्र ।

वयुनानि । भोजना ॥ ७ ॥

दूसरे दुःध्य अरव अपाक रहें, किं-जिनको दुर्घ्न संयुक्त करते हैं, और जो दाताके लिये जिनमें बहुतसे श्रेष्ठ भोजन भरे हुए हैं वे मेघ होवें ॥ ७ ॥

गिरिरज्जान् रेजमानाँ आधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।

समीचीने धिपणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मदं उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥

गिरीन् । अजान् । रेजमानान् । आधारयत् । द्यौः । क्रन्दत् ।

अन्तरिक्षाणि । कोपयत् ।

समीचीने इति समूर्द्धीचीने । धिपणे इति । वि । ष्कभायति ।

वृष्णः । पीत्वा । मदं । उक्थानि । शंसति ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव इस वर्षक सोमके रसको पीकर मद होने पर श्रेष्ठ २ पर्वतोंको धारण करते हैं, धलोकको क्रन्दित करते हैं, अन्तरिक्ष के पदार्थोंको कुपित करते हैं, समीचीन द्यावापृथिवीको, विष्कभित करते हैं, और उक्थोंकी प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

इमं विभर्मि सुकृतं ते अद्भुशं येनारुजासि मघवंछ हारुजः
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्त्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्या-
भगे ॥ ९ ॥

इमम् । विभर्षिम् । सुकृतम् । ते अहुशम् । येन । आरुनासि ।

मघऽवन् । शफऽआरुजः ।

अस्मिन् । सु । ते । सवने । अस्तु । ओजयम् । सुते । इष्टो ।

मघऽवन् । बोधि । आऽभगः ॥ ६ ॥

हे मघवन् ! मैं आपके इस सुकृत अंकुशको धारण कर रहा हूँ, जिससे आप नाखूनोंसे (वा सुरोंसे) पीड़ा देनेवाले माणियों का नाश करते हैं, इस सवनमें आपका ओज्य होवे, और सोम का अभिषव होने पर आप धनको समझें ॥ ६ ॥

गोभिर्ग्रेमामर्तिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम
गोभिः । तरेम । अपतिम् । दुःऽएवाम् । यवेन । क्षुधम् । पुरुहूतम् ।

विश्वाम् ।

वयम् । राजऽभिः । मथमाः । धनानि । अस्माकेन । वृजनेन । जयेम

हे अनेक यज्ञमानोंसे आह्वान किये हुए इन्द्र ! हम आपसे अनुग्रह पाते हुए यज्ञमान, आपकी दी हुई गोओंसे दुर्गति—
दरिद्रताके पार पहुँच जावें और आपके दिये हुए यव ग्रीहि
आदिसे पुत्र भृत्य आदि सबकी क्षुधाको दूर करें, और आपके अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें मुख्य बने हुए हम वनसे धन प्राप्त
करें और अपने बलसे शत्रुओंको जीतें ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।

इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु

बृहस्पतिः । नः । परि । पातु । पश्चात् । उत्त । उत्तरस्मात् । अय-
रात् । अयऽयोः ।

इन्द्रः । पुरस्तात् । उत्त । मध्यतः । नः । सखा । सखिऽभ्यः ।

वरिवः । कृणोतु ॥ ११ ॥

इति अष्टमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

बृहस्पति देवता पश्चिमदिशाकी ओरसे आते हुए हिंसक पुरुष
से हमारी भली भाँति रक्षा करें, उत्तर दिशासे तथा दक्षिण
दिशासे आते हुए हिंसक पुरुषसे भी हमारी रक्षा करें, इन्द्र-
देवता पूर्वदिशासे और मध्य दिशासे हमको भली भाँति बचावें,
इस प्रकार रक्षा करके मित्र बने हुए इन्द्र मित्र बने हुए हमको
धन प्रदान करें ॥ ११ ॥

अष्टम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त (७१०)

महाव्रते “त्रिकटुकेषु महिषः” [२०. ६५. १] “मो प्वस्मै
पुरोरयम्” [२०. ६५. २] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपी भवतः ।
तद् उक्तं वैताने । त्रिकटुकेषु महिषः मो प्वस्मै पुरोरयमिति स्तो-
त्रियानुरूपी” इति [वै० ६. ४] ॥

महाव्रतमें “त्रिकटुकेषु महिषः” (२० । ६५ । १) “मो प्व-
स्मै पुरोरयम्” (२० । ६५ । २) - वापा ६-७ - अथर्ववेद-वे
हैं । इसी वातको वैतानसूत्रमें करते हैं ॥ ८ ॥
मो प्वस्मै पुरो रयमिति स्तोत्रियेनारुजासि मध्वंश्च कारुजः

त्रिकटुकेषु महिषो यत्त्वोक्तं सुत इष्टो मध्वन्वो ध्या-
पिवद् विष्णुना सु

स ई ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्वद्
देवो देवं सत्यमिन्द्र सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

त्रिःश्रुकेषु । महिषः । यवःश्माशिरम् । तुविःशुष्मः । वृषत् ।

सोमम् । अपिबत् । विष्णुना । सुतम् । यथा । अवशत् ।

सः । ईम् । ममाद । महि । कर्म । कर्तवे । महाम् । उरुम् । सः ।

एनम् । सश्वत् । देवः । देवम् । सत्यम् । इन्द्रम् । सत्यः । इन्दुः । १

परमवली राजा इन्द्र त्रिकद्रु रु सोमयागोंमें जौ मिले हुए पदार्थ से वृत्त होते हैं, सोमका पान करते हैं, विष्णुके निचोड़े हुए सोमको वशमें करते हैं, वह सोम विशाल कर्म करनेके लिये इन इन्द्रको मदमें भर देता है, यह सत्य सोम देव इन विशाल सत्य-देव इन्द्रसे संयुक्त होना है ॥ १ ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूपमर्चत ।

अभीके चिदु लोककृत् मंङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि
चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधिधन्वसु २

प्रो इति । सु । अस्मै । पुरःऽरथम् । इन्द्राय । शूपम् । अर्चत ।

आभीके पुत्र मृत्यु आदि सत् । लोककृत् । समृजो । समत्सु ।

अनुग्रहसे अपने समान पुरुषोंमें धि । चोदिता । नभन्ताम् । अन्यके-
करे और अपने बलसे शत्रुओंको नन्वऽसु ॥ २ ॥

वृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोऽपो, रथके आगे रहने वाले इन
इन्द्रः पुरस्तादुत मन्वतो नः सखा । में लोककर्ता है, संग्राममें आव-

रक शत्रुओंका नाश करने वाले हैं, यह मेरक देव हमारे स्तोत्रों
को जान गए हैं, दूसरे पुरुषों की मृत्युआएँ धनुष पर न चढ़ सकें २
त्वं सिन्धूर्वासृजोधराचो अहन्नहिम् ।

अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परिं
ज्वामहे नभं० ॥ ३ ॥

त्वम् । सिन्धून् । अवं । असृजः । अधराचः । । अहन् । अहिम् ।
शत्रुः । इन्द्र । जज्ञिषे । विश्वम् । पुष्यसि । वार्यम् । तम् । त्वा ।
परि । स्वजामहे ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने नदियोंको दक्षिणकी ओर जाने वाली
करके रचा है, और आपने मेघ वा वृत्रासुरका संहार किया है,
हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुहरित होते हुए मकट होते हैं, सब वरण
करने योग्य पदार्थोंको पुष्ट करते हैं ऐसे आपका हम आलिङ्गन
करते हैं दूसरोंकी मृत्युआएँ धनुषों पर न चढ़ सकें ॥ ३ ॥

वि पु विश्वा अरातयोर्गो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते
रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेपां ज्याका अधि धन्वंसु
वि । सु । विश्वाः । अरातयः । अर्यः । नशन्तः । नः । धियः ।
अस्ता । असि । शत्रवे । वधम् । यः । नः । इन्द्र । जिघांसति ।
या । ते । रातिः । ददिः । वसु । नभन्ताम् । अन्यकेपाम् ।
ज्याकाः । अधि । धन्वंसु ॥ ४ ॥

इति अष्टमेनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे स्वामी हैं, अतः हमारे जो सम्पूर्ण शत्रु हैं, उनकी बुद्धियें नष्ट होजावें, हे इन्द्र ! जो शत्रु हमको मारना चाहता है आप उस शत्रु पर मृत्युके साधन वज्रको फेंकिये आपका जो धन है उस धनको हमें प्रदान करिये, आपके अनुग्रहसे शत्रुओंकी मृत्युआएँ धनुष पर न चढ़ सकें ॥ ४ ॥

अष्टम अनुवाक्ये पञ्चम सूक्त समाप्त (७११)

महाव्रते माध्यन्दिने सवने “तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहि” इत्येतावत्तुर्विंशतिम् ऋचः आवापस्थाने आवपते । तद् उक्तं वैताने । “तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते” इति [वै० ६. ४] ॥

महाव्रतके माध्यन्दिनसवनमें “तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहि” इन चौबीस ऋचाओंको आवापस्थानमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहीति चतुर्विंशतिम् आवपते” (वैतानसूत्र ६ । ४) ॥

तीव्रस्याभिव्यसो अस्य पाहि सर्वथा वि हरी इह मुञ्च
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यं-
मिमे सुतासः ॥ १ ॥

तीव्रस्य । अभिव्यसः । अस्य । पाहि । सर्वथा । वि ।
हरी इति । इह । मुञ्च ।

इन्द्र । मा । त्वा । यजमानासः । अन्ये । नि । रीरमन् । तुभ्यम् ।
इमे । सुतासः ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस तीव्र हविरूप अन्नके अभिमुख रहने वाले यजमानके सब रथियोंकी रक्षा करिये और इस यज्ञमें

अपने घोड़ोंको छोड़िये, हे इन्द्र ! दूसरे यजमान आपको अधिक
रमण न करा सकें, क्योंकि-आपके लिये इन सोमोंका अभिपव
होचुका है ॥ १ ॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यंमु सोत्वांसस्त्वां गिरः श्वाभ्या आ
ह्वयन्ति ।

इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि
सोमम् ॥ २ ॥

तुभ्यम् । सुताः । तुभ्यम् । ऊँ इति । सोत्वांसः । त्वाम् । गिरः ।
श्वाभ्याः । आ । ह्वयन्ति ।

इन्द्र । इदम् । अद्य । सवनम् । जुषाणः । विश्वस्य । विद्वान् ।
इह । पाहि । सोमम् ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! ये सोम आपके लिये निचोड़े गए हैं, आपके लिये
ही सोत्वास् (निचोड़े गए) हैं, ये बाणियों शीघ्रता करती हुई
आपका ही आह्वान कर रही हैं, हे इन्द्र ! आप सबको जानने
वाले हैं अतः आज इस सवनका सेवन करके इस सोमका
पान करिये ॥ २ ॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति
न गा इन्द्रस्तस्य परां ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै
कृणोति ॥ ३ ॥

यः । उशता । मनसा । सोमम् । अस्मै । सर्वहृदा । देवकामः ।
सुनोति ।

न । गाः । इन्द्रः । तस्य । परा । ददाति । मञ्शस्तम् । इत् ।

चारुम् । अस्मै । कृणोति ॥ ३ ॥

देवताओंकी कामना वाला जो पुरुष कामना करते हुए पूर्ण मनसे इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव करता है, इन्द्रदेव उसकी स्तुतियोंको नहीं लाँटाते—ग्रहण कर लेते हैं—और इसके लिये सुन्दर और श्रेष्ठ बातको करते हैं ॥ ३ ॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति
सोमम् ।

निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः

अनुस्पष्टः । भवति । एषः । अस्य । यः । अस्मै । रेवान् । न ।

सुनोति । । सोमम् ।

निः । अरत्नौ । मघवा । तम् । दधाति । ब्रह्मद्विषः । हन्ति ।

अननुदिष्टः ॥ ४ ॥

जो धनवान् पुरुष इन इन्द्रदेवके लिये सोमका अभिषव नहीं करता है वह इन इन्द्रदेवसे अनुस्पष्ट होता है, इन्द्रदेव उसको अपने मुक्केमें धरते हैं और इन्द्रके निमित्त हवि न देनेसे वह उन ब्रह्म-देवियोंको मार डालते हैं ॥ ४ ॥

अश्वायन्तो गज्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा
उ ।

आभूयन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम

अश्वस्यन्तः । गव्यन्तः । वाजयन्तः । इवामहे । त्वा । उपस्यन्तवै ।
ऊँ इति ।

आऽभूषन्तः । ते । मुऽपनौ । नवायाम् । वयम् । इन्द्र । त्वा ।
शुनम् । हुवेम ॥ ५ ॥

घोड़े गौ और अन्नको चाहते हुए हम आपकी शरण लेनेके
लिये आपका आह्वान करते हैं, हम आपकी नवीन सुमतिमें
विभूषित होने हुए आप मुखरूपका आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कर्मज्ञातयक्ष्मादुत
राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्
मुञ्चामि । त्वा । हविषा । जीवनाय । कम् । अज्ञातयक्ष्मात् ।
उत । राजयक्ष्मात् ।

ग्राहिः । जग्राह । यदि । एनम् । एनम् । तस्याः । इन्द्राग्नी इति ।
प्र । मुमुक्तम् । एनम् ॥ ६ ॥

हे रोगिन् ! मैं तुम्हको जीवन रहनेके लिये हविके द्वारा
अज्ञानयक्ष्मा और राजयक्ष्मा रोगसे छुड़ाता हूँ, यदि ग्राहिका
पिशाचीने इसको पकड़ लिया हो तो हे इन्द्र और अग्निदेवताओं !
तुम इस रोगीको उसके पाससे मुक्त करो ॥ ६ ॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत
एव ।

तमा ह॑रामि नि॒र्ऋते॑रुप॒स्यादस्पा॑र्शमे॒नं श॒तशा॑र॒दाय ७

यदि॑ । जित॒ऽआयुः॑ । यदि॑ । वा । परा॑ऽइतः । यदि॑ । मृत्योः ।

अ॒न्तिकम् । नि॒ऽइतः॑ । ए॒व ।

तम् । आ । ह॒रामि॑ । निःऽऋ॒तेः । उप॒स्यात् । अस्पा॑र्शम् ।

ए॒नम् । श॒तऽशा॑र॒दाय ॥ ७ ॥

यदि इसकी आयु क्षीण होगई है, यह बड़ा ही गया बीता हुआ होगया है, वा मृत्युके पास ही पहुँच चुका है, तब भी मैं इसको निश्च॒ति राज्ञसीकी गोदमेंसे खेचता हूँ, मैंने सौ वर्षकी आयु तक जीवित रहनेके लिये इसका स्पर्श कर लिया है ॥७॥

स॒हस्रा॑क्षे॒ण श॒तवी॑र्ये॒ण श॒तायु॑षा ह॒विषा॑हार्प॒मेनम् ।

इन्द्रो॑ यथे॒नं श॒रदो॑ न॒यात्य॑ति॒ विश्व॑स्य दुरि॒तस्य॑

पा॒रम् ॥ ८ ॥

स॒हस्र॑ऽअ॒क्षे॒ण । श॒तऽवी॑र्ये॒ण । श॒तऽआ॑युषा । ह॒विषा॑ । आ ।

अ॒हार्प॑म् । ए॒नम् ।

इन्द्रः॑ । यथा॑ । ए॒नम् । श॒रदः॑ । न॒याति॑ । अ॒ति । वि॒श्वस्य॑ ।

दुः॒ऽइत॑स्य । पा॒रम् ॥ ८ ॥

सैंकड़ों प्रकारके वीर्य और सहस्रों प्रकारकी सूक्ष्मदृष्टि और सौ वर्षकी आयु (प्रदान करने) वाली हविसे मैं इस रोगीको मृत्युसे हर लाया हूँ, इन्द्रदेव इसको वर्षों तक सब पापोंके पार पहुँचावे ॥ ८ ॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् व्यतमुं वस-
न्तान् ।

शतं ते इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हवि-
पाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥

शतम् । जीव । शरदः । वर्धमानः । शतम् । हेमन्तान् । शतम् ।
ऊँ इति । वसन्तान् ।

शतम् । ते । इन्द्रः । अग्निः । सविता । बृहस्पतिः । शतऽआयुषा ।
हविषा । आ । अहार्षम् । पुनम् ॥ ९ ॥

हे रोगिन् ! तू सौ वर्ष तक जीवित रह, सौ वर्ष तक बड़ा
रह, सौ हेमन्त और वसन्त ऋतुओं तक रह, इन्द्र अग्नि सविता
और बृहस्पति देवता तुझको सौ वर्षकी आयु मंदान करें, मैं
सौ वर्षकी आयु देने वाली हविसे इसको ले आया हूँ ॥ ९ ॥

आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेविदम् ॥ १० ॥

आ । अहार्षम् । अविदम् । त्वा । पुनः । आ । अगाः । पुनः-
ऽनवः ।

सर्वऽअङ्ग । सर्वम् । ते । चक्षुः । सर्वम् । आयुः । च । ते ।
अविदम् ॥ १० ॥

मैं तुझको लौटाया हुआ समझता हूँ, तू फिर आ, फिर
नवीन हो, हे सर्वाङ्ग ! मैंने तेरी चक्षु और पूर्ण आयुको इस
कर्मके प्रभावसे पा लिया है ॥ १० ॥

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।

अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥

ब्रह्मणा । अग्निः । सम्विदानः । रक्षःऽहा । बाधताम् । इतः ।

अमीवा । यः । ते । गर्भम् । दुःनामा । योनिम् । आशये ११

राक्षसोंका संहार करने वाले अग्निदेव मन्त्रसे संयुक्त होते हुए उसको यहाँसे बाधा दे जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ योनिमें शयन कर रहा है ॥ ११ ॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥

यः । ते । गर्भम् । अमीवा । दुःनामा । योनिम् । आशये ।

अग्निः । तम् । ब्रह्मणा । सह । निः । क्रव्यऽअदम् । अनीनशत् १२

जो दूषित नाम वाला रोग तेरे गर्भ और योनिमें शयन कर रहा है उन स्थानोंको अग्निदेव मन्त्रकी सहायतासे कच्चे मांस का भक्षण करने वाले रोगसे रहित करके उस रोगको ही नष्ट कर डालें ॥ १२ ॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निपत्सुं यः संरीसृपम् ।

जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥

यः । ते । हन्ति । पतयन्तम् । निपत्सुम् । यः । संरीसृपम् ।

जातम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १३

जो तेरे गिरते हुए, सरकते हुए निपट्नु वा निकलते हुए गर्भ को मारना चाहता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥१३॥

यस्तं ऊरु विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।

योनिं यो अन्तरोरेलिह तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥

यः । ते । ऊरु इति । विहरति । अन्तरा । दम्पती इति दम्पती । शये ।

योनिम् । यः । अन्तः । आजरेन्हि । तम् । इतः । नाशयामसि १४-

जो रोग वा भूत राक्षस, तेरी ऊरुओंमें विहार करता है तुम दोनों दम्पतियोंमें शयन करता है जो योनिके भीतर आलोक करता है उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥

यः । त्वा । भ्राता । पतिः । भूत्वा । जारः । भूत्वा । निपद्यते ।

प्रजाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १५-

जो भूत वा राक्षस तुम्हको भाई, पति, वा जार बनकर प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तानको नष्ट करना चाहता है, उसको हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १५ ॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।

प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

यः । त्वा । स्वप्नेन । तमसा । मोहयित्वा । निपद्यते ।

प्रज्ञाम् । यः । ते । जिघांसति । तम् । इतः । नाशयामसि १६

जो पुरुष तुम्हको स्वप्नके अँधेरेसे मोहमें डाल कर भास हो-
जाता है और जो तेरी मजाको नष्ट करना चाहता है उसको
हम यहाँसे नष्ट करते हैं ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां ह्रुवुंकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कांज्जिह्वाया वि वृहामि ते १७

अक्षीभ्याम् । ते । नासिकाभ्याम् । कर्णाभ्याम् । ह्रुवुंकात् । अधि ।
यक्ष्मम् । शीर्षण्यम् । मस्तिष्कात् । जिह्वायाः । वि । वृहामि । ते १७

मैं तेरे नेत्रोंसे, तेरी नाकके दोनों नथुनोंसे, दोनों कानोंसे,
तेरी ठोड़ीसे यक्ष्मा रोगको, और मस्तिष्कमें होने वाले शीर्षण्य
रोगको मस्तिष्कसे और जिह्वासे निकालता हूँ ॥ १७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकंसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यं मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते १८

ग्रीवाभ्यः । ते । उष्णिहाभ्यः । कीकंसाभ्यः । अनूक्यात् ।
यक्ष्मम् । दोषण्यम् । मंसाभ्याम् । बाहुभ्याम् । वि । वृहामि । ते १८

हे व्याधिग्रस्त ! तेरी ग्रीवा (गरदन) की चौदह सूक्ष्म नाड़ियों
से मैं यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ और रक्तमवादके कारण ऊपर
को स्नान कराने वाली स्निग्ध उष्णिह नामकी नाड़ियोंसे,
हंसली और वज्रःस्थलकी नाड़ियोंसे, तथा जिसमें क्रमशः
अस्थियें मिलती हैं उस अनूक्यसे मैं यक्षमारोगको दूर करता हूँ,
तथा तेरे कंधे और मुजाओंसे मैं यक्षमारोगको दूर करता हूँ १८

हृदयात् ते परिं क्लोम्नो हलीक्षणात् पार्श्वाम्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां शीहो यक्ष्मस्ते वि बृहामसि १८
हृदयात् । ते । परिं । ओम्नः । हलीक्षणात् । पार्श्वाम्याम् ।

यक्ष्मम् । मतस्नाभ्याम् । साहः । यक्ष्मः । ते । वि । बृहामसि १८

हे रोगिन् ! मैं तेरे हृदयकमलसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ
और हृदयके समीप स्थित क्लोम (मूत्राधार-पसाने) से तथा
हलीक्षणा नामक मांसपिण्डसे दोनों पसलियोंसे, दोनों पिच्छाधार
पात्रोंसे और उदर तथा पसलियोंमें स्थित श्वेन पक्षीकी समान
आकार वाले सीहा (तिल्ली) से और हृदयके समीपमें स्थित
यक्ष्म (जिगर) से भी मैं राजयक्ष्मा रोगको दूर करता हूँ १८
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।

यक्ष्मं कुक्षिभ्यां साशेर्नाभ्या वि बृहामि ते ॥ २० ॥

आन्त्रेभ्यः । ते । गुदाभ्यः । वनिष्ठोः । उदरात् । अधि ।

यक्ष्मम् । कुक्षिभ्याम् । साशेः । नाभ्याः । वि । बृहामि । ते २०

हे यक्ष्मारोगसे ग्रसे हुए ! मैं तेरी अंतर्दियोंसे, मल और
मूत्रके सरकनेके स्थानोंसे, मोटी आँतसे और इन सबके आधार
उदरसे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ, तथा तेरी दाईं बाईं कोखों
से और अनेक छिद्र वाले मलपात्र प्लाशिसे तथा नाभिमण्डल
से तेरे यक्ष्मारोगको दूर करता हूँ ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अक्षीवद्भ्यां पार्णिभ्यां प्रपंदाभ्याम् ।

यक्ष्मं भसंक्षीं श्रोणिभ्यां भासंदं भसंसो वि बृहामि ते

ऊरुऽभ्याम् । ते । अष्टीवत्ऽभ्याम् । पाणिऽभ्याम् । मण्डपदाभ्याम् ।
 यक्ष्मम् । मस्यम् । श्रोणिऽभ्याम् । भासदम् । भंसतः । वि ।
 वृहामि । ते ॥ २१ ॥

मैं तेरी ऊरुओंसे, जानुओंसे, पैरोंके अपरभागसे और पैरोंके
 अग्रभागसे यक्ष्मारोगको अलग करता हूँ और तेरी कमरमें होने
 वाले यक्ष्माको कटिके नीचेके भागसे अलग करता हूँ और गुह्य-
 देशमें होनेवाले रोगको भासमान गुह्यस्थानसे पृथक् करता हूँ २१

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
 यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते २२
 अस्थिऽभ्यः । ते । मज्जऽभ्यः । स्नावऽभ्यः । धमनिऽभ्यः ।
 यक्ष्मम् । पाणिऽभ्याम् । अङ्गुलिऽभ्यः । नखेभ्यः । वि । वृहामि ।
 ते ॥ २२ ॥

मैं तेरी हड्डी मज्जा आदि सब पातुओंसे, सूक्ष्म नाड़ियोंसे,
 स्थूल नाड़ियोंसे, हाथ अङ्गुलि और नखोंसे यक्ष्मारोगको दूर
 करता हूँ ॥ २२ ॥

अङ्गेऽङ्गे लोम्निऽलोम्नि यस्ते पर्वणिऽपर्वणि ।
 यक्ष्मं त्वचस्य ते वयं कश्यपस्य वीत्रहेण विष्वञ्चं वि
 वृहामसि ॥ २३ ॥

अङ्गेऽङ्गे । लोम्निऽलोम्नि । यः । ते । पर्वणिऽपर्वणि ।

यक्ष्मम् । त्वचस्यम् । ते । वयम् । कश्यपस्य । विश्वर्हेण । विष्व-
श्वम् । वि । इहामसि ॥ २३ ॥

हे रोगिन् ! तेरे ऊपर न कहे गए प्रत्येक अँगोंमें, सम्पूर्ण
रोगकुशलोंमें और प्रत्येक जोड़ोंमें जो यक्ष्मारोग होगया है उस रोग
को हम दूर करते हैं । और तेरी त्वचामें जो यक्ष्मारोग पहुँच
गया है, उसको हम दूर करते हैं, और तेरे नेत्र आदि सम्पूर्ण
अँगोंमें व्याप्त रोगको हम महर्षि कश्यपके इस विबर्ह मन्त्रसे दूर
करते हैं ॥ २३ ॥

अपेहि मनसस्पतेपं क्राम परश्वर ।

परो निर्ऋत्या आ चक्ष बहुधा जीवतो मनः २४

अप । इहि । मनसः । पते । अप । क्राम । परः । चर ।

परः । निःऽऽत्यै । आ । चक्ष । बहुधा । जीवतो । मनः २४

अष्टमेनुवाके षष्ठं सूक्तम् ॥

इति अष्टमोनुवाकः ॥

हे मन पर अधिकार जमाने वाले रोग ! दूर जा, भाग, दूर
विचर, निर्ऋतिसे इस जीवित पुरुषके मनसे दूर रहनेको कह २४

अष्टम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (७१२)

अष्टम अनुवाक समाप्त

बृहस्पतिसत्वे “वयमेनमिदा ह्यः इत्यस्य “तद् वो गाय सुते
सचा” [२०. ७८] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥ तथा सर्व-
जित्यृषभादिषु अस्य तेनैव सह उक्तो विनियोगः ॥

तथा त्रिवृदादिषु सूत्रोक्तेषु सप्तसु त्रिरात्रैकाहेषु “उभयं मृण-
वस्य नः” [२०. ११३] “वयमेनमिदा ह्यः” [२०. ६७]

“पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वा” [२०. ११७] एते आज्यस्तो-
त्रिया भवन्ति चकारात् पृष्ठस्तोत्रिया विकल्पिता भवन्ति तद्
उक्तं वैताने । “त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंशत्रिणवत्रयस्त्रिंशन्वस-
प्तदशोष्टमयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ह्यः पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु
त्वेति” इति [वै०. ८. २] ॥

तथा त्रिककुदशाहे अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा
[२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

बृहस्पतिसवर्मे “वयमेनमिदा ह्यः” इसका “तद् वो गाय सुते
सचा” (२० । ७२) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तथा सर्वजित् ऋषभ आदिमें भी इसका उसके साथ ही
विनियोग कह दिया है ।

तथा त्रिवृत् आदि सूत्रोक्त सात त्रिरात्रैकाहोंमें “उभयं शृण-
वच्च नः” (२० । ११३) “वयमेनमिदा ह्यः” (२० । ६७)
“पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु त्वा” (२० । ११७) ये आज्यस्तो-
त्रिय होते हैं, चकारसे विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी
वातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“त्रिवृत्पञ्चदशसप्तदशैकविंश-
त्रिणवत्रयस्त्रिंशन्वसप्तदशोष्टमयं शृणवच्च नो वयमेनमिदा ॥
पिवा सोममिन्द्र मन्दन्तु स्वेति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा त्रिककुद दशाहमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते
सचा” (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

वयमेनमिदा ह्योषीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य संमना सुतं भरा नूनं भूपत श्रुते ।

वगम् । एनम् । इदा । ह्यः । ओषीपेय । इह । वज्रिणम् ।

तस्मै । ऊं इति । अथ । समना । सुतम् । भर । आ । नूनम् ।
भूपत । श्रुते ॥ १ ॥

हम कल इस सोमसे वज्रधारी इन्द्रको पुष्ट कर चुके हैं उनके
लिये ही आज आप मनको मसन्न करके अभिषुत सोम दीजिये,
हे स्तोताओं ! इस बातको सुन कर तुम भी उन इन्द्रको स्तुतियों
से अवश्य भूषित करो ॥ १ ॥

वृकांश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूपति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुपाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया
एकः । चिद् । अस्य । वारणः । उरामथिः । आ । वयुनेषु ।
भूपति ।

सः । इमम् । नः । स्तोमम् । जुजुपाणः । आ । गहि । इन्द्र ।
प्र । चित्रया । धिया ॥ २ ॥

इन इन्द्रके पास एक अर्थात् कुत्ता भी है, वह शत्रुओंको हटाने
वाला है, वह मेढ़ोंका मथन करने वाला है, वह मझानोंमें आभूषित
करता है, ऐसे हे इन्द्र ! आप हमारे इस स्तोत्रको सुन कर अपनी
कमनीय बुद्धिसे इस यज्ञमें आइये [सरमा देवकुत्ती मसिद्ध है
अतः उसके पोते धेवते भी देवताओंके ही हैं इस लिये यहाँकुत्ते
को एक कहा है, क्योंकि—और श्वापदोंका अवलम्ब है] २

कदू न्व १ स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।

केनो नु कं श्रोमंतेन न शुश्रुवे जनुपः परिवृत्रहा ३
कत् । ऊं इति । नु । अस्य । अकृतम् । इन्द्रस्य । अस्ति ।
पौंस्यम् ।

केनो इति । जु । कम् । श्रोमतेन । न । शुश्रुवे । जनुषः । परि ।
वृत्रऽहा ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके प्रथमं सूक्तम् ॥

ऐसा कौनसा पुरुषार्थका काम है जो इन इन्द्रदेवका किया हुआ नहीं है । किस श्रवणशक्ति सम्पन्नने यह सुखमय बात नहीं सुनी है, कि—यह वृत्रासुरका संहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें प्रथम सूक्त समाप्त (७१३)

श्येनसंदंशाजिरवज्रेषु एकाहेषु “त्वामिद्धि हवामहे” इत्यस्य विनियोगः “सुरूपकृन्मुतये” [२०.५७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा तनूपृष्ठे पठहे अस्य विनियोगः “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

श्येनसंदंशाजिरवज्र एकाहोंमें “त्वामिद्धि हवामहे” का विनियोग “सुरूपकृन्मुतये” (२० । ५७) के साथ कह दिया है ।

तथा तनूपृष्ठ पठहमें इसका विनियोग “यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।

त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

त्वाम् । इत् । हि । हवामहे । साता । वाजस्य । कारवः ।

त्वाम् । वृत्रेषु । इन्द्र । सत्पतिम् । नरः । त्वाम् । काष्ठासु ।

अर्वतः ॥ १ ॥

हम स्तोता अन्नप्राप्ति कराने वाले यज्ञमें आपका ही आवाहन करते हैं, हे इन्द्र ! कोई घेर लेता है ऐसे अवंसरों पर सज्जनोंके पालक दिशाओंमें उदकको मेरित करनेवाले आपका ही नेता लोग आवाहन करते हैं ॥ १ ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त घृष्णुया महस्तवानो अद्रिः
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे
सः । त्वम् । नः । चित्र । । वज्रहस्त । घृष्णुया । महः ।
स्तवानः । अद्रिः ।

गाम् । अश्वम् । रथ्यम् । इन्द्र । सम् । किर । सत्रा । वाजम् ।
न । जिग्युषे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके द्वितीयं सूक्तम् ॥

हे चायनीय । वज्रहस्त वज्र वाले इन्द्र । ऐसे आप हमारी धन-
कत्व प्रदान करने वाली स्तुतिसे स्तुत होकर इस विजय चाहने
वाले रागाके लिये गौ अश्व और रथकी वस्तुएँ अन्नकी समान
प्रदान करिये ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें द्वितीय सूक्त समाप्त (७१४)

अपूर्वाख्ये एकाहे “अभि त्वा पूर्वपीतये” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो
भवति । तद् वक्तुं वैताने । “अपूर्वेभि त्वा पूर्वपीतय इति” इति
[वै० ८. १] ॥

अपूर्व नामक एकाहमें “अभि त्वा पूर्वपीतये” यह पृष्ठस्तोत्रिय
होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अपूर्वेभि त्वा
पूर्वपीतय इति” (वैतानसूत्र (८. १) ॥

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीनासं ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्
अभि । त्वा । पूर्वपीतये । इन्द्र । स्तोमेभिः । आयवः ।

समर्द्धचीनासः । ऋभवः । सम् । अस्वरन् । रुद्राः । गृणन्त ।
पूर्व्यम् ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ये मनुष्य समीचीन ऋभु देवता और रुद्रदेवता आप पूर्ण्यकी पहिले पान करनेके लिये स्तुतियोंसे स्तुति कर रहे हैं ॥ १ ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोनुं पुवन्ति पूर्वथां २
अस्य । इत् । इन्द्रः । ववृधे । वृष्ण्यम् । शवः । मदे । सुतस्य ।
विष्णवि ।

अय । तम् । अस्य । महिमानम् । आयवः । अनु । स्तुवन्ति ।
पूर्वथां ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके तृतीयं सूक्तम् ॥

यज्ञमें अभिषुत सोमका मद होने पर इस यजमानके ही बल को और धनवर्षकत्वको इन्द्रदेव बढ़ाते हैं । ये स्तोता मनुष्य इन्द्रदेवकी उस महिमाका ही पहिलेकी समान गान कर रहे हैं २
नवम अनुवाकमें तृतीय सूक्त समाप्त (७१५)

घात्यस्तोमाख्येषु एकाहेषु “आ त्वेना नि पीदत” [२०. ६८. ११] “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इति आज्य-
पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं चैताने । घात्यस्तोमेध्वा
त्वेता नि पीदताथा हीन्द्र गिर्वण इति” [वै० ८. १] ॥

तथा पवित्रादिषु राजमूयैकाहेषु “यत् सोममिन्द्र विष्णवि”
[२०. १११] “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] “अभ्रा-
तृणो अना त्वम्” [२०. ११४] “त्वम् न इन्द्रा भर” [२०. १०८] एते यथासंभवम् उक्तस्तोत्रिया भवन्ति । चकाराद् “यदद्य
कच्च वृत्रहन्” [२०. ११२] “उभयं भृणवच्च नः” [२०. ११३]
एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः ॥

तथा चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु “यत् सोममिन्द्र विष्णुवि” एते त्वत्वारो यथासंभवम् उक्थस्तोत्रिया भवन्ति ॥

तद् उक्तं वैताने । “राजमूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णुव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु इति” इति [वै० ८, २] ॥

ब्राह्म्यस्तोम नापेक एकाहोमै ‘आ त्वेता नि पीदत’ (२० । ६८ । ११) ‘अथा हीन्द्र गिर्वणः’ (२० । १००) ये यथाक्रम आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी ब्रातृको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—‘ब्राह्म्यस्तोमेष्वा त्वेता नि पीदताथा हीन्द्र गिर्वण इति’ (वैतानमूत्र ८ । १) ॥

तथा पवित्र आदि राजमूय एकाहोमै ‘यत् सोममिन्द्र विष्णुवि’ (२० । १११) ‘अथा हीन्द्र गिर्वणः’ (२० । १००) ‘अभ्रातृव्यो अना त्वम्’ (२० । ११४) ‘त्वं न इन्द्रा भर’ (२० । १०८) ये यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं । चकारसे ‘यद्य कच वृत्रहन्’ (२० । ११२) उभयं शृणुवच्च नः’ (२० । ११३) ये आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होते हैं ॥

तथा चतुरह पञ्चाह अहीनदशाह और छन्दोमदशाहोमै ‘यत् सोममिन्द्र विष्णुवि’ ये चार यथासंभव उक्थस्तोत्रिय होते हैं ।

इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—‘राजमूयेषु यत्सोममिन्द्र विष्णुव्यधा हीन्द्र गिर्वणोऽभ्रातृव्यो अना त्वं त्वं न इन्द्रा भरेति च । चतुरहपञ्चाहाहीनदशाहच्छन्दोमदशाहेषु च’ (वैतानमूत्र ८ । २) ॥

अथा हीन्द्र गिर्वणः उपं त्वा कामान् महः संसृज्महे ।
उदेव यन्तं उदभिः ॥ १ ॥

अ० । हि । इन्द्र । गिर्व॑णः । उप॑ । त्वा । कामा॑न् । महः । समु॑-
ज्महे । उ॒दाऽइ॑व । यन्तः । उ॒दऽभिः ॥ १ ॥

जैसे जलसे काम लेने वाले पुरुष जलसे जलको संयुक्त करते हैं, इसी प्रकार हे स्तुतियोंसे सेवनीय इन्द्र ! आपसे कामनाओं को चाहते हुए हम सोमात्मक जलोंसे आपको संयुक्त करते हैं।

वार॑ण त्वा॑ य॒व्याभिर्व॑र्धन्ति शूर॑ ब्रह्मा॑णि । वा॒वृ॒ध्वांसं॑
चि॒द॒द्रि॒वो दि॒वेदि॑वे ॥ २ ॥

वाः । न । त्वा । य॒व्याभिः । वर्ध॑न्ति । शूर॑ । ब्रह्मा॑णि ॥ वा॒वृ॒ध्वा-
सं॑ । चि॒त् । अ॒द्रिऽवः । दि॒वेऽदि॑वे ॥ २ ॥

हे वज्रधारिन् शूर इन्द्र ! मत्प्रेक स्तुतिके अवसर पर बार-बार बढ़ना चाहते हुए आपको ये मन्त्र यव्याओंसे जलकी समान बढ़ाते हैं ॥ २ ॥

यु॒ज॒न्ति॑ ह॒रिं इ॒पिर॑स्य॒ गाथ॑यो॒रौ रथं॑ उ॒रुयु॑गे । इन्द्र॑-
वा॒हा व॒चो॒युजा॑ ॥ ३ ॥

यु॒ज॒न्ति॑ । ह॒री इति॑ । इ॒पिर॑स्य । गा॒थया॑ । उ॒रौ । रथे॑ । उ॒रुऽ-
युगे॑ ॥ इन्द्र॑वा॒हा । व॒चः॒युजा॑ ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्थं सूक्तम् ॥

युद्धगमनशील इन्द्रकी गाथासे, मन्त्रसे संयुक्त होने वाले इन्द्र के हरि नामक घोड़े विशाल युग वाले इन्द्रके रथमें जुतते हैं ३

नवम अनुवाकमें चतुर्थं सूक्त समाप्त (७१६)

अग्निष्टुप् एकाहेषु “ईलेन्यो नमस्यः” [२०. १०२] “अग्निं दूतं वृणीमहे” [२०. १०१] “अग्निमीलिष्यावसे” [२०. १०३] “अग्न आ याद्याग्निभिः” [२०. १०३. २] एषु आधौ आज्यस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । उत्तरी पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “अग्निष्टुत्स्वीलेन्यो नमस्योऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्यावसेऽग्न आ याद्याग्निभिरिति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा विराजेनेः स्तोमेनेः कुलाये “अग्निं दूतं वृणीमहे” अग्निमीलिष्यावसे” एतौ आज्यपृष्ठस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विराजेनेः स्तोमेनेः कुलायेऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्यावसे इति” [वै० ८. २] ॥

अग्निष्टुप् एकाहोर्मे “ईलेन्यो नमस्यः” (२०. १०२) “अग्निं दूतं वृणीमहे” (२०. १०१) “अग्निमीलिष्यावसे” (२०. १०३) “अग्न आयाद्याग्निभिः” (२०. १०३. २) इनमें पहिले दो विकल्पित आज्यस्तोत्रिय होते हैं । अगले विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अग्निष्टुत्स्वीलेन्यो नमस्योऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्यावसेऽग्न आ याद्याग्निभिरिति” (वैतानसूत्र ८. १)

तथा विराजर्मे अग्निके और स्तोमर्मे अग्निके कुलायर्मे “अग्निं दूतं वृणीमहे” “अग्निमीलिष्यावसे” ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विराजेनेः स्तोमेनेः कुलायेऽग्निं दूतं वृणीमहेऽग्निमीलिष्यावसे इति” (वैतानसूत्र ८. २)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य

यज्ञस्य सुकृतम् ॥ १ ॥

अग्निम् । दत्तम् । दृणीमहे । होतारम् । विश्वज्वेदसम् ॥ अस्य ।

यज्ञस्य । सुऽक्रतुम् ॥ १ ॥

हम अग्निदेवताका वरण करते हैं वह होता है और सब को जानने वाले हैं और इस यज्ञके कर्मोंको श्रेष्ठ बनाने वाले हैं ॥१॥

अग्निं गग्निं हवींमभिः सदा हवन्त विशपतिम् । हव्य-
वाहं पुरुषिण्यम् ॥ २ ॥

अग्निम्ऽअग्निम् । हवींमऽभिः । सदा । हवन्त । विशपतिम् ॥

हव्यऽवाहम् । पुरुऽपिण्यम् ॥ २ ॥

पुरुष हव्यका वहन करने वाले, बहुतसे पुरुषोंके मित्र मजा-
पति अग्निको सदा हवि देते हैं अतः हम भी अग्निको हवि
प्रदान करते हैं ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तवर्हिषं । असि होतां
न ईड्यः ॥ ३ ॥

अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । जज्ञानः । वृक्तवर्हिषे ॥ असि ।

होता । नः । ईड्यः ॥ ३ ॥

इति नवमेऽनुवाके पञ्चमं सूक्तम् ॥

हे अग्ने ! आप ऋत्विज्के लिये प्रसूट होते हुए यहाँ पर
देवताओंकी लाइये आप हमारे पूज्य होता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चम सूक्त समाप्त (७१७)

अग्निष्टुतु एकाहेषु “ईलेन्यो नमस्यः” इत्यस्य पूर्वेण सह
उक्तो विनियोगः ॥

अग्निष्टुत् एकाहोमे "ईलेन्यो नमस्यः" का पूर्वसूक्तके साथ विनियोग कह दिया है ।

ईलेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते
वृषां ॥ १ ॥

ईलेन्यः । नमस्यः । तिरः । तमांसि । दर्शतः ॥ सम् । अग्निः ।
इध्यते । वृषां ॥ १ ॥

स्तुति और प्रणाम करने योग्य दर्शनीय फलवर्षक इन्द्रदेव
घुएँको तिरझा करते हुए भली प्रकार दीप्त होते हैं ॥ १ ॥

वृषां अग्निः समिध्यते श्वो न देववाहनः । तं हवि-
ष्मन्त ईलते ॥ २ ॥

वृषो इति । अग्निः । सम् । इध्यते । अश्वः । न । देववाहनः ॥
तम् । हविष्मन्तः । ईलते ॥ २ ॥

देववाहन अश्वकी समान फलवर्षक अग्निदेव दीप्त होते हैं,
हवि वाले पुरुष उनका पूजन करते हैं ॥ २ ॥

वृषेण त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने
दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥

वृषेणम् । त्वा । वयम् । वृषन् । वृषणः । सम् । इधीमहि ॥
अग्ने । दीद्यतम् । बृहत् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षष्ठे सूक्तम् ॥

हविकी वर्षा करने वाले हम हे वृषन् ! आप फलवर्षकको भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं, हे अग्निदेव ! आप भली प्रकार दीप्त हजिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें छठा सूक्त समाप्त (७१८)

“अग्निमीलिष्वावसे” इत्यस्य “अग्निं दूतं वृणीमहे” [२०. १०१] इत्यनेन सह वक्तो विनियोगः ॥

“अग्निमीलिष्वावसे” का “अग्निं दूतं वृणीमहे” (२०।१०१) के साथ विनियोग कह दिया है ।

अग्निमीलिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिपम् ।

अग्निं राये पुरुमील्ह श्रुतं नरोग्निं सुदीतये छर्दिः १

अग्निम् । ईलिष्व । अवसे । गाथाभिः । शीरऽशोचिपम् ।

अग्निम् । राये । पुरुमील्ह । श्रुतम् । नरः । अग्निम् । सुदीतये ।

छर्दिः ॥ १ ॥

हे नर ! व्यापक तापक अग्नि की तू गाथाओंमें अन्न के लिये पूजा कर । हे पुरुमील्ह ! सुन्दर दीप्ति और धन के लिये श्रुति-प्रसिद्ध शरणरूप अग्निदेव की तू पूजा कर ॥ १ ॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं वर्हिरासदे २

अग्ने । आ । याहि । अग्निभिः । होतारम् । त्वा । वृणीमहे ।

आ । त्वाम् । अनक्तु । प्रयता । हविष्मती । यजिष्ठम् । वर्हिः ।

आऽसदे ॥ २ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी विभूतिरूप अन्य अग्नियोंके साथ
आइये आप होताका हम आह्वान करते हैं, आप यजनीयसे घँटने
के स्थानमें प्रयत्ना दविष्यती वहि संयुक्त होवे ॥ २ ॥

अच्छा हि त्वां सहसः सूनो अङ्गिरः सुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपांत घृतकेशमीमहेभि यज्ञेषु पूर्वम् ॥ ३ ॥

अच्छ । हि । त्वा । सहसः । सूनो इति । अङ्गिरः । सुचः ।
चरन्ति । अध्वरे ।

ऊर्जः । नपांतम् । घृतकेशम् । ईमहे । अग्निम् । यज्ञेषु ।
पूर्वम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तमं सूक्तम् ॥

हे जलके पुत्र अंगिरागोत्री अग्निदेव ! यज्ञमें सुवे आपके
अभिमुख विचरण करते हैं । हम भी बलको बने रखने वाले,
केशोंकी समान घृतको ऊपर धारण करने वाले सदा नवीन ही
रहने वाले अग्निदेवकी यज्ञोंमें प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमे सप्तम सूक्त समाप्त (७१९)

“इमा उ त्वा पुरुवसो” इत्यस्य विनियोगः “अयमु ते सम-
तसि” [२०. ४५] इत्यनेन सह उक्तः ॥

“इमा उ त्वा पुरुवसो” का विनियोग “अयमु ते समतसि”
(२० । ४५) के साथ कह दिया है ।

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरां वर्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोभि स्तोमैरनूपन ॥ १ ॥

इमाः । ऊं इति । त्वा । पुरुवसो इति पुरुवसो । गिरां । वर्धन्तु ।

याः । मम ।

पावकऽवर्णाः । शुचयः । विपऽचितः । अभि । स्तोमैः ।
अनूपत ॥ १ ॥

हे विशाल धनसे सम्पन्न इन्द्र ! जो हमारी अग्नि की समान
शुद्ध वर्ण वाली पवित्र वाणियाँ हैं वह आपको बढ़ावें, हे विद्वानों !
तुम स्तोत्रों से इन्द्र की स्तुति करो ॥ १ ॥

अयं सहस्रमृषिभिः सहंस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये २
अयम् । सहस्रम् । अपिऽभिः । सहऽस्कृतः । समुद्रऽइव । पप्रथे ।
सत्यः । सः । अस्य । महिमा । गृणे । शवः । यज्ञेषु । विप्र-
राज्ये ॥ २ ॥

यह अग्निदेव ऋषियों के द्वारा जल से बने हुए समुद्र की
समान सहस्रगुणे बढ़ जाते हैं, मैं इनकी इस सत्य महिमा का
वर्णन कर रहा हूँ, इनका बल विप्रराज्य यज्ञों में दीखता है २
आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूपतु ।

उप ब्रह्माणि सर्वानानि वृत्रहा परमज्या ऋचीपमः ३
आ । नः । विश्वासु । हव्यः । इन्द्रः । समत्सु । भूपतु ।

उप । ब्रह्माणि । सर्वानानि । वृत्रहा । परमज्याः । ऋचीपमः ३

हवि देने योग्य इन्द्रदेव ! सब यज्ञों में आप हमको भूषित
करिये, यह इन्द्रदेव वास्तव में अपरिमित होने पर भी ऋचाओं की
समान अपने रूप को बना लेते हैं, ऐसे यह वृत्रासुर के संहारक
इन्द्रदेव मन्त्रों को सबनों को और श्रेष्ठ २ धनुषों को विभूषित
करें ॥ ३ ॥

(४८६) अथर्ववेदसहिता सभाष्यः-भाषानुवादसहित

त्वं दाता प्रथमो राधं सामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युन्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवंसो महः ४

त्वम् । दाता । प्रथमः । राधं साम् । असि । असि । सत्यः । ईशान-
कृत् ।

तुविद्युन्नस्य । युज्या । आ । वृणीमहे । पुत्रस्य । शवंसः । महः ४

इति नवमेनुवाके अष्टमं सूक्तम् ॥

हे ईश्वर बनाने वाले सत्य अग्निदेव ! तुम धनोंके मुख्य-
दाता हो, अतिदमकते हुए जलके पुत्रकी युक्तिका हम वरण
करते हैं ॥ ४ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टमं सूक्त समाप्त (७२०)

मतीचीनस्तोमे एकाहे “त्वमिन्द्र मतूर्तिपु” इत्येष आज्यपृष्ठ-
स्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “मतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र
मतूर्तिष्विति” इति [वै० ८. १] ॥

राजि एकाहे “यो राजा चर्पणीनाम्” [२०. १०५. ४] इति
पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “राजि यो राजा चर्प-
णीनाम् इति” [वै ८. १] ॥

एक दिनमें होने वाले मतीचीनस्तोममें “त्वमिन्द्र मतूर्तिपु”
यह आज्यपृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि—“मतीचीनस्तोमे त्वमिन्द्र मतूर्तिपु” (वैतानसूत्र ८. १) ॥

राज् एकाहमें “यो राजा चर्पणीनाम्” (२०. १०५. ४)
यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—
“राजि यो राजा चर्पणीनाम्” (वैतानसूत्र ८. १) ॥

त्वमिन्द्र मतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जंनिता विश्वतूरसि त्वंतूर्य तरुण्यतः १

त्वम् । इन्द्र । प्रज्जुतिषु । अभि । विश्वाः । असि । स्पृधः ।
अशस्तिऽहा । जनिता । विरवऽशुः । असि । त्वम् । तुर्य । तरुण्यतः

हे इन्द्र आप हिंसा वाले युद्धोंमें सबसे स्पर्धा करने वाले हैं,
और आप अशस्ति का नाश करने वाले, कन्याणको मकड़ करने
वाले, सबसे त्वरा करने वाले हैं आप त्वरा करने वालोंको मारिये।
अनुं ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरां ।
विश्वास्ते स्पृधः श्रययन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि
अनु । ते शुष्मम् । तुरयन्तम् । ईयतुः । क्षोणी इति । शिशुम् ।
न । मातरां ।

विश्वाः । ते । स्पृधः । श्रययन्त । मन्यवे । वृत्रम् । यत् । इन्द्र ।
तूर्वसि ॥ २ ॥

त्वरा करते हुए आपके बलके पीछे, बच्चेके पीछे माता पिता
की समान धूलोक और पृथ्वीलोक प्राप्त होते हैं । हे इन्द्रदेव !
जब आप क्रोधमें भर कर वृत्रका संहार कर रहे थे उस समय
उसकी सब स्पर्धक वृत्तियों आपको मारना चाह रहीं थीं ॥ २ ॥

इत ऊनी वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममर्तुं तुग्रयावृधम् ॥ ३ ॥

इतः । ऊनी । वः । अजरम् । प्रहेतारम् । अमर्हितम् ।

आशुम् । जेतारम् । हेतारम् । रथिज्जम् । अर्तुम् । तुग्रयावृधम् ३

यहाँसे मन्त्रशक्तिसे जो रत्नक वृत्तियें प्रेरित होती हैं वह उस समय आपको अजर, प्रदेता, अग्रहित, शीघ्रता करने वाला, हेता, रधितम, अतूर्त और तुल्यवृत्त बना रहों र्थी ॥ ३ ॥

यो राजा चर्पणीनां याता स्थेभिरध्रिगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ४

यः । राजा । चर्पणीनाम् । याता । स्थेभिः । अध्रिगुः ।

विश्वासाम् । तरुता । पृतनानाम् । ज्येष्ठः । यः । वृत्रहा । गृणे ४

जो मनुष्योंके राजा हैं, जो रथोंके द्वारा मन्त्रोंके अभिमुख जाते हैं, सकल सेनाओंको तरने वाले हैं, जो ज्येष्ठ हैं और वृत्रासुरका संहार करने वाले हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ । ४॥

इन्द्रं तं शुम्भं पुरुहन्मन्त्रवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः

इन्द्रम् । तम् । शुम्भम् । पुरुहन्मन् । अवसे । अस्य । द्विता । विधर्तरि ।

हस्ताय । वज्रः । प्रति । धायि । दर्शतः । महः । दिवे । न । सूर्यः ।

इति नवमेनुवाके नवमं सूक्तम् ॥

हे पुरुहन्मन् ! इस विशेषरूपसे धारक यज्ञमें आप अन्नके लिये इन्द्रको अलंकृत करिये, उनकी सच्चा मध्यमलोक अन्तरिक्ष और स्थान (स्वर्ग) में भी है । उन दर्शनीयका क्रीड़ाके लिये हाथमें उठाया हुआ वज्र पूजनीय सूर्यसा दीखता है ॥ ५ ॥

इन्द्रस्तोमाख्ये एकाहे "तव त्यदिन्द्रियं बृहत्" इत्यस्य "इन्द्र क्रतुं न आ भर" [२०. ७६] इत्यनेन सह उक्तो विनियोगः ॥

इन्द्रस्तोम नामक एकाहमें "तव त्यदिन्द्रियं बृहत्" इसका "इन्द्र क्रतुं न आ भर" (२० । ७६) के साथ विनियोग कह दिया है ।

तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं
शिश्राति धिपणा वरेण्यम् ॥ १ ॥

तव । त्यत् । इन्द्रियम् । बृहत् । तव । शुष्मम् । उत । क्रतुम् ॥
वज्रम् । शिश्राति । धिपणा । वरेण्यम् ॥ १ ॥

आपका इन्द्रसम्बन्धी बृहद् बल है, वह बुद्धिसे वरने योग्य बल कर्म और वज्रको तीक्ष्ण करता है ॥ १ ॥

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः
पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥

तव । द्यौः । इन्द्र । पौंस्यम् । पृथिवी । वर्धति । श्रवः ॥ त्वाम् ।
आपः । पर्वतासः । च । हिन्विरे ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! धुलोक आपका पुंस्त्व है, पृथिवी अन्नको बढ़ाती है, जल और पर्वत आपको प्रेरित करते हैं ॥ २ ॥

त्वां विष्णुर्वृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां
शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३ ॥

त्वाम् । विष्णुः । बृहन् । क्षयः । मित्रः । शुण्ठाति । वरुणः ॥

त्वाम् । शर्धः । मदति । अनु । मारुतम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके दशमं सूक्तम् ॥

विशाल विष्णुदेव, सूर्य, वरुण और यम आपकी प्रशंसा करते हैं, वायुके पीछे बल आपको मद प्रदान करता है ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें दशम सूक्त समाप्त (७२२)

विघने एकाहे “समस्य मन्यवे विशः” [२०. १०७] “तदि-
दास भुवनेषु ज्येष्ठम्” [२०. १०७, ४] इत्येतां आज्यपृष्ठस्तो-
त्रिणौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विघने समस्य मन्यवे विश-
स्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति” इति [वै००८. १] ॥

विघन एकाहमें “समस्य मन्यवे विशः” (२० । १०७)
“तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्” (२० । १०७ । ४) ये आज्यपृष्ठ
स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विघने
समस्य मन्यवे विशस्तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठमिति” (वैतानसूत्र ८।१)
समस्य मन्यवे विशो विश्वां नमन्त कृष्टयः । समु-

द्रायेवं सिन्धवः ॥ १ ॥

सम् । अस्य । मन्यवे । विशः । विश्वाः । नमन्त । कृष्टयः ॥

समुद्रायऽइव । सिन्धवः ॥ १ ॥

जैसे समुद्रके लिये नदियें नमती हैं, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रजाएँ
कर्म करते हुए इन इन्द्रके लिये नमती हैं—इनकी शरणमें जाती हैं ।
ओजस्तदस्य तित्विप उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मैव
रोदसी ॥ २ ॥

द्योजः । तन् । अस्य । तित्विपे । उमे इति । सम्ऽमवर्तयत् ॥

इन्द्रः । चर्मऽइव । रोदसी इति ॥ २ ॥

इन इन्द्रने दोनों घावापृथिवीको चमड़ेकी समान लपेट लिया था. इनका वह वीर्य दमकता है ॥ २ ॥

वि चिद् वृत्रस्य दोधंतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरां
विभेद वृष्णिनां ॥ ३ ॥

वि । चिद् । वृत्रस्य । दोधंतः । वज्रेण । शतऽपर्वणा ॥ शिरां ।

विभेद । वृष्णिनां ॥ ३ ॥

इन्द्रदेवने क्रोधमें भरे हुए वृत्रासुरके शिरको सँकड़ों पर्ववाले और रुधिरकी वर्षा करनेवाले वज्रसे काट डाला था ॥ ३ ॥

तदिदांस भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेपनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति
विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥

तद् । इत् । आस । भुवनेषु । ज्येष्ठम् । यतः । जज्ञे । उग्रः ।

स्त्वेपऽनृम्णः ।

सद्यः । जज्ञानः । नि । रिणाति । शत्रून् । अनु । यद् । एनम् ।

मदन्ति । विश्वे । ऊमाः ।

क्योंकि—यह इन्द्रदेव धनवान् और बली हैं, इस कारण भुवनों में श्रेष्ठ माने जाते हैं, यह प्रकट होते ही शत्रुओंको मारने लगते हैं

इसी लिये इनकी ऊमा (रक्तक शक्तियें) इनके मकट होते ही आनन्दमें भर जाती हैं ॥ ४ ॥

वावृ॒गानः॑ शव॑सा भूर्यो॑जाः शत्रु॑र्दासाय॑ भियसं॑ दधाति
अव्य॑नञ्च व्यनञ्च॑ सस्मि॒ सं ते॑ नवन्त॒ प्रभृ॑ता मदे॑षु
ववृ॒धानः॑ । शव॑सा । भूरि॑ऽओजाः । शत्रुः॑ । दा॒साय॑ । भिय॑सम् ।
दधा॑ति ।

अवि॑ऽअनत् । च । वि॑ऽअनत् । च । सस्मि॑ । सम् । ते । नव॑न्त ।
प्रभृ॑ता । मदे॑षु ॥ ५ ॥

महाबलवान् बलसे बढ़ता हुआ शत्रु दासोंको भय देता है, स्थावर और जंगम सारा जगत् (परब्रह्ममें) शयन करता है अर्थात् लीन होजाता है, अतः भली प्रकार वेतन आदि देकर रखले हुए (सैनिक) हर्षके अवसर युद्धोंमें उन परब्रह्म वा इन्द्रकी स्तुति कर (युद्धमें मष्ट होजा) ते हैं ॥ ५ ॥

त्वे क्रतु॑मपि॑ पृञ्चन्ति॒ भूरि॑ दि॒र्यदे॑ते त्रि॒र्भवन्त्यू॑माः ।
स्वा॒दोः स्वा॒दीयः॑ स्वा॒दुना॑ सृ॒जा सम्दः॑ सु गधु॑ मधु॑-
नाभि॑ यो॒धीः ॥ ६ ॥

त्वे इति॑ । क्रतु॑म् । अपि॑ । पृञ्च॑न्ति । भूरि॑ । दिः । यत् । एते ।
त्रिः । भव॑न्ति । ऊमाः ।

स्वा॒दोः । स्वा॒दीयः॑ । स्वा॒दुना॑ । सृ॒ज । सम् । अ॒दः । सु । मधु॑ ।
मधु॑ना । अ॒ग्नि । यो॒धीः ॥ ६ ॥

जो यह जन्म और संस्कारसँ दो बार उत्पन्न होते हैं, और
युद्ध वा यज्ञकी दीक्षा ले तीन बार उत्पन्न होते हैं, ये बड़े भारी
यज्ञको आपमें संयुक्त करते हैं, ऐसे हे स्वादिष्ट पदार्थोंको स्वादु
घनाने वाले आप स्वादु पदार्थोंसे इन योधाओंको संयुक्त करिये।
और हे सुन्दर जल वाले इन्द्रदेव ! आप योधाओंमें प्रवेश करके
मधुर रीतिसे युद्ध करिये ॥ ६ ॥

यदि चिन्नु त्वा घना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः
ओजीयः शुष्मिन् स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन् दुरे-
वासः कुशोकाः ॥ ७ ॥

यदि । चिन् । जु । त्वा । घना । जयन्तम् । रणेरणे । अनु-
मदन्ति । विप्राः ।

ओजीयः । शुष्मिन् । स्थिरम् । आ । तनुष्व । मा । त्वा । दभन् ।
दुः५वासः । कुशोकाः ॥ ७ ॥

प्रत्येक रणमें घनोंकी जीतने वाले आपकी ब्राह्मण यदि स्तुति
करते हैं तो हे बलवान् ! आप उनमें स्थिर (घन रूप) बल
फैलाइये, सुखमें दुःख करने वाले अत एव दुर्गति पाने वाले पुरुष
आपको मास न हों ॥ ७ ॥

त्वया वयं शाशद्गहे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरिं
चोदयामि त आयुधा ववोभिः सं तै शिशामि ब्रह्मणा
वयांसि ॥ ८ ॥

स्वया । वयम् । शाश्वदे । रणेऽपश्यन्तः । युधेऽन्यानि । भूरि
चोदयामि । ते । आयुषा । वचःऽभिः । सम् । ते । शिशामि ।
प्रक्षणा । वयांसि ॥ ८ ॥

हम देखते २ आपके द्वारा युद्धोंमें बहुतसे दूसरे पक्ष वालोंका
संहार करा डालते हैं, मैं अपने तपः सिद्धयवनोंसे आपके आयुषों
को प्रेरित करता हूँ और मन्त्रके द्वारा आपके पक्षीकीसी गति
वाले घाणोंको तीक्ष्ण करता हूँ ॥ ८ ॥

नि तद् दधिपेवरे परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्षराणि भूरि
नि । तद् । दधिपे । अवरे । परे । च । यस्मिन् । आविथ । अवसा ।
दुरोणे ।

आ । स्थापयत । मातरम् । जिगत्नुम् । अतः । इन्वत । कर्ष-
राणि । भूरि ॥ ९ ॥

जिसको श्रेष्ठ और साधारण प्राणियोंने धारण किया है और
जिस घरमें अन्नसे रक्षा पाई है उसमें चलती फिरती कालिका
माता शक्तिको स्थापित करिये, तदनन्तर अनेक विचित्र पदार्थों
को इसमें लाइये ॥ ९ ॥

स्तुष्व वर्ष्मन् पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतं ममाप्तमा-
प्यानाम् ।

आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र संचति प्रतिमानं
पृथिव्याः ॥ १० ॥

स्तु॒ष्व । च॒र्म्मन् । पु॒रु॒ष्व॒र्त्मानम् । सम् । ऋ॒भ्वा॒णम् । इ॒न्द्र॒ज॒न॒मम् ।

आ॒प्तम् । आ॒प्त्या॒नाम् ।

आ । दृ॒श॒ति । श॒व॒सा । भु॒रि॒न्द्रो॒जाः । म । स॒त्त॒ति । म॒ति॒ष्मानम्
पृ॒थि॒व्याः ॥ १० ॥

हे स्तोतः ! अनेक मागोंमें विचरण करने वाले परम तेजस्वी, थोष्ट स्वामी, आप पुरुषोंके गुणोंको प्राप्त हुए इन्द्रकी स्तुति कर यह पृथिवीकी प्रतिमारूप महाबली इन्द्र यज्ञको देखने हुए यज्ञमें संलग्न हो रहे हैं ॥ १० ॥

इ॒मा ब्र॒ह्म बृ॒हद्दि॒वः कृ॒णव॒दिन्द्रा॑य शु॒षम॑प्रि॒यः स्व॒र्पाः ।
म॒हो गो॒त्रस्य॑ क्ष॒यति॑ स्व॒राजा॒ तुर॑श्चिद् वि॒श्वम॑र्णवत्
तप॑स्वान् ॥ ११ ॥

इ॒मा । ब्र॒ह्म । बृ॒हद्दि॒वः । कृ॒णव॒त् । इन्द्रा॑य । शु॒षम् । अ॒प्रि॒यः ।
स्व॒र्पाः ।

म॒हः । गो॒त्रस्य॑ । क्ष॒यति॑ । स्व॒राजा॑ । तुर॑ः । चि॒त् । वि॒श्वम् ।
अ॒र्णव॑त् । तप॑स्वान् ॥ ११ ॥

स्वर्गका सेवन करनेकी इच्छा वाला यह थोष्ट राजा महास्वर्ग के अधिपति इन्द्रके लिये इन बड़े २ स्तोत्रोंको करता हुआ इन्द्र को सुख देता है, और स्वर्गका राजा शीघ्रता करने वाला तपस्वी इन्द्र मेघके जलका क्षय करता हुआ अर्थात् उसको बरसाता हुआ जगत्को जलपूर्ण करता है ॥ ११ ॥

ए॒वा म॒हान् बृ॒हद्दि॒वो अथ॒र्वावि॑च॒त् स्वां त॒न्व॑ १ मि॒न्द्रमे॒व

स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिमे हिन्वन्ति चैने शवसा
वर्धयेन्ति च ॥ १२ ॥

एव । महान् । बृहत् । दिवः । अथर्वा । अवाचत् । स्वाम् । तन्वम् ।
इन्द्रम् । एव ।

स्वसारौ । मातरिभ्वरी इति । अरिमे इति । हिन्वन्ति । च ।
एने इति । शवसा । वर्धयेन्ति । च ॥ १२ ॥

अपनेको इन्द्र मानने हुए परमपकाशवान् महर्षि अथर्वाने इस
प्रकार कहा था, कि-निष्पाप मातरिभ्वरी बहिर्ने इसको प्रसन्न
करती हैं और बलको बढ़ाती हैं ॥ १२ ॥

चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान् प्रदिशः सूर्य
उद्यन् ।

दिवाकरोतिं द्युम्नैस्तमांसि विश्वांतारीद् दुरितानि
शुक्रः ॥ १३ ॥

चित्रम् । देवानाम् । केतुः । अनीकम् । ज्योतिष्मान् । प्रदिशः ।
सूर्यः । उद्यन् ।

दिवाऽकरः । अति । द्युम्नैः । तमांसि । विश्वा । अतारीद् ।
दुःऽइतानि । शुक्रः ॥ १३ ॥

यह पूजनीय, किरणोंके समूह वाले ज्ञापक ज्योतिः भरे हुए

दिशाओंकी ओरको चढते हुए अपने मकाशोंसे दिन कर देते हैं, सब अंधकारोंको तर जाते हैं और यह वीर्य सम्पन्न इन्द्र सब पापोंके पार जाते हैं अर्थात् उनको नष्ट कर डालते हैं ॥ १३ ॥

चित्रं देवानां मुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्ताद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यं आत्मा जग-
तस्तस्थुयश्च ॥ १४ ॥

चित्रम् । देवानाम् । उद । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य ।
वरुणस्य । अग्नेः ।

आ । अप्तात् । द्यावापृथिवी इति । अन्तरिक्षम् । सूर्यः । आत्मा ।
जगतः । तस्थुयः । च ॥ १४ ॥

यह पूजनीय, किरणोंका जो समूह उदय होरहा है, यह मित्र वरुण और अग्निका चक्षु है । यह जो सूर्य हैं यह जंगम और स्यावरके आत्मा हैं अर्थात् सर्वभूतानुभवेशी हैं, यह सूर्यदेव अपनी महिमासे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्षको भर देते हैं ॥ १४ ॥

सूर्यो देवीमुपसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति
पश्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय
भद्रम् ॥ १५ ॥

सूर्यः । देवीम् । उपसम् । रोचमानाम् । मर्यः । न । योषाम् ।
अभि । एति । पश्चात् ।

यत्र । नरः । देवऽयन्तः । युगात्रि । विस्तन्वते । मति । भद्राय ।
भद्रम् ॥ १५ ॥

इति नवमेनुवाके एकादशं सूक्तम् ॥

जैसे मरणधर्मी पुरुष स्त्रीके पीछे जाता है, इसी प्रकार यह सूर्यदेव दमकती हुई देवी उषाको प्राप्त होते हैं, उस समय पुरुष दिनोंको देवताओंके उपयोगमें लाते हुए भद्र सूर्यके लिये (अर्घ्य आदि) भद्र कार्योंको करते हैं ॥ १५ ॥

नवम अनुवाकमें एकादश सूक्त समाप्त (७२३)

वज्रपुनःस्तोमाख्ययोरेकादयोः “त्वं न इन्द्रा भर” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयेकादेषु एतस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गिर्यणः” [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा वैदस्वरसाम्नोस्तुवहयोः प्रथमयोरहोः एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “वैदस्वरसाम्नोस्त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा चतुरहाणां तृतीयेष्वहःसु अस्य विनियोगः “आयन्त इव सूर्यम्” [२०. ५८] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभ्यासङ्गयपञ्चशारदीययोः पञ्चाहयोर्द्वितीयेहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “अभ्यासङ्गयपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३]

तथा अभिसवस्यायुराख्येहनि एष उक्थस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति” इति [वै० ८. ३] ॥

तथा पृष्ठयपडहस्य तृतीयेहनि अस्य विनियोगः “इन्द्रेण स हि दत्तसे” [२०. ४०] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा द्वादशाहस्य च्छन्दोमय्यहस्य प्रथमान्त्यपोरहोः “त्वं न इन्द्रा भर” [२०. १०८] “य एक इह विदयते” [२०. ६३. ४] एतौ उक्थस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवनः । तद् उक्तं वैताने । “द्वादशाहस्य च्छन्दोमय्यहस्योस्तत्त्वं न इन्द्रा भर य एक इह विदयत इति” इति [वै० ८. ४] ॥

वज्र और पुनःस्तोम नामक एकाहोंमें “त्वं न इन्द्रा भर” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वज्रे पुनःस्तोमे त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । १) ॥

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोंमें इसका विनियोग “अथा हीन्द्रा गिर्वणः” (२० । १००) के साथ कह दिया है ।

तथा तीन दिनमें होने वाले वैदस्वरसामोंमें प्रथम दिन यह उक्थस्तोत्रिय होता है, इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“वैदस्वरसामोस्तत्त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा चतुरहोंके तीसरे दिनोंमें इसका विनियोग “आयन्त इव सूर्यम्” (२० । ५८) के साथ कह दिया है ।

तथा अभ्यासङ्ग्य पञ्चशारदीय पञ्चाहोंके द्वितीय दिनोंमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अभ्यासङ्ग्यपञ्चशारदीययोर्द्वितीये त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा अभिसवके आयु नामक दिनमें यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आयुषि त्वं न इन्द्रा भरेति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा पृष्ठयपहके तीसरे दिनमें इसका विनियोग “इन्द्रेण सं हि दत्तसे” (२० । ४०) के साथ कह दिया है ।

तथा द्वादशाह और च्छन्दोमय्यहके प्रथम और अन्तिम दिनों में “त्वं न इन्द्रा भर” (२० । १०८) “य एक इह विदयते”

(२० । ६३ । ४) ये यथाक्रमः त्वयस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“द्वादशाहस्य च्छन्दोमपथमान्त्ययोस्त्वं
न इन्द्रा भर य एक इह विद्यत इति (वैतानसूत्र ८ । ४) ॥
त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनापहम् ॥ १ ॥

त्वम् । नः । इन्द्र । आ । भर । ओजः । नृम्णम् । शतक्रतो इति
शतऽक्रतो । विचर्षणे ॥ आ । वीरम् । पृतनाऽपहम् ॥ १ ॥

हे विशेषरूपसे द्रष्टा शतक्रतु इन्द्र ! हममें धन और बलको
स्थापित करिये और शत्रुओंकी सेनाओंका पराभव करने वाले
वीर-पुत्र-को दीजिये ॥ १ ॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधां ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥

त्वम् । हि । नः । पिता । वसो इति । त्वम् । माता । शतक्रतो
इति शतऽक्रतो । बभूविथ ॥ अधां । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥ २ ॥

हे शतक्रतो ! आप हमारे पिता हैं और हे वसो इन्द्र ! आप
हमारी माता हैं, इसलिये हम आपसे सुखकी याचना करते हैं ॥ २ ॥
त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

त्वाम् । शुष्मिन् । पुरुहूत । वाजयन्तम् । उप । ब्रुवे । शतक्रतो
इति शतऽक्रतो । सा । नः । रास्व । सुवीर्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके द्वादशं सूक्तम् ॥

हे बलवन् शतक्रतो १ मैं आप हविरूप अन्न चाहने वालेकी स्तुति करता हूँ, इस लिये आप सुन्दर वीरतासे सम्पन्न धन दीजिये ॥ ३ ॥

नवम अष्टादशे द्वादश सूक्तसमाप्त (७२४)

साहस्राख्याश्चत्वार एकाह ब्राह्मणपठिताः । तेषां मध्यमद्वितीययोः “स्वादोरित्या विपूवतः” इति पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “साहस्राद्ययोः स्वादोरित्या विपूवत इति” इति [वै० ८. १] ॥

तथा अश्वमेधग्रहस्य द्वितीयेदनि अस्य विनियोगः “वाचमष्टापदीमहम्” [२०. ४२] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साहस्र नामक चार एकाह ब्राह्मणमें पठित हैं । उनमेंसे पहिले दूसरेमें “स्वादोरित्या विपूवतः” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“साहस्राद्ययोः स्वादोरित्या विपूवतः” (वैतानसूत्र ८. १) ॥

तथा अश्वमेध ग्रहके द्वितीय दिनमें इसका विनियोग “वाचमष्टापदीमहम्” (२०. ४२) के साथ कह दिया है ।

स्वादोरित्या विपूवतो मध्वः पिवन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीवृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीनुं
स्वराज्यम् ॥ १ ॥

स्वादोः । इत्या । विपूवतः । मध्वः । पिवन्ति । गौर्यः ।

याः । इन्द्रेण । सयावरीः । वृष्णा । मदन्ति । शोभसे । वस्वीः ।

अनु । स्वराज्यम् ॥ १ ॥

विपुवत् यज्ञके स्वादु मधुका स्तोत्र की बाणियें इस प्रकार पान करती हैं, कि—वह इन्द्रसे संयुक्त होकर रात्रियों तक इन्द्र को हर्षमें भरे रखती हैं, उसके अनन्तर हे यजमान ! तू भी स्वराज्य पर शोभा पावेगा ॥ १ ॥

तां अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्र हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु
स्वराज्यम् ॥ २ ॥

ताः । अस्य । पृशनायुवः । सोमम् । श्रीणन्ति । पृश्नयः ।
प्रियाः । इन्द्रस्य । धेनवः । वज्रम् । हिन्वन्ति । सायकम् । ० २
वह पृशनायुव पृश्नियें इसके सोमको पका रही हैं, यह इन्द्रकी धेनुएँ इन्द्रके सायक और वज्रको मेरित करती हैं। इन रात्रियों के अनन्तर आप स्वराज्य पर आरुढ़ हजिये ॥ २ ॥

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्विरे पुरुषि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्व-
राज्यम् ॥ ३ ॥

ताः । अस्य । नमसा । सहः । सपर्यन्ति । प्रचेतसः ।
व्रतानि । अस्य । सश्विरे । पुरुषि । पूर्वचित्तये । वस्वीः ।
अनु । स्वराज्यम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोदशं सूक्तम् ॥

वे मकृष्ट ज्ञान वाली बाणियें इस (इन्द्र) की हविके साथ

पूजा करती हैं, इस यंजमानके बड़े २ व्रत इस पूर्वचित्ति इन्द्रमें संयुक्त होते हैं और यज्ञकी रात्रियोंके अनन्तर आप स्वराज्य पर आरुढ़ होंगे ॥ ३ ॥

नवम अनुयाकमें त्रयोदश सूक्त समाप्त (७२५)

विराडादिषु सप्तस्वेकाहेषु “इन्द्राय मद्धने सुतम्” [२०.११०] “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” [२०. १११] एतौ आज्योक्थस्तोत्रियौ भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्विष्यपचित्पोरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योःकुलाय इन्द्राय मद्धने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” इति [वै० ८. २]. ॥

विराट् आदि सात एकाहोंमें “इन्द्राय मद्धने सुतम्” (२०।१००) “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (२० । १११) यह आज्योक्थस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विराजि भूमिस्तोमे वनस्पतिसवे त्विष्यपचित्पोरिन्द्राग्न्योः स्तोम इन्द्राग्न्योः कुलाय इन्द्राय मद्धने सुतं यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

इन्द्राय मद्धने सुतं परि शोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १ ॥

इन्द्राय । मद्धने । सुतम् । परि । शोभन्तु । नः । गिरः ॥ अर्कम् । अर्चन्तु । कारवः ॥ १ ॥

हमारे इस सेवनीय यज्ञमें अभिषुत सोमकी हमारी वाणियों स्तुति करें और स्तोता पूजनीय इन्द्रका पूजन करें ॥ १ ॥

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २ ॥

यस्मिन् । विश्वाः । अधि । श्रियाः । रणन्ति । सप्त । सम्पुस्तदः ॥

इन्द्रम् । सुते । हवामहे ॥ २ ॥

सात संपत्तिरूपा सब सभाएँ जिनको प्राप्त होती हैं, उन इन्द्र-देवका हम सोमका अभियव होने पर आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

त्रिकंदुकेषु चेतनं देवासां यज्ञमत्नत । तमिद् वर्धन्तु
नो गिरः ॥ ३ ॥

त्रिकंदुकेषु । चेतनम् । देवासः । यज्ञम् । अत्नत ॥ तम् । इव ।
वर्धन्तु । नः । गिरः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके चतुर्दशं सूक्तम् ॥

त्रिकंदुकोंने इस ज्ञानमद् यज्ञको आरंभ किया था, उसको हमारी वाणियों बढ़ावें ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें चतुर्दश सूक्त समाप्त (७२६)

“यत् सोममिन्द्र विष्णवि” इत्यस्य विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा पवित्रादिषु राजसूयैकाहेषु चतुरहादिषु च अस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तथा अभिसवस्य षष्ठमहः उवध्यसंस्यं चेद्भवति तदा “य एक इद् विदयते” [२०. ६३. ४] “यत् सोममिन्द्र विष्णवि” [२०. १११] एतां उक्थ्यस्तोत्रियां विकल्पितां भवतः । तद् उक्तं वैताने । “षष्ठमुवध्यं चेद् य एक इद् विदयते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” इति [वै० ८. ३] ॥

“यत् सोममिन्द्र विष्णवि” का विनियोग पहिले सूक्तके साथ कहा दिया है ।

तथा पवित्र आदि राजसूय एकाहोमे तथा चतुरह आदिमे भी इसका विनियोग “अथा हीन्द्र गिर्वणः” (२० । १००) के साथ कह दिया है ।

तथा अभिसवका छठा दिन यदि उक्थ्य-संस्थ होता है तो “य एक इह विद्यते” (२० । ६३ । ४) यत् सोममिन्द्र विष्णवि” (२० । १११) ये विकल्पित उक्थ्यस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पष्ठमुक्थ्यं चेत् य एक इह विद्यते यत् सोममिन्द्र विष्णवीति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

यत् सोममिन्द्र विष्णंवि यद्वां घ त्रित आप्ये । यद्वां
मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १ ॥

यत् । सोमम् । इन्द्र । विष्णंवि । यत् । वा । घ । त्रिते । आप्ये ।

यत् । वा । मरुत्सु । मन्दसे । सम् । इन्दुभिः ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जो आप त्रितमें यज्ञमें वा आप्य तथा मरुत्में हर्ष में भरते हैं वह जलके साथके सोमसे ही हर्षमें भरते हैं ॥ १ ॥

यद्वां शक्र परावृत्तिं समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माक-
मित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २ ॥

यत् । वा । शक्र । परावृत्तिं । समुद्रे । अधि । मन्दसे ॥ अस्मा-

कम् । इत् । सुते । रण । सम् । इन्दुभिः ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जो आप बहुत दूरके समुद्रमें वा हमारे यज्ञमें हर्षित होते हैं वह जल मिले सोमसे ही होते हैं ॥ २ ॥

यद्वासिं सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा
यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥ ३ ॥

यत् । वा । असि । सुन्वतः । वृधः । यजमानस्य । सत्पते ॥
उक्थे । वा । यस्य । रण्यसि । सम् । इन्दुभिः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके पंचदशं सूक्तम् ॥

हे सत्पते ! जो आप सोमाभिषव करने वाले यजमानके बढ़ाने वाले हैं, वा जिसके उक्थ्यमें रमणीय होते हैं वह सोमसे ही होते हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें पन्द्रहवाँ सूक्त समाप्त (७२७)

विनुत्यभिभूत्यादिषु अष्टसु द्वन्द्वैकाहेषु “यदद्य कच्च वृत्रहन्”
[२०. ११२] “उभयं शृणवच्च नः” [२०. ११३] एतौ
आज्यपृष्ठस्तोत्रिया भवतः । तद् उक्तं वैताने । “विनुत्यभिभूत्यो
राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नु-
भयं शृणवच्च न इति” इति [वै० ८. २] ॥

विनुति अभिभूति आदि आठ द्वन्द्वैकाहोंमें “यदद्य कच्च वृत्र-
हन्” (२० । ११२) “उभयं शृणवच्च नः” (२० । ११३)
ये आज्यपृष्ठ स्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा
है, कि—“विनुत्यभिभूत्यो राशिमराशयोः शदोपशदयोः सम्राट्-
स्वराजोर्यदद्य कच्च वृत्रहन्नुभयं शृणवच्च न इति” (वैतानसूत्र ८।२)
यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते
वशे ॥ १ ॥

यत् । अद्य । कच्च । वृ । वृत्रहन् । उत्सगाः । अभि । सूर्य ॥
सर्वम् । तत् । इन्द्र । ते । वशे ॥ १ ॥

हे मेघोंका संहार करने वाले वृत्रहन् सूर्यात्मक इन्द्र ! आप जब कभी उदय होते हैं, वह सब हे इन्द्रात्मक इन्द्र ! आपके वशमें है ॥ १ ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरु इति मन्यसे । उतो तत्
सत्यमित् तव ॥ २ ॥

यत् । वा । म० वृद्ध । सत्पते । न । मरु । इति । मन्यसे ॥

उतो इति । तत् । सत्यम् । इत् । तव ॥ २ ॥

अथवा हे सत्पते इन्द्र ! जब आप यह विचारते हैं, कि—यह न मरे वह आपका विचार सत्य ही होता है ॥ २ ॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वास्ताँ
इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥

ये । सोमांसः । परावति । ये अर्वावति । सुन्विरे ॥ सर्वान् ।
तान् । इन्द्र । गच्छसि ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके षोडशं सूक्तम् ॥

जो सोम दूर वा पास पर निचोड़े जाते हैं, हे इन्द्र ! उन सबके पास आप प्राप्त होने हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें षोडश सूक्त समाप्त (८२८)

विनुत्यभिभृत्यादिषु “उषयं मृणवच्च नः” इत्यस्य विनियोगः
पूर्वसूक्तेन सह उक्तः ॥

तथा त्रिवृदादिषु अस्य विनियोगः “वयमेनमिदा ह्यः” [२०.
६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

चिनुति अभिभृति आदिमें इसका विनियोग पूर्वमूक्तके साथ कह दिया है ।

तथा त्रिष्टुप् आदिमें इसका विनियोग “वयमेनमिदा एः” (२० । ६७) के साथ कह दिया है ।

उभयं शृण्वच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्

उभयम् । शृण्वत् । च । नः । इन्द्रः । अर्वाक् । इदम् । वचः ।

सत्राच्या । मघवा । सोमपीतये । धिया । शविष्ठः । आ । गमत्

दोनों लोकोंमें हित करने वाले हयारे इस वचनको इन्द्रदेव अभिमुख होकर सुनें, कि-सत्यात्मिका बुद्धिसे बलवान् इन्द्रदेव सोमपान करनेके लिये आरहे हैं ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिपणं निष्टतत्तुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि पीदसि सोमकामं हि ते मनः

तम् । हि । स्वराजम् । वृषभम् । तम् । ओजसे । धिपणे इति ।

निःस्ततत्तुः ।

उत । उपमानाम् । प्रथमः । नि । पीदसि । सोमकामम् । हि । ते ।

मनः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके सप्तदशं सूक्तम् ॥

उन अपनी भासे दमरूने वाले, कामनाओंकी पूर्ति करने वाले इन्द्रको बल पानेके लिये चुलोक और पृथ्वीलोक तनू करते

हैं । तुम इनमेंसे उपमानाको प्रथम प्राप्त होते हो, तुम्हारा मन सोमकी इच्छा वाला है ॥ २ ॥

नवम अनुशाकमें सत्रहवाँ सूक्त समाप्त (७२९)

पवित्रादिषु राजमूर्त्यैकादेषु “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इत्यस्य विनियोगः “अथा हीन्द्र गिर्वणः” [२०. १००] इत्यनेन सह उक्तः

तथा अभिसव पटहस्य गवारूपेहनि “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इत्येष उक्त्यस्नोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “पटहस्य गव्य-भ्रातृव्यो अना त्वमिति” इति [वै० ८. ३] ॥

पवित्र आदि राजमूर्त्य एकादशोंमें “अभ्रातृव्यो अना त्वम्” इसका विनियोग “अथा हीन्द्र गिर्वणः” (२० । १००) के साथ कह दिया है ।

तथा अभिसव पटहके गवारूप दिनमें अभ्रातृव्यो अना त्वम्” यह उक्त्यस्नोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“पटहस्य गव्यभ्रातृव्यो अना त्वमिति” (वैतान-सूत्र ८ । ३) ॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुपां सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

अभ्रातृव्यः । अना । त्वम् । अनापिः । इन्द्र । जनुपां । सनात् ।
असि ॥ युधा । इत् । आपित्वम् । इच्छसे ॥ १ ॥ ।

हे इन्द्र ! आप शत्रुरहित हैं, अना और अनापि हैं, आप मकट होते ही संभक्ति करते हैं और युद्धमें आप आपित्वको चाहते हैं ॥ १ ॥

नकीं खन्तं सख्यायं विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्चः ।

यदा कृणोषि नदन्तुं समूहस्यादित् पितेव ह्यसे २
 नकिः । रेवन्तम् । स्रुष्याय । बिन्दुसे । पीयन्ति । ते । मृताश्च ।
 यदा । कृणोषि । नदन्तुम् । सम् । ऊहसि । मात् । इत् । पित्रा-
 इव । ह्यसे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके अष्टादशं सूक्तम् ॥

आप धनवान्को मित्रनाके लिपे प्राप्त करते हैं । मृताशु आप
 को पुष्ट करते हैं, जब आप अपने समूहकी गर्जनाको करते हैं
 तब आप पित्राकी समान बुलाये जाने हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टादशवाँ सूक्त समाप्त (७३०)

साधःक्रामिधानेषु एकादेषु द्येनयागर्जितेषु “अहमिद्धि पितु-
 प्परि” इत्याज्यस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “साधः-
 क्रेषु द्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुप्परीति च” इति [वै० ८. २]

द्येनयागरहित साधःक्रामिधान एकादशमें “अहमिद्धि पितु-
 प्परि” यह आज्यस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें
 कहा है, कि-“साधःक्रेषु द्येनवर्जम् अहमिद्धि पितुप्परीति च”
 (वैतानमूत्र (८. २) ॥

अहमिद्धि पितुप्परि मेधामृतस्य जग्रमं । अहं सूर्यं
 इवाजनि ॥ १ ॥

अहम् । इत् । हि । पितुः । परि । मेधाम् । मृतस्य । जग्रमं ॥

अहम् । सूर्यः । इव । अजनि ॥ १ ॥

मैंने पित्रा ब्रह्माकी मेधाको मली, मकार ग्रहण कर लिया है ।
 और मैं सूर्यकी समान स्रष्टृ हुआ हूँ ॥ १ ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि, कण्ववत् । येनेन्द्रः
शुष्ममिद् दधे ॥ २ ॥

अहम् । प्रत्नेन । मन्मना । गिरः । शुम्भामि । कण्ववत् ॥
येन । इन्द्रः । शुष्मम् । इत् । दधे ॥ २ ॥

मैं प्राचीन मननीय स्तोत्रसे कण्व ऋषिकी समान बाणियों
को अलंकृत करता हूँ । इससे इन्द्रमें बलको स्थापित करता हूँ २
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्
वर्धस्व सुष्टुतैः ॥ ३ ॥

ये । त्वाम् । इन्द्र । नः । तुष्टुवुः । ऋषयः । ये । च । तुष्टुवुः ॥
मम । इत् । वर्धस्व । सुष्टुतैः ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकोनविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! जिन ऋषियोंने आपकी स्तुतिकी है वा जिन ऋषियों
ने आपकी स्तुति न की हो, (उनकी ओर कुछ ध्यान न देकर)
आप मुझसे ही भली प्रकार स्तुत होकर बढ़िये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें दन्तीसवां सूक्त समाप्त (७३१)

अतिरात्राणां सर्वस्तोमाख्ययोः “मा भूमनिष्ठया इव” [२०.
११६] “विषुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे” [६. १५. ६] एतौ
पृष्ठस्तोत्रियौ यथाक्रमं भवतः । तद् उक्तं चैताने । “अतिरात्राणां
सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ठया इव विषुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठइति”
[वै० ८. २] ॥

तथा चतुरहाणां सर्वेष्वहःसु एतौ पृष्ठस्तोत्रियौ विकल्पितौ

भवतः । तद् उक्तं वैताने । “सर्वेषु मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे इति” इति [वै० सू० ३] ॥

अतिरात्रांको सर्वस्तोमाख्योर्मे “मा भूम निष्ठया इव” (२० । ११६) “विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे” (६ । १५ । ६) ये यथाक्रम पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“अतिरात्राणां सर्वस्तोमयोर्मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे इति” (वैतानसूत्र ८ । २) ॥

तथा चतुरहोके सब दिनोंमें ये विकल्पित पृष्ठस्तोत्रिय होते हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“सर्वेषु मा भूम निष्ठया इव विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे इति” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

मा भूम निष्ठया इवेन्द्र त्वदरणा इव ।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोपांसो अमन्महि १

मा । भूम । निष्ठयाऽइव । इन्द्र । त्वत् । अरणाऽइव ।

वनानि । न । प्रजहितानि । अद्रिवः । दुरोपांसः । अमन्महि १

हम आपसे उच्छ्रय न होनेके कारण दुष्ट शत्रुसे न हों, हम आपकी त्यागने योग्य वस्तुओंको दुष्ट पाक (दावानल) से संपन्न वनोंकी समान मानें ॥ १ ॥

अमन्महीदनाशवेनुग्रासश्च वृत्रहन् ।

सकृत् सु ते महता शूर राघसानु स्तोमं मुदीमहि २

अमन्महि । इत् । अनाशवः । अनुग्रासः । च । वृत्रहन् ।

सकृत् । सु । ते । महता । शूर । राघसा । अनु । स्तोमम् ।

मुदीमहि ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके विंशं सूक्तम् ॥

हे वृत्रहन् ! हम अपनेको आपसे नाशरहित + और अनुग्रह समझें
हे शूर ! हम आपको एक बारकी ही श्रद्धासे स्तोम करने पर
आनन्द पावें ॥ २ ॥

नवम अनुष्ठाकमें चौसवाँ सूक्त समाप्त (७३२)

त्रिवृदादिषु “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” इत्यस्य विनियोगः
“वपमेनमिदा ह्यः” [२०. ६७] इत्यनेन सह उक्तः ॥ तथा
तनूपृष्ठे पङ्क्ति अस्य विनियोगः “यद्वा द्याव इन्द्र ते शतम्”
[२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

त्रिवृत् आदिमें “पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा” का विनियोग
“वपमेनमिदा ह्यः” (२० । ६७) के साथ कह दिया है ।

तथा तनूपृष्ठ पङ्क्तिमें इसका विनियोग “यद्वा द्याव इन्द्र ते शतम्”
(२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

पिवा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुपावं हर्यश्वाद्रिः
सोतुर्बाहुभ्यां सुयंतो नार्वी ॥ १ ॥

पि॒व । सोम॑म् । इन्द्र॑ । मन्द॑तु । त्वा । यं॒ । ते । सु॒पा॒व ।

ह॒रि॒ऽअ॒श्व । अ॒द्रिः ।

सो॒तुः । बा॒हु॒भ्याम् । सु॒य॑न्तः । न । अ॒र्वा ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! आप सोमका पान करिये, हे हर्यश्व ! जिसको
पत्थरने निचोड़ा है वह सोम आपको हर्ष प्रदान करे । सधे हुए
घोड़ेकी समान यह पत्थर अभिषेक करने वालेके हाथमें रहा या
यस्ते मदो युज्यंश्चास्त्रस्ति येनं वृत्राणि हर्यश्व हंसि
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

यः । ते । मदः । युज्यः । चारुः । अस्ति । येन । वृत्राणि ।
हरिऽअरव । हंसि ।

सः । त्वाम् । इन्द्र । मभूवसो इति मभुज्वसो । ममत्त ॥ २ ॥

हे हरि नामक घोड़ों वाले इन्द्र ! जो आपका मद युज्य और चारु है और जिससे आप आवरक मेघोंको विदीर्ण करते हैं ।
हे मभूवसो इन्द्र ! वह आपको हर्ष देय ॥ २ ॥

वोधा सु मे मघवन् वाचमेमांयां ते वसिष्ठो अर्चति
प्रशंस्तिम् ।

इमा ब्रह्म सधमादे जुपस्व ॥ ३ ॥

वोध । सु । मे । मघवन् । वाचम् । आ । इमाम् । याम् । ते ।

वसिष्ठः । अर्चति । प्रशंस्तिम् ।

इमा । ब्रह्म । सधमादे । जुपस्व ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे घनवान् इन्द्र ! आप मेरी इस बाणीको भली प्रकार जानिये कि-जिस प्रशस्तिकी वशिष्ठ पूजा करते हैं और इन मन्त्रसमूह का आप यज्ञमें सेवन करिये ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें इसीसर्वां सूक्त समाप्त (७३३)

चातुर्मास्यवैश्वदेवादीनां सप्तानां ग्रहाणां प्रथमेऽवहःसु “शङ्खु पु शचीपते” इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । “चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदग्ध्यन्दोमवत्पराक्रान्तर्वैश्वदेवमेधग्रहाणां शङ्खु पु शचीपत इति” इति [वै० = ३] ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीने अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा” [२०, ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

साकमेघज्यहस्य प्रथमेहनि “इन्द्रमिद् देवतातये” [२०.११८.३] इत्येष पृष्ठस्तोत्रियो भवति । तद् उक्तं वैताने । ‘साकमेघस्येन्द्रमिद् देवतातय इति’ इति [वै० ८. ३] ॥

चातुर्मास्य वैश्वदेव आदि सात ज्यहोंके प्रथम दिनोंमें “शग्ध्यु पु शचीपते” यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी वातको वैतानसूत्र में कहा है, कि—“चातुर्मास्यवैश्वदेवगर्गवैदग्ध्यन्दोमवत्पराक्रान्तर्वस्वश्वमेघज्यहाणां शग्ध्यु पु शचीपते” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” (२० । ५३) के साथ कह दिया है ।

साकमेघ ज्यहके प्रथमदिन “इन्द्रमिद् देवतातये” (२० । ११८ । ३) यह पृष्ठस्तोत्रिय होता है । इसी वातको वैतानसूत्रमें कहा है, है, कि—“साकमेघस्येन्द्रमिद् देवतातये” (वैतानसूत्र ८ । ३) ॥

शग्ध्यु ३ पु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

भगं न हि त्वां यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि १

शग्ध्यु । ऊं इति । सु । शचीपते । इन्द्र । विश्वाभिः । उतिभिः

भगम् । न । हि । त्वा । यशसम् । वसुविदम् । अनु । शूर ।

चरामसि ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, कि—आपकी सकल रक्त शक्तियोंके द्वारा आपसे भाग्य और यश पानेके लिये हम आप धनलंभकके अनुकूल चलें ॥ १ ॥

पौरो अश्वंस्य पुरुकुद् गवामस्युत्सों देव हिरण्ययः ।

नकिर्हि दानं परिमर्धिषत् त्वे यद्यद्यामि तदा भर २
 पौरः । अश्वस्य । पुरुःकृत् । गवाम् । असि । उत्सः । देव ।

हिरण्यगः ।

नकिः । हि । दानम् । परिऽमर्धिषत् । त्वे इति । यत्स्यत् । यामि ।
 तत् । आ । भर ॥ २ ॥

आप धन आदिको मचुर करने वाले हैं, पुरवासियोंके लिये अश्वरूप हैं अर्थात् उनको गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने वाले हैं, आप गौओंको बद्ध करने वाले हैं, उत्सदेव और हिरण्यग हैं, आपकी दानकी कोई हिंसा नहीं कर सकता । मैं जिस २ वस्तु की इच्छासे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ उस २ वस्तुको आप मुझमें भरिये ॥ २ ॥

इन्द्रमिद् देवतांतय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ३
 इन्द्रम् । इत् । देवस्तांतये । इन्द्रम् । प्रऽपति । अध्वरे ।

इन्द्रम् । समीके । वनिनः । हवामहे । इन्द्रम् । धनस्य । सातये ३

हम यज्ञके लिये प्रयत्न यज्ञमें इन्द्रका आवाहन करते हैं, इन्द्र की सेवा करने वाले हम यज्ञके अवसर पर धनकी मात्तिके लिये इन्द्रका आवाहन करते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रो मत्ना रोदसी पप्रथच्छत् इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रं ह विश्वा भुवनानि येमिरिन्द्रं सुवानास इन्द्रवः ४

इन्द्रे । म॒हा । रोद॑सी इति । प॒मथ॑त् । श॒वः । इन्द्रः । सूर्य॑म् ।
अ॒रोच॑यत् ।

इन्द्रे । इ॒ । वि॒श्वा । भु॒वनानि॑ । ये॒मिरे॑ । इन्द्रे । सु॒वाना॑सः । इन्द्र॑वः
इति नवमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

इन्द्रदेवने अपनी महिमासे घावापृथिभीका विस्तार किया है, इन्द्रात्मक चलमे सूर्यको दमका रक्खा है । सकल भुवन इन्द्रमें ही आश्रित होते हैं, और इन्द्रके लिये सोम अभिपुत होते हैं ॥४॥

नवम अनुवाकमें धाईसवाँ सूक्त समाप्त (७३४)

वैश्वदेवादित्र्यहेषु “अस्तावि मन्म पूर्ण्यम्” इत्यस्य विनियोगः
“तमिन्द्रं वाजयामसि” [२०. ४७] इत्यनेन सह उक्तः ॥

वैश्वदेव आदि त्र्यहोमें “अस्तावि मन्म पूर्ण्यम्” का विनियोग “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२०।४७) के साथ कह दिया है ।

अस्ता॑वि मन्मं पूर्ण्यं ब्रह्मेन्द्रा॑य वोचत ।

पूर्वा॑र्च॒तस्य॑ बृ॒हती॑र॒नूप॑त स्तो॒तुमे॑धा अ॒सृज॑त ॥१॥

अस्ता॑वि । मन्म । पूर्ण्यम् । ब्रह्म । इन्द्रा॑य । वोच॑त ।

पूर्वाः । अ॒र्च॒तस्य॑ । बृ॒हतीः । अ॒नूप॑त । स्तो॒तुः । मे॒धाः । अ॒सृज॑त १

मै मननीय प्राचीन स्तोत्रसे इन्द्रकी स्तुति कर चुका हैं अब हे ऋत्विजों ! तुम इन्द्रके लिये मन्त्रका उच्चारण करो, तुम इन्द्रकी यज्ञकी प्राचीन कालोंकी बड़ी २ ऋचाओंसे स्तुति करो, स्तुति करने वालों की बुद्धि ऋचाओंमे संयुक्त होगई ॥ १ ॥

तु॒र॒ण्यवो॑ मधु॒मन्तं॑ घृ॒तश्रु॑तं वि॒प्रांसो॑ अ॒र्कमा॑नृ॒चुः ।

अ॒स्मे र॒यिः प॑प्र॒थे वृ॒ण्यं श॒वोस्मे॑ सु॒वाना॑स इन्द्र॑वः २

तुरणपवः । मधुऽमन्तम् । घृतऽश्रुतम् । विपासः । अर्कम् । आनृचुः ।
अस्मे इति । रयिः । पप्रथे । वृष्ण्यम् । शवः । अस्मे इति ।

सुवानासः । इन्द्रवः ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके त्रयोविंशं सूक्तम् ॥

शीघ्रता करने वाले विम मधुमय घृतस्तावि पूजक (मन्त्र) की प्रशंसा करते हैं, इस यजमानके लिये धन विस्तृत होता है और वर्षक बल इसको प्राप्त होता है, और इन इन्द्रदेवके लिये सोम अग्निपुत होते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें नेईसर्वा सूक्त समाप्त (७३५)

दशाहस्य गवामयनिकस्य अष्टमेहनि “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” इत्येष उक्थस्तोत्रियो भवति । उक्तं वैताने । “दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदगिति” इति [वै० ८०. ४] ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीने अस्य विनियोगः “क ई वेद सुते सचा” [२०. ५३] इत्यनेन सह उक्तः ॥

दशाह गवामयनिकाको अष्टम दिनमें “यदिन्द्र प्रागपागुदक्” यह उक्थस्तोत्रिय होता है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“दशाहस्याष्टमे यदिन्द्र प्रागपागुदमिति” (वैतानसूत्र ८०।४) ॥

तथा त्रिककुदशाहाहीनमें इसका विनियोग “क ई वेद सुते सचा” (२०. ५३) के साथ कह दिया है ।

यदिन्द्र प्रागपागुदह्न्यग् वा ह्यसे नृभिः ।

सिमां पुरु नृपंतो अस्यानवेसिं प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

यत् । इन्द्र । प्राक् । अपाक् । उदक् । न्यक् । वा । ह्यसे । नृभिः ।

सिम । पुरु । नृपंतः । असि । आनवे । असि । प्रशर्ध । तुर्वशे

हे इन्द्रदेव ! आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण जिस ओरसे भी मनुष्योंसे बुलाये जाते हैं हे सर्व ! हे प्रकृष्टरूपसे शत्रुओंका संहार करने वाले ! आप इस मनुष्यमें आनुके लिये हैं ॥ १ ॥
 यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे इन्द्र मादयसे सचा ।
 कण्वांसस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमिवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गंहि
 पत् । वा । रुमे । रुशमे । श्यावके । कृपे । इन्द्र । मादयसे । सचा ।
 कण्वासः । त्वा । ब्रह्मभिः । स्तोमिवाहसः । इन्द्र । आ । यच्छन्ति ।
 आ । गंहि ॥ २ ॥

इति नवमेऋषाके चतुर्विंशं सूक्तम् ॥

हे समर्थ इन्द्र ! आप रुम रुशम और श्यावकमें साथ ही साथ आनन्द उत्पन्न करते हैं । कण्वगोत्री स्तोमधारी ऋषि आपको (हवि) देते हैं आप आइये ॥ २ ॥

नवम अनुषाकमें चौथीसवाँ सूक्त समाप्त (७३६)

तनूपृष्ठे पढ़हे “अभि त्वा शूर नोनुमः” इत्यस्य विनियोगः
 “यद्वा घाव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ पढ़हमें “अभि त्वा शूर नोनुमः” का विनियोग
 “यद्वा घाव इन्द्र ते शतम्” (२०. ८१) के साथ कह दिया है ।

अभि त्वां शूर नोनुमोदुग्धा इव धेनवः ।

ईशानमस्य जगतः स्वर्द्धशमीशानमिन्द्र तस्थुपः १

अभि । त्वा । शूर । नोनुमः । अदुग्धाः इव । धेनवः ।

ईशानम् । अस्य । जगतः । स्वः ऽर्द्धशम् । ईशानम् । इन्द्र । तस्थुपः

हे शूर ! बिना दुही हुई घेनुओंकी समान हम आपको मेरित करते हैं । आप इस चर जगत्के ईश्वर हैं । स्वर्गके द्रष्टा हैं और हे इन्द्र ! आप स्थावर जगत्के ईश्वर हैं ॥ १ ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनि-
निष्यते ।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवा-
महे ॥ २ ॥

न । त्वाऽवान् । अन्यः । दिव्यः । न । पार्थिवः । न । जातः ।
न । जनिष्यते ।

अश्वऽयन्तः । मघऽवन् । इन्द्र । वाजिनः । गव्यन्तः । त्वा ।
हवामहे ॥ २ ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आपकी समान और कोई दिव्य पदार्थ नहीं है, और कोई पार्थिव माणी आप की समान नहीं है, व कोई हुआ है और न कोई होगा । हे मघवन् ! इन्द्र ! हम गौ अश्व और अन्नकी प्रार्थना करते हुए आपका आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें पञ्चोत्तरां सूक्त समाप्त (५३७)

तनूपृष्ठे पढ़हे “रेवतीर्नः सधमादे” इत्यस्य विनियोगः “यद्वाव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ पढ़हमें “रेवतीर्नः सधमादे” का विनियोग “यद्वाव इन्द्र ते शतम्” (२०. ८१) के साथ कह दिया है ।

रेवतीर्नः सधमाद् इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो
याभिर्मदेम ॥ १ ॥

रेवतीः । नः । सधमादे । इन्द्रे । सन्तु । तुविवाजाः ॥
क्षुमन्तः । याभिः । मदेम ॥ १ ॥

हमारे यज्ञमें इन्द्र के आने पर हम यज्ञान्न और साधारण अन्न
की धनमयी वस्तुओंसे सम्पन्न होवें और उनसे हम आनन्द पावें ।
आ ध त्वावान् त्मनास्तु त्वभ्यो घृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्रयोः ॥ २ ॥

आ । ध । त्वावान् । त्मना । आस्तु । त्वभ्यः । घृष्णो इति ।
वियानः ॥ ऋणोः । अक्षम् । न । चक्रयोः ॥ २ ॥

हे घृष्णो ! स्ताताओंकी कृपासे आपकी दयाको पाने वाला
पुरुष गमनशील रथके दोनों चक्रोंमें रहने वाले अक्षकी समान
आप्त होजाता है ॥ २ ॥

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् । ऋणो-
रक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥

आ । यद् । दुवः । शतक्रतो इति शतक्रतो । आ । कामम् ।
जरितृणाम् । ऋणोः । अक्षम् । न । शचीभिः ॥ ३ ॥

-इति नवमेनुवाके षड्विंशं सूक्तम् ॥

हे शतक्रतो इन्द्र ! आपकी सेवा करने वाला पुरुष आपकी

शक्तियोंको पाकर स्तोत्रार्थोंकी कामनाओंको गमनशील रखके
अक्षकी सगान (पूर्ण करनेमें मुख्य) होता है ॥ ३ ॥

नयम अनुयाकमें छम्बीसवाँ सूक्त समाप्त (७३८)

विपुत्रति सौर्यपृष्ठे माध्यन्दिने “चित्रं देवानामुदगादनीकम्”
[२०. १०७. १४] “तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्” [२०.
१२३] इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ भवतः । तद् चक्रं वैताने ।
“चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम् इति
पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” इति [वै० ६. ३] ॥

विपुत्रत् सौर्यपृष्ठ माध्यन्दिनमें “चित्रं देवानामुदगादनीकं”
(२० । १०७ । १४) “तत् सूर्यस्य देवत्वम् तन्महित्वम्” (२०।
१२३) यह पृष्ठस्तोत्रिय और अनुरूप होते हैं । इसी बातको
वैतानसूत्रमें कहा है, कि-चित्रं देवानामुदगादनीकं तत् सूर्यस्य
देवत्वं तन्महित्वं इति पृष्ठस्तोत्रियानुरूपौ” (वैतानसूत्र ६ । ३)

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादादात्री वासस्तनुते सिमस्मै
तत् । सूर्यस्य । देवत्वम् । तत् । महित्वम् । मध्याः । कर्तोः । विस्त-
तम् । सम् । जभार ।

यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सधस्थात् । आत् । रात्री ।
वासः । तनुते । सिमस्मै ॥ १ ॥

यह सूर्यदेवका देवत्व और माहात्म्य है, कि-जब वह किरणों
को अपनेमें अनुभवेश कराते हैं तो फैले हुए कामोंको बीचमें ही
समेट लेते हैं, और तब इस भूलोकके लिये पृथ्वी अन्धकारको

चारों ओरसे समेट कर वस्त्ररूपमें अर्पण करती है (वह अन्य-
कार रूपसे नष्ट होता है अतः सूर्य महिमामय हैं) ॥ १ ॥

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरुपस्थे
अनन्तमन्यद् रुशंसस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं
भरन्ति ॥ २ ॥

तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽक्षे । सूर्यः । रूपम् । कृणुते ।
द्योः । उपऽस्थे ।

अनन्तम् । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णम् । अन्यत् । हरितः ।
सम् । भरन्ति ॥ २ ॥

इति नवमेऽनुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

मैं मित्र और वरुण देवताके माहात्म्यका वर्णन करता हूँ,
कि—सूर्यदेव द्यूलोकमें अपना रूप करते हैं, इनका दमकता हुआ
तेज अनन्त है, दूसरा वारुण तेज कृष्ण है उसको सूर्यकी किरणें
भली प्रकार भरण करती हैं—खींच कर लेजाती हैं ॥ २ ॥

नवम अनुवाकमें सत्ताईसवाँ सूक्त समाप्त (७३९)

तनूपृष्ठे पदहे “कया नश्चित्र आ भुवत्” इत्यस्य विनियोगः
“यद् द्याव इन्द्र ते शतम्” [२०. ८१] इत्यनेन सह उक्तः ॥

तनूपृष्ठ पदहमें “कया नश्चित्र आभुवत्” का विनियोग “यद्
द्याव इन्द्र ते शतम्” (२० । ८१) के साथ कह दिया है ।

कया नश्चित्र आ भुवद्गती सदावृधः सर्वा । कया
शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

कया । नः । चित्रः । आ । भुवत् । ऊनी । सदाऽष्टधः । सत्वा ॥

कया । शचिष्ठया । वृता ॥ १ ॥

सदा वृद्धि करने वाले, चायनीय, सत्वा किस रक्षक शक्ति के द्वारा हमारी रक्षा करने वाले होंगे वह रक्षकत्ववृत्ति किस शक्तिमती धारणासे सम्पन्न होगी (सुखमदा धारणासे) ॥१॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृष्ट्वा

चिंशरुजे वसु ॥ २ ॥

कः । त्वा । सत्यः । मदानाम् । मंहिष्ठः । मत्सत् । अन्धसः ॥

दृष्ट्वा । चित् । आऽरुजे । वसु ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! सोमरूप अन्नका कौन अंश जो कि—मदजनक हवियों में श्रेष्ठ है तुम्हें प्रसन्न करता है, कि—आप मिससे प्रसन्न होकर दृढ़तासे रहने वाले धनको भक्तोंको विभाग करके देते हो ॥२॥

अभी पुणः सखीनामवित्ता जरितृणाम् ॥ शतं भवा-

स्यूतिभिः ॥ ३ ॥

अभि । सु । नः । सखीनाम् । अविता । जरितृणाम् ॥ शतम् ।

भवासि । ऊतिऽभिः ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! मित्ररूप हम स्तोताओंके रक्षक आप रक्षा करनेके लिये भली प्रकार हमारे अभिमुख होकर सैंकड़ों बार (राम कृष्ण आदिके रूपमें) प्रकट होते हैं ॥ ३ ॥

इमा नु कं भुवना सीपधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।

यज्ञं च न स्तन्वँ च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकलृपाति
इमा । नु । कम् । भुङ्ना । सीसधाम । इन्द्रः । च । विश्वे । च । देवाः ।
यज्ञम् । च । नः । तन्वँ । च । मज्जाम् । च । आदित्यैः । इन्द्रः ।
सह । चीकलृपाति ॥ ४ ॥

इस रमणीय यज्ञको [सब प्रकट होने वाले श्रद्धाविज इन्द्र
और सकल देवता (तथा हम) सिद्ध करें, आदित्यों सहित
इन्द्रदेव हमारे यज्ञ शरीर और प्रजाको समर्थ रखें ॥ ४ ॥
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भुत्वविता तनू-
नाम् ।

हत्वाय देवा असुरान् यदायन् देवा देवत्वमभिरक्ष-
माणाः ॥ ५ ॥

आदित्यैः । इन्द्रः । सगणः । मरुद्भिः । अस्माकम् । भुतु ।
अविता । तनूनाम् ।

हत्वाय । देवाः । असुरान् । यत् । आयन् । देवाः । देवत्वम् ।
अभिरक्षमाणाः ॥ ५ ॥

जो देवता देवत्वकी रक्षा करनेके लिये असुरोंको मार कर
देवत्वको अक्षुण्ण रख सके थे, उन आदित्य और मरुद्गणोंसे
सम्पन्न इन्द्र हमारे शरीरके रक्षक बनें ॥ ५ ॥

प्रत्यक्षमर्कमनयं छवींभिरादित्स्वधामिपिरां पर्यपश्यन्
श्या वाजं देवहितं सनेममदेम शतहिंमाः सुवीराः

(५२६) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषानुवादसहित

प्रत्यक्षम् । अर्कम् । अनयन् । शचीभिः । आत् । इत् । स्वयाम् ।
इषिराम् । परि । अपश्यन् ।

अया । राजम् । देवऽहितम् । सनेम् । मर्देम् । शतऽहिमा ।
सुञ्जीराः ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके अष्टाविंशं सूक्तम् ॥

देवता शक्तियोंके द्वारा सूर्यको प्रत्येकके सम्मुख लाये हैं और फिर उन्होंने पृथ्वीको हविरूप अन्नसे सम्पन्न देखा है, इसी मायाके द्वारा हम देवताओंका हित करने वाले अन्नको पावे और सुन्दर वीरोंसे सम्पन्न रहकर सौ वर्ष तक जीवित रहें ३
नवम अनुवाकमें अष्टाविंशों सूक्त समाप्त (७४०)

पृष्ठयस्य पष्ठेद्वि “अपेन्द्र माचो मघवन्नमित्रान्” इति सुकीर्त्याख्यस्य सकलसूक्तस्य पच्छः शंसने प्राप्ते चतुर्थीम् अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अपेन्द्र माचो मघवन्नमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थीमर्धर्चशः” इति [वै० ६. २] ॥

सौत्रामण्यां गृहीतेष्वज्येषु “कुविदङ्ग यवमन्तः” [२०. १२५. २] इति अत्रा पयोग्रहान् गृह्णन्तमध्वर्युम् अभिमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । “गृहीतेष्वज्येषु कुविदङ्ग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृह्णन्तम्” इति [वै० ५. ३] ॥

तत्रैव वषामार्जनादनन्तरम् “युवं सुराममश्विना” [२. १२५. ४-७] इति चतसृभिर्ऋग्भिः पयःसुराग्रहाणो होमान् अनुमन्त्रयते । तद् उक्तं वैताने । “वषामार्जनाद् युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्” इति [वै० ५. ३] ॥

पृष्ठयके छठे दिन “अपेन्द्र माचो मघवन्नमित्रान्” इस सुकीर्तिनाम वाले सकल सूक्तके पद-पद करके शंसनकी प्राप्ति होने पर

चतुर्थीको अर्धर्चरूपमें कहे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रान् इति सुकीर्तिम् । चतुर्थी-मर्धर्चशः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

सौत्रामण्यमें घृतके ग्रहण करने पर “कुविदंग यवमन्तः” (२० । १२५) ऋचासे पयोग्रहोंको पकड़ते हुए अध्वर्युको अभिमन्त्रित करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “गृहीतेष्वाज्येषु कुविदंग यवमन्त इति पयोग्रहान् गृहन्तम्” (वैतानसूत्र ५ । ३) ॥

तहाँ ही वषामार्जनके अनन्तर “युवं सुराममश्विना” (२० । १२५ । ४-७) इन चार ऋचाओंसे पयःसुराग्रहके होमोंका अनुमन्त्रण करे । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि— “वषामार्जनाद् युवं सुराममश्विनेति चतसृभिः पयःसुराग्रहाणाम्” (वैतानसूत्र ५ । ३) ॥

अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापांचो अभिभूते नुदस्व
अपोदीचो अपं शूराधराचं उरौ यथा तव शर्मन् मदेम
अपं । इन्द्र । प्राचः । मघवन् । मित्रान् । अपं । अपाच ।
अभिभूते । नुदस्व ।

अप । उदीचः । अपं । शूर । अधराचः । उरौ । यथा । तव ।
शर्मन् । मदेम ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! पूर्वकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको दूर करिये,
हे अभिभूते ! पश्चिमकी ओरसे आप हमारे शत्रुओंको पीड़ित
करिये, हे शूर इन्द्र ! उत्तर और दक्षिण दिशाकी ओरसे आप
हमारे शत्रुओंको बाधा दीजिये । जिससे आपके दिगे विशाल
सुखमें हम आनन्द पा सकें ॥ १ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद् यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं
इहेहपां कृणुहि भोजनानि ये वहिपो नमोवृक्तिं न
जग्मुः ॥ २ ॥

कुविद् । अङ्ग । यवमन्तः । यवम् । चिद् । यथा । दान्ति ।
अनुऽपूर्वम् । वियूयं ।

इहेह । एषाम् । कृणुहि । भोजनानि । ये । वहिपः । नमोऽवृ-
क्तिम् । न । जग्मुः ॥ २ ॥

हे अग्ने ! बहुतसे यव वाले पुरुष जैसे जोंको मिला कर अनु-
पूर्वक काटते हैं, इसी प्रकार जो कुशाएँ हविसे संपृक्त नहीं हुई
हैं उनका आप भक्षण करिये ॥ २ ॥

नहि स्थूर्युतुथा यातमस्ति नोत श्रवां विविदे संगमेपु
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रां अश्वायन्तो वृषणं वाज-
यन्तः ॥ ३ ॥

नहि । स्थूरि । अतुथा । यातम् । अस्ति । न । उन । श्रवाः ।
विविदे । सम्गमेपु ।

गव्यन्तः । इन्द्रम् । सख्याय । विप्राः । अश्वायन्तः । वृषणम् ।
वाजयन्तः ॥ ३ ॥

अतुके अनुसार बहुतसा अन्न हमको नहीं मिला है, और
युद्धोंमें भी हमको अन्न नहीं मिला है, इस लिये इन्द्रको मित्रके

लिये चाहते हुए विम, गौ अरव और अन्नको चाहते हुए उन फलवर्षक इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥

युवम् । सुरामम् । अश्विना । नमुचौ । आसुरे । सचा ।

विऽपिपाना । शुभः । पती इति । इन्द्रम् । कर्मऽसु । आवतम् ४

हे अश्विनीकुमारों ! अलंकारोंके देवता तुम दोनों नमुचिके साथ आसुर युद्ध होते समय सुन्दर रमणीय सोमका विशेषरूप से पान करके कर्मोंमें इन्द्रकी रक्षा करो ॥ ४ ॥

पुत्रमिव पितरांश्वश्विनोभेन्द्रावयुः काव्यैर्दंसनाभिः ।

यत् सुरामं व्यपिवः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्न-

भिष्णक् ॥ ५ ॥

पुत्रम्ऽव । पितरौ । अश्विना । उभा । इन्द्र । आवयुः । काव्यैः ।

दंसनाभिः ।

यत् । सुरामम् । वि । अपिवः । शचीभिः । सरस्वती । त्वा ।

मघवन्न । अभिष्णक् ॥ ५ ॥

दोनों अश्विनीकुमारोंने, माता पिताके पुत्रकी रक्षा करनेकी समान, अपनी चतुरता और शत्रुओंको काटनेकी युक्तियोंसे इन्द्र की रक्षा की है, हे मघवन् ! जो आपने सुन्दर रमणीय सोमका पान किया है तो सरस्वती देवी अपनी शक्तियोंसे आपको स्नान करावे ॥ ५ ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवाँभिः सुमृडीको भवतु विश्व-
वेदाः ।

वाधनां देपो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम

इन्द्रः । सुत्रामा । स्ववान् । अवःभिः । सुमृडीकः । भवतु ।

विश्ववेदाः ।

वाधनाम् । देपः । अभयम् । नः । कृणोतु । सुवीर्यस्य । पतयः ।

स्याम ॥ ६ ॥

भली मकार रक्षा करने वाले धनी इन्द्र रक्षाओंके द्वारा हम
को सुन्दर सुख प्रदान किया करें और यह बड़े भारी धनसे
सम्पन्न इन्द्र हमारे शत्रुओंका संहार करें और हमको अभय भी
देवें, और हम शोभन प्रभाव वाले धनके स्वामी होवें ॥ ६ ॥

स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराचिद् देपः सनुत-
युपोतु ।

तस्य वयं सुमत्तौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम

सः । सुत्रामा । स्ववान् । इन्द्रः । अस्मत् । आरात् । चिद् । देपः ।

सनुतः । युपोतु ।

तस्य । वयम् । सुमत्तौ । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ७

इति नवमेनुवाके एकोनत्रिंशं सूक्तम् ॥

भली मकार रक्षा करने वाले इन्द्र हमसे दूर ही हमारे शत्रुओं
को तिरोहित कर डालें अलग २ कर डालें, हम यज्ञके पात्र उन

इन्द्रदेवकी अनुग्रहरूपा बुद्धिमें रहते हुए उनके कन्याएँ मय भाव को पाते रहें ॥ ७ ॥

नवम अनुवाकमें उन्नीसवाँ सूक्त समाप्त (७४१)

पृष्ठयस्य पष्ठेहनि “वि हि सोतोरसृजत” इति वृषाकप्यारूपं सूक्तं सूत्रोक्तधर्मकं शंसति । तद् उक्तं वैताने । “वि हि सोतोरसृजतेति वृषाकपिम्” इत्यादि [बौ० ६, २] ॥

पृष्ठयके छठे दिन “वि हि सोतोरसृजत” यह वृषाकपि नामक सूक्त सूत्रमें कहे हुए धर्म वालेका गान करता है ! इसी वानको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“वि हि सोतोरसृजतेति वृषाकपिम्” इत्यादि (वैतानमूत्र ६ । २) ॥

वि हि सोतोरसृजत नेन्द्रं देवममंसत ।

यत्रामदत् वृषाकपिर्यः पुष्टेषु मत्संस्त्रा विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ १ ॥

वि । हि । सोतोः । असृजत । न । इन्द्रम् । देवम् । अमंसत ।

यत्र । अमदत् । वृषाकपिः । अर्यः । पुष्टेषु । मत्संस्त्रा । विश्व-

स्मात् । इन्द्रः । उत्तरः ॥ १ ॥

अभिषेक करने वालेमे अलग हुए (वृषाकपिने) इन्द्रको देवकी समान माना, ऐसे वृषाकपि देवता जो पुष्टोंमें स्वाधी हैं, वह मेरे सत्ता हैं, इस कारण मैं इन्द्र सवमे श्रेष्ठ हूँ ॥ १ ॥

परा हीन्द्र धावंसि वृषाकपेरति व्यथिः ।

नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ २ ॥

परा । हि । इन्द्र । धावसि । वृषाकपेः । अति । व्यधिः ।

नो इति । अह । म । विन्दसि । अन्यत्र । सोमं ऽपीतये । ० ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओंको व्यथा देने वाले हैं, आप वृषाकपि से भी अधिक दौड़ते हैं, सोमपानके अतिरिक्त अन्यस्थलमें आप किसीसे नहीं मिलते हैं, अत एव इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।

यस्मां इरस्यसीदु न्वं १ यो वां पुष्टिमद् वसु विश्वं स्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

किम् । अयम् । त्वाम् । वृषाकपि । चकारः । हरितः । मृगः ।

यस्मै । इरस्यसि । इत् । ऊं-इति । जु । अर्यः । वा । पुष्टिम् ।

वसु । ० ॥ ३ ॥

क्या इन वृषाकपि (किरणोंसे घँपाने वाले देव) ने आपको हरित मृग बना दिया है, कि-जो आप स्वामी होने पर भी इन को पुष्टि-मद धन देते हैं, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।

श्वा न्वंस्य जम्भिपदपि कर्णे वराहयुर्विश्वं स्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ ४ ॥

यम् । इमम् । त्वम् । वृषाकपिम् । प्रियम् । इन्द्र । अभिरक्षसि ।

श्वा । जु । अस्य । जम्भिपत् । अपि । कर्णे । वराहऽयुः । ० ४

हे इन्द्र ! जिन प्रिय वृषाकपिकी आप रक्षा करते हैं, क्या कुत्ता इनके सामने जँभाई लेता है और क्या कान पर बराहको चाहने वाला जँभाई लेता है ? इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ४ ॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदुदुषत् ।

शिरो न्वस्य राविपं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥

प्रिया । तष्टानि । मे । कपिः । विऽभक्ता । वि । अदुदुषत् ।

शिरः । नु । अस्य । राविपम् । न । सुगम् । दुऽकृते । भुवम् । ०

कपिने मेरे प्रियोंको तनू किया है, व्यक्ताने दूषित किया है, मैं इसके शिरको शब्दित करता हूँ, दुष्कृतमें प्रादुर्भाव सुगम नहीं होता है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ५ ॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।

न मत् प्रतिव्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥

न । मत् । स्त्री । सुभसत्तरा । न । सुयाशुतरा । भुवत् ।

न । मत् । प्रतिव्यवीयसी । न । सक्थि । उद्यमीयसी । ० ६

मेरी स्त्री सुभसत्तरा नहीं है, और सुयाशुतरा भी नहीं है, और प्रतिव्यवीयसी भी नहीं है । और सक्थियोंको उदाने वाली भी नहीं है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

उवे अंभ्व सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।

भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीर्व हृष्यति विश्वं
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥

उवे । अम्ब । सुलाभिके । यथाऽइव । अद्भ । भविष्यति ।

भसन् । मे । अम्ब । सक्थि । मे । शिरः । मे । विऽइव । हृष्यति ।

हे उवे अम्ब सुलाभिके अंग ! जैसा होगा तैसा हो, हे अम्ब !
मेरी कटि मेरी सक्थि और मेरा शिर पत्नीकी समान भसन्न
होरहा है, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥

किं सुवाहो स्वजुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यभीपि वृषाकपि विश्वंस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ ८ ॥

किम् । सुवाहो इति सुवाहो । सुअमहजुरे । पृथुस्तो इति पृथु-
स्तो । पृथुजघने ।

किम् । शूरपत्नि । नः । त्वम् । अभि । अभीपि । वृषाकपिम् ।

हे सुन्दर सुजा वाली, हे सुन्दर अंगुलियों वाली, हे पृथुस्तु
वाली, हे पृथु जघन वाली, हे शूरपत्नि ! क्या तू हमको वृषा-
कपिके अभिमुख मारती है, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥

अवीरामिव मामयं शूरारुभि मन्यते ।

उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुतमंत्वा विश्वंस्मादिन्द्र

उत्तरः ॥ ९ ॥

अवीराम्ऽइव । माम् । अयम् । शराहः । अभि । मन्यते ।

न । अहम् । अस्मि । वीरिणी । इन्द्रपत्नी । मरुत्सखा । १०

यह अपने शरीरको नष्ट करना चाहने वाला नहुप मुझे वीर (पति) से रहित मानता है, परन्तु मैं वीर पतिसे सम्पन्न हूँ, मेरे पति मरुत्सखा इन्द्र हैं, वह सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ ६ ॥

संहोत्रं स्मं पुरा नारी समनं वाचं गच्छति ।

वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ १० ॥

सम्ऽहोत्रम् । स्म । पुरा । नारी । समनम् । वा । अच । गच्छति ।

वेधाः । ऋतस्य । वीरिणी । इन्द्रपत्नी । महीयते । १० ॥ १० ॥

पहिले स्त्री होत्ररूप होती है और वह यागमें पुरुषके साथ बैठती है, इस प्रकार वह यज्ञकी रचना करने वाली है, ऐसी वीरिणी इन्द्रपत्नी मशंसा पाती है, क्योंकि-इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं १०

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमंश्रवम् ।

नह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ ११ ॥

इन्द्राणीम् । आसु । नारिषु । सुभगाम् । अहम् । अश्रवम् ।

नहि । अस्यः । अपरम् । च न । जरसा । मरते । पतिः । १०

मैं नारियोंमें मैं इन्द्राणीको ही सौभाग्यवनी समझता हूँ, क्योंकि-इसका पनि अन्य वर्षको प्राप्त होकर भी नहीं मरता है,

जैसे, कि-और प्राकृत नारियोंके पति मर जाते हैं और न इसका पति वृद्ध होता है । वह कौनसा पति है ? उत्तर-जो सर्वश्रेष्ठ इन्द्र हैं, वही इसके पति हैं ॥ ११ ॥

नाहमिन्द्राणि सरण सख्युर्वृषाकपेऋते ।

यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छन्ति विश्वस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ १२ ॥

न । अहम् । इन्द्राणि । सरण । सख्युः । वृषाकपेः । ऋते ।

यस्य । इदम् । अप्यम् । हविः । प्रियम् । देवेषु । गच्छति । ०

इन्द्र कहते हैं, कि-हे इन्द्राणि ! मैं अपने मित्र वृषाकपिको छोड़ कर अन्यत्र कहीं रमण नहीं करता हूँ, क्योंकि-इनकी हवि जलसे संस्कृत होती है, यह मुझे सब देवताओंमें प्रिय है, ऐसा मैं सब देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र कहता हूँ ॥ १२ ॥

वृषाकपायि रेवन्ति सुपुत्र आदु सुस्तुपे ।

यसत् त इन्द्रं उत्तणः प्रियं काचित्स्करं हविर्विश्व-
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥

वृषाकपायि । रेवन्ति । सुपुत्रे । आत् । ऊं इति । सुस्तुपे ।

यसत् । ते इन्द्रः । उत्तणः । प्रियम् । काचित्स्करम् । हविः ॥ ०

हे वृषाकपि सूर्यकी-पत्नी-विभूति वृषाकपायि ! हे धनवति ! हे सुपुत्रे ! हे माध्यमिका चाणीसे सुस्तुपे ! तेरे इन माध्यमिक वज्र अवश्यायसंस्थानोंको यह इन्द्र (सूर्य) प्रिय और तुम्हारी इस सुखस्थान जलरूप हविकी यह इन्द्र भक्षण करें, क्योंकि-इन्द्र सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १३ ॥

उच्चणो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
 उताहमांश्चि पीव इदुभा कुचीः पृणन्ति मे विश्वंस्मा-
 दिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥

उच्चणः । हि । मे । पञ्चदश । साकम् । पचन्ति । विंशतिम् ।
 उता । अहम् । अंश्चि । पीवः । इत् । उभा । कुची इति । पृणन्ति । मे ।
 मुक्त पदान्ते पन्द्रह सायमे बीसको पकाते हैं, मैं उनका भक्षण करता हूँ अतः मैं स्थूल हूँ, मेरी दोनों कोखें भरी हुई, इन्द्रदेव सबसे उत्तम हैं ॥ १४ ॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
 मन्यस्तं इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वंस्मा-
 दिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥

वृषभः । न । तिग्मशृङ्गः । अन्तः । यूथेषु । रोरुवत् ।
 मन्यः । ते । इन्द्र । शम् । हृदे । यम् । ते । सुनोति । भावयुः ।
 तीखे सींग वाले वृषभके यूथमें बारम्बार शब्द करनेकी समान है इन्द्र । आपका मन्य जिसके हृदयमें सुख प्रदान करता है, वह सुख पाने वाला होता है, क्योंकि—इन्द्र सबमें श्रेष्ठ हैं ॥ १५ ॥

न सेशे यस्य रम्बितन्तरा सक्थ्या ३ कम्पत् ।
 सेदींशे यस्य रोमशं निपेदुषां विजृम्भते विश्वंस्मा-
 दिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् ।

सः । इत् । ईशे । यस्य । रोमशम् । निःसेदुपः । विजृम्भते ।

जिसकी सक्थियोंके बीचमें कपृत् लटकता रहता है, वह ऐश्वर्य नहीं पाता है, और जिस बैठनेकी इच्छा वालेका रोमश जँभाई लेता है वह (उपभोग करनेमें) समर्थ होता है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥

न सेशे यस्य रोमशं निःपेदुपो विजृम्भते ।

सेदीशे यस्य रम्बतेन्तरा सक्थ्यो ३ कपृद् विश्वंस्मा-
दिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

न । सः । ईशे । यस्य । रोमशम् । निःसेदुपः । विजृम्भते ।

सः । इत् । ईशे । यस्य । रम्बते । अन्तरा । सक्थ्या । कपृत् ।

जिस (आसन लगा कर) बैठने वाले (योगी) का रोमश विजृम्भण करता है वह (योगसाधनमें) समर्थ नहीं होता और जिसका कपृत् सक्थियोंमें लटकता रहता है (वह योगसिद्धि में) समर्थ होता है इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।

असिं सूनां नवं चरुमादेघस्यान आचितं विश्वंस्मा-

दिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥

अयम् । इन्द्र । वृषाकपिः । परस्वन्तम् । हतम् । विदत् ।

अ॒सिम् । सु॒नाम् । न॒वम् । च॒रुम् । आ॒त् । ए॒षस्य॑ । अ॒नः ।

आ॒ञ्चितम् । ० ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! इन वृषाकपिने अपने नष्ट हुए अतः शत्रुघनको पाया या और एषकी तलवार, सूना, और आचित नवीन चरुको ग्रहण किया है । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अ॒यमे॑मि वि॒त्राकं॑शद् वि॒त्रिन्वन् दा॒स॒मार्त्य॑म् ।

पि॒त्रामि॑ पा॒क॒सु॒त्वनो॒भि धी॑र॒म॒चाक॑शं वि॒श्वस्मा॑दिन्द्र
उ॒त्तरः॑ ॥ १९ ॥

अ॒यम् । ए॒मि । वि॒त्राकं॑शद् । वि॒त्रिन्वन् । दा॒सम् । मा॒र्त्यम् ।
पि॒त्रामि॑ । पा॒क॒सु॒त्वनः॑ । अ॒भि । धी॑र॒म् । अ॒चाक॑शम् । ० ॥ १९ ॥

यह मैं कर्म करने वाले आर्यको दूँड़ता हुआ और दमकता हुआ आरहा हूँ, मैं प्रशस्परसे निचोड़े हुए, धीरतामय सोमांश का पान कर रहा हूँ, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥

ध॒न्वं च॒ यत् कृ॒न्त॒त्रं च॒ क॒र्तिं स्वि॒त् ता वि॒ योज॑ना
ने॒दी॒य॒सो वृ॒षाक॒पेस्त॒मेहिं॑ गृ॒ह्णो॑ उप॒ वि॒श्वस्मा॑दिन्द्र
उ॒त्तरः॑ ॥ २० ॥

ध॒न्वं । च॒ । यत् । कृ॒न्त॒त्रम् । च॒ । क॒र्तिं । स्वि॒त् । ता । वि॒ ।
यो॒ज॒ना ।

नेदीयसः । वृषाकपे । अस्तम् । आ । इहि । गृह्णान् । उप । ०

मो मरुस्पल और अन्नरिक्त हैं, उनका वियोजन कितना है,

हे वृषाकपे ! उस निकटतम स्थलसे आप घरको आइये, यहाँ के पास आइये, इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥

पुनरेहिं वृषाकपे सुविता कल्पयावहे ।

य एष स्वप्नंशनोस्तमेपि पथा पुनर्विश्वंस्मादिन्द्र
उत्तरः ॥ २१ ॥

पुनः । आ । इति । वृषाकपे । सुविता । कल्पयावहे ।

यः । एषः । स्वप्नंशनः । अस्तम् । एपि । पथा । पुनः । १०

हे भगवन् वृषाकपे ! जो आप अपने उदयसे स्वप्नको नष्ट करने वाले हैं, वह आप मार्गसे फिर अस्तको प्राप्त होजाते हैं, जो आप सब जगत्से श्रेष्ठ हैं, वह आप फिर उदयको प्राप्त हुआजिये, फिर हम शोभन अर्घ्यके उद्देश्यसे जगत्के हितमें प्रवृत्त हुए शोभन कर्मोंकी कल्पना करें अर्थात् उनको सगुण करें ॥ २१ ॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।

क्व १ स्य पुल्वघो मृगः कर्मणं जनयोपनो विश्वं
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥

यत् । उदञ्चः । वृषाकपे । गृहम् । इन्द्र । अजगन्तन ।

क्व । स्यः । पुल्वघः । मृगः । कर्म । अगन् । जनयोपनः । १०

हे वृषाकपे इन्द्र (सूर्य) ! जब आप उत्तरमें रहते हुए भूतनों को मदक्षिण करते हुए गृहानुपवेशमें अन्तर्हित होते हैं, उससमय आपके घर आने पर-अस्त होने पर-लोक प्रकाशरहित होकर विस्मृत होकर कहता है, कि-वह सब प्राणिमोंमें रह कर बहुत

सा भक्षण करने वाले मूय कहों गए, वह जनमोहन सूर्य सबसे श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥

पशुर्ह नाम मानवी साकं ससूत्र विंशतिम् ।

भद्रं भल तस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्व-
स्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥

पशुः । ६ । नाम । मानवी । साकम् । ससूत्र । विंशतिम् ।

भद्रम् । भल । तस्यै । अभूत् । यस्याः । उदरम् । आमयत् ।

विश्वम्पात् । इन्द्रः । उत्तरः ॥ २३ ॥

मानवी पशु मसिद्ध है उसने साथ ही साथ बीसको मकड़ किया है, उसके लिये भद्र हुआ, जिसका उदर रोगसहित था, इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

नक्षत्राणां १०० तासु १०० सूक्त समाप्त (७४२)

❀ अथ कुन्तापसूक्तानि ❀

पृथक्स्य पृष्ठेहनि “इदं जना उपश्रुत” इति कुन्तापम् अर्ध-
र्चशः शंसति । तत्र प्रथमाश्चतुर्दश श्रुचः पदावग्राहं शंसति ।
तद् उक्तं वैताने । “इदं जना उपश्रुतेति कुन्तापम् अर्धर्चशः ।
चतुर्दश पदावग्राहम्” इति [वै० ६. २] ॥

पृथक्के लठे दिन “इदं जना उपश्रुत” इस कुन्तापको आधी २
श्रुचा करके पढ़े, इसकी पहिली चौदह श्रुचाओंको (पद पद
करके) पदावग्राह पढ़े । इसी बातसे वैतानमूनमें कहा, है, कि-
“इदं जना उपश्रुतेति कुन्ताप अर्धर्चशः । चतुर्दश पदावग्राहम्”
(वैतानमून ६ । २) ॥

इदं जना उपं श्रुत नराशंस स्तविष्यते ।

पष्टिं सहस्रां नवतिं च कौरम आ रुशोमेषु दद्महे ।

हे मनुष्यों ! और हे कौरम नराशंस तुम स्तुति करने वालों के विषयमें यह बात सुनो, कि—हम साठ हजार रुशमोंको देते हैं ।

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश ।

वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईपमाणा उपस्पृशः २

जिसके शरीररूपी रथके वधूमान् बीस ऊँट घोम्नेको देने वाले हैं वह घुलोक स्पर्श करते हुए हीडन करते हैं ॥ २ ॥

एष इपायं मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः ।

त्रीणि शतान्यर्वितां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३ ॥

हम अन्नके लिये सौ निष्क, दश माला, तीनसौ घोड़े और दश हजार गौओंका दान करते हैं ॥ ३ ॥

वच्यस्व रेभं वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः ।

नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोऽखि ॥ ४ ॥

हे स्तोतः ! जैसे पके हुए फल चाले वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी चहचहाता है, इसी प्रकार आप शब्द करिये, हाथोंमें वर्तमान क्षुरा जैसे चलता है इसी प्रकार कर्णके बन्द होने पर भी आपकी जिह्वा चलती रहे ॥ ४ ॥

प्र रेभासो मनीषा वृषा गावं इवेरने ।

अमोतपुत्रंका एषाममोतं गा इवांसते ॥ ५ ॥

बुद्धिसम्पन्न स्तोता वर्षक साँड़ोंकी समान चल रहे हैं इनके घरमें पुत्र और गौ बैठे हुए हैं ॥ ५ ॥

प्र रेभ र्धा भंस्व गोविदं वसुविदम् ।

देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीपुर्नार्वास्तारम् ॥ ६ ॥

हे स्तोतः ! गौ प्राप्त कराने वाली और घन प्राप्त कराने वाली बुद्धि को धारण कर, देवताओंमें इस बाणीका श्रौणन कर, जैसे बाण फैलाने वाले मनुष्यकी रक्षा करता है, इसी प्रकार बाणी तेरी रक्षा करे ॥ ६ ॥

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोमर्त्याँ अति ।

वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोतां परिक्षितः ॥ ७ ॥

यदि देवता विश्वजनीन राजाके मनुष्योंका अतिक्रमण करता हो तो वह प्ररिक्षित वैश्वानरके सुन्दर स्तोत्रको करे ॥ ७ ॥

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम् आसनमाचरन् ।

कुलायन् कृण्वन् कौरव्यः पतिर्वदति जाययां ॥ ८ ॥

परिच्छिन्न (देवता) कन्याणको करता है, आसन (स्थिति) को विस्तृत करता है, इस प्रकार विस्तृत करता हुआ कौरव्य-पति जायासे कहता है ॥ ८ ॥

कनरत् त आ हंराणि दधि मन्यां परि श्रुतम् ।

जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९ ॥

राजा परिक्षितके राज्यमें जाया पतिसे बृहन्ना है, कि-मंथा में परिश्रुत दधिको तेरे लिये कितना लाऊँ ॥ ९ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो विलम् ।

जनः स भद्रमेवति राष्ट्रे राज्ञः परिचितः ॥ १० ॥

पक्वा हुआ यवका धन मार्गमें उदररुख निलको प्राप्त होता है, इस प्रकार राजा परिचितके राज्यमें प्राणी कल्याणको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

इन्द्रः कारुण्यवृद्धदुत्तिष्ठ वि चरा जनम् ।

ममेदुग्रस्य चर्कधि सर्व इत् ते पृणादुरिः ॥ ११ ॥

इन्द्रने स्तोतासे कहा, कि-खड़ा हो, जनसमाममें विचरण कर, मुझ उग्रके प्रतापसे तू कर्म कर तेरा शत्रु तुझको सब कुछ दे जाय ॥ ११ ॥

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।

इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा नि पीदति ॥ १२ ॥

यहाँ गौएँ व्याधें, यहाँ अश्व और पुरुष भरपूर हों, और सहस्रों प्रकारकी दक्षिणा देनेवाले पूषा यहाँ बिराजें ॥ १२ ॥

नेमा इन्द्र गावो रिपन् मो आसां गोपे शीरिपत् ।

मासांमभिन्नयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत् ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! यह गौएँ हिसित न हों, और इनका पालन करने वाला गोप भी नष्ट न होवे, इन पर अभिन्नता करने वाला चोर भी अपना प्रभाव न दिखा सके ॥ १३ ॥

उप नो नरमासि सूक्तेन वचंसा वयं भद्रेण वचंसा वयम्

वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥

तं प्रतिगिरेति प्रतिकुरव । ओयामोदैवेति पञ्चपदा चतुर्दशी
एकेन द्वाभ्यां वा प्रणीति ॥

इति नवमेनुवाके एकविंशं सूक्तम् ॥

हे इन्द्र ! आप हमें सूक्तसे प्रसन्न सा करते हैं और
हम भी आपको कन्याणयन वचनसे आनन्दित करते हैं,
अन्तरिक्षसे आप हमारी बाणियोंको सुनिये, हम कभी भी नष्ट
न होंगे ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमें एकतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४३)

“यः सभेयो विदध्यः” इति षोडशर्चः ॥

“यः सभेयो विदध्यः” एतस्य शंसनप्रकारः पूर्वसूक्ते उक्तः ॥

“यः सभेयो विदध्यः” यह सोलह ऋचा वाला सूक्त है ।

“यः सभेयो विदध्यः” इसका शंसनप्रकार पूर्वसूक्तमें कह
दिया है ।

यः सभेयो विदध्यः सुत्वा यज्वाय पूरुषः ।

सूर्य चामूं रिशादसस्तद् देवाः प्रागंकल्पयन् ॥ १ ॥

जो सभाके योग्य, यज्ञगृहके योग्य, अभिषेक करने वाला
और यजन करने वाला पुरुष होता है, वह सूर्य (मण्डल)
को भेद डालता है और ऊपरके लोकोमें पहुँच जाता है, इस
बातको देवताओंने पहिले ही बना रक्खा है ॥ १ ॥

यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत् सखायं दुधूर्पति ।

ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥

जो जामिसे विस्तृत करता है और जो मित्रका दुधूर्पण करता
है, जो अप्रचेता ज्येष्ठ है उसको अधराक् कहते हैं ॥ २ ॥

यद् भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाघृषिः ।

तद् विप्रो अत्रंवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥

जिस मंगलमय पुरुषका पुत्र धर्षणशील होता है, वह विप्र कामना करने योग्य वचनको कह सकता है, वह गन्धर्व होता है ३ यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदांशुरिः ।

धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

जो वणिक् रघुजिष्ठ्य और जो देवताओंको हवि आदि न देनेके स्वभाव वाला होता है, हम सुनते हैं, कि-वह शश्वत धीरोंका अपाक्-मुख फेरने योग्य-होता है ॥ ४ ॥

ये च देवा अयंजन्ताथो ये च पराददिः ।

सूर्यो दिवमिव गत्वायं मघवा नो वि रंशाते ॥ ५ ॥

जो स्तुति करने वाले-स्तोता यज्ञ करते हैं और जो परादान करते हैं वह स्वर्गमें सूर्यकी समान जाते हैं, हमारे इन्द्र महान् हैं ५ योनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः ।

अत्रंक्षा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥

जो अनाक्ताक्ष है, अनभ्यक्त है, अमणिव अहिरण्यव और अत्रंक्षा है, वह ब्रह्माका पुत्र तोता कल्पोंमें संमिता है ॥ ६ ॥

य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।

सुब्रंक्षा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥

जो आक्ताक्ष, सुभ्यक्त, सुमणि, सुहिरण्यव, सुब्रंक्षा ब्रह्माके पुत्र तोता है वह कल्पोंमें संमिता है ॥ ७ ॥

अप्रपाणा च वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्ययः ।

अयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ८

अप्रपाणा वेशन्ता रेवा अप्रतिदिश्य अयंभ्या कन्या कन्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ८ ॥

सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्सुप्रतिदिश्ययः ।

सुयंभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ९

सुप्रपाणा वेशन्ता रेवान् सुप्रतिदिश्य सुयंभ्या कन्या कन्याणी तोता कल्पोंमें सम्मित है ॥ ९ ॥

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।

अनाशुरश्रायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥

परिवृक्ता, महिषी, स्वस्त्या और युधिगम अनाशुर आयामी तोता कल्पोंमें संमित है ॥ १० ॥

वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिगमः ।

श्वाशुरश्रायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥

वावाता महिषी स्वस्त्या और युधिगम श्वाशुर आयामी और तोता कल्पोंमें सम्मित हैं ॥ ११ ॥

यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गांहथाः ।

विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यज्ञाय कल्पते १२

हे इन्द्र ! जो आपने दाशराजके मनुष्यको विगाहित किया है, आप सबके लिये विरूप हुए थे और आप यज्ञके साथ समर्थ होते हैं ॥ १२ ॥

त्वं वृषाक्षुं मधवन्नम्रं मर्याकरो रविः ।

त्वं रोहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिन्नच्छिरः ॥ १३ ॥

हे वर्षक मधवन् ! आप मर्याकर रविरूपमें अक्षुको नम्र करते हैं, और रोहिणको फँसे हुए मुख वाला करते हैं और आपने वृषाक्षुरके शिरको काट डाला है ॥ १३ ॥

य पर्वतान् व्यर्ध्वाद् यो अथो व्यंगाहयाः ।

इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोस्तु ते ॥ १४ ॥

जिन्होंने पर्वतोंको विशेषरूपसे स्थापित किया है, और जिन्होंने जलका अवगाहन किया है और जो इन्द्र वृषाक्षुरका संहार करने वाले हैं, ऐसे हे इन्द्र ! आपके लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥

पृष्ठं धावन्तं ह्यैरिचिःश्रवसमंभुवन् ।

स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुसजम् ॥ १५ ॥

हरिनामक घोड़ोंकी पीठ पर दौड़ते हुए (इन्द्रको देख कर प्राणियोंने) उच्चैःश्रवासे कहा, कि-हे अश्व ! तेरा कन्याण होतू विजयशील कर्मके लिये सुन्दरमाला वाले इन्द्रको सवारी दे १५

ये त्वां श्वेता अजैश्रवसो हायों युञ्जन्ति दक्षिणम् ।

पूर्वा नमस्य देवानां विम्रदिन्द्र महीयते ॥ १६ ॥

इति नवमेनुवाके द्वाविंशं सूक्तम् ॥

जो श्वेत अजैश्रवस हारी आपकी दक्षिण ओर जुनते हैं, हे देवताओंके नमस्य ! हे उन पूर्वाओंको धारण करने वाले आप महत्त्व पाते हैं ॥ १६ ॥

“एता अश्वा आ सवन्ते” इति षट्सप्तत्यष्टादशपदान्त्याः मण-
वत्यष्ट मति त्वा ॥

“एता अश्वा आ सवन्ते” [२०. १२६] इत्यादि “नील-
शिवण्डवाहनः” [२०. १३२] इत्यन्तम् ऐतशमलापाख्यं षट्-
सप्ततिपादसमुदायं पदावग्राहं सूत्रोक्तमकारेण शंसति । तद्भुक्तं
वैताने । “एता अश्वा आसवन्त इत्यैतशमलापं पदावग्राहम् ।
तासामुत्तमेन पदेन मणौति” इति [वै० ६. २] ॥

“एता अश्वा आसवन्ते” (२० । १२६) इत्यादि “नील-
शिवण्डवाहनः” (२० । १३२) तत्र ऐतशमलाप नामक
द्विह्रस्वर पादसमुदायको पद २ ग्रहण करके सूत्रोक्त रीतिसे पढ़े ।
वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“एताः अश्वा आसवन्त इत्यैतशमलापं
पदावग्राहम् । तासामुत्तमेन पदेन मणौति” (वैतानसूत्र ६।२) ॥

एता अश्वा आ सवन्ते १ प्रतीपं प्रातिं सुत्वन्नम् २
तासामेका हरिकिका ॥३॥ हरिकिके किमिच्छसि ४
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥५॥ काहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामृस्तिस्त्रः शिशपाः ॥ ७ ॥ परिं त्रयः ॥ ८ ॥
पृदांक्रवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धूमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥११॥ स इच्छकं सघाघने १२
सघाघने गोमीद्या गोगंतीरिति ॥ १३ ॥

पुमां कुस्ते निमिच्छसि ॥ १४ ॥

पल्पं वद्ध वयो इति ॥१५॥ वद्धं वो अघा इति १६

अजांगार केविका १७ अश्वस्य वारो गोशपद्यके १८
श्येनीपती सा ॥१६॥ अनामयोपजिह्विका ॥२०॥

इति नवमेनुवाके त्रयस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

ये अश्वा दौहती हैं ॥ १ ॥ सुत्वा मतीपको पूर्ण करता है २
उनमेंसे एक हरिक्रिका है ॥ ३ ॥ हे हरिक्रिके ! तू क्या चाहती
है ॥ ४ ॥ दित रमणीय साधु पुत्रको ॥ ५ ॥ परास्य कहीं अहि-
सित रहता है ॥ ६ ॥ जहाँ यह तीन शिशपा हैं ॥ ७ ॥
चारों ओर तीन ॥ ८ ॥ सर्प ॥ ९ ॥ स्मिगको धौंकते हुए बैठे
हैं ॥ १० ॥ यह दिन आपका बड़ा घोड़ा है ॥११॥ वह इच्छक
का सघाघ करता है ॥ १२ ॥ गोपीद्या गोगतियोंको सघाघन
करता है ॥ १३ ॥ पुरुष और पृथिवी तेरा निमिच्छन करते हैं १४
हे वद्ध पन्प अग्न है इस प्रकार ॥ १५ ॥ हे वद्ध तुम्हारी अघा
है ॥ १६ ॥ केविका न जागी ॥ १७ ॥ अश्वका वार गोश-
पद्यकमें है ॥ १८ ॥ वह श्येनपती है ॥ १९ ॥ वह अनामया
उपजीविका है ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें तीसवाँ सूक्त समाप्त (७४५)

को अर्थ बहुलिमा इष्टानि ॥१॥ को अतिद्यापयः २
को अर्जुन्याः पयः ॥३॥ कंः काण्ण्याः पयः ॥४॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥५॥ कुहांकं पक्कं पृच्छ ॥६॥
यवानो यतिस्वभिः कुभिः ७ अकुप्यन्तः कुपायंकुः ८
आमणको मणत्सकः ॥९॥ देवं त्वप्रतिसूर्य ॥१०॥
एनंश्चिपइत्तिका हविः ॥११॥ प्रदुद्दो मघाप्रति १२

शृङ्गं उत्पन्न ॥१३॥ मा त्वाभिसखां नो विदन् १४
 वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥१५॥ इरावेदुमयं दत्त ॥१६॥
 अथो इयन्नियन्निति ॥१७॥ अथो इयन्निति १८
 अथो रवा अस्थिरा भवन् १९ उयं यकांशलोकका
 इति नवमेनुवाके चतुस्त्रिंशं सूक्तम् ॥

इन बहुतसे वाणोंको कौन स्वामित्वमें रखता है ॥ १ ॥ असि-
 दीका पय कौन है ? ॥ २ ॥ अर्जुनीका पय कौन है ? ॥ ३ ॥
 काष्णीका पय कौन है ? ॥ ४ ॥ इससे बृह, कुहसे बृह ॥ ५ ॥
 कुहाक पक्वकसे बृह ॥ ६ ॥ यतिरूप घन वाली पृथिवियोंसे
 मिलता हुआ ॥ ७ ॥ कृषायकु क्रोधमें भर गया ॥ ८ ॥ आम-
 णक मणत्सक ॥ ९ ॥ किंतु हे अमर्तिसूर्य देव ॥ १० ॥ एनधि-
 पङ्क्तिका हवि ॥ ११ ॥ मधुद्रुद मघाप्रति ॥ १२ ॥ हे मृग !
 हे उत्पन्न ! ॥ १३ ॥ मेरा सखा तुझको और मुझको अभि-
 मुख होकर प्राप्त हो ॥ १४ ॥ वशाके पुत्रको प्राप्त होते हैं १५
 हे दत्त इरावेदुमय ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त यह यह, इसप्रकार १७
 इसके उपरान्त यह इस प्रकार है ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त रवा
 अस्थिर होता है ॥ १९ ॥ उयं यकांशलोकका ॥ २० ॥

नवम अनुवाकमें औनीसवाँ सूक्त समाप्त (७४६)

आमिनो निति भवते ॥१॥ तस्य अनु निभञ्जनम् २
 वरुणो याति वस्वभिः ॥३॥ शतं वा भारती शवः ४
 शतमाश्वा हिरण्ययाः । शतं रथ्या हिरण्ययाः ।
 शतं कुथा हिरण्ययाः । शतं निष्का हिरण्ययाः ५

अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥ शुफेनं इव ओहते ७
 आयं वनेनती जनीं ॥ ८ ॥ वनिष्ठा नावंगृह्यन्ति ९
 इदं मह्यं मदूरिति ॥ ११ ॥ ते वृक्षाः सह तिष्ठति १२
 पाकं वलिः ॥ १२ ॥ शकं वलिः ॥ १३ ॥
 अश्वत्थ खदिरो ध्रुवः ॥ १४ ॥ अरंदुपरम ॥ १५ ॥
 शयो हत इव ॥ १६ ॥ व्यापु पुरुषः ॥ १७ ॥
 अदूहमित्यां पूषकम् ॥ १८ ॥ अत्यर्धर्च परस्वतः १९
 दौव हस्तिनो हृती ॥ २० ॥

इति नवमेनुवाके पञ्चत्रिंशं सूक्तम् ॥

आमिनोमिति कहा जाता है ॥१॥ उसके पीछे निमज्जन है २
 वरुणदेव रात्रियोंके साथ जाते हैं ॥ ३ ॥ सौ भारती बल ॥४॥
 सौ हित रमणीय घोड़े सौ हिरण्य रथ्या, सौ हिरण्यय कुप्या
 और सौ हिरण्यय निष्क ॥ ५ ॥ अहल कुश वर्त्तक ॥ ६ ॥
 शफसे वहनसा करता है ॥ ७ ॥ आय वनेनती जनी ॥ ८ ॥
 वनिष्ठा नौका पकड़ी जाती हैं ॥ ९ ॥ यह मृगको मसन्न करने
 वाला है ॥१०॥ वह वृक्षोंके साथ स्थित होती है ॥ ११ ॥ पाक-
 वलि ॥ १२ ॥ शकवलि ॥ १३ ॥ अश्वत्था खदिरध्रुव ॥१४॥
 चला, विरामको प्राप्त हो ॥ १५ ॥ सोने वाला मरा हुआ
 होता है ॥ १६ ॥ पुरुष व्याप्त होजाता है ॥ १७ ॥ मैं अन्तमें
 पूषाको दुहता हूँ ॥ १८ ॥ परस्वान् नामक मृगका अतिक्रमण
 करके अर्धर्च प्रवृत्त होवे ॥१९॥ हाथीकी दंतियोंका दुहन कर २०

आदलावुकमेकंकम् ॥ १ ॥ अलावुकं निखातकम् २
 कर्करिको निखातकः ॥ ३ ॥ तद् वात उन्मथायति ४
 कुलायं कृणवादिति ॥ ५ ॥ उग्रं वनिपदाततम् ६
 न वनिपदनाततम् ॥ ७ ॥ क एपां कर्करी लिखत् ८
 क एपां दुन्दुभिं हनत् ९ यदीयं हनत् कथं हनत् १०
 देवी हनत् कुहनत् ॥ ११ ॥ पर्यांगारं पुनः पुनः १२
 त्रीण्युष्टस्य नामानि १३ हिरण्य इत्येके अववीत् १४
 द्वौ वां ये शिशवः ॥ १५ ॥ नीलशिखण्डवाहनः १६

इति नवमेनुवाके षट्त्रिंशं सूक्तम् ॥

इसके अनन्तर अलावुक (रामतुरई-लौकी) एक ॥ १ ॥
 खोदने वाला अलावुक ॥ २ ॥ निखातक कर्करिक ॥ ३ ॥
 यह वायुको उखेड़ता है ॥ ४ ॥ कुलायको करता है ॥ ५ ॥
 विस्तृत उग्रकी संभक्ति करता है ॥ ६ ॥ अविस्तृतका सेवन
 नहीं करता है ॥ ७ ॥ इनमेंसे कौन कर्करी लिखता है ॥ ८ ॥
 इनमेंसे कौन दुन्दुभिको मारती है ॥ ९ ॥ यदि यह मारती है
 तो कैसे मारती है ॥ १० ॥ देवीने मारा, कुहनन किया ॥ ११ ॥
 भवनके चारों ओर बारम्बार ॥ १२ ॥ उसके तीन नाम हैं १३
 एक हिरण्य यह बोला ॥ १४ ॥ जो शिशु हैं वे दो हैं ॥ १५ ॥
 नीलशिखण्डवाहन ॥ १६ ॥

नवम अनुवाकमे छत्तीसवां सूक्त समाप्त (७४८)

“वितर्नौ किरणौ द्वौ” इति प्रवहिकाल्या ऋचः अर्धर्चशः

शंसति । तद् उक्तं वैताने । “विततो किरणौ द्वाविति प्रवहिकाः”
इति [वै० ६. २] ॥

“विततो किरणौ द्वौ” इस प्रवहिका नामक घृचाकी अथर्व-
रूपमें पड़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“विततो
किरणौ द्वाविति प्रवहिकाः” इति (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

विततो किरणौ तावां पिनिष्टि पुरुषः ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥

दो किरणों फैली हुई हैं पुरुष उनका पिशान करता है, हे
कुमारि ! तू उसको जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ १ ॥

मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृत्तः पुरुषानृते । न वै० २

हे पुरुष ! अनृतसे निवृत्त हुआ जो तू है, उस तेरी माताकी
दो किरणों हैं । हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा
नहीं है ॥ २ ॥

निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । न वै० ३

हे मध्यमे ! तू दोनों कानोंको पकड़ कर नहीं देती है, हे
कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ३ ॥

उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्ती वाव गूहसि । न वै० ४

उत्ताना वा शयानाके लिये खड़ी होकर आलिङ्गन करती है,
हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ४ ॥

श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । न वै०

तू श्लक्ष्णा वा श्लक्ष्णकामें श्लक्ष्ण ही अवगूहन करती है, हे
कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है वह तैसा नहीं है ॥ ५ ॥

अवश्लक्ष्णमिव अंशदन्तलोममतिं हृदे ।

न वै कुमारि तत् तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ ६ ॥

इति नवमेजुवाके सप्तविंशं सूक्तम् ॥

दृष्टे दाँत और लोपयुक्त सरोवरमें अवश्लक्ष्णकी समान है ।
हे कुमारि ! उसको तू जैसा मानती है, वह तैसा नहीं है ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें सैंतीसवाँ सूक्त समाप्त (७४९)

“इहेत्य प्रागपागुदगधराक्” इति प्रतिराधाख्या ऋचः अर्ध-
र्चशः शंसति । न संतनोति । तद् उक्तं वैताने । “इहेत्य प्रागपा-
गुदधराग् इति प्रतिराधान् । न संतनोति” इति [वै० ६. २] ॥

“इहेत्य प्रागपागुदगधराक्” इन प्रतिराधा नामक ऋचाओं
को अर्धर्चरूपमें पढ़े । विस्तार न करे । इसी बातको वैतानसूत्र
में कहा है, कि—“इहेत्य प्रागपागुदगधराग् इति प्रति राधान् ।
न संतनोति” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

इहेत्य प्रागपागुदगधराग्-अरांलागुदंभर्त्सथ ॥ १ ॥

यहाँ इस प्रकार पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण अरालसे उरभर्त्सन
करो ॥ १ ॥

० वत्सा पुरुषन्त आसते ॥ २ ॥

० वत्स पुरुष धनना चाहते हुए बैठे हैं ॥ २ ॥

० स्थालीपाको वि लीयते ॥ ३ ॥

० स्थालीपाक विलीन होता है ॥ ३ ॥

० स वै पृथु लीयते ॥ ४ ॥

० वह बहुत ही लीन होजाता है ॥ ४ ॥

० अष्टौ लाहणि लीशाथी ॥ ५ ॥

० लाहनमें लीशाथी उपभोग करती है ॥ ५ ॥

इहेत्य प्रागपागुदगधराग्-अच्छिल्ली पुच्छिल्लीयते ६

इति नयमेनुवाके अष्टत्रिंशं सूक्तम् ॥

यहाँ इस मकार पूर्व पश्चिम उत्तरमें अच्छिल्ली पुच्छिल्ली होती है ६

नयम अनुवाकमें अङ्गीसर्वा सूक्त समाप्य (५५०)

“भुगित्यभिगतः” इत्याजिज्ञासेन्याख्यास्तिस्रः अष्टचः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः” इति [वै० ६. २] ॥

“वीमे देवा अक्रंसत” इत्यतीवादाख्या अष्टचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । , “वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्” इति [वै० ६. २] ॥

“भुगित्यभिगतः” इन आजिज्ञासेनी नामक तीन अष्टचाओं को पढ़ता है । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“भुगित्यभिगत इत्याजिज्ञासेन्यास्तिस्रः” (वैतानमूत्र ६ । २) ॥

“वीमे देवा अक्रंसत” इन अतीवाद नामक अष्टचाओंको आधी २ अष्टचा करके पढ़े । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“वीमे देवा अक्रंसतेत्यतीवादम्” (वैतानमूत्र ६ । २) ॥

भुगित्यभिगतः शलित्यपक्रान्तः फलित्यभिष्टितः ।

दुन्दुभिमाहननाभ्यां जरितरोथामो देव ॥ १ ॥

सूक् यह अभिगत है, गल्ल यह अपक्रान्त है, फल यह अभिष्टित है, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त आप दुन्दुभिको ताड़ित करने वाले दो दण्डोंसे क्रीड़ा करिये ॥ १ ॥

कोशविलं रजनि ग्रन्थेर्धानमुपानहि पादम् ।

उत्तमां जनिमां जन्यानुत्तां जनीन् वर्त्मन्यात् २

कोशविल रजन्में ग्रन्थिके धानको जूनेमें पैरको और उत्तमा जनिमा, जन्य और उत्तमा जनियोंको मार्गमें (स्थापित करे) २

अलावूनि पृषातकान्यश्वत्थपलाशम् ।

पिपीलिकावटश्वसो विद्युत्स्वापर्णशफो गोशफो जरित
रोथामो दैव ॥ ३ ॥

लौकी, पृषातक, अश्वत्थ, टाक, पिपीलिक, अवटश्वम, विद्युत्, स्वापर्णशफ, गोशफ, हे स्तोतः ! इसके उपरान्त तू वल से क्रीड़ा कर ॥ ३ ॥

वीमे देवा अक्रंसताध्वर्यो क्षिप्रं प्रचरं ।

सुसत्यमिद् गवामस्यसिं प्रसुदसिं ॥ ४ ॥

ये देवता दमक रहे हैं, हे अध्वर्यो ! आप शीघ्रतासे मन्त्रों-का उच्चारण करिये, आप गौओंके लिये सत्य और प्रसुत् हैं ४

इह इत्येतामर्धर्चशः प्रणवत्पनुते ॥

पत्नी यदृश्यते पत्नी यद्यमाणा जरितरोथामो दैव ।

होता विंष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

जो पत्नी है वह पूजन करती हुई ही पत्नी दीखती है, हे जरितः ! इसके उपरान्त आप भयोंकी जीतनेकी इच्छा करिये

आदित्या ह जरितराज्ञिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।

तां ह जरितः प्रत्यायंस्तामु ह जरितः प्रत्यायन् ६

हे स्तोतः ! आदित्य अंगिराओंसे दक्षिणाको लाये थे, हे
जरितः ! उसको वे लाये थे, हे स्तोतः ! उसको वे लाये थे द
तां हं जरितर्नः प्रत्यंगृभ्णंस्तामु हं जरितर्नः प्रत्यंगृभ्णः
अहानेतरसं न विचेतनांनि यज्ञानेतरसं न पुरोगवामः

हे हमारे स्तोतः ! उसको उन्होंने ग्रहण किया था, हे हमारे
स्तोतः ! उसको आपने ग्रहण किया था, अहानेतरमको नहीं
विशेष चेतनोंको और यज्ञानेतरसंको नहीं, किंतु विशेष चेतनों
को हम सम्मुख होकर प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्धविष्ठः ।

उतेमाशु मानं पिपति ॥ ८ ॥

श्वेत और आशुपत्वा आप पदंपयी ऋचाओंसे युवा होते हैं
और इनको शीघ्र मान पूर्ण करता है ॥ ८ ॥

आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेनु त इदं रा १ः प्रतिगृभ्णीह्यङ्गिरः
इदं राधो विभु मभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥

हे अंगिरः ! आदित्य वसु और रुद्र-तेरे अनुकूल हैं, तू इस
धनको ग्रहण कर, यह धन विभु और मभु है, और यह धन
विशाल और बृहत् है ॥ ९ ॥

देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् ।

युष्मां अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥

देवता तुम्हें प्राणबल देवें, वह आपको चेतनता देने वाला
होवें, तुम्हें प्रत्येक अवसर पर प्राप्त होवें, प्रत्येक अवसर पर
आपको प्राप्त होवें ॥ १० ॥

सप्तदश पदान्यष्टादशभिर्न्याख्याता प्रतिगरे विकारः । ॐ ह
जरितस्तथा ह जरितरिति विपर्यासं जरितुं यतिष्वेवं प्रतिगरामके
सर्वाश्चित्तिपाणिनास्त्वमिन्द्र शर्मरिणेति तिस्रो भूतेष्वदो अर्धर्चशः॥

सत्रह पद अठारहसे व्याख्यात होगए, प्रतिगरमें विकार है ।
ओं ह जरितस्तथा ह जरितः इस विपर्यायसे स्तुति करनेके लिये
तथा प्रतिगरामकमें सर्वाशु हायसे “स्वमिन्द्र शर्मरिणा” इन
ऋचाओंके होने पर इनका अर्धर्चरूपमें पढ़े ।

त्वमिन्द्र शर्मरिणा हव्यं पारावतेभ्यः ।

विप्रांय स्तुवते वंसुवर्णिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! आप इस लोक और परलोक दोनों लोकोंके पार
तक पहुँचने वाले (देवताओं) के लिये शर्मरी (कल्याणमद
अवयव) से हव्यका वहन करिये । और जिसको अन्न मिलना
दुस्तर होरहा है उस स्तुति करने वाले विप्रके लिये धनका सं-
भक्षण करने वाली शक्तिको दीजिये ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्र कपोताय न्निन्नपक्षांय वञ्चते ।

श्यामाकं पक्कं पीलुं च वारस्मा अकृणोर्वहुः ॥ १२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप, परकटे अतएव खिचड़ते हुए कपोतके लिये
काकुनी, और अखरोटको तथा बहुतसे जलको करिये ॥ १२ ॥

अरंगरो वावदीति त्रेधा वृद्धो वरत्रया ।

इरामह प्रशंसत्यनिरामपं सेधति ॥ १३ ॥

इति नवमेनुवाके एकोनचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

चमड़ेकी रस्सीसे तीन स्थानोंमें बँधा हुआ अरंगर बारम्बार

शब्द करना है । यह पृथ्वी की प्रशंसा करता है और पृथ्वी-
रहित स्थानका अपसेधन करता है ॥ १३ ॥

अथम अनुनाकमे उन्तालोसर्वां एक समाप्त (७५१)

“यदस्या” इति षोडश आहनस्या वृषाकपिला वैशिषमुत्तमेन
पादेन प्रणीति ॥

“यदस्या अंहुभेयाः” इत्याहनस्याख्याः षोडशर्चः वृषाकपि-
शस्त्रवच्छंसति । तद् उक्तं वैताने । “यदस्या अंहुभेया इत्याह-
नस्या वृषाकपिवत्” इति [वै० ६. २] ॥

“यदस्या अंहुभेयाः” इन आहनस्य नामक सोलह श्रुचाओं
को वृषाकपिशस्त्रकी समान पढ़े । इसी बातको, वैतानसूत्रमें कहा
है, कि— ‘यदस्या अंहुभेया इत्याहनस्या वृषाकपिवत्’ (वैतान-
सूत्र ६ । २) ॥

यदस्या अंहुभेयाः कृधु स्थूलमुपातंसत् ।

मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शंकुलाविव ॥ १ ॥

जो इस पापभेदिनीका स्थूल कृधु स्त्रीण होगया है, शंकुल
(सौरा मझली) की समान इसके मुष्क गोशफमें हिलने हैं १
यदां स्थूलेन पसंसाणौ मुष्का उपावधीत् ।

विष्वेद्या वस्या वर्धतः सिकंतास्वेव गर्दभौ ॥ २ ॥

जब स्थूल पसः (शिश्र) से अणुमें मुष्कोंका प्रहार किया
तब जैसे रेतमें गधे बढ़ते हैं तैसे ही इस चारों ओर गमन करती
हुई आच्छादिकामें मुष्क बढ़ते हैं ॥ २ ॥

यदलिपिका स्वलिपिका कर्कधूकेवपद्यते ।

वासान्तिकमिव तेजनं यन्त्यवातांय वित्यंति ॥ ३ ॥

जो अन्निकामें अन्निका है, और जो कर्कधूकाकी समान अव-
पदन करती है, वासन्तिक तेजनकी समान अवातके लिये वित्पत्र
में जाते हैं ॥ ३ ॥

यद् देवाप्तो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः ।

सकुला दंदिश्यते नारी सत्यस्यांक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

जब देवता प्रविष्ट सुन्दर गौमें प्रसन्न होते हैं, तब सत्य अक्षि-
भूकी समान सकुला नारी बार बार अला दीजाती है ॥ ४ ॥

महानग्न्युत्प्रद्वि मोक्रंददस्थानासरन् ।

शक्तिकानना स्वंचमशकं सक्तु पद्यम ॥ ५ ॥

ऊपर खड़े हुआ पर न दौड़ता हुआ, उत्क्रमण न करता हुआ
महाभूमि वृत्त होता है, शक्तिकानन हम स्वचमशक दमकते हुआ
को प्राप्त होवे ॥ ५ ॥

महानग्न्युल्लखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् ।

यथा तव वनस्पते निरंघ्रन्ति तथैवति ॥ ६ ॥

महान् अग्नि उल्लखलका अतिक्रमण करती हुई कहने लगी
कि-हे वनस्पते ! जैसे तुझे कूटते हैं, तैसे ही ॥ ६ ॥

महानग्न्युपं ब्रूते अष्टोथाप्यंभूभुवः ।

यथैव ते वनस्पते पिप्पन्ति तथैवति ॥ ७ ॥

महान् अग्नि फहती है, कि-तू अष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट
होजाता है, हे वनस्पते ! जिस प्रकार तू पूरण होता है तिसी
प्रकार ॥ ७ ॥

महानग्न्युपं ब्रूते अष्टोथार्प्यभूभुवः ।

यथा वयो विदाह्यं स्वर्गे नमवदुह्यते ॥ ८ ॥

महान् अग्नि कहता है, कि-तू भ्रष्ट होकर भी बारम्बार प्रकट होजाता है, जैसे अवस्था जीर्ण होकर स्वर्गमें इविकी समान धारण की जाती है ॥ ८ ॥

महानग्न्युपं ब्रूते स्वसावेशितं पसः ।

इत्थं फलस्य वृक्षस्य शूर्पं शूर्पं भजेमहि ॥ ९ ॥

महान् अग्नि कहता है कि-यह शिशु भली प्रकार आवेशित कर दिया है, इस प्रकार हम फलसम्पन्न वृक्ष के छात्रमें छात्र का भजन करते हैं ॥ ९ ॥

महानग्नी कृकवाकं शम्यया परिं धावति ।

अयं न विज्ञ यो मृगः शीर्ष्णा हरति घाणिकां १०

महान् अग्नि कृक शब्द करने वालेपर कर्मसे दीड़ता है। हम जानते हैं कि-वह मृगकी समान शिरसे घाणिकाका हरण करता है महानग्नी महानग्निं धावन्तमनु धावति ।

इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामञ्चौदनम् ॥ ११ ॥

महान् अग्नि दीड़ते हुए महानग्नके पीछे दीड़ता है। इसकी इन इन्द्रियोंकी रक्षा कर, मेरे साथ मैथुन कर और भात भक्षण कर ११ सुदेवस्त्वा महानग्नीर्विवाधते महतः साधु खोदनम् । कुसं पीवरो नवत् ॥ १२ ॥

शोभन दमकने वाला महान् अग्नि भली प्रकार विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़े बड़ोंको कुरेदने वाला है, अधुल कृशको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वशा दग्धानिमाङ्गुरिं प्रसृजतोग्रतं परे ।

महान् वै भद्रो यम् गामंध्यौदनम् ॥ १३ ॥

वशाने इस जली हुई अंगुलिको रचा है, दूसरे उग्रतकी रचना करते हैं महान् कन्याणकारी होता है, मेरे साथ मैथुन कर और भातका भक्षण कर ॥ १३ ॥

विदेवस्त्वा महानंभीर्विवांधते महतः साधु खोदनम् ।

कुमारिका पिङ्गलिका कार्द भस्मां कु धावन्ति १४

यह विशिष्ट देवता महान् अग्नि विशेषरूपसे पीड़ा देता है, यह बड़ेको साधु खोद डालता है, कुमारिका पिङ्गलिका कार्यको करके दौड़ जाती है ॥ १४ ॥

महान् वै भद्रो विन्वो महान् भद्र उदुम्बरः ।

महाँ अभिक्त वांधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥

महान् विन्व भद्र है, महान् उदुम्बर भद्र है, जो महान् पारों ओरसे पीड़ा देता है, यह बड़ों २ को भली प्रकार खोदन करने वाला है ॥ १५ ॥

यः कुमारी पिङ्गलिका वसन्तं पीवरी लभेत् ।

तेलंकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत् ॥ १६ ॥

इति नवमेनुवाके चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

इति कुन्तापस्तकानि ॥

जो पिंगलिका पीवरी कुमारी वसन्तको पाजावे तो तैलके कुण्डमेंसे अँगूठेकी समान इस कुरेदतेहुए शुद्धका उद्धार करती है

नयन अनुशास्त्रमें चालीसवाँ सूक्त समाप्त (७१२)

सोमयागे “दधिक्राव्णः” [२०. १३७. ३] इत्यस्या अच आग्नीध्रीये दधिभक्षणे विनियोगः । तद् उक्तं वैताने । “आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधिक्राव्ण इति” इति [वै० ३. १३] ॥

तथा पृष्ठपट्टहे “दधिक्राव्णः” इत्येतामृचम् अर्धर्चशाः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “दधिक्राव्णो अकारिपमित्यर्धर्चशः” इति [वै० ६. २] ॥

तत्रैव “सुतासो मधुमत्तमाः” [२०. १३७. ४-६] इति पावमान्याख्यास्तिस्रः अचः अर्धर्चशः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः” इति [वै. ६. २] ॥

तत्रैव “अव द्रप्सो अंशुमतोम्” [२०. १३७. ७-९] इति तिस्रः अचः पच्छः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः” इति [वै० ६. २] ॥

सोमयागमें “दधिक्राव्णः” (२० । १३७ । ३) अचका आग्नीध्रीय दधिके भक्षणमें विनियोग है । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“आग्नीध्रीये दधि भक्षयन्ति दधि क्राव्णः” (वैतानसूत्र ३ । १३) ॥

तथा पृष्ठपट्टहमें “दधिक्राव्णः” अचको अर्धर्चरूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“दधि क्राव्णो अकारिपमित्यर्धर्चशः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

तहाँ ही “सुतासो मधुमत्तमाः” (२० । १३७ । ४-६) इन पावमानी नामक तीन अचकोंको अर्धर्चरूपमें पढ़े । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—सुतासो मधुमत्तमा इति पावमानीः” (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

तहों ही “अव द्रप्सो मधुमतीम्” (२० । १३७ । ७-६)
 इन तीन ऋचाओंको पद पद करके पढ़ें । इसी बातको वैतान-
 सूत्रमें कहा है, कि—“अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदिति पच्छः”
 (वैतानसूत्र ६ । २) ॥

यद्ध प्राचीरजंगन्तेरो मण्डूरधाणिकीः ।

हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुधुदयाशवः ॥ १ ॥

यत् । ह । प्राचीः । अजगन्त । उरः । मण्डूरधाणिकीः ।

हताः । इन्द्रस्य । शत्रवः । सर्वे । बुधुबुदयाशवः ॥ १ ॥

जब प्राचीन मण्डूरधाणिकी वृक्षःस्थलको प्राप्त हुई, तब इन्द्र
 के सब बुधुबुदयाशु शत्रु मारे गए ॥ १ ॥

कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयंत खुदत वाज-
 सातये ।

निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सत्रार्थ इह सोम-
 पीतये ॥ २ ॥

कपृत् । नरः । कपृथम् । उत् । दधातन । चोदयत । खुदत । वाज-
 सातये ।

निष्टिग्र्यः । पुत्रम् । मा । च्यावय । ऊतये । इन्द्रम् । सत्रार्थः । इह ।
 सोमपीतये ॥ २ ॥

मनुष्य कपृत् है, तुम कपृथको धारण करो, अन्नकी मात्तिके
 लिये मेरणा करो, रूक्षा पानेके लिये पुत्रको उत्पन्न करो और

वाचः । पतिः । मत्स्वस्यते । विरवस्य । ईशानः । ओजसा ॥ ५ ॥

सोम इन्द्रदेवके लिये पवित्र किया जाता है, इस प्रकार देवता कहते हैं, विरवके ईश्वर वाचस्पति बलपूर्वक मशंसा पाते हैं ॥ ५ ॥

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीह्वयः ।

सोमः पतीं रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

सहस्रधारः । पवते । समुद्रः । वाचमूर्ध्वयः ।

सोमः । पतिः । रयीणाम् । सखा । इन्द्रस्य । दिवेऽदिवे ॥ ६ ॥

यह गमन करने वाला जलसे भरा हुआ सहस्रों धारों वाला सोम पवित्र किया जा रहा है, यह सोम धनोंका स्वामी है और मत्येक स्तोत्रके लिये इन्द्रका मित्र बन जाता है ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहसैः ।

आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणां अधत्त ॥ ७ ॥

अव । द्रप्सः । अंशुऽमतीम् । अतिष्ठत् । इयानः । कृष्णः । दशऽभिः । सहसैः ।

आवत् । तम् । इन्द्रः । शच्या । धमन्तम् । अप । स्नेहितीः । नृमणाः । अधत्त ॥ ७ ॥

दश सहस्र किरणोंसे (रसफो) खेंचने वाले सूर्य पृथ्वीको

विंशः । अदेवीः । अ॒भि । आ॒ञ्चर॑न्तीः । बृ॒हस्प॑तिना । यु॒जा ।

इन्द्रः । स॒स॒हे ॥ ६ ॥

इसके उपरान्त शुकने अपने शरीरको सूक्ष्म करके अंशुमती
घोड़में स्थापित कर दिया, जो देवताओंको न मानने वाली मजाएँ
हैं, उनको इन्द्रने बृहस्पतिकी सहायता लेकर नष्ट कर दिया ६
त्वं ह॒ त्यत् स॒स॒भ्यो जा॑यमानो॒श॒त्रुभ्यो॑ अ॒भवः॑ श॒त्रु-
रिन्द्र ।

गू॒ल्हे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्व॑विन्दो वि॒भुम॑द्भ्यो भुव॑नेभ्यो
रणं॑ धाः ॥ १० ॥

त्वम् । ह॒ । त्प॒त् । स॒स॒भ्यः । जा॑यमानः । अ॒श॒त्रुभ्यः॑ । अ॒भवः॑
श॒त्रुः । इन्द्र ।

गू॒ल्हे इति॑ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । अ॒नु । अ॒वि॒न्दो । वि॒भुम॑द्भ्यः ।
भुव॑नेभ्यः । रणम् । धाः ॥ १० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सातों अशत्रुओंमें प्रकट होकर उनको शत्रु
बन जाते हैं, आपने द्यावापृथिवीका आलिगन किया है और
इसके अनन्तर आपने उनको प्राप्त किया है, और विभुत्व वाले
भुवनोंसे रणको ठान दिया था ॥ १० ॥

त्वं ह॒ त्यद॑प्रति॒मान॑मो॒जो व॒ज्रेण॑ व॒ज्रिन् घृ॑पितो जंघ॒न्य
त्वं शु॒ष्ण॒स्यावा॑तिरो वध॒त्रैस्त्वं गा इन्द्र॑ श॒न्येद॑विन्दः

गिरा वज्रो न संभृतः सवलो अनपच्युतः । ववक्ष
ऋष्वो अस्तुतः ॥ १४ ॥

गिरा । वज्रः । न । समुऽभृतः । सऽवलः । अनपऽच्युतः ॥ ववक्षे ।
ऋष्वः । अस्तुतः ॥ १४ ॥

इति नवमेनुवाके एकचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

अच्युत बलवान् इन्द्र पर्वतसे मिलने वाले वज्र की समान
बलसे भरे हुए हैं । यह अहिंसित श्रेष्ठ पुरुष (शत्रुओंके धनोंकी)
यजमानों पर पहुँचाते हैं ॥ १४ ॥

नवम अनुवाकमेकताञ्जोसर्षो सूक्त समाप्त (८५३)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थेषु “महो इन्द्रो य ओजसा” इत्यस्य
विनियोगः “तमिन्द्रं वाजयामसि” [२०. ४७] इत्यनेन सह उक्तः
तथा छन्दोमाह्वयेषु त्रिष्वहःसु अस्य विनियोगस्तत्रैवोक्तः ॥
तथा त्र्यहाणां चतुर्थेष्वहःसु “महो इन्द्रो य ओजसा” इत्यस्य
विनियोगः “अभि म वः सुराघसम्” [२०. ५१] इत्यत्र उक्तः
तथा चतुरहाणां चतुर्थेष्वहःसु “महो इन्द्रो य ओजसा” [२०.
१३८] “य एक इदं विदयते” [२०. ६३. ४] इत्येतां आज्यो-
क्थस्तोत्रिया भवतः । तद् उक्तं वैताने । “चतुर्थेषु महो इन्द्रो य
ओजसा य एक इदं विदयत इति” इति [वै० ७. ३] ॥

तथा त्रिककुडशाहस्य अष्टमेहनि एष आज्यस्तोत्रियो भवति ।
तद् उक्तं वैताने । “अष्टमे महो इन्द्रो य ओजसेति” इति [वै० ८. ४]

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थोर्मे “महो इन्द्रो य ओजसा” इसका
विनियोग “तमिन्द्रं वाजयामसि” (२० । ४७) के साथ कद
दिया है ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम सत्यकी प्रजाको पुष्ट करो, कि—
जिसका अग्निएँ भरण कर रही हैं और ब्राह्मण यज्ञका वहन
करने वाले अग्निसे जिसकी रक्षा कर रहे हैं ॥ २ ॥

कण्वा इन्द्रं यदक्रंत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि
ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

कण्वाः । इन्द्रम् । यत् । अक्रंत । स्तोमैः । यज्ञस्य । साधनम् ॥

जामि । ब्रुवते । आयुधम् ॥ ३ ॥

इति नवमेनुवाके द्विचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

कण्वने जिस इन्द्रको स्तोमोंसे यज्ञका साधन बनाया है उसी
को जामि आयुध बताती हैं ॥ ३ ॥

नवम अनुवाकमें अष्टालोसर्ग सूक्त समाप्त (७५४)

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्त्येषु स्तोत्रियानुरूपयोरनन्तरम् “आ नून-
मश्विना युवम्” [२०. १३६] “तं वां रथम्” [२०. १४३]
इति सूक्ते शंसति । तत्र पूर्वसूक्तस्य दशमीं द्वादशीमृचम् उत्तर-
सूक्तं च पठ्यः शंसति । तद् उक्तं वैताने । “आ नूनमश्विना युवं
तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पठ्यः”
इति [वै० ४. ३] ॥

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्त्योंमें स्तोत्रिय और अनुरूपके अनं-
तर “आ नूनमश्विना युवम्” (२० । १३६) “तं वां रथम्”
(२० । १४३) इन सूक्तोंको पढ़े । इनमें प्रथमसूक्तकी दशमी
और बारहवीं श्रुवाको और अगले सूक्तको भी पद पद करके
पढ़े । इसी बातको वैतानमूत्रमें कहा है, कि—“आ नूनमश्विना
युवं तं वां रथमिति सूक्ते । पूर्वस्य दशमीं द्वादशीमुत्तरं च पठ्यः”
(वैतानमूत्र ४ । २) ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो ब्राह्मण आपके कर्मोंका परिमर्जन करते हैं, इस सबको काण्वका कृत्य समझो ॥ ३ ॥

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि पिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः

अयम् । वाम् । घर्मः । अश्विना । स्तोमेन । परि । सिच्यते ।

अयम् । सोमः । मधुमान् । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ।

येन । वृत्रम् । चिकेतथः ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आपका यह स्तोम घर्मसे परिपिश्रित होना है, यह सोम मधुसम्पन्न है, हे हविरूप क्रियात्मक घनसे संपन्न अश्विनीकुमारों ! इस सोमसे आप आवरक शत्रुको जानते हैं ४

यदप्सु यद् वनस्पतौ यदोपधीषु पुरुदंससा कृतम् ।

तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥

यद् । अप्सु । यद् । वनस्पतौ । यद् । उपधीषु । पुरुदंससा ।

कृतम् ।

तेन । मा । अविष्टम् । अश्विना ॥ ५ ॥

इति नवमेनुवाके त्रिचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों जलमें वनस्पतिमें और औपधियोंमें ओ कृत है, उससे आप मुझको पूर्ण करिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमे तैत्तिरीयसर्वा सूक्त समाप्त (७५५)

यन्नांसत्या भुरण्यथो यद् वां देव भिपुज्यथः ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम शीघ्रतासे चलने-वाले रथमें बैठने हो, यह आपके लिये क्षिप्रं हृष्टं मेरे स्नोत्र आकाशकी समान अच्युत रहे ॥ ३ ॥

यद्वा वां नासत्योक्थंराचुच्यवीमहि ।

यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

यत् । अथ । वाम् । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ।

यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज उक्थोंसे आपकी गरलमें आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारों ! जो हम वाणीसे आपकी (स्तुति कर रहे हैं यह) काण्वकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद्वां कृत्तीवाँ उत यद् व्यश्न ऋषिर्गद्वां दीर्घ-
तमा जुहाव ।

पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेत-
येथाम् ॥ ५ ॥

यत् । वाम् । कृत्तीवान् । उत । यत् । विऽअश्नः । ऋषिः । यत् ।
वाम् । दीर्घेऽनमाः । जुहाव ।

पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सादनेषु । एव । इत् । अतः ।
अश्विना । चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेनुवाके चतुश्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

यत् । आदित्येभिः । ऋभुभिः । सज्जोपसा । यत् । वा ।

विष्णोः । विक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान प्रीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्वाश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोस्वः ॥ ३ ॥

यत् । अथ । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजसातये ।

यत् । पृत्सु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनौः । अथः

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नमांसिके लिये आह्वान कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है ३
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमांसो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथं४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ।

इमे । सोमांसः । अधि । तुर्वशे । यदा । इमे । कण्वेषु । वाम् ।

अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका दित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें है अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥

(हे स्तोतः !) आप मातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको
(अपने स्तोत्रको) जताइये, हे मृतुते देवि ! आप उसको प्रशंस-
नीय करिये और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों
ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदुपो यासिं भानुना सं सूर्येण रोचसे ।

आ हायमाश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

यत् । उपः । यासिं । भानुना । सम् । सूर्येण । रोचसे ।

आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः । वर्तिः । याति । नृपाय्यम्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ ! तू अपनी कान्तिसे उपाको प्राप्त
होना है और सूर्यके साथ दमस्ता है, और अश्विनीकुमारोंका
रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें जाता है ॥ ३ ॥

यदापीतासो अशवो गावो न दुह ऊर्ध्वभिः ।

यद्वा वाणीरनूपत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

यत् । आपीतासः । अशवः । गावः । न । दुहे । ऊर्ध्वभिः ।

यत् । वा । वाणीः । अनूपत । प्र । देवयन्तः । अश्विना ॥ ४ ॥

जब किरणें पी हुईसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती
हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय अश्विज स्तुति करते हैं, और
वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र ह्युम्नाय प्र शवसे प्र नृपालाय शर्मणे । प्र दक्षाय

प्रचेतसा ॥ ५ ॥

८, ६) ये दो आचार्यें क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मधुमेतीरोपधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या” (वैतानसूत्र ४ । ३) ॥

तं वां रथे वयमद्या हुमेव पृथुज्रयंमश्विना संगतिं गोः ।

यः सूर्या वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १

तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुमेव । पृथुज्रयम् । अश्विना ।

सम्संगतिम् । गोः ।

यः । सूर्याम् । वहति । बन्धुरायुः । गिर्वाहसम् । पुरुतमम् ।

वसूयुम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज आपके उस रथका आह्वान करते हैं, जो आपका रथ विशाल वेग वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है. उस बाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥

युवं श्रियंमश्विना देवता तां दिवां नपाता वनथः

शचीभिः ।

युवोर्वपुंरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् कंकुहासो

रथे वाम् ॥ २ ॥

युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् । दिवां । नपाता ।

वनथः । शचीभिः ।

पिनाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधंयो रत्नं विधत्ते जनाय ४

हिरण्ययेन । पुहभू इति पुहभू । रयेन । इमम् । यज्ञम् । ना-
सत्त्वा । चप । यातम् ।

पेवायः । इन् । मधुनः । सोम्यस्य । दधंयः । रत्नम् । विधत्ते ।
जनाय ॥ ४ ॥

हे महान् रूपमें मरुट होने वाले अश्विनीकुमारों ! आप हित
रमणीय रयसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये
और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अञ्ज्वा पृथिव्या हिरण्ययेन
सुवृता रयेन ।

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः
पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

आ । नः । यातम् । दिवः । अञ्ज्वा । पृथिव्याः । हिरण्ययेन ।
सुवृता । रयेन ।

मा । वामन्ये । नि । यमन् । देवयन्तः । सम् । यद् । ददे ।
नाभिः । पूर्व्या । वाम् ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम हित रमणीय सुवृन् रयके द्वारा पु-
त्रोक्तसे पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूमरे पूजन करने
लिे आपको यशमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्व (नवीन)
भवनकागिणी (स्तुति) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥

को वाजरत्ना सुपतिते-संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारों ! आप
इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप परही निर्भर है७
मधुमतीरोपधीर्द्याव आपो मधुमन्तो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्तो अस्त्वारिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ८
मधुमतीः । ओपधीः । द्यावः । आपः । मधुमान् । नः । भवतु ।
अन्तरिक्षम् ।

क्षेत्रस्य । पतिः । मधुमान् । नः । अस्तु । अरिष्यन्तः । अनु ।
एनम् । चरेम ॥ ८ ॥

ओपधिये हमारे लिये मधुमती होने, द्यलोक हमारे लिये मधु-
मय हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमय हो, क्षेत्रका पति हमारे
लिये मधुमय हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें
पुनार्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः
पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसां उत ये गविंष्टौ सर्वा इत् ताँ उप याता
पिवन्थे ॥ ६ ॥

सहस्रम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वा । वृषभः । दिवः ।
रजसः । पृथिव्याः ।

सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोवृंष्टौ । सर्वा । इत् । तान् ।
यात । पिवन्थे ॥ ६ ॥

नवमेनुवाके सप्तवत्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

हे अश्विनीकुमारों ! तुम ग्रीष्मनाम, चलने वाले रथमें बैठने हो, यह आपके लिये किसे हूँ मेरे स्तोत्र आकाशकी समान अच्युत रहें ॥ ३ ॥

यद्वा वा नासत्योक्थेराचुच्यवीमहि ।

यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत् काणवस्य बोधतम् ॥ ४ ॥

यत् । अथ । वाम् । नासत्या । उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ।

यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना । एव । इत् । काणवस्य । बोधतम् ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज उक्थोंसे आपकी शरणा में आ रहे हैं, हे अश्विनीकुमारों ! जो हम वाणीसे आपकी (स्तुति कर रहे हैं यह) काणवकी ही कृपा समझिये ॥ ४ ॥

यद्वां कृत्तीवाँ उत यद् व्यंश्वा अपिर्गद्वां दीर्घ-
तमा जुहाव ।

पृथी यद्वां वेन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेत-
येथाम् ॥ ५ ॥

यत् । वाम् । कृत्तीवान् । उत । यत् । विऽअरवः । अपिः । यत् ।
वाम् । दीर्घऽनमाः । जुहाव ।

पृथी । यत् । वाम् । वेन्यः । सादनेषु । एव । इत् । अतः ।
अश्विना । चेतयेथाम् ॥ ५ ॥

इति नवमेऽनुवाके चतुर्थन्नारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! कक्षीवान् व्यश्व और दीर्घतमा नामक ऋषियोंने जो आपके निमित्त आहुति दी है, और जो वेनका पुत्र पृथी है, वह आपके सदनमें ही है, हे अश्विनीकुमारों ! इस लिये प्रसुद्ध होइये ॥ ५ ॥

अथम अनुवाकमे चीवालीसर्वां सूक्त समाप्त (७५६)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पां भूतं जगत्पा उत नस्त-
नूपा ।

वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यातम् । छर्दिःऽर्पा । उत । नः । परःऽपा । भूतम् । जगत्ऽर्पा ।
उत । नः । तनूऽपा ।

वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप हमारे भवनकी रक्षा करते हुए मास हजिये, श्रेष्ठ रक्षक होने हुए आप मास हजिये, जगत्के रक्षक होते हुए मास हजिये और हमारे शरीरके रक्षक बनने हुए मास हजिये, पुत्र और पौत्रके लिये वर्तन करते हुए मास हजिये ॥१॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद् वा वायुना भवयः
समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोपसा यद् वा विष्णोर्वि-
क्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

यत् । इन्द्रेण ससरथम् । याथः । अश्विना । यत् । वा । वायुना ।

भवयः । समुऽमोकसा ।

यत् । आदित्येभिः । ऋभुभिः । सजोषसा । यत् । वा ।

विष्णोः । विक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इन्द्रके साथ एक रथमें बैठ कर जाते हैं, और आप वायुके साथ एक स्थानमें रहने वाले हैं, और आप आदित्य तथा ऋभुओंके साथ समान प्रीति रखने वाले हैं और आप विष्णुके विक्रमणोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

यद्वाश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृतसु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

यत् । अथ । अश्विनौ । अहम् । हुवेय । वाजसातये ।

यत् । पृतसु । तुर्वणे । सहः । तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनोः । अवः ।

हे अश्विनीकुमारों ! मैं जो आपको अन्नमांसिके लिये आह्वान कर रहा हूँ, हे यजमानोंको शीघ्रतासे सेवन करने वाले ! जो आप संग्रामोंमें शत्रुओंको दबाने वाले हैं, वही आपकी श्रेष्ठ रक्षा है ३
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथं ४

आ । नूनम् । यातम् । अश्विना । इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ।

इमे । सोमासः । अधि । तुर्वशे । यदा । इमे । कण्वेषु । वाम् ।

अथ ॥ ४ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप अवश्य आइये, ये हव्य आपका दित करने वाले हैं, यह सोम मनुष्य यदुमें और कण्वमें हैं अब आप दोनों आइये ॥ ४ ॥

यन्नांसत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ५

यत् । नासत्या । पराके । अर्वाके । अस्ति । भेषजम् ।

तेन । नूनम् । विमदाय । प्रचेतसा । छर्दिः । वत्साय । यच्छतम् ।

इति नवमेनुवाके पञ्चचत्वारिंशं सूक्तम् ॥

हे अश्विनीकुमारों ! जो आपधि दूर वा पास है, आप अपने ज्ञानयुक्त मनसे विशेषमद करनेके लियेउ सका दीजिये और वत्सके लिये घर दीजिये ॥ ५ ॥

नवम अनुवाकमं वै ॥ लोमर्षी सूक्तं समाप्तं (७५७)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाह अश्विनोः ।

व्यांवदेव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

अभुत्सि । ऊं इति । प्र । देव्या । साकम् । वाचा । अहम् । अश्विनोः ।

वि । व्यावः । देवि । आ । मतिम् । वि । रातिम् । मर्त्येभ्यः ।

मैं ज्ञानमय बुद्धिसे अश्विनीकुमारोंको साथ रहने वाला जानता हूँ, हे बुद्धिदेवि ! आप हमारी मतिको प्रकाशित करिये और मनुष्योंको धन प्रदान करिये ॥ १ ॥

प्र वोधयोपो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।

प्र यज्ञहोतरानुपक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

प्र । वोधय । उपः । अश्विना । प्र । देवि । सूनृते । महि ।

प्र । यज्ञहोतः । आनुपक् । प्र । मदाय । श्रवः । बृहत् ॥ २ ॥

(हे स्तोतः !) आप प्रातःकालके समय अश्विनीकुमारोंको
(अपने स्तोत्रको) जताइये, हे मृन्मते देवि ! आप उसको प्रशंस-
नीय करिये. और हे यज्ञहोतः ! आप विशाल कीर्तिको चारों
ओर फैलाइये ॥ २ ॥

यदुपो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।

आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥

यत् । उपः । यासि । भानुना । सम् । सूर्येण । रोचसे ।

आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः । वर्तिः । याति । नृपाय्यम्

हे अश्विनीकुमारोंके रथ । तू अपनी कान्तिसे उपाकी प्राप्त
होता है और सूर्यके साथ दम होता है, और अश्विनीकुमारोंका
रथ घोड़ोंके नृपाय्य मार्गमें जाता है ॥ ३ ॥

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊर्ध्वभिः ।

यद्वा वाणीरनूपत प्र देव्यन्तो अश्विना ॥ ४ ॥

यत् । आपीतासः । अंशवः । गावः । न । दुहे । ऊर्ध्वभिः ।

यत् । वा । वाणीः । अनूपत । प्र । देव्यन्तः । अश्विना ॥ ४ ॥

जब किरणें वी हुईसी होती हैं, तब गौएँ ऐनोंसे दुही जाती
हैं, हे अश्विनीकुमारों ! उस समय अश्विजस्तुति करते हैं, और
वाणी आपकी स्तुति करती है ॥ ४ ॥

प्र हुम्नाय प्र शवसे प्र नृपात्याय शर्मणे । प्र दक्षाय

प्रचेतसा ॥ ५ ॥

(५८२) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य—भाषानुवादसहित

म । सुम्नाय । म । शवसे । म । नृऽसहाय । शर्मणे ।

म । दत्ताय । मऽचेतसा ॥ ५ ॥

मैं प्रकृष्टरूपसे धन पानेके लिये, और मनुष्योंको दवाने वाला श्रेष्ठ बल पानेके लिये तथा कल्याण और दत्त पानेके लिए प्रकृष्ट ज्ञान वाले मनसे (आपकी स्तुति करता हूँ) ॥ ५ ॥

यन्नुनं धीभिरंश्विना पितुर्योना निपीदथः । यद्वा
सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥

यत् । नूनम् । धीभिः । अश्विना । पितुः । योना । निऽपीदथः ।

यत् । वा । सुम्नेभिः । उक्थ्या ॥ ६ ॥

इति नवमेनुवाके पट्चत्वारिंशं सूक्तम् ॥

जो आप बुद्धियोंसे अपने पालकके कारणमें बैठते हैं और जो सुखमद कारणोंसे प्रशंसनीय होते हैं (इस कारण मैं आपकी स्तुति करता हूँ) ॥ ६ ॥

नवम अनुवाकमें छियालीसवाँ सूक्त समाप्त (७५८)

“तं वां रथम्” इत्यस्य विनियोगः “आ नूनमश्विना युवम्”
[२०. १३६] इत्यत्र उक्तः ॥

अतिरात्रे अतिरिक्तोक्थे “मधुमतीरोपधीः” [२०. १४३. ८. २] इति द्वे अर्चा परिधानीयाशस्त्रयाज्ये क्रमेण भवतः । तद् उक्तं वैताने । मधुमतीरोपधीरिति परिधानीया । उत्तरा याज्या” इति [वै० ४. ३] ॥

“तं वां रथम्” इसका विनियोग “आ नूनमश्विना-युवम्” (२० । १३६) में कह दिया है ।

अतिरात्रके अतिरिक्तोक्थमें “मधुमतीरोपधीः” (२०।१४३।

८. ६) ये दो ऋचाएँ क्रमशः परिधानीया और शस्त्रयाज्या होती हैं । इसी बातको वैतानसूत्रमें कहा है, कि—“मधुमेतीरोपधीरिति परिधानीया उत्तरा याज्या” (वैतानसूत्र-४ । ३) ॥

तं वां रथं वयमुद्या हुमेव पृथुज्रयंमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्या वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् १
तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम । पृथुज्रयम् । अश्विना ।

समुज्जातिम् । गोः ।

यः । सूर्याम् । वहति । बन्धुरायुः । गिर्वाहसम् । पुरुतमम् ।
वसूयुम् ॥ १ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! हम आज आपके उस रथका आवाहन करते हैं, जो आपका रथ विशाल वेग वाला है, गौओंकी संगति करने वाला है जो ऊँचेनीचे स्थानमें जाने वाला आपका रथ सूर्याका वहन करता है, उस बाणीका वहन करने वाले पुरुतम वसुको प्राप्त कराने वाले रथ का मैं आवाहन करता हूँ ॥ १ ॥

युवं श्रियंमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः
शचीभिः ।

युवोर्वपुंरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् कंकुहासो
रथं वाम् ॥ २ ॥

युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् । दिवः । नपाता ।

वनथः । शचीभिः ।

युवोः । वपुः । अभि । पृत्तः । सचन्ते । वहन्ति । यत् । ककु-
हासः । रथे । वाम् ॥ २ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप लक्ष्मीके अधिष्ठात्री देवता हैं और
उसको धूलोकसे नहीं गिरने देते हैं और आप शक्तियोंसे उस
का सेवन करते हैं, अन्न आपके शरीरसे संयुक्त होते हैं और
जो विशाल (घोड़े) रथमें आपका वहन करते हैं, वह आपके
शरीरसे संयुक्त होते हैं ॥ २ ॥

को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्केः ।
ऋतस्य वा वनुपे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना
ववर्तत् ॥ ३ ॥

कः । वाम् । अथ । करते । रातहव्यः । ऊतये । वा । सुतपे-
याय । वा । अर्केः ।

ऋतस्य । वा । वनुपे । पूर्व्याय । नमः । येमानः । अश्विना ।
आ । ववर्तत् ॥ ३ ॥

आज कौन हवि देने वाला आपकी सेवा कर रहा है, और
कोन रक्षा पानेके लिये और अभिषुत सोमका पान करनेके लिये
मन्त्रोंसे आपका आवाहन कर रहा है, यज्ञका सेवन करने वाले
(इन्द्रके लिये) प्रणाम है, और जो उपरम करता हुआ इन
अश्विनीकुमारोंको लाता है उसके लिये प्रणामकरता है ॥ ३ ॥

हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।

पिनाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधयो रत्नं विधत्ते जनाय ४
 हिरण्ययेन । सुवभू इति सुवभू । रथेन । इमम् । यज्ञम् । ना-
 सत्या । उप । यातम् ।

पिनाथः । इत् । मधुनः । सोम्यस्य । दधयः । रत्नम् । विधत्ते ।
 जनाय ॥ ४ ॥

हे महान् रूपमें प्रकट होने वाले अश्विनीकुमारों ! आप हित
 रमणीय रथसे इस यज्ञमें आइये । मधुर सोमके अंशको पीजिये
 और सेवा करने वाले मनुष्यके लिये रत्न दीजिये ॥ ४ ॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन
 सुवृता रथेन ।

मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नामिः
 पूर्वा वाम् ॥ ५ ॥

आ । नः । यातम् । दिवः । अच्छा । पृथिव्याः । हिरण्ययेन ।
 सुवृता । रथेन ।

मा । नः । यातम् । दिवः । अच्छा । पृथिव्याः । हिरण्ययेन ।
 सुवृता । रथेन ।

हे अश्विनीकुमारों ! तुम हित रमणीय सुवृत् रथके द्वारा पृ-
 थ्वीकसे पृथिवीलोकके अभिमुख होकर आओ दूसरे पूजन करने
 वाले आपको यज्ञमें न कर सकें मैं तुम दोनोंको पूर्वा (नवीन)
 भनकाणि (स्तुति) प्रदान करता हूँ ॥ ५ ॥

(५८६) अथर्ववेदसंहिता समाख्य-भाषातुवादः

नू नो रयिं पुंरुवीरं बृहन्तं दत्तां मिमांथामुभयेष्वस्त्रे ।
नरो यद् वांमश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमी-
ल्हासो अगमन् ॥ ६ ॥

नू । नः । रयिम् । पुंरुवीरम् । बृहन्तम् । दत्तां । मिमांथाम् ।
उभयेषु । अस्मे इति ।

नरः । यत् । नाम् । अश्विना । स्तोमम् । आवन् । सधस्तुतिम् ।
आजमील्हासः । अगमन् ॥ ६ ॥

हे अश्विनीकुमारों ! आप इस यजमानके लिये दोनों लोकोंमें
बहुतसे-वीर्यसे उत्पन्न होने वाले उन पुत्र पौत्र आदि-वीरोंसे
सम्पन्न धनको दोनों लोकोंमें मदान करिये, हे अश्विनीकुमारों !
जो मनुष्य आपकी स्तुति करते हैं, वह स्तुतिके साथ ही
आजमीढ़ होकर प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इहेह यद् वां समना पृच्छे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युव-
द्रिक् ॥ ७ ॥

इहइह । यत् । चाम् । समना । पृच्छे । सा । इयम् । अस्मे इति ।
सुमतिः । वाजरत्ना ।

उरुष्यतम् । जरितारम् । युवम् । ह । श्रितः । कामः । नासत्या । युव-
द्रिक् ॥ ७ ॥

जिस प्रकार आप एकसे मन वाले हैं तिस प्रकार आप

को वाजरत्ना सुपतिसे-संयुक्त करिये, हे अश्विनीकुमारों । आप
इस स्तोताकी रक्षा करिये इसकी कामना आप पराही निर्भर है ७
मधुपतीरोपधीर्द्याव आपो मधुमन्तो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ८
मधुमतीः । ओपधीः । द्यावः । आपः । मधुमत् । नः । भवतु ।
अन्तरिक्षम् ।

क्षेत्रस्य । पतिः । मधुमान् । नः । अस्तु । अरिष्यन्तः । अनु ।
पुनम् । चरेम ॥ ८ ॥

ओपधिये हमारे लिये मधुपती होवें, धलोक हमारे लिये मधु-
मप हो, अन्तरिक्ष हमारे लिये मधुमप हो, क्षेत्रका पति हमारे
लिये मधुमप हो और इसके पीछे हम नष्ट न होते हुए विचरण करें
पुनार्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः

पृथिव्याः ।

सहस्रं शंसां उत ये गविंष्टौ सर्वा इत् ताँ उप याता
पिवंथ्यै ॥ ९ ॥

सहस्रम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् । वृषभः । दिवः ।

रजसः । पृथिव्याः ।

सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽष्टौ । सर्वा । इत् । तान् ।
यात । पिवंथ्यै ॥ ९ ॥

नवमेनुवाके सप्तवत्वारिंशं सूक्तम् ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

(५८८) अथर्ववेदसंहिता सभाष्य-भाषानुवादसहित

आपकी स्तुतिरूप किया हुआ 'कर्म' धूलोक और ५ पर (फलकी) वर्ण करने वाला है, गोपूजामें जो सैंकड़ों हैं सोमपान करके उन सबको आप प्राप्त होते हैं अर्थात् पान करानेसे इन सब स्तोत्रोंके पाठका फल मिलता है ॥

नवम अनुवाकमें सैंतालीसवाँ सूक्तसोमोदं (१०१९)

नवम अनुवाक समाप्त

इति श्रीअथर्ववेदसंहिताका विंशकाण्ड ऋषिकुमार

प० रामस्वरूपशर्मात्मज सनातनधर्मपताका

सम्पादक ऋ० कु० प० रामचन्द्र

शर्मा कृत सायणभाष्यानुकूल

भाषानुवाद सहित

समाप्त.

॥ विंशः काण्डः समाप्तः ॥

॥ अथर्ववेदसंहिता पूर्णा ॥



मिलने का पता—

सनातनधर्म-यन्त्रालय,

मुराद